हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी-माला—४३

श्रीरामचरितमानसकी भूमिका



लेखक

श्रीरामदास गौड़



प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेंसी

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता,

देहली और काशी।

प्रथम संस्करण २००० } १९८२ अजिल्द २) सजिल्द ३॥)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
हिन्दी पुस्तक एजेंसी
१२६ हरिसन रोड, कलकत्ता।

मुद्रक—
किशोरी लाल केडिया
वणिक् प्रेस,
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

अनुवचन

यह भूमिका मानसके अनुशीलन करनेवाले पाठकोंके लिये पांच खंडोंमें संग्रह की गयी है। पहले खंडमें शिक्षा और व्याकरण, दूसरेमें शंका-समाधान, तीसरेमें कथाभाग, चौथेमें शब्द कोष, पांचवेंमें ग्रन्थकारकी जीवनी और विचार दिये गये हैं। इसका संग्रह और सम्पादन दो वर्षोंके भीतर सभी दशाओंमें हुआ है। जब जब लेखक बीमार था, तब तब सम्पादन और प्रूफ-संशोधनमें भारी भूलें रह गयीं। यदि शुद्धिपत्र दिया जाय तो कई पृष्ठ व्यर्थ बढ़ेंगे पर पाठकोंको विशेष लाभ न होगा, क्योंकि ऐसे पाठकोंकी संख्या हजारमें शायद एक दो होगी जो पहले शुद्धिपत्रानुसार संशोधन कर लेते हैं, तब पढ़ना आरंभ करते हैं। चतुर पाठक स्वयं त्रुटियोंको सुधार लेते हैं। ऐसा अधिक होता है। इसी आशापर अनेक भूलें होते हुए भी शुद्धिपत्रका व्यर्थ-प्रयास लेखक छोड़ देता है।

गोस्वामीजीका चित्र हमारे परम मित्र प्रसिद्ध कवि और रसिक रायकृष्णदासकी चीज है। उनके निकट इस चित्रकी शुद्धता सिद्ध है। कहते हैं कि यह चित्र लगभग १६६०—७० का होगा। इसी चित्रमें संवत् १६४१ का उनका हस्ताक्षर दे दिया गया है। इस पुस्तकमें जो चित्र दिया जाता है, उसमे यह नवीनता है। पाठकोंके सुभीतेके लिये मानसकारके हाथके अक्षरोंके चित्र भी दिये गये हैं। पंचनामेकी फोटोके लिये श्रीमान् महाराजाधिराज काशीनरेशके प्रधानामात्य श्रीमन् कर्नल विंध्येश्वरीप्रसादसिंहकी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

एजेंसीने मानसका शुद्ध पाठ स्टीरियो कराकर सस्ते दामोंपर निकाला है। यह भूमिका उसी संस्करणपर है। य

भूमिका पहली जिल्द है और रामचरितमानस दूसरी। परन्तु उन पाठकोंके सुभीतेके लिये जो भूमिका मोल लेनेमें समर्थ नहीं हैं, रामचरितमानसकी आदिमें गोसाईंजीकी संक्षिप्त जीवनी और अन्तमें एक संक्षिप्त शब्दकोष दिया जाता है। इस बार बड़ी सावधानीसे शोधकर स्टोरियो कराया गया है। सर्व-साधारणके सुभीतेके लिये सुलभ मूल्यपर यह संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है मानसके प्रेमी सम्पादकके इस परि-श्रमसे पूरा लाभ उठावेंगे।

बड़ी पियरी, काशी।
विजया १,० १९८२ } रामदास गौड़

राम राम राम राम राम

राम राम राम राम

गुरुवर

गोस्वामी तुलसीदासजीके चरणोंमें

श्रद्धांजलि

राम राम राम राम राम राम

विषय-सूची

रामचरितमानसकी भूमिका

पहला खण्ड

दूसरा खण्ड

तीसरा खण्ड

ही तरहसे करते हैं।* तुलसीदासजीके समयमें भिन्न-भिन्न रीतिसे व्यक्त करते थे! "ख" अक्षर था ही नहीं। संयुक्ताक्षरोंमें जब "विष्णु" की जगह "बिस्नु" "अष्टादश" की जगह "अस्टादस" लिखते थे, तब श, ष, अन्तःस्थकी आवश्यकता ही क्या थी। प्राकृतोंकी साधारण प्रवृत्ति सदासे सादगीकी ओर चली आयी है। भरसक संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग घटाना ही समीचीन समझा गया है। यही बात जायसी और तुलसीमें भी पायी जाती है। "ज्ञ" के उच्चारणमें संस्कृतमें ही प्रान्तभेद है। महाराष्ट्र "द्न" उत्तर-भारतीय "ग्यँ" और बंगाली "गँ" अब भी कहते हैं। जायसी और तुलसीने इसे साफ "ग्य" लिखा है। "ञ" का बहिष्कार हो गया। प्राकृतमें यह सर्वथा उचित ही समझा जाता है। प्रतिज्ञा शब्द पहले "पतिञ्ञा" फिर "पइज्जाँ", फिर "पइज्ज" और अंतमें ब्रजभाषाका "पैज" बन जाता है। "सज्ञान" का पहले "सञ्ञान" फिर "सयान" बनता है। "तौ कि बराबरि करइ अयाना" में अयान भी अज्ञानका ही प्राकृत रूप है। इसी तरह "क्ष" का भी प्राकृतमें बहिष्कार ही समझना चाहिये। "लक्ष्मण" का कहीं "लछिमन" और अधिकांश "लषन" हो गया है जो "लखँन" का उसी तरह सुधरा रूप है, जिस तरह "लक्ष्मी" का रूप बँगलामें "लक्खीँ" और हिन्दीमें "लक्खी" या "लखी" हो गया है।

६—शब्दोंके तोड़ने-मरोड़नेका दोष

ब्रजभाषाके कवियोंकी समालोचना करते हुए साधारणतः लोग उन्हें शब्दोंके तोड़ने-मरोड़नेका दोष लगाते हैं, परन्तु जो उदाहरण देखे गये हैं, उनमेंसे अधिकांश प्रचलित

* आजकल स्कूलोंमें अब ऐ और औका शुद्ध संस्कृत उच्चारण प्रायः बहिष्कृत है। बैल और ठौर वाला ही उच्चारण सिखाते हैं। "कौआ" का उच्चारण "कउआ" नहीं कराते "कओवा" कराते हैं! आधुनिक शिक्षा प्रणालीका यह भी एक प्रसाद है! ले०

चौथा खण्ड

पांचवां खण्ड

चित्र-सूची

मंत्र महामनि बिषय ब्यालके
मेटत कठिन कुअंक भालके



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

पहला खण्ड

शिक्षा और व्याकरण



रामचरितमानसकी भूमिका



गोस्वामी तुलसीदास

श्रीरामचरितमानसकी भूमिका

पहला खण्ड



रामचरितमानसकी शिक्षा और व्याकरण

१—प्राकृत और संस्कृतका भेद

सभी देशोंमें और सभी कालोंमे भाषाके दो रूप हुआ करते हैं, प्राकृत और संस्कृत। प्रकृति, प्रजा वा साधारण जनसमुदाय—जिसमें पौर और जानपद दोनों परिगणित हैं—जो भाषा बिना किसी बनावटके बोलता है और जिसमें अपने मनोभाव प्रकट करता है, वह 'प्राकृत' कहलाती है। शिष्ट और शालीन पौर वा पंडित वा शिष्ट समाजमें रहनेवाले जैसे अपने आचार व्यवहारपर ध्यान रखते हैं, वैसे ही अपनी भाषाके सौंदर्य, सौष्ठव और शीलपर भी ध्यान रखते हैं, उसमें कोमलता और माधुर्य्य लानेका प्रयत्न करते हैं, विचार और कल्पनाके विकारसे नये मुहावरे, नयी परिभाषा, नयी रचनाका समावेश होता जाता है, नियम और प्रयोगकी समानतापर निगाह रहा करती है, शिष्टोंका प्रयोग प्रमाण बनने लगता है,—इन समस्त परिस्थितियोंसे भाषाका संस्कार हो जाता है और शिष्ट शालीन जनानुमोदित भाषा 'संस्कृत' कहलाती है। प्राचीन भारतमें जिस समय जातकोंकी भाषा वा पाली साधारण बोलचालकी भाषा थी, उसी समय "भोवादी ब्राह्मणों" अर्थात् विद्वानों और शिष्ट सज्जनोंकी भाषा वैयाकरणानुमोदित संस्कृत थी।

जनताकी बोलचाल जबतक व्याकरणके सांचेमें ढल नहीं जाती या नियमोंके शिकंजेमे कस नहीं जाती तबतक उसका रूप नित्य बदलता रहता है, उसमें निरन्तर विकार होते रहते हैं और यही बात स्वाभाविक है, प्राकृत है, जीवन-मरणका कारण है। व्याकरणके कड़े नियम उसे विकारोंकी परिधिसे बाहर निकाल लेते हैं। यद्यपि इस तरह उसके प्रयोगकी सीमा संकुचित हो जाती है, तथापि उसमें अधिक स्थायित्व आ जाता है, भाषा अमर हो जाती है। उसपर देश, काल और स्वभावकी परिस्थिति पहलेकी तरह अपना प्रभाव नहीं डाल सकती।

साधारण जनताकी भी उन्नति और विकास होता ही रहता है। जनताके विकसित अंशकी भाषा भी देश और कालके क्रमसे धीरे-धीरे संस्कृत होती जाती है। इस तरह यह दोनों विभाग, प्राकृत और संस्कृत प्रत्येक देश और कालमें स्वभावतः रहता ही है। वर्तमान कालमें खड़ी बोली हमारी संस्कृत है और प्रान्तीय बोलियां प्राकृत हैं।

हिन्दुओंकी "हिन्दुई" अथवा हिन्दकी "हिन्दी" भाषा भी इन्हीं विकारोंके अधीन मुद्दतसे चली आयी है। आवा-जाई, चिट्ठी-पत्री, समाचार-पत्रादिके कालसे पहले जब खड़ी बोलीको वर्तमान गौरव नहीं मिला था, जबतक वह "संस्कृत" नहीं समझी गयी थी, तबतक उसकी गिनती प्रान्तीय बोलियोंमे ही थी। जिन प्रान्तीय बोलियोंमें हिन्दीकी कविता होती चली आयी है, उनमें राजस्थानी प्राकृतमें चन्दका रासो, दिल्ली, सहारनपुर और मेरठ प्रान्तकी खड़ी बोलीमें और ब्रजभाषामें अमीर खुसरोकी रचनाएं, खड़ी बोली और भोजपुरियामें कबीरदासकी रचनाएं, अवधीमें जायसीकी कविता और भोजपुरिया-मागधीमें विद्यापतिकी पद्य-रचनाएं प्रसिद्ध हैं। उस समय यह प्रान्तकी बोलियां निःसन्देह प्राकृत थीं और इन्हींके मुकाबले पाणिनिके सूत्रोंसे "संस्कृत" चुने हुए विद्वानोंसे ही आदर पा रही थी।

किसीकी भाषा तो रह नहीं गयी थी। ऐसी ही अवस्थामें गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपनी कविताकी भाषा देश काल और परिस्थितिके अनुसार अधिकांश अवधी, कुछ व्रजभाषा, कहीं-कही बुन्देलखण्डी और कहीं स्पर्शमात्र भोजपुरिया रखी है।

१—राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा, बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा
स्रवन समीप भये सित केसा, मनहुं जरठपनु अस उपदेसा
नृप जुबराज राम कहुँ देहू, जीवन जनमु लाहु किन लेहू।
(अवधी)

२—अवलोकि हौं सोच बिमोचनकों ठगिसी रही जे न ठगे धिक से
(व्रजभाषा)

३—ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुनामई
अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीट्यो दई
(बुन्देलखण्डी)

४—सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल, काहि अस कोपि गगनपथ धायल
(भोजपुरिया)

मानसकार गोस्वामीजीके समयमे आजकलकी खड़ी बोली जो वस्तुतः प्रान्त विशेषकी प्राकृत थी, संस्कृतके पदपर नहीं आयी थी। यही बात है, कि गोस्वामीजीने स्थलस्थलपर जहां भाषाकी चर्चा है, एक ओर "संस्कृत" का विचार किया है तो दूसरी ओर "प्राकृत" "भाषा" "ग्राम्य" वाणी आदिका प्रयोग किया है।

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच,
काम तो आवे कामरी, का लै करै कमांच।" [दोहावली]

"भाषा निबन्धमति मञ्जुलमातनोति"
"भाषा बद्धमिदं चकार तुलसीदासः"

"भाषा बन्ध करबि मैं सोई"

"जे प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन हरिचरित बखाने"

"भाषा भनित मोरि मति भोरी"

"भनित भदेस बस्तु भलि बरनी"

"गिरा ग्राम सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान"

"सियनि सुहावनि टाट पटोरे"

"राम सुकीरति भनित भदेसा" इत्यादि

[रामचरितमानस]

जिस तरह नाटकोंमें संस्कृतके साथ साथ प्राकृतका मिश्रण प्राचीन कवि करते आये हैं, उसी तरह तुलसीदासजीने अपने महाकाव्यमें प्राकृतके साथ साथ पवित्र "देववाणीसे" अपनी रचनाका आरम्भ और अन्त किया है। "इति श्रीरामचरित मानसे" इत्यादि यह संस्कृतका ही ढङ्ग है।

२-"भाषा" लिखनेका कारण

भाषा और संस्कृतके भेदकी चर्चा तुलसीदासजीके पूर्ववर्ती वा परवर्ती कवियोंने न तो इतनी विशेषतासे कहीं की है और न प्राचीन संस्कृतको अपनी कवितामें कोई विशेष आदर दिया है। इतनी बात अवश्य देखी जाती है, कि चंद कवि संस्कृतकी छौंक बघारसे बाज नहीं आते। अनुस्वारोंके प्रयोगसे संस्कृतानुकरण तो चन्दके सिवा अन्य कवियोंने भी किया है। तो भी भाषामें कविता करनेके लिये विशेष रूपसे कोई कारण नहीं दिखाये। तुलसीदासजीने स्वीकार किया है, कि हम "स्वान्तः सुखाय" "मोरे हिय प्रबोध जेहि होई" भाषामें लिखते हैं। स्पष्ट है कि प्राचीन संस्कृत मातृभाषा नहीं है, उससे "प्रबोध" होना कठिन है। "गुरुजीने बारम्बार जो कथा मुझसे कही, वह ...संस्कृतमें थी (अपनी बालबुद्धिके अनुसार थोड़ा बहुत मैंने

समझा। प्रबोध तभी होगा, जब मैं अपनी भाषामें कहूंगा। इसमें एक विशेष लाभ भी है, कि भगवान्‌के चरित बखानकर मैं अपनी वाणीको पवित्र करूंगा। चतुर कवि भगवान्‌का गुणगान करके अपनी वाणीको पवित्र करते हैं। भाषामें प्राकृत जनोंका गुणगान करनेसे सरस्वती अप्रसन्न हो जाती हैं।" गोस्वामी-जीने यह युक्ति इसलिये दी, कि उनसे पहलेके अनेक कवियोंने राजाओंकी प्रशंसा, रईसोंकी खुशामदमें अपनी कविताका दुरु-पयोग किया था। साथ ही यह भी स्मरण रहे, कि आजकलकी तरह साढ़े तीन सौ बरस पहले भी संस्कृतके प्रकांडपंडित "भाषा"को हेय दृष्टिसे देखते थे। संस्कृतके पण्डितोंकी यह प्रवृत्ति इतनी ही पुरानी नहीं है। धम्मपदकी "भोवादियो" वाली बात ढाई हजार बरस पहलेका पता देती है। गोस्वामीजी भक्तों और पण्डितोंके बीच रहते थे। रईसोंके दरबारदार न थे। पण्डितोंकी रायका उन्हें बड़ा खयाल था। ऐसा होते हुए भी नैसर्गिक कवित्वशक्ति उन्हें भाषा कविताकी ओर खींचे लिये जाती थी और देशकालकी आवश्यकता भी भाषाके ही पक्षमें थी। इस दृष्टिसे भी गोस्वामीजीको भाषा पक्ष-समर्थनकी आव-श्यकता थी।

३—मानसकी भाषाका स्थान

रामचरितमानसकी भाषा प्रधानतः अवधी है। यह प्रायः वही भाषा है, जिसमें गोस्वामीजीके कुछ पूर्व मलिक मुहम्मद जायसीने पद्मावत लिखी। पद्मावतकी भाषामें और रामचरित-मानसकी भाषामें कुछ अन्तर है। परन्तु वह व्याकरणका नहीं, शैलीका अन्तर अवश्य है। पद्मावत जहां शुद्ध तद्भवमय है, वहां रामचरितमानस अर्द्ध तत्समोंसे भरा है। गोस्वामीजी कहनेको तो कहते हैं, कि हमारी भाषा गंवारू है, पर उनकी शैली वस्तुतः अधिक परिमार्जित है। उनकी भाषा विद्वान्‌की लिखी ग्रामीण भाषा है, उसमें संस्कृत काव्यका अनुकरण पर्याप्त-रूपसे है। जहां

पद्मावतका शील मुसलिमका पता देता है, वहां रामचरितमानस हिंदू भक्ति-भावसे डूबी हुई कविता है। विषयके कारण भी भाषा-शैलीमें अन्तर पड जाता है। गोस्वामीजीकी मातृभाषा संभवतः बुंदेलखंडी मिली हुई अवधी होगी, क्योंकि टोडरमलके लड़कोंके लिये पंचायतनामा लिखते हुए भी—जब कि काशीमें उनके जीवनका एक बड़ा भाग बीत चुका था—गद्यमें भी वह अवधीका ही प्रयोग करते हैं। काशीकी भाषा भोजपुरियासे मिलती जुलती अर्द्धमागधीका रूपांतर अब भी है और गोसाईंजीके समयमें भी थी। "हमहिं दिहल जड़ करम कुटिल चँद मन्द मोल बिन डोलारे" आदि गोसाईंजीके ही पदोंके सिवा कबीरदासजी जो काशीमें तुलसीदासजीसे डेढ़ सौ बरस पहले हो गये थे, खडी बोली और भोजपुरियामें ही कविता कर गये। इतनेपर भी राम-भक्त गोसाईंजीने रामजीकी अवधकी भाषाका ही प्रयोग काशीमें रहते हुए स्थिर रखा।

४—छंद-रचनामें पिंगलकी रीतिसे भेद

गोसाईंजी अपने समयके प्रचलित प्राकृतके अपूर्व पंडित थे। उनकी कविताका ढंग हिन्दीकी कविताकी परम्पराके अनुकूल था। मलिक मुहम्मद जायसीकी पदमावत दोहा-चौपाइयोंमें ही है। यह चाल इतनी मिलती-जुलती है, कि दोहोंमें पहले और तीसरे चरणोंमे तेरहके बदले बारह मात्राओंका प्रयोग गोसाईं-जी और जायसी दोनोंने किया है। प्रचलित पिंगलकी रीतिसे इसे दोहेके किसी प्रकारमें नहीं गिन सकते। तौ भी यह गोसा-ईंजी या जायसीकी भूल नहीं है। उन्होंने जानबूझकर ऐसा किया है। वह आचार्य्य थे। उनका लिखना ही प्रमाण है। पिंगलकारोंको चाहिये था, कि दोहोंके एक प्रकारमें अथवा मात्रिक छंदोंके अर्द्ध समोंके रूप-विशेषमें इसे सन्निविष्ट करते। जो
रितमानसका छन्द-प्रबन्ध भी परम्पराके अनुसार ही

है। चौपाइयोंमे भी ऐसी विषमता कहीं-कहीं देखनेमें आती है, जो पिंगलग्रंथोंके अनुसार नियमका व्यतिरेक समझी जायगी ॥

५—लिपि और शिक्षा

गोसाईंजी स्वयं बड़े अच्छे अक्षर लिखते थे। उन्होंने अनेक पोथियोंकी नकल की होगी। वाल्मीकीय रामायणकी उनके हाथकी लिखी एक प्रति काशीके सरकारी सरस्वती-भवनमें रखी हुई है। राजापुरका अयोध्याकांड उन्हींके हाथका लिखा हुआ कहा जाता है। पर लिखावटमें अन्तर अवश्य है। राजापुरवाली प्रतिका ग्रंथकारका स्वलिखित होना केवल अनुमान-पुष्ट है। सरस्वती-भवनवाली प्रतिमें साफ "तुलसीदासेन लिखित" और संवत् मौजूद है। यह संस्कृत है। राजापुरवाली पोथी मानसका अयोध्याकाड है। शिक्षाके लिये उसे ही ठीक मानें तो कहना पड़ता है कि "व" आजकलके "व" की तरह लिखते थे। "व" उच्चारण व्यक्त करनेको उसके नीचे बिन्दी देते थे। "श्री" को छोड़ "भाषामें" तालव्य "श"का प्रयोग नहीं है। मूर्धन्य "ष" सर्वत्र "ख" की जगह लिखा गया। अमृत शब्द प्राकृतमें अमिअ या अमी बन जाता है। वह नियमतः "अमिअ" लिखते थे। संयुक्ताक्षर "ज्ञ" के स्थानमें ग्य और "क्ष"के स्थानमें "छ" वा "ष" लिखना उनका नियम था। "ङ","ञ" और विसर्गका प्रयोग उनकी प्राकृतमें न था। संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग कम करते थे। "धर्म्म कर्म्म" धरम करम था। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ उनकी "भाषा बरनमाला"में न थे।

मागधीके प्रभावसे पूर्वी और पहाड़ी बोलियोंमें जैसे "श" का ही प्रयोग है, "स" का नितान्त अभाव है, उसी तरह शौरसेनीसे प्रभावान्वित बोलियोंमें "शकार" का अभाव है। शौरसेनी और पैशाची वर्णमालामें "ण" है और "न" नहीं है। उसी तरह मागधीमें "ण" नही है, "न" है। अवधका प्रान्त दोनोंके मध्यमें पड़ता है। इसीलिये हम देखते हैं, कि अवधीमें जहां

शौरसेनीकी तरह तालव्य "श" नहीं है, वहां मागधीकी तरह मूर्द्धन्य "ण" भी नहीं है। इनकी जगह क्रमशः दन्त्य "स" और "न" से ही काम लिया गया है। यह दोनों समस्थानीय हैं और इनसे अवधीका माधुर्य्य बढ़ जाता है। "रैयत" और "कौआ" वाले ऐ और औ के स्थानमें "अइ" और "अउ" का प्रयोग तुलसी और जायसी दोनों ही करते हैं। "वैल" और "ठौर" वाले "ऐ" और "औ" के लिये ही ऐ और औ अवधीमें लिखे गये हैं। जैसे "अनैसे, वैसा, भैसा" इत्यादि "कहउ" "रहइ" को कहौ और रहै लिखना अवधी नहीं है, व्रजभाषा है।

इस तरह अवधीकी वर्णमाला यों हुई—

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं
क ख ग घ
च छ ज झ
ट ठ ड ढ ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ व भ म
य र ल व स ह

तुलसीदासजी जिसे भाषा कहते हैं, उसमें यही ४१ अक्षर व्यवहारमें आते हैं। अवधीके शब्द-भाण्डारमें अधिककी आवश्यकता नहीं पड़ती। "रिषि" भगति पूछते हैं और "सिव" अधिकारी पाकर कहते हैं, और सच तो यह है, कि जिस शिक्षाके अनुकूल "ऋ" का स्वरकी तरह शुद्ध उच्चारण होता है, वह तो नष्ट ही हो गयी है। अब लिखनेको हम "ऋषि" लिखते हैं, पर पढ़ते हैं "रिषि"। मद्रास प्रान्तका विद्वान् "रुचि" की तरह उच्चारण करता है। "ॠ" के ठीक उच्चारणका पता नहीं। यही हाल "लृ" आदिका भी है। आजकलकी लिपिमें 'रैयत और बैल' ... 'ऐ' का उच्चारण भिन्न तो है परन्तु आज दोनोको व्यक्त एक

ही तरहसे करते हैं।* तुलसीदासजीके समयमें भिन्न-भिन्न रीतिसे व्यक्त करते थे। "ख" अक्षर था ही नहीं। संयुक्ताक्षरोंमें जब "विष्णु" की जगह "विस्नु" "अष्टादश" की जगह "अस्टादस" लिखते थे, तब श, ष, अन्तःस्थकी आवश्यकता ही क्या थी। प्राकृतोंकी साधारण प्रवृत्ति सदासे सादगीकी ओर चली आयी है। भरसक संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग घटाना ही समीचीन समझा गया है। यही बात जायसी और तुलसीमें भी पायी जाती है। "ज्ञ" के उच्चारणमें संस्कृतमें ही प्रान्तभेद है। महाराष्ट्र "द्न" उत्तर-भारतीय "ग्यँ" और बंगाली "गँ" अब भी कहते हैं। जायसी और तुलसीने इसे साफ "ग्य" लिखा है। "ज्ञ" का बहिष्कार हो गया। प्राकृतमे यह सर्वथा उचित ही समझा जाता है। प्रतिज्ञा शब्द पहले "पतिज्ञा" फिर "पइज्जाँ", फिर "पइज्ज" और अंतमें व्रजभाषाका "पैज" बन जाता है। "सज्ञान" का पहले "सज्ञान" फिर "सयान" बनता है। "तौ कि बराबरि करइ अयाना" में अयान भी अज्ञानका ही प्राकृत रूप है। इसी तरह "क्ष" का भी प्राकृतमें बहिष्कार ही समझना चाहिये। "लक्ष्मण" का कहीं "लछिमन" और अधिकांश "लषन" हो गया है जो "लक्खँन" का उसी तरह सुधरा रूप है, जिस तरह "लक्ष्मी" का रूप बँगलामें "लक्खीँ" और हिन्दीमें "लक्खी" या "लखी" हो गया है।

६—शब्दोंके तोड़ने-मरोड़नेका दोष

व्रजभाषाके कवियोंकी समालोचना करते हुए साधारणतः लोग उन्हें शब्दोंके तोड़ने मरोड़नेका दोष लगाते हैं, परन्तु जो उदाहरण देखे गये हैं, उनमेसे अधिकाश प्रचलित

---

* आजकल स्कूलोंमे अब ऐ और औका शुद्ध सस्कृत उच्चारण प्राय बहिष्कृत है। बैल और ठौर वाला ही उच्चारण सिखाते है। "कौआ" क उच्चारण "कउआ" नही कराते "कओवा" कराते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणालीका यह भी एक प्रसाद है। ले०

प्राकृतके शुद्ध तद्भव शब्द हैं, जिनका प्रयोग किसी किसी प्रान्तके लिये केवल स्थानीय है, जिसकी अभिज्ञता सबको होनी सम्भव नहीं है। कविका ज्यों-ज्यों विकास होता है, त्यों-त्यों वह एक देशीयताकी संकुचित सीमासे निकलकर सर्वदेशिकताको प्रशस्त परिधिमें आता जाता है। अधिक व्यापक शब्दोंका ही व्यवहार करने लगता है। मानसके शुद्ध पाठको देखकर बहुधा प्राकृतके नियमोंसे अनभिज्ञ सज्जन उन शब्दोंके "अशुद्ध" या "तोड़े-मरोड़े" होनेका भी दोष लगाते हैं, जो वस्तुतः एक देशीय वा स्थानीय हैं। इतना ही नहीं, आये दिन प्रेसोंसे भी पण्डितोंद्वारा शोधी हुई "तुलसीकृत रामायण" निकला करती है। उसे अरसिक जनता अधिक पसन्द करती है। पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, पण्डित रामेश्वर भट्ट आदिने तो शोधकर उसका रूप ही बदल दिया। गोसाईंजीकी रचनाको लोगोंने यहांतक अपनाया, कि घटाने या बढ़ानेमें, संशोधन वा परिवर्तनमें, किसी बातमें तनिक भी संकोच न किया। इससे जनता इतने भ्रममें पड़ गयी, कि आज शुद्ध पाठका यदि आदर है तो ऊँची श्रेणीके हिन्दी-प्रेमियोंमें ही है। ऐसे संस्करण निकले हैं, कि यदि आज तीन सौ वर्ष पीछे गोस्वामीजीकी मुक्त आत्मा देखे, तो पहचान न सके, कि यह हमारी ही रचनाकी कपाल-क्रिया है। पंडितसमुदाय यह भूल जाता है, कि मानस जनता वा प्राकृत जनोंके लिये लिखा गया है।

लिपि-प्रणाली और शिक्षापर हम जो कुछ ऊपर लिख आये हैं, वह अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी पद्धतिपर विचार और आलोचनाका फल है। हमारे तर्ककी प्रतिज्ञा यह नहीं है, कि लिखनेवालोंने सर्वत्र अपनेको हमारे ऊपरके बताये नियमोंमें दृढ़तापूर्वक बद्ध कर रखा है। जब तीन सौ बरस पीछे आज भी रेल, तार, डाक, प्रेस, आवाजाईके और विचार और कार्य्य विनिमयके पूर्वापेक्षा अपरिमित सुभीतेके युगमें भी, अच्छे

अच्छे लेखक जिनके व्याकरण सिद्धान्त निश्चित हैं, लिपि और शिक्षाकी सर्वमान्य प्रणाली स्थिर नहीं कर सके हैं—प्रत्युत जब आज भी एक ही सिद्धान्तनिष्ठ सुलेखक अपने एक ही लेखमें अपने ही मान्य नियमका बराबर पालन नहीं कर पाता—तो गोस्वामीजीके समयमें यदि पूर्वोक्त लिपिके नियम अस्सी प्रति सैकड़ा भी पाले जाते थे, तो थोड़ी प्रशंसाकी बात नहीं है।

प्रस्तुत संस्करणमें जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उनके सुभीतेकी दृष्टिसे हमने "ख" और "ष" का प्रयोगमात्र संस्कृतकी तरह किया है। पाठकोंको यह समझ लेना चाहिये, कि "विसेष" का अनुप्रास "देख" तभी हो सकता है, जब विसेख पढ़ा जाय। तुलसीदासजीने अन्त्यानुप्रास द्वारा "ष" का स्वमान्य उच्चारण निर्दिष्ट कर दिया है।

एक वचन अकारान्त संज्ञा यदि कर्मकारक हो, तो उसके अन्तमें अवधीमें प्रायः "उ" का आदेश होता है। हमने "प्रायः" इसलिये कहा, कि शुद्ध पाठोंमें भी इस नियमके अनेक अपवाद हैं। "समाजु", "राजु", "थलु", "बिचारु", "करमु", "धरमु" इत्यादिका प्रयोग मानसमें विस्तृत रूपसे पाया जाता है। शब्दों और क्रियाओंके रूप अवधीमें जैसे पहले प्रयोगमें आते थे, आज कल उनसे कुछ ही भिन्न हैं। पाठकोंके सुभीतेके लिये हम चुने हुए शब्दों और धातुओंके रूप इस प्रकरणके अन्तमें देते हैं।

७—छन्दोंका चुनाव

रामचरितमानस विशेषकर दोहा-चौपाइयोंमें लिखा गया है। बीच-बीचमें अवसरानुकूल और विषय या काण्डके अन्तमें अवश्य हरिगीतिका छन्द दिये गये हैं। स्तुतियोंमें और युद्ध-प्रकरणमें और छन्द भी काममें आये हैं। संस्कृत-काव्योंमें भी सर्गान्तमें किसी भिन्न वृत्तसे समाप्ति होती है। स्तुति या युद्धादि प्रकरणमें भिन्न भिन्न वृत्त काममें लाये जाते हैं। मानस

और पद्मावतके सैकड़ों वर्ष पहलेसे दोहा-चौपाईका ढंग लोकप्रिय रहा है। छः सौ वर्ष पहलेकी खालिकबारी भी चौपाइयोंमें ही है और आज भी गाँवके अपढ़ अहीर जो बिरहा गाते हैं, वह वस्तुतः दोहासे आरम्भ करके बीचमें चौपाइयां कहते और फिर दोहासे ही समाप्त करते हैं। उनकी रचना चाहे छन्दःशास्त्रके बारीक कांटेपर तुल न सके, पर दोहा-चौपाईके वह मूलरूप अवश्य हैं, इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं है।

८—कविकी प्रतिभा

गोसाईंजीने यह शालीनतापूर्वक कहा है, कि मैं गँवारू भाषामें लिखता हूं और मूझे कविताका विवेक नहीं है, चतुर पाठक सुधार लें, इत्यादि। परन्तु उनकी लोकोत्तर-आनन्ददायिनी कविता, उनका वाक्-पाटव, उनका 'विचित्र कथा-प्रवन्ध, उनका भाषाशील—सभी कुछ उनकी अपूर्व प्रतिभाका परिचायक है। जब कबीरदास जैसे निरक्षर भक्त प्रतिभासम्पन्न कविता कर सकते हैं, तब शिक्षित गोसाईंजी ऐसी अनुपम कविता करें, तो क्या असंगति है? उनके महाकाव्यकी आलोचना ऐसा स्वतन्त्र विषय है, कि इस छोटीसी भूमिकामें उसका स्पर्श भी असंभव है। यहां इतना ही कह सकते हैं, कि "कविरनुहरतिच्छायां" की उक्तिके अनुसार गोसाईंजीने अपने पूर्वके संस्कृत और प्राकृत कवियोंके भाव ग्रहण किये हैं, परन्तु उनकी वर्णना ऐसी स्वाभाविक है, भाषा ऐसी कसी हुई है और ढङ्ग ऐसा अनोखा है, कि गोसाईंजीकी रचना मौलिक जान पड़ती है और मूल कविता गोसाईंजीका भद्दा सा अनुवाद। गोसाईंजीकी भाषा इतनी स्वाभाविक है, कि झट जुबानपर चढ़ जाती है, शब्दोंका चुनाव इतना उपयुक्त है, कि उनके एक शब्दके बदले दूसरा चुनना असंभव है। क्षेपक सैकड़ों लगाये गये, खपानेका यत्न हुआ, परन्तु गोसाईंजीकी कवितामें पैबन्दका लगाना कितना मुश्किल है, यह इसी बातसे स्पष्ट है कि क्षेपकवाले जब

गोसाईंजीकी नकल न उतार सके, तो उनके पाठको ही उन्होंने बिगाड़ा कि मेल मिले। कहावत है, कि "ऐब करनेको भी हुनर चाहिये" बिगाड़नेको भी शऊर चाहिये, अतः पाठ बिगाड़नेसे काम न बना।

गोसाईंजी पूर्वापरका विचार इतनी दूर दर्शितासे करते थे, कि आजतक लोग सैकड़ों शंकायें निकालते हैं और उनका समाधान भी उसी मानसके भीतर ही भीतर हो जाता है। लक्ष्मणजीकी मूर्च्छापर श्रीरामचन्द्रजीके अनेक असगत वाक्योंके पीछे "प्रभु प्रलाप" कहना वा "दुइ सुत सुन्दर सीता जाये" में सीताका ही उल्लेख और शेप सन्तानके प्रकरणमें "सब भ्रातन्ह" कहना, इत्यादि इस बातके उदाहरण हैं।

९--पाठ-भेदमें लेखन-प्रमाद

गोसाईंजीके समयमें विभक्तियोंके मिलाने या अलगानेका कोई झगड़ा न था। छन्दके चरण अवश्य अलग-अलग लिखे जाते थे, शेप सब एकमें मिलाकर लिखते थे। आजकल अलगाकर लिखनेवालोंने "दशरा मशरा:" न्यायसे अनेक पाठ-प्रमाद उत्पन्न कर दिये हैं। पुरानी हाथकी लिखी पोथियोंमें पाठ है "सीतलनिसितवहसिवरधारा", आजकल पाठ कहीं हो गया है "सीतल निसि तव असि वर धारा" और कहीं "सीतल निसि तव हसि वर धारा। अर्थ संगतिमे जो कठिनाई पड़ती है, रसज्ञ ही जानते हैं। पाठ होना चाहिये "सीतल निसित वहसि वर धारा," अर्थ स्पष्ट हो जाता है। पाठ था "जेहितरहेकरततेइ सोइपीरा," प्रमादपूर्वक अलगानेसे हुआ "जेहि तर हे करत तेइ पीरा"। अब "जेहि"के "जे" को ह्रस्व पढ़ना पड़ा, तो चौपाईका पद पन्द्रह मात्राका हो गया और अर्थ भी नहीं लगा। "हे" के पहले "र" की छूट समझकर यों शोधा "जेहि तर रहे करत तेइ पीरा," अब "तर" की जगह "तरु" हो जाना तो कुछ बात ही

नहीं है। परन्तु पाठ "जे हित रहे करत तेइ पीरा," रखनेसे सभी दोष दूर हो जाते हैं, अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है।

सौभाग्यवश ऐसे प्रमादोंकी सख्या थोड़ी ही है। रामचरितमानसकी नकलें गोस्वामीजीके समयसे ही होने लगी थीं। गोसाईंजी स्वयं अपने जीवनमें यत्र तत्र संशोधन करते रहे होंगे। यह बात स्वाभाविक ही है। इसी कारण अनेक पाठान्तर मिलते हैं, जो लेखकोंकी भूल नहीं, वल्कि ग्रन्थकारके ही रचे पाठान्तर हैं। काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने पाठान्तरोंका उल्लेख करके भक्त पाठकोंका बड़ा उपकार किया है। ये पाठान्तर प्रामाणिक हस्त लिखित प्रतियोंसे संशोधनके फल हैं। ये वे पाठान्तर नहीं हैं, जो पण्डितोंने अपने आसनपर बैठे ही बैठे कर डाले हैं। जैसे किसी विद्वान्ने 'गाहा' का अर्थ 'गहा' समझकर—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा।

में 'अघ' शब्दको 'गह' करके 'शुद्ध' कर दिया। उन्होंने यह समझा कि "खल अगुन गह (इ), साधु गुन गहा" यह अन्वय है।

परन्तु इस अन्वय और संशोधनसे चौपाईका चमत्कार लुप्त हो जाता है और आगेके पदोंसे असंगति भी होती है। वास्तवमें 'गाहा' तद्भव है गाथाका, और 'अवगाहा' क्रिया नहीं, विशेषण है। शुद्ध अन्वय इस प्रकार है—'खल' (के) अघ (अरु) अगुन (की) (अरु) साधु (के) गुन (की) गाहा उभय अपार अवगाह [गम्भीर=अथाह] उदधि (हैं)।" संशोधक पण्डितोंने इसी ढंगके पाठान्तर पैदा कर दिये हैं; जो गोस्वामीजीकी कल्पनामें भी न आये होंगे।

हमारी हिन्दी उतनी परिवर्तनशीला नहीं है, जितनी कि और भाषाएँ। विशेषकर गावोंकी भाषाएं अपेक्षा उतना

प्रभाव नहीं पड़ता जितना नागरिक भाषापर। कुछ ऐसी ही बात होगी कि गोसाईंजीकी अवधी आज भी प्रान्तीय बोली है और तीन सौ बरस बीत जानेपर भी आज घर-घर रामचरितमानसका इतना प्रचार है, जितना कि ईसाई देशोंमे बाइबिल या मुसलिम देशोंमें कुरान शरीफका भी नहीं है और यद्यपि एक एक पदके सत्रह लाख अर्थ लगानेवाले चतुर टीकाकार इसकी चौपाइयोंके भावमे उलझे रहते हैं, तथापि केवल अक्षर पहचाननेवाला भी बड़े गर्वसे कहता है कि "मैं रामायण पढ़ लेता हूं।" यद्यपि ग्रंथका नाम रामचरितमानस है, तथापि 'रामायण' शब्दसे साधारणतः लोग "तुलसीकृत" ही समझते हैं। इसका इतना अधिक प्रचार शायद गोस्वामीजीके जीवनकालमें ही हो गया था, क्योंकि यह ग्रन्थ उन्हींके समयसे रामलीलाका आधार है। गोसाईंजीने कहा भी है—

सपनेहु साचहु मोहिंपर जौ हरगौरि पसाउ,
तौ फुर होउ, जो कहेउं, सब भाषा भनिति प्रभाउ।"

यह सब करामात 'भाषा-भनित'की ही है। जिस तरह गौतम बुद्धने प्राकृतको अपनाकर अपने मतका प्रचार किया, उसी तरह गोसाईंजीने भी ललित प्राकृत या मधुर 'भाषा' में 'भलिवस्तु' का वर्णन करके रामचरितमानसको अमर कर दिया है। 'रामनामामृत' या 'रामयश सुधा सम सलिलसे, पूर्ण इस अगाध मानसरोवरका तीन सौ बरससे नित्य वर्धमान कीर्ति सम्पन्न बने रहना हमे यह दृढ़ आशा दिलाता है कि इसी प्रकार कई सौ बरस आगेकी संतान भी इस मानससरका अवगाहन करती रहेगी।

१०—शब्द-रूपावली

मानस-प्रेमियोंके सुभीतेके लिये व्याकरणकी परिभाषाओंके झंझटमें न पड़, हम यहां शब्दों और धातुओंके रूप-विकारोंके

कुछ उदाहरण देकर नियम दे देते हैं। योग्य पाठक इन्हींके अनुसार और शब्दोंको भी समझ लेंगे। रूपके सामने अर्थ भी दे दिये गये हैं।

(१) सुर, [देवता, देवताने, देवतागण, देवताओंने, देवताको, देवताओंको]

(२) सुरन्ह, [देवताओंने, देवताओंको]

(३) सुरउ, [देवता भी, देवताने भी, देवताओंने भी, देवताको भी]

(४) सुरहिँ [देवताको, देवताके लिये, देवतामें]

(५) सुरन्हि [देवताओंको, देवताओंके लिये, देवताओंमें]

(६) सुरसन [देवतासे, देवगणसे, देवताके द्वारा]

(७) सुरन्हसन [देवताओंसे, देवताओंके द्वारा]

(८) सुरकहँ [देवताको, देवताओंको, देवताके लिये, देवताओंके लिये

(९) सुरन्हकहँ [देवताओंको, देवताओंके लिये]

(१०) सुरतेँ [देवतासे, देवताओंसे]

(११) सुरन्हतेँ [देवताओंसे]

(१२) सुरक, सुरकर, सुरकै, [देवताका]

(१३) सुरन्हक, सुरन्हकर, सुरन्हकै, [देवताओंका]

(१४) सुरमहँ, [देवतामें, देवताओंमें]

(१५) सुरन्हमहँ, [देवताओंमें]

ह्रस्व स्वरान्त सभी शब्दोंके रूपोंमें सुर शब्दके समान ही परिवर्त्तन होते हैं। दीर्घ स्वरान्त शब्दोंमें विभक्तियोंके प्रत्यय जब लगते हैं प्रायः ह्रस्व बोले जाते हैं, जैसे "सीतहि" "अखारेन्हि" इत्यादि। शेष नियम खड़ी बोलीके व्याकरणकेसे हैं। विशेषणके रूप भी संज्ञाके ही अनुरूप होते हैं। ऊपर दिये हुए पहले रूपमें बहुधा ह्रस्व "उ"कार भी पाया जाता है जैसे "रामु" "कपासु" "अनलु" "आपु" "सबु" इत्यादि।

सर्वनामके रूप

“आप” “आपु” [आत्म=खुद, स्वय] आदरसूचक सर्वनाम मध्यम पुरुषके लिये आता है। इसके रूप प्राय उदाहरणवाले “सुर” शब्दके समान हैं। केवल सम्बन्धका रूप “राउर” “रावरे” “रावरो” [राउ=राजा, राउर=राजाका] “आपुकर” “आपुकं” की जगह आये हैं। प्रयोग प्रायः एक वचनमें ही होता है।

मैं (मै)	**हम,** (हम)
मोहिं, (मुझे, मुझमें)	**हमहि,** (हमें, हममें)
मोकहं, (मुझको, मेरे लिये)	**हमकहं,** (हमको, हमारे लिये)
मोसन, (मुझसे, मेरे द्वारा)	**हमसन,** (हमसे, हमारे द्वारा)
मोतें, (मुझसे, मेरे पाससे)	**हमतें,** (हमसे, हमारे पाससे)
मोर, मोरि, (मेरा, मेरी)	**हमार,** हमारी, (हमारा, हमारी)
मोहिं, मोमहँ, (मुझमें)	**हममहँ** (हममें)

तै, (तू)	**तुम्ह,** (तुम)
तोहिं, (तुझे, तुझमें)	**तुम्हहि,** (तुम्हें)
तोकहं, (तुझको, तेरे लिये)	**तुम्हकह,** (तुमको, तुम्हारे लिये)
तोसन, (तुझसे, तेरे द्वारा)	**तुम्हसन,** (तुमसे, तुम्हारे द्वारा)
तोतें, (तुझसे, तेरे पाससे)	**तुम्हतें,** (तुमसे, तुम्हारे पाससे)
तोर, तोरि (तेरा तेरी)	**तुम्हार, तुम्हारी,** (तुम्हारा तुम्हारी)
तोहिमहं=तोमहं, (तुझमें)	**तुम्हमहं,** (तुममें)

सो, (वह)	**ते,** (वे)
तेहि, ताहि, (उसे, उसमें)	**तिन्हहिं,** (उन्हें, उनमें) उन्हहिं
तेहि, ताकहँ तेहिकहँ (उसको, उसके लिये)	**तिन्हकहं,** उन्हकहँ (उनको, उनके लिये) उन्हकहं
तासन, (उससे, उसके द्वारा)	**तिन्हसन,**(उनसे,उनके द्वारा)उन्हसन
तातें, (उससे, उसके पाससे, उस लिये)	**तिन्हतें,** (उनसे, उनके पाससे) उन्हतें
तासु, (उसका, उसकी)	**तिन्हकर,** तिन्हके, (उनका) उन्हकर
तोमहँ, (उसमें)	

को, (कौन) और के, (कौन लोग) तथा जो, (जो) और जे, (जो लोग) इन चारोंके रूप भी क्रमशः "सो" और "ते" के रूपोंकी तरह बनते हैं इसलिये यहां इनका विस्तार नहीं किया गया ।

११—धातु-रूपावली

आजकल खड़ी बोलीकी भाषासम्बन्धी शक्ति घट गयी है। उसका यही जान पड़ता है कि अपने पुराने धातु-भाण्डारका तिरस्कार करके उसने संस्कृत फारसी, अरबी आदि जटिल व्याकरणवाली भाषाओंके शब्दोंकी शरण ली। कृदंतोंके साथ होना या करना क्रिया लगाकर भाषाकी टांगें नोच बैसाखीके बल चलानेकी ऐसी कुटेव पड़ गयी है कि साधारण बोलचालमें भी जहां "मिला" या "पाया" से काम चल सकता है वहां भी पंडितम्मन्य भाषाविद् "प्राप्त हुआ" या "प्राप्त किया" बोलना साधु भाषा समझते हैं। कुशल इतनी ही है कि "प्राप्त होता भया" और "प्राप्त करता भया" अब कम सुननेमें आता है।

गोस्वामी जी अपनी ग्रामीण भाषामें इस कुरीतिको नहीं बर्तते। उन्होंने जितनी धातुएँ बर्ती हैं उनमेंसे अधिकांशका अब गद्यमें प्रयोग नहीं होता।

मुझे निदर कहां चला ?

जाकर अपना मुख मुकुरमें बिलोको।

मैं गुरु पद पद्म बन्दता हूं।

मैं रामचरित बर्नता हूं।

मैं विदेहको प्रनवता हूं।

वह अनुरागसे भजते हैं।

वह चारफल लहते हैं।

संत उसे प्रशंसते हैं।

ऐसे प्रयोग ब्रजभाषा या "पड़ी" बोलीकी कवितामें अब भी आते हैं। परन्तु खड़ी बोलीकी कविता करनेवाले इनका बहिष्कार करके हिन्दीके साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मानसभक्तोंके सुभीतेके लिये हम कुछ धातुओंके रूप अर्थके साथ देते हैं। इसके साथ एक धातुकोष भी देते हैं जिसमें वह असाधारण रूप दरसाये जायँगे जिनसे दिये हुए नमूनोंसे कुछ अन्तर है।

धातुरूपावलीमें प्रत्येक रूपके पहले जो अंक एकसे चौबीस, या छब्बीस तक दिये गये हैं इस सुभीतेके लिये है कि यदि किसी धातुका रूप विशेष भिन्न हो तो दिये हुए अंकमें उदाहरणमें उसका साधारण रूप मिलाकर अन्तर जाना जा सके ।

अकारान्त, लड़, मार, घर इत्यादि धातुओंके रूप

(१) चढ–धातु "चढने" के अर्थमें
(२) चढइ [यदि वह चढ़े]
(३) चढउ [वह पुरुष चढे—आशीः (स्त्री-चढ़इ)]
(४) चढत [वह चढता। स्त्री—"चढति"]
(५) चढतिउ [चढ़ते हुए भी (—तिँहु)]
(६) चढ़नहार [चढ़नेवाला।—री (स्त्री)]
(७) चढब [चढना]
(८) चढबउ [चढ़ना भी]
(९) चढ़सि [तू चढता है]
(१०) चढहिं [हम, वे, चढें या चढते हैं]
(११) चढहु [चढो]
(१२) चढ़ा [चढा। स्त्री० चढी]
(१३) चढि [चढकर]
(१४) चढिय [चढिये]
(१५) चढिहइ [तू या वह चढेगा]
(१६) चढिहउँ [मै चढूँगा]
(१७) चढिहहिं [हम या वे चढेंगे]
(१८) चढ़िहहु [तुम चढोगे]
(१९) चढिहि [वह चढेगा, चढेगी]
(२०) चढु [तू चढ]
(२१) चढे [वे या हम चढ़े हुए]

(२२) चढे उ [वे या तुम चढ़े, चढ़नेपर भी]
(२३) चढे उं [मैं चढ़ा । चढ़िउँ, मै चढ़ी]
(२४) चढे हु [चढ़ियो तुम, वा चढ़नेपर भी]
(२५) चढ त [चढ़नेकी क्रिया, चढ़ते हुए । स्त्री० चढ़ती]
(२६) चढ न [चढ़ाई चढ़ना ।]

[आका]रान्त बनाव, कराव, मचाव, धराव आदि करानेके अर्थवाली धातुओंके रूप

(१) चढा व [धातु चढ़ाने के अर्थमे]
(२) चढा वइ [यदि वह चढ़ावे]
(३) चढा वउ [वह पुरुष चढ़ावे, आशीः स्त्री चढ़ा वइ]
(४) चढा वत [वह चढ़ाता । स्त्री चढ़ा वति]
(५) चढा वतिउ [चढ़ाते हुए भी (—तिहुँ)]
(६) चढा वनहार [चढ़ानेवाला —री (स्त्री)]
(७) चढा उव [चढ़ाना]
(८) चढा उबउ [चढ़ाना भी]
(९) चढा वसि [तू चढ़ाता है या चढ़ाता]
(१०) चढा वहिं [हम या वे चढ़ावें या चढ़ाते है]
(११) चढा वहु [चढ़ाओ]
(१२) चढा वा [चढ़ाया]
(१३) चढा इ [चढ़ाकर]
(१४) चढ़ा इय [चढ़ाइये]
(१५) चढा इहइ [तू या वह चढ़ावेगा]
(१६) चढ़ा इहउँ [मैं चढ़ाऊँगा]
(१७) चढ़ा इहहिं [हम या वे चढ़ावेंगे]
(१८) चढ़ा इहहु [तुम चढ़ाओगे]
(१९) चढ़ा इहि [वह चाढ़वेगा या चढ़ावेगी]

(२०) चढा उ [तू चढा]
(२१) चढा ए [वे या हम चढाए हुए]
(२२) चढा एउ [चढानेपर भी या उन्होंने या तुमने चढ़ाया]
(२३) चढा एउं [मने चढाया]
(२४) चढा एहु [चढानेपर भी, या तुम चढाइयो]

अकारान्त रिसा, सुखा, परा, समा

पिरा आदि धातुओंके रूप

(१) रिसा
(२) रिसा इ
(३) रिसा उ
(४) रिसा त
(५) रिसा तिउ
(६) रिसा नहार
(७) रिसा ब
(८) रिसा बउ
(९) रिसा सि
(१०) रिसा हिं
(११) रिसा हु
(१२) रिसा न
(१३) रिसा इ
(१४) रिसा इय
(१५) रिसा इहइ
(१६) रिसा इहउं
(१७) रिसा इहहिं
(१८) रिसा इहहु
(१९) रिसा इहि
(२०) रिसा उ
(२१) रिसा ने
(२२) रिसा नेउ
(२३) रिसा नेउं
(२४) रिसा नेहु, येहु

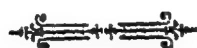
---

(१) कर (करनेके अर्थमे)
(२) कर इ
(३) कर उ
(४) कर त
(५) कर तिउ
(६) कर नहार
(७) कर ब
(८) कर बउ
(९) कर सि
(१०) कर हिं
(११) कर हु
(१२) कीन्ह

(१३) करि
(१४) करिय
(१५) करिहइं
(१६) करिहउं
(१७) करिहहिं
(१८) करिहहु
(१९) करिहि

(२०) करु
(२१) कीन्ह, किये
(२२) कीन्हेउ, कियेउ
(२३) कीन्हेउं, कियेउं
(२४) कीन्हेहु, कियेहु
(२५) करन्त, (स्त्री० करन्ती)
(२६) करन, (स्त्री० करनी)

ओकारान्त हो, और एकारान्त दे, ले आदि धातुओंके रूप



(१) हो [अस=अह] धातु होनेके अर्थमें।

(२) होइ
(३) होउ
(४) होत
(५) होतिउ
(६) होनहार
(७) होव
(८) होवउ
(९) होसि [अहसि, तू है]
(१०) होहिं [अहहिं, हहिं=हैं]
(११) होहु [अहहु=हो]
(१२) भा
(१३) भइ

(१४) होइय
(१५) होइहइ
(१६) होइहउं [अहउं=हूं]
(१७) होइहहिं
(१८) होइहहु
(१९) होइहि
(२०) होउ
(२१) भये
(२२) भयेउ
(२३) भयेउं [अहहुं=हूं]
(२४) भयेहु (अहहु=तुम हो)

(१) दे
(२) दे इ
(३) दे उ
(४) दे त
(५) दे तिउ
(६) दे नहार
(७) दे व
(८) दे वउ
(९) दे सि
(१०) दे हिं
(११) दे हु
(१२) दीन्ह
(१३) दे इ
(१४) दे इय
(१५) दे इहइ
(१६) दे इहउं
(१७) दे इहहिं
(१८) दे इहहु
(१९) दे इहि
(२०) दे हि
(२१) दीन्हें, दिये
(२२) दीन्हेउ, दियेउ
(२३) दीन्हेउ, दियेउँ
(२४) दीन्हेहु, दियेहु



नोट—१–शब्द तथा धातु रूपावलीमें विकार पैदा करनेवाले प्रत्यय मोटे टैपमें दिखाया है।

कबिहि अरथ आखर बल सांचा
अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

दूसरा खण्ड

मानस शङ्कावली



उपोद्घात

गोस्वामीजीका रामचरितमानस छोटेसे बड़ेतक, अक्षर परिचितसे लेकर अगाध विद्वान्तक, साढ़े तीनसौ बरसोंसे पढ़ते आये हैं। सैकड़ों टीकाएं हो गयी हैं जिनमेंसे अनेक छपीं और अनेकके प्रकाशनकी नौबत न आयी। सूरसागर, सुखसागर, व्रजविलास, राम रसायन, रामचन्द्रिका, रामायण आदिके नामकी पुस्तकोंकी क्या गिनती है! परन्तु श्रीमद्-भागवतादि पुराणों, रामायण महाभारतादि इतिहासोंकी कथा जिस तरह व्यास लोग बांचते और श्रद्धालु श्रोताओंको सुनाकर उनका परलोक-मार्ग सुगम करते हैं, उसी तरह श्रीराम-चरित मानस ही "भाषा" का एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसकी कथा व्यासलोग बाँचते और श्रद्धालु भक्त सुनते हैं। धर्मग्रन्थकी पदवी आजतक किसी और "भाखा" की पोथीको नहीं मिली। काव्यकी सरसता, शब्दोंका माधुर्य्य, अपूर्व प्रसाद, पवित्र प्रेम और शृङ्गार, अनुपम वीरता, करुणाकी अटूट धारा, भक्ति वात्सल्य और शान्तिका अविरल संयोग, अलकारोंकी छटा, भावोंका अपूर्व आनन्द पढ़ने और सुननेवालेके मनको यह सभी गुण ऐसा छीन लेते हैं, ऐसा बे अख्तियार कर देते हैं, कि इस मानस-सरोवरके सौंदर्यपर "भाखा" के विरोधी और प्रेमी, साम्प्रदायिक झगड़ोंपर जान देनेवाले मतवाले, सभी मुग्ध हैं, सभी एक ही घाटपर रामचरितामृत पान करते हैं।

मैंने देखा है कि रामचरितमानसकी कथा कहनेवाले

ईसाइयों और मुसलमानोंतकको आकृष्ट कर लेते हैं। "सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्"। सत्काव्य ऐसी ही चीज़ है। लोकोत्तर आनन्द तो वस्तुतः वही अवस्था है जिसके लिये श्रुति कहती है "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः"। वही लोकोत्तर आनन्द गोस्वामीजीके मानसमें अपनी अपनी पहुँचके अनुसार सभी पाते हैं। जो अच्छी तरह नहीं समझ सकते उनके मनमें शंकाएं उठती हैं, प्रयत्न करके पूछ पांछकर समाधान कर लेते हैं, नहीं होता तो भी इसकी कविता मोहित किये ही रहती है। विद्वानोंके लिये तो यह विशेष सुखकी सामग्री है। "जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारी।" जो बात गोस्वामीजीने श्री भरतजीकी भारतीके लिये कही है वह उनकी ही कविताके लिये ठीक बैठती है—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अरु आखर थोरे।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी।

ऐसी अद्भुत कवितापर शंकाएं उठे तो क्या आश्चर्य? उसमें ही उसका समाधान भी मिल जाय तो कौन से अचंभेकी बात है! एक एक पदके अनेक अर्थोंका होना भी कोई असाधारण बात नहीं। चतुर वक्ताओंके वाक्पाटवसे भी अर्थके अनेक अभूतपूर्व, अश्रुत और अदृष्ट चमत्कार देखने सुननेमें आते हैं। काशीके श्रीवंदन पाठक बड़े चतुर और विद्वान् कथा बांचनेवालोंमें हो गये हैं। उन्होंने मानस-शंकावलीके नामसे ऐसी शंकाओं और समाधानोंका संग्रह करके छपवाया था। उसका दूसरा संस्करण जो संवत् १९२५में छपा था

मेरे सामने है। इसमें शंकाओंका अच्छा संग्रह है। समाधान भी है। भाषा ब्रजकी टीकावाली है, जो अब लोक-प्रिय नहीं। समाधान भी कई ऐसे हैं जिन्हें आजकलके हिन्दी-पाठक शायद अब उतना पसन्द न करेंगे जितना कि उस समय-के श्रद्धालु श्रोता पसन्द करते थे। अनेक समाधानोंमें मुझे स्वयं मतभेद था। इसलिये मैंने शंकाओंके संग्रहमें उनकी शंकावलीसे पूरी सहायता ली है, परन्तु समाधानके लिये मैंने वैसी ही स्वतंत्रतासे काम लिया है। शंकाएं पाठकजी-की मौलिक नहीं हैं। यह तो सभी मानसके पाठक जानते हैं। समाधानमें सबकी कुछ न कुछ अलग छाप होती है। सहृदय पाठक प्रस्तुत शंकावली देखकर स्वयं विचार कर लेंगे।

मैंने रामचरितमानसका लड़कपनसे श्रद्धा और भक्तिसे परिशीलन किया है। मेरी भाषामें अथवा समाधानमें यदि इसका प्रभाव पड़ा है, तो इसके लिये मेरी परिस्थिति दोषी है। इसकी और मानसकथाकौमुदीकी रचनामें इटावा निवासी श्री पं० रघुवरदयालजी मिश्र विशारदने श्रद्धासे ही प्रेरित हो मेरे लेखकका काम किया है। एतदर्थ उनका मैं कृतज्ञ हूं।

श्रीकाशी।
मातृनवमी १९८०।

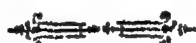
रामदास गौड़



मानस-शंकावली



प्रथम सोपान—बालकांड



शङ्का १—गोस्वामीजीने गणेशादि देवताओंकी वंदना आरम्भमें क्यों की और संस्कृतसे क्यों आरंभ किया?

सामाधान १—गोस्वामीजी स्मार्त्त वैष्णव थे, श्रीरामचन्द्रजीको महाविष्णु और अंगी मानते थे और समस्त ब्रह्माण्डोंके संचालक देवताओंको उनके अंग। साधारण हिन्दू धर्म्म भी देव समाजमें अपने इष्टदेवको अंगी मानता है और शेष सब देवताओंको अंग। गणेशजीका स्थान पौराणिक कथाके अनुसार श्रीपार्वतीजीके आदेशसे द्वारपालका हुआ, इसीसे आज भी हिन्दू मंदिरोंमें गणेशजीको द्वारपर स्थान दिया जाता है। श्रीरामचन्द्रजीके दरबारमें पहुँचनेके लिये भक्तकी कल्पना यही होती है कि द्वारपर गणेशजी और दरबारतक पहुँचनेके मार्गमें सभी देवताओंके दर्शन होते हैं, अन्तमें ही भक्त भगवानके चरणोंतक पहुँचता है। मानसकारने विनयपत्रिकामें भी यही रीति निबाही है। इस विचारसे श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य भक्त होते हुए भी गोस्वामीजीका और देवताओंकी वंदनासे आरंभ करना असंगत नहीं है। चमत्कारिक टीकाकार तो भी शब्दोंके श्लेषार्थ करके सारी वंदना भगवान रामचन्द्रजीपर ही घटाते हैं। हमारे

गोस्वामीजीके समयमें भी साधारणतः काशीका पंडित समुदाय आजकलकी तरह भाषाद्रोही था और देववाणी संस्कृत मंगलाचरण वन्दना आदिके लिये अबतक इतनी आवश्यक समझी जाती है कि साधारण संकल्पसे लेकर सभी श्रौत और स्मार्त्त कर्म्म संस्कृतमें किये जाते हैं। अतः मंगलाचरणका संस्कृतमें होना विशेषतः ऐसे कविकी लेखनीसे जो संस्कृत लिखनेमें असमर्थ नहीं था अयुक्त नहीं है। गोस्वामीजी जैसे कट्टर रामभक्त थे वैसे ही भाषा-भक्त भी थे।

"का भाषाका संसकृत, प्रेम चाहिये सांच
काम तो आवै कामरी, का लै करै कमांच,,

स्पष्ट है कि सर्वसाधारणको भाषा सुलभ है इसके द्वारा भगवद्भक्तिका रसास्वादन जनताको सुलभ हो जाता है।

"भाषा बंध करब मैं सोई
मोरे हिय प्रबोध जेहि होई"

क्या मार्केकी बात कही है। मातृभाषासे ही तो हृदयको प्रबोध हो सकता है! संस्कृतसे आदि अन्त करना मंगलाचरण मात्र समझना चाहिये।

शङ्का २—* द्विभुज रामोपासक तुलसीदासजीने क्षीरसागरशायी चतुर्भुज भगवानसे अपने हृदयमे धाम करनेकी प्रार्थना क्यों की?

समाधान २—पहले तो यहाँ चतुर्भुज मूर्तिकी चर्चा ही नहीं है, भगवानकी मूर्तिकी कल्पना सर्वथा भक्तके भावपर निर्भर है, गोस्वामीजी चतुर्भुजकी कल्पनासे अपरिचित नहीं है इसका अनेक स्थलोंमें उल्लेख किया है, तोभी जहां जहाँ अपने हृदयमें वास करानेकी चर्चा आयी है कहीं भी चतुर्भुजी मूर्तिकी चर्चा

* "नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन

नहीं है। अतः इस शंकाकी प्रतिज्ञा ही निर्मूल है। जो लोग इस प्रतिज्ञाको मानते ही हैं उनके लिये यह समुचित समाधान है कि तुलसीदासजीने अपने हृदयको रामकी कथाका पवित्र भांडार बनानेके लिये निर्म्मल क्षीरसागरमें निरन्तर शयन करनेवाले नारायणसे प्रार्थना की है कि जैसे आपके निरन्तर शयन करनेसे क्षीरसागर निर्म्मल और उज्ज्वल रहता है वैसे ही यदि आप हमारे हृदयमें अपना धाम बनायेंगे तो हमारा हृदय भी निर्म्मल और उज्वल हो जायगा, आगे जाकर इसी प्रतिज्ञाका निर्वाह करते हुए कहा है—

"जस कछु बुधि विवेक बल मेरे
तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे"

हरिकी प्रेरणा हृदयमें तभी होगी जब भगवान हृदयको अपना धाम बनावेंगे।

* शङ्का ३—अनेक वंदनाओंके अनन्तर यह महीसुर वंदना प्रथम कैसे हुई ?

समाधान ३—यहाँ प्रथम महीसुरका विशेषण है, क्रिया विशेषण नहीं है। प्रथम महीसुरसे अभिप्रेत है वह ऋषि-परम्परा जो मोहजनित संशयोंको हरनेवाली है, विश्वका उपकार करनेवाली है, इस भूतलपर सृष्टि रचना और उसके विकासके लिये आदि युगमें अवतीर्ण हुई और अबतक अपने कार्यमें तत्पर है। यह भूदेवताओंका समाज सृष्टिमें सर्व प्रथम है इसीलिये इसे "प्रथम महीसुर" कहा।

---

* "बंदउँ प्रथम महीसुर चरना
मोह जनित संसय सब हरना"

* शङ्का ४—माया ब्रह्म, जीव और जगदीश यह ब्रह्माके बनाये गुसाईंजीने लिखे हैं। ब्रह्म और जगदीश तो कदापि ब्रह्माके बनाये नहीं हो सकते, माया और जीवके लिये भी ऐसी ही शंका उत्पन्न होगी।

समाधान ४—अद्वैत वेदान्त मतके अनुसार यह संसार वा जो कुछ गोचर विश्व है वह भ्रम है।

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई,
सो सब माया जानेहु भाई"

सृष्टिका होना श्रुतिके महावाक्य "एकोऽहम् बहुस्याम:"-के अनुसार एक ब्रह्मसे अनेकताका प्रकट होना है और दर्शनोंमें पुरुष और प्रकृतिके मेलसे सृष्टि बतायी गयी है, श्रीमद्भगवद्-गीतामें भगवानने एक जड और दूसरी चेतन, अपनी दो प्रकृतियाँ बतायी हैं। ब्रह्म शब्द प्रकृतिके लिये भी आता है, पुरुष शब्दका भी यही हाल है।

" द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्य. परमात्मेत्युदाहृत.
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।
यस्मात्क्षरमतीतोहम् अक्षरादपि चोत्तमः
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित. पुरुषोत्तमः"

---

* भलेउ पोच सब बिधि उपजाये
गनि गुन दोष वेद बिलगाये

*   *   *

जड चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा
लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।

इन कथनोंसे स्पष्ट है कि ईश्वर और जीव अथवा माया और ब्रह्मका सम्बन्ध सृष्टि है वा सृष्टिके साथ ही यह संबंध उत्पन्न होता है और सृष्टि ब्रह्मा नामक भगवद्विभूतिकी रचना कही जाती है। अतएव जगदीश (जगत्+ईश) वा जगतका स्वामी और जीव वा जगत्का बंदी वा दास यह दोनों सृष्टिको ही कल्पना हैं। इसी तरह माया और ब्रह्म यह द्वैत भी सृष्टिके साथ ही कल्पनामें आता है। अन्यथा अद्वैतसिद्धिमें एकको छोड़ दूसरा तो कुछ है ही नहीं। इसलिये माया, ब्रह्म, जीव, जगदीशको ब्रह्माको वा सृष्टिकी कल्पना लिखना किसी प्रकार अयुक्त नहीं है।

* शङ्का ५—अनेक वंदनाओंके अनन्तर भरतके चरणोंकी वंदनाको प्रथम क्यों लिखा ?

समाधान ५—जहां श्रीरामचन्द्रजीके भाइयोंकी वंदनाका प्रकरण आरम्भ हुआ वहां भरतजीकी वंदना करना स्पष्ट कारणोंसे ही प्रथम हुआ। यहां प्रथम शब्द वंदना क्रियाका विशेषण है, तीनों भाइयोंमें भरतजी न केवल सबसे बड़े हैं प्रत्युत भ्रातृभक्तिमें उनका दर्जा सबसे ऊंचा है।

† शङ्का ६—नाम वंदनामें क्रमभंग क्यों किया ? चापभंगके बाद ही दंडक वनका प्रकरण क्यों उठाया ?

समाधान ६—कविका उद्देश्य यहां रामायणका कथाक्रम

---

* प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।

† भंजेउ रामु आपु भव चापू,
भव भय भंजन नाम प्रतापू।
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन,
जन मन अमित नाम किये पावन।
निसिचर निकर दले रघुनन्दन,
नाम सकल कलि कलुष निकंदन।

वर्णन करना नहीं है, उसे केवल नामका उत्कर्ष दिखाना इष्ट है, जहां कहीं कि रामायणकी कथाके वर्णनका संकल्प है वहां क्रमका पूरा ख्याल रखा गया है। जैसे उत्तरकांडमें भुशुंडिने गरुड़से जो रामकी कथा वर्णन की है उसमें कोई क्रमभंग नहीं है।

प्रस्तुत प्रकरणमें भी पाठकको जो क्रमभंग दिखायी देता है वह भ्रममात्र है क्योंकि नाममहिमाके वर्णनमें चापभंगके पहले दण्डक वनका प्रकरण नहीं आता। पीछे ही आता है, यदि दण्डक वनकी चर्चाके पीछे दशरथका स्वर्गवास आदि बीचके प्रकरणोंकी चर्चा होती तो अवश्य ही क्रमभंग कहा जाता। ग्रन्थकारका उद्देश्य यहां सारी कथाका उल्लेख नहीं है।

शङ्का ७—गोस्वामीजी शालीनतापूर्वक दो बार कवि होनेसे इनकार करके भी लिखते हैं 'रामचरित मानस कवि तुलसी' यह असङ्गत है या नहीं ?

समाधान ७—

चौपाई—संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी
रामचरित मानस कवि तुलसी
करइ मनोहर मति अनुहारी
सुजन सुकवि सुनि लेहु सुधारी

इसका अन्वय इस प्रकार हुआ—संभु (के) प्रसाद (तें) हिय (में) सुमति हुलसी। (याही बलतें) रामचरित मानस (को) कवि तुलसी मनोहर और अपनी सुमति (की) अनुहारि करइ। सुनि (के) सुजन सुकवि सुधारि लेहु।

तुलसीदासजीने—'कबि न होहुं नहिं चतुर प्रबीनू
सकल कला सब बिद्या हीनू।

* * *

कवित्त होइ नहिं चतुर कहावउँ,

मति अनुरूप राम गुन गावउँ।

इन दो स्थलोंमें अपना असामर्थ्य और लाचारी दिखाकर व्याजसे अपने उन कथनोंका पोषण किया है जिनमें बारम्बार उन्होंने हरि, शिव, शम्भुकी कृपासे रामकी कथा कहनेका साहस दिखाया है।

"जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे,

तस कहिहउँ हिअ हरिके प्रेरे।

* * *

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ

बरनउँ राम चरित चित चाऊ

भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती

ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती

* * *

इन उक्तियोंके अनन्तर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलसीदासजी यद्यपि स्वय "कवित विवेक एक" भी नहीं रखते, तथापि उन्हीं शिवजीकी कृपासे इतनी अयोग्यतापर भी "कवि तुलसी" हो जाते हैं जिनकी कृपासे,

अनमिल आखर अरथ न जापू

प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू

होउ महेस मोहिं पर अनुकूला

करहु कथा मुद मगल मूला

जहा बेमेल निरर्थक साबर मंत्र शिवजीकी कृपासे प्रभावशाली हो जाते हैं वहाँ तुलसी जैसे अकवि, अचतुर, कलाहीन, विद्याहीन " राम गुणगानमें उन्हीं शिवजीके प्रसादसे

कवि हो जाना कौन सी बड़ी बात है। इस चौपाईमें तुलसीदासजीने व्याजसे अपनी अत्यन्त नम्रताके साथ ही साथ शम्भुके प्रसादका उत्कर्ष दिखाया है, पूर्वापर विरोध नहीं है।

शङ्का ८—गोसाईंजीने उमा शब्दका प्रयोग (लछमन दीख उमा कृत वेषा) सतीके लिये उस समय किया है जब उमा नाम ही नहीं पड़ा था, सीताजीसे फुलवारीमें गिरिराज किशोरी कहलाया, यद्यपि सीता-हरणके समय आरम्भकी ही कथामें सती-चरित्रका वर्णन किया है क्या इसमें असङ्गति दोष नहीं है ?

समाधान ८—पहले तो स्वयं ग्रन्थकार इन समस्त चरित्रोंके वर्णनमें भूतकालकी कथा कहता है, पद्य-रचनाकी आवश्यकताके अनुसार उसे समानार्थक शब्दोंके चुननेमें अधिक स्वतन्त्रता होनी ही चाहिये। दूसरे तुलसीदासजी राम और शिव, पार्वती और सीता आदि भगवद्विभूति अवतार वा ईश्वरमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं रखते, उनका मन्तव्य।

नाना भांति राम अवतारा
रामायन सत कोटि अपारा
कलप भद हरि चरित सुहाये
भांति अनेक मुनीसन गाये

इन पदोंसे स्पष्ट है।

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं
चारु चरित नाना विधि करहीं

ऐसी दशामें किसी शब्दके प्रयोगमें अथवा किसी चरितके आगे पीछे वर्णनमें हो जानेवाली असङ्गतिका सहज ही समाधान हो सकता है। इसके सिवा गिरिजाके लिये स्तुति करते हुए सीताजीके मुखसे कहलाया है कि—

जय गजबदन षड़ानन माता,

नहिं तव आदि मध्य अवसाना।

*　　*　　*

भव भव विभव पराभव कारिनि

और स्वायम्भुव मनुके प्रकरणमें,

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई

राम बाम दिसि सीता सोई

इत्यादिसे प्रकट है कि तुलसीदासजीके मनमें सती और गिरिजा, जानकी और सीता अनादि और अनन्त हैं और इनके चरित कुछ थोड़े बहुत अन्तरके साथ कल्प कल्पमे प्रायः दुहराये जाते हैं। इन्हीं कारणोंसे न केवल गिरिजा, उमा और सतीके नामके प्रयोगमें कोई असङ्गति नही हैं प्रत्युत उत्तरकांडमें राम-कथाके अन्त और भुशुंडि कथाके आरम्भमें भी

गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई,

बोले सिव सादर सुख पाई।

धन्य सती पावनि मति तोरी,

रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।

गौरी और सती इन दो शब्दोंके प्रयोगमें कोई असङ्गति नहीं है। रामचन्द्रजीके जन्मकालमें कौशल्या सम्बन्धी छन्दमें खरारी शब्दका प्रयोग वा आरण्यकांडमें जटायुकी स्तुतिमें "दससीस बाहु प्रचंड खंडन" कहना यद्यपि खर और रावणके मारे जानेके बहुत पहले कहा गया है तथापि कालासङ्गति नही समझी जाती।

शङ्का ६—गोसाईंजीने लिखा है "निसि दिन नहिं अव-लोकहिं कोका" और साथ ही यह भी कहते हैं "दुइ दण्ड भरि ब्रह्मण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं" और फिर "उभय घरी अस कौतुक भयऊ" तो दो घड़ीमें दिन रात कैसे पूरे हो जा-यंगे ? और सारे विश्वपर उसने चढ़ाई क्यों की ?

समाधान ९—कोकके लिये प्रसिद्ध है कि रात्रिमें अपने जोड़ेसे अलग रहता है। यहां तात्पर्य यह है कि जहां कहीं ब्रह्मांडमें रात थी वहां भी चक्रवाकोंपर कामका ऐसा प्रभाव पड़ा कि जो स्वभावसे ही दिन और रातका विचार करते हैं वह चक्रवाक भी यह भूल गये कि अभी सूर्योदय नहीं हुआ है अभी रात्रि है, जहां ब्रह्मांडमे दिन था वहांके लिये तो कहना ही क्या। रही यह बात कि रात और दिन दोनोंका एक साथ होना कैसे सम्भव है सो इसका समाधान तो सहज ही है। ब्रह्मांडमें एक ही कालमें न तो सब जगह रात ही होती है न दिन। कहीं दिन है, कहीं रात है, कहीं सुबह है कहीं शाम। कामदेवकी चढ़ाई विश्वनाथ पर हुई थी इसी लिये उसने सारे विश्व, सारे ब्रह्मांडपर अपना प्रभाव डाला था, जिस दो घड़ीमें कामने अपना प्रभाव विस्तारा उसी दो घड़ीके भीतर कहीं रात थी कहीं दिन, कहीं सुबह थी कहीं शाम। विश्वविजयका उद्योग करना विश्वनाथके विजय करनेके लिये आवश्यक था और उसकी असफलतामे ही विश्वनाथका उत्कर्ष है। फुलवारीमें श्रीरामचन्द्रजी भी कहते हैं—

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं,
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं।



शिव और राम विश्वेश्वर हैं। इनका राज विश्व है। इनपर चढ़ाई करना विश्वपर चढ़ाई करना है। कामने विश्वनाथपर चढ़ाई की थी अतः विश्वपर चढ़ाई करना अनिवार्य था।

* शङ्का १०—"बिनु अघ तजी सती असि नारी" इस चौपाईमें सतीको बिनु अघ बताया परन्तु सीताजीका वेष धारण करना शिवजीने इतना घोर पाप समझा कि

सिव सम को रघुपति व्रत धारी,
बिनु अघ तजी सती असि नारी।

* * *

येहि तनु सतिहि भेट मोहि नाहीं,

सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं।

तो शिवजीने ग्रन्थकारजीकी रायमें सतीजीके साथ बड़ा अन्याय किया।

समाधान १०—बिनु अघ, का अर्थ विना पाप यहां नहीं है। कोषमें अघका अर्थ शोक और दुःख भी है। शिवजीने बिना दुःखके सती ऐसी पत्नीका परित्याग कर दिया, अपनी स्वामिनीका रूप धारण करनेसे उन्हें फिर पत्नी भावसे ग्रहण करनेमें बहुत अनौचित्य जान पडा, पत्नीत्यागसे शिवजीको दुःख नहीं हुआ, हां, सतीजी भक्त भी थीं अतः भक्तके नाते जो विरह दुःख हुआ उसे आगे जाकर सूचित किया है

जदपि अकाम तदपि भगवाना।

भगत विरह दुख दुखित सुजाना।

और उत्तरकांडमें,

तब अति सोच भयउ मन मोरे,

दुखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे।

यह वाक्य भी भक्त और भक्तभावनके वियोगसम्बन्धमें है, पुरुष और नारीके सम्बन्धमें नहीं है। नारीके सम्बन्धत्यागका तो शिवजीको यहांतक ख्याल है कि जब रामचन्द्रजी पार्वतीके जन्मका, तपस्याका और विवाहेच्छाका सन्देशा कहते हैं र भी शिवजी इस सम्बन्धको अनुचित ही कहते हैं और स्वामी की आज्ञा होनेके कारण ही विवाहसम्बन्ध स्वीकार करते हैं।

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं,

नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।

अघका अर्थ पाप भी लिया जाय तो यों समाधान हो सकता है कि 'बिनु अघ तजी सती असिनारी, यह वाक्य याज्ञवल्क्य

मुनिका है, वह कहते हैं कि शिवजीके समान भी रघुनाथजीका कौन ऐसा कट्टर भक्त होगा जो सती ऐसी निर्दोष, निष्पाप पत्नीको केवल स्वामिनीका रूप धारण करनेसे त्याग दे, क्योंकि सतीजीने सीताजीका वेष पापबुद्धिसे नहीं धरा था और शिवजी इस बातसे अभिज्ञ थे कि सतीजी निष्पाप हैं। त्यागका उत्कर्ष दिखानेके लिये यहां याज्ञवल्क्यने यह वाक्य कहा है। त्यागका कारण पाप ही हो, यह कोई आवश्यक बात नहीं है। सतीजीने पापबुद्धि न होते हुए भी शिवजीके भक्तिसिद्धान्तके विरुद्ध एक भारी भूल की, जो पाप न होते हुए भी त्यागका पर्य्याप्त कारण हुई।

शङ्का ११—शिवजीने पहले तो कहा कि—

राम कृपातें हिमसुता सपनेहु तव मन माहिं
सोक मोह संदेह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं।

और फिर कहते हैं।

एक बात नहिं मोहिं सुहानी
जदपि मोह बस कहेहु भवानी।

जब शोक, मोह, संदेह, भ्रम कुछ भी नहीं रहा तो यह एक बात मोहवश कैसे कही गयी?

समाधान ११—इस प्रकरणमें पार्वतीजीके पूछनेपर प्रसन्न होकर शिवजीने कहा है कि "तुम तो रघुनाथजीके चरणोंमें सच्चा प्रेम रखती हो, जहां रामचन्द्रजीकी ऐसी कृपा है वहां मेरे विचारमें तुम्हारे मनमें सपनेमें भी शोक, मोह, संदेह, भ्रम नहीं हो सकता, तो भी जो आशंका तुमने की है उसके कहते सुनते संसारका हित होगा, तुमने यह प्रश्न जगत-के हितके लिये किया है। हां, एक बात मुझे पसंद नहीं आयी यद्यपि तुमने मोह बस कही है।" तात्पर्य्य यह कि अविद्यासे उत्पन्न मोह जिससे संसार आवागमनके बंधनमें पड़ा रहता है

अब पार्वतीजीके मनमें नहीं रहा परन्तु विद्याजनित मोह राम विषयक अज्ञान यह एक मोह पार्वतीजीमें मौजूद था। वह जगतके हितके लिये था यद्यपि कट्टर रामभक्त शिवजीको ऐसे मोहकी चर्चा भी नहीं सुहाती "उमाराम विषइक अस मोहा, नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।"

परमपदप्राप्तिके लिये अविद्याजनित और विद्याजनित दोनों प्रकारके मोहोंका त्याग आवश्यक है, श्रुतिका वचन है—

अन्धन्तमः प्रविशन्तिये ऽविद्यामुपासते

ततो भूय इव ते तमः यउ विद्यायाᳬरताः।

शङ्का १२—एक बार शिवजीको लिखा "जोग ग्यान वैराग्य निधि, प्रनत कल्पतरु नाम" और फिर लिखते हैं—

जबतें सती जाइ तनु त्यागा

तबतें सिवमन भयउ विरागा

अर्थात् वैराग्यनिधि शिवजीके मनमें सतीके तनुत्यागके पीछे विराग उत्पन्न हुआ।

समाधान १२—'वैराग्यनिधि' पदसे जिस वैराग्यकी सूचना है उस वैराग्यके तो शिवजी स्वरूप हैं, पार्वतीजीने भी कहा है कि

"हमरे जान सदा सिव जोगी

अज अनवद्य अकाम अभोगी

सतीजीके तनुत्याग करनेपर

'भक्त विरह दुख दुखित सुजान' शिवजी उदास हो कैलास छोड बहुत कालतक भूमंडलपर सत्संगके लिये विचरते रहे। वैराग्यनिधिमें 'वैराग्य' शब्द परमार्थसे संबंध रखता है और चौपाईमें 'विराग' शब्द व्यावहारिक है, साधारणतया उदास ... आया है।

'प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम', इस प्रश्नका उत्तर रामचरितमानसमें कहाँ दिया गया है ?

समाधान १३—रामचन्द्रजीके प्रति शिवजीकी और ग्रन्थकारकी प्रगाढ़ भक्ति उपास्य देवका वियोगवर्णन सह नहीं सकती, साथ ही अवध वा साकेतनिवास भक्तकी कल्पनामें नित्य और सत्य है, अयोध्या और सरयूतटका श्रीरघुनाथजी द्वारा त्याग भक्तकी कल्पनामें असह्य है, राम और सीताका वियोग ही ग्रंथकार नहीं मानता,

सीतहिं प्रथम अनल महँ राखी
प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी।

सीताहरण भी छायामात्रका हरण दिखाया है।

लछिमनहूं यह भेद न जाना
जो कछु चरित रचे भगवाना।

और आगे जाकर जब सीताजीकी अग्निपरीक्षा की है तब ग्रंथकारने साफ लिख दिया.

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महं जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।

तात्पर्य यह कि वास्तविक सीता निरन्तर गुप्तभावसे साथ थीं, श्रीरघुनाथजीसे कभी अलग हुई ही नहीं, इस विचारको निबाहते हुए ग्रन्थकारने सीताजीके वनवास और वाल्मीकिके आश्रममें लवकुशके जन्मकी कथाका केवल दो स्थानोंमें इशारा-मात्र किया है एक तो बालकांडमें वंदनाके प्रसंगमें

सियानिंदक अघ ओघ नसाये,
लोक बिसोक बनाइ बसाये,

और दूसरा उत्तरकांडमें

दुइ सुत सुंदर सीता जाये

पहलेमें धोबीकी शिकायतपर सीताजीके त्यागका अप्रत्यक्ष इशारा है और दूसरेमें लव-कुश नामक दो सुंदर बेटे सीताजीके हुए यद्यपि 'दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे'में पिताका उल्लेख है। लव-कुशके विषयमें केवल माताका उल्लेख सीताजीके वनवासका अप्रत्यक्ष पता देता है। बिना सीताजीके श्रीरघुनाथजीकी यात्रा बड़ी खूबसूरतीसे उत्तरकांडमें ४९वें दोहेके बाद दिखायी।

"अस कहि मुनि वसिष्ट गृह आए, कृपा सिन्धुके मन अति भाए
हनूमान भरतादिक भ्राता, संग लिये सेवक सुषदाता
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए, गज रथ तुरग मगावत भए
देखि कृपा करि सकल सराहे, दिये उचित जिन्ह जिन्ह जेहि चाहे
हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई, गये जहा सीतल अँवराई
भरत दीन्ह निज बसन डसाई, बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई
मारुत सुत तब मारुत करई, पुलक वपुष लोचन जल भरई
हनूमान सम नहिं बड़ भागी, नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई, बार बार प्रभु निज मुष गाई।
तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥

* * * *

प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभा सिन्धु हृदय धरि, गए जहा बिधि धाम ॥"

यहां सीताके बिना ही पूरी मंडली दिखायी गयी है और नारदजी पार्षदसे गुणगान कराकर रामायणी कथाका पटक्षेप कर दिया गया है।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा

कछुक राम गुन कहेहुं बखानी
अबका कहहुँ सो कहहु भवानी।

* * *

श्री पार्वतीजीने शिवजी पूछते भी हैं कि अब क्या कहूं। यदि पार्वतीके मनमें 'प्रजा सहित रघुवंसमनि, किमि गवने निज धाम' इस प्रश्नका उत्तर पर्याप्त रूपसे आ न गया होता तो वह अब क्या कहूं पर अपना प्रश्न अवश्य दुहरातीं, परन्तु उन्होंने गरुड़ और भुशुंडिकी कथा पूछी जिससे स्पष्ट है कि उनके पहलेके प्रश्नोंका उत्तर मिल गया।

शङ्का १४—

'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई, सोउ दयाल राखहु जनि गोई

गिरजाजीकी कौन सी अनपूछी बातका शिवजीने उत्तर दिया है?

समाधान १४—प्रश्न करनेवालेकी यह चतुराई है कि उत्तर देनेवालेसे सभी जाननेके योग्य बातें निकाल ले। गिरजाका यह प्रश्न भी उसी तरहका है। रामचरितमानसका वर्णन जितने विस्तारसे या जितने संक्षेपसे हुआ है, उसके सम्बन्धमें कोई विशेष प्रश्न नहीं है, कथा-विस्तारमें अनेक बातें अनपूछी समझी जा सकती हैं। साथ ही अनेक बातें ऐसी भी कथाविस्तारमें छूट गयी होंगी कि यह कहना कि उत्तरके कई अंश छूट गये हैं अनुचित न होगा। विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको धनुर्विद्या सिखायी, गंगावतरण और अहिल्याकी कथा सुनायी, यह सब बातें जो रामचरितमानसमें वर्णित हैं गिरिजाके प्रश्नोंके बाहर समझी जा सकती हैं, और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि कागभुसुंडि और शिवजीकी यात्रा गिरजाकी अनपूछी बातोंके

औरउ एक कहहुँ निज चोरी। सुन गिरजा अति दृढ मति तोरी
कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ
परमानंद प्रेम सुप फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले

शङ्का १५—मनु सतरूपाके प्रसगमें श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी दोनों ही प्रगट हुए परन्तु बातचीत केवल श्रीरामचन्द्रजीसे ही हुई, इसका क्या कारण है?

समाधान १५—स्वायम्भुव मनु और सतरूपाकी उपासना केवल रामचन्द्रजीके लिये थी।

* * * *

द्वादस अच्छर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग,
वासुदेव पद पङ्करुह, दम्पति मन अति लाग।

* * * *

पुनि हरि हेतु करन तप लागे, वारि अहार मूल फल त्यागे।

परन्तु उनके हृदयमें निरंतर यह अभिलाषा रहती थी कि हम उसी रूपके दर्शन करें जो शिव, भुशुंडि आदि भक्तोंके मनमें बसता है, अंतर्यामी भगवान विश्वकी समस्त घटनाओंको सुसंगत रूपसे संघटित करनेवाले पुरुष और प्रकृतिके रूपमें प्रकट हुए क्योंकि भावी घटनाचक्रमें दोनोंके अवतारकी आवश्यकता थी। मनु सतरूपा अनन्य भक्त थे, यह पुरुषमात्रके उपासक थे, दोनोंकी अभिलाषा थी

'चाहहुँ तुमहिं समान सुत, प्रभु सन कौन दुराव'

इस वरदानको देते और पुत्रत्व स्वीकार करते हुए भी भगवान रामचन्द्रजी अपने साथ प्रकट श्री सीताजीकी ओर इशारा करके यों परिचय देते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं

'आदि सक्ति जेहि जग उपजाया'
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।

सीताजीसे तो वर मांगनेका कोई प्रयोजन ही नहीं था, क्योंकि सीताजीको उसी घरमें अवतरित होना, जिसमें श्रीरघुनाथजी अवतरित हुए, नितान्त असंगत था। हां, साथ ही साथ प्रकट होना पुरुष और प्रकृतिके अभिन्न संबंधका परिचायक है, यह त्रिकालमें अलग नहीं हो सकते, एककी उपासना दूसरेसे भी मिलानेके लिये पर्याप्त होती है।

शङ्का १६—भानु प्रताप बड़ा धर्म्मात्मा राजा था, उसका अन्त इतना बुरा क्यों हुआ?

समाधान १६—मनुष्यकी बुद्धि सदा एकसी नहीं रहती, यद्यपि आरंभमें

करइ जो धरम करम मन बानी।
वासुदेव अरपित नृप ग्यानी॥

परन्तु उसमें राजोचित साम्राज्य-वृद्धिकी बड़ी लालसा थी जो कि उसके विजयोंसे प्रत्यक्ष है। जब वह कपटी मुनिसे वर मांगने लगा उस समय भगवदर्पणके भावके बदले उसकी स्पष्ट कामना थी।

जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितउ जनि कोउ
एक छत्र रिपु हीन महि, राज कलप सत होउ।

यह उसके मनकी उत्कट अभिलाषा थी जिसकी पूर्तिके लिये उसने इससे पहिले भी कोई बात उठा न रखी होगी परन्तु अपने धूर्त्त शत्रुके जालमें वह ऐसा फंसा कि उसे अकरणीय कर्म करने पड़े और लोकैषणाके पीछे वह बेतरह छला गया। अन्तकालमें जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है, विप्रशाप हो जानेपर वह घबरा गया और उसकी घोर राक्षसी गतिसे भावी उद्धारका साधन उसकी पूर्व्वभक्ति और शुभ कर्म न होता तो कोई कारण नहीं कि वासुदेवको विशेषतः ...के उद्धारके लिये अवतार लेना पड़ता। साथ ही यह बात

भी उल्लेख्य है कि जिस अभिलाषसे वह कपटी मुनिके जालमें फँसा वह अंशतः उसके पूर्व्व पुण्योंके बलसे फैल गयी। बहुत काल तक रावण "जरा मरण दुख रहित" था उसे कोई समरमें जीत नहीं पाता था उसका राज प्रायः एकच्छत्र था और उसने यदि सौ कल्प नही तो बहुत कालतक तो अवश्य ही राज्य किया।

*शङ्का १७—रावणके दस सिर और बीस बाहें तुलसीदासजीनें गिनायी हैं, क्या यह अप्राकृतिक नहीं है?

समाधान १७—तुलसीदासजीने कुछ अपनी तरफसे रावणके कंधेपर दस सिर नहीं जोड़े। 'नाना पुराण निगमागम संमत' जो बाते पायीं लिखीं। यद्यपि वाल्मीकीय रामायणमें युद्धकांड-तक रावणके जन्मादिका वर्णन नहीं है और बहुतसे विद्वान् षट्कांडानि तथोत्तरं, कोन मानकर उत्तरकांडको क्षेपक मानते हैं। तथापि इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वाल्मीकीय उत्तर कांडमें ६वें सर्गके २६ वें श्लोकमें रावण जन्मका उल्लेख करते हुए लिखा है,

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित्,
जनयामास बीभत्सं रक्षो रूप सुदारुणं।
'दशग्रीव महा दंष्ट्र नीलांजन चयोपमम्,
ताम्रौष्ठ विंशति भुजं महास्यं दीप्तमूर्द्धज।
तस्मिन् जाते ततस्तस्मिन् सज्वाल कवलाः शिवाः,
क्रव्यादाश्चापसव्यानि मंडलानि प्रचक्रमुः।

हे राम! यह सुन उस कन्याने कुछ दिनो पीछे अति भयकर रूप अति दारुण, दस मुख, बीस भुजा तथा बड़े बड़े दांतवाला श्याम अंजनके समान काला ताम्रवत् ओष्ठवाला बड़ा

* दस सिर ताहि बीस भुज दंडा।
रावन नाम बीर बरबंडा।

भारी मुख तथा कुछ ललाई लिये बालवाले रावणको उत्पन्न किया। उस दारुण कालमे उस दारुण रावणके उत्पन्न होनेके कारण मुखसे ज्वाला सहित कवल युक्त शृगालियां व गृद्धादि पक्षी दाहिनी ओर निकलने लगे।

रही यह बात कि रावणके दस सिर होना स्वभावके प्रतिकूल है या नहीं, सो हम इसके उत्तरमें कहेंगे कि सामान्यतः दस सिर होना स्वभाव-विरुद्ध है। परन्तु सृष्टिमें असामान्य और असाधारण रीतिसे स्वभाव-विरुद्ध बातें देखी जाती हैं, स्वभाव-विरुद्धका अर्थ असम्भव नहीं है, जुटे हुए बच्चे, दो सिर और चार हाथवाले देखनेमे आये हैं, और ऐसे मनुष्य बहुत दिनोंतक जीते भी रहे हैं। संसार बहुत विस्तीर्ण है। हमारा ज्ञान जितना परिमित है उतना परिमित संसार नहीं है। बहुत सी असाधारण बातें नित्य होती रहती हैं, जिन सबका ज्ञान तर्क करनेवालोंको होना सम्भव नहीं है। सृष्टिके प्राचीन युगोंमें कराल व्याल राक्षसों और दैत्योंका होना विज्ञानके खोजियोंने सिद्ध किया है और यह भी असम्भव नहीं है कि अत्यन्त प्राचीन युगोंमे मनुष्यके समान बुद्धिका विकास पाये हुए ऐसी जातिके प्राणी रहे हों जिन्हें हम विज्ञानकी दृष्टिसे वानर अर्थात् आधा मनुष्य कह सकते हैं। रामायणकी कथा त्रेतायुगकी बतायी जाती है जिसका काल अनुमानतः अबसे नौ दस लाख बरस पीछे पड़ता है। वर्तमान विकासप्राप्त मनुष्य जातिके अस्तित्वका पता वैज्ञानिक खोजसे गत दो लाख वर्षों से है क्योंकि इतने पुराने स्तरोंके नीचे खोपड़ियां और ठठरियां मिली हैं। भूगर्भ-विद्या और जीवविज्ञान सम्बंधी विकास-वाद दोनों अन्योन्याश्रित है और इनके अंकोंकी अटकल करनेकी रीति ऐसी ढीली ढाली है कि दो लाखके दस लाख और दस लाखके दो लाख होनेमें कोई भयंकर भूल या महापातक नहीं समझा जाता।

सारी कथा पढ़कर यह सहज ही अनुमान हो

सकता है कि यह किसी और ही कल्पकी सभ्यताका वर्णन है। यदि महात्मा तिलक और मनुस्मृतिके मतसे तेरह चौदह हजार वर्षोंका कल्प मानें तो यह बात समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। जो हो, रामायणके रावणका आज कलकेसे मनुष्योंसे विलक्षण होना, वानरोंकी सेनाका श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करना, राक्षसों और (मनुष्य खानेवाले) मनुजादोंकी लड़ाई और सौ योजनके सागरपर बहनेवाले पत्थर या झाँवाका पुल बनाना, आकाशमें उड़नेवाले "पुरों" और विमानोंपर युद्ध करना या उन्हींमें बराबर निवास करना, बड़ी लम्बी लम्बी छलांगें मारना, पेड़ोंको उखाड़ उखाड़कर और पहाड़के चट्टान तोड़ तोड़कर फेंकना और बहुत बड़ी नहर खोदकर नयी नदियां बहाना या गंगाका लाना, उस युगके लिये आजकलकी वैज्ञानिक दृष्टिसे तनिक भी अस्वाभाविक नहीं है। हां, इतना दोष अवश्य है कि विलायती आचार्य्य और उनको मनसे माननेवाले और वचनसे उनका तिरस्कार करनेवाले एतद्देशीय अर्द्धशिक्षित वैज्ञानिक इन बातोंको स्वभावके प्रतिकूल मानते हैं।

जिन्हें यह दिक्कत मालूम होती है कि रावण किस करवट सोता होगा, किन किन मुहोंसे खाता होगा इत्यादि, उन्होंने बहुत सी युक्तियां इस शंकाके समाधानमें रची हैं जिनका उल्लेख यहां निरर्थक है।

एक मत है कि रावणके पिता विश्रवा ऋषि उसकी माता केकसीको प्रिया सम्बोधन करके ध्यानस्थ हो गये और दस मास पीछे जब आंखें खुलीं तो देखते क्या हैं कि केकसी हाथ जोड़े सामने खड़ी है, पूछा, कि तुम्हें कितने महीने हुए, बोली, दस। ऋषिने विचारा कि दस ऋतु दान खंडित होनेके कारण हमें दस भ्रूण हत्यायें लगेंगी अतः उसे या तो दस बालक होने चाहिये या दसोंके समान एक, इसीलिये केकसीसे दस सिर बीस भुजोंवाला एक पुत्र हुआ।

कोई कहता है कि विद्या चौदह हैं इससे ब्रह्माने विचारा कि मेरे तो चार मुख हैं इस कारण चार ही विद्यायें मैं ग्रहण कर सकूंगा, शेष दस विद्याओंके लिये रावणको बनाया, इसीसे तो ब्रह्मा चार मुखसे वेद पाठ करते हैं और रावण दसों मुखोंसे वेदपर भाष्य करता है।

अथवा राजामें सर्व देवोंका अंश रहता है तिसमें तीन देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश मुख्य हैं जो धर्मके उत्पादकके, प्रजापालनकर्ता और दुष्टोंके नाशक हैं इसीसे चार मुख ब्रह्माके पांच मुख शिवजीके और एक मुख विष्णुजीका लेकर दशानन हुआ।

अथवा दसों दिशाओंको जीतनेवाला होगा इससे दशानन हुआ।

अथवा रावण मोह रूप है उसके दस इन्द्रियां ही आनन हैं उनके द्वारा बली है इस कारण दशानन हुआ अथवा दसवीं दशा मृत्यु है इसलिये दस मुखसे संसारकी मृत्यु सूचित करायी।

*शङ्का १८—रावणने यह वरदान माँगा कि हम मनुष्य और वानर छोड़ किसीके मारे न मरें परन्तु वह मारा गया मनुष्यके हाथ, वानरवाला वर निष्फल क्यों हुआ?

समाधान १८—शिव और ब्रह्माने वाणी द्वारा प्रेरणा करके जो वर उससे मंगवाया वह केवल उसकी ही व्यक्तित्वके लिये नहीं था उसने कहा है कि, हम काहू कर मरहि न मारे, जिसका तात्पर्य यह है कि मैं और मेरे साथी राक्षस मनुष्य और वानर छोड़ किसीके मारे न मरें। इसके लिये और प्रसङ्गमें स्पष्टीकरण हैं जैसे—

---

* हम काहू कर मरहिं न मारे
वानर मनुज जाति दुइ बारे

रावन मरन मनुज कर जांचा
प्रभु विधि वचन कीन्ह चह सांचा।

* * * *

काल पाय मुनि सुनु सोइ राजा
भयउ निसाचर सहित समाजा।
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा
रावन नाम वीर बरवंडा।

* * * *

रहे जे सुत सेवक नृप केरे
भये निसाचर घोर घनेरे।

* * * *

बंचेउ मोहिं जवन धरि देहा
सोइ तनु धरहु साप मम एहा।
कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी
करिहै कीस सहाय तुम्हारी।

* * * *

आये कीस कालके प्रेरे
छुधावन्त रजनीचर मेरे।
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू
धरि धरि भालु कीस सब खाहू।
कहै दसानन सुनहु सुभट्टा,
मरदहु भालु कपिनके ठट्टा।
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई
अस-कहि सनमुष फौज रिंगाई।

भिरे सकल जोरी सन जोरी।
इत उत जय इच्छा नहिं थोरी।

शङ्का—१६—पहले तीन कल्पोंकी कथाका विस्तार करके ग्रन्थकारने एकाएकी आकाशवाणीके समय " कश्यप अदिति तहाँ पितु माता " का उल्लेख किया, जिसकी चर्चा पहले नहीं की थी। चर्चा तो मनु सतरूपाकी होनी चाहिये थी। यह तो विचित्र ढङ्ग हैं, " कहींकी ईट कहींका रोड़ा " !

समाधन १६—ग्रन्थकारने चार कल्पोंकी कथाका उल्लेख किया हैं, यद्यपि उनकी प्रतिज्ञा विशिष्टरूपसे चार कल्पोंके लिये नहीं थी।

जनम एक दुइ कहहुं बखानी
सावधान सुनु सुमति भवानी।

* * * *

सो सब हेतु कहब मै गाई
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई
कल्पभेद हरिचरित सुहाये
भांति अनेक मुनीसन गाये

* * *

अपर हेतु सुनु सयलकुमारी।
कहहुं विचित्र कथा विस्तारी।
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं।
चारु चरित नाना विधि करहीं।
विविधि प्रसंग अनूप बखाने।
करहिं न कछु आचरज सयाने।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी।

नहिं आचरज करहिं अस जानी।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

* * * *

ग्रंथकारने अनेक कल्पोंकी कथा बीच बीचमें विचित्र रूपसे ग्रथित की है। जान बूझकर भिन्न भिन्न कल्पोंकी कथाओंको बीच बीचमें रत्नोंकी तरह अवसरके अनुकूल जड़ दिया है। विचित्रता यह है कि चार कल्पोंकी चार रामायण होती परन्तु कथाकी समानता होनेके कारण जहां जहां थोड़ा थोड़ा अन्तर पड़ा वहां कविने इशारेसे काम लिया है और ऐसे ढंगपर वर्णन किया है कि मानसके रसज्ञ बाचनेवाले कई रामायणोंका आनन्द पावें।

चार कल्पोंकी कथा विशेष रूपसे है। इनमें दो अवतार तो श्रीविष्णुजीके हैं और एक अवतार क्षीरसागरशायी श्रीमन्नारायण भगवानका है और एक अवतार श्रीसाकेत विहारीका है, तीनों कथाओंका क्रमशः सातो कांडोंमें निर्वाह किया है। एक मुख्य और दो गौण पक्ष हैं। उनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं।

पहले श्रीविष्णु अवतार कथा मानसान्तर्गत प्रमाण

पुर बैकुंठ जान कह कोई।

कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।

* * * *

कस्यप अदिति महातप कीन्हा।

तिन्ह कहँ मैं पूरब वर दीन्हा।

* * * *

लोचन अभिरामं तनु घन स्याम निज आयुध भुज चारी

* * * *

सो ममहित लागी जन अनुरागी भये प्रगट श्रीकंता।

* * * *

उर मनिहार पदिककै सोभा ;
विप्र चरन देखत मन लोभा ।

* * * *

पद नख निरखि देवसरि हरषी,
सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी ।

* * * *

नमामि इंदिरा पतिं,
सुखाकरं सतां गतिं

* * * *

भजे सशक्ति सानुजं
शचीपति प्रियानुजं ।

* * * *

एवमस्तु कहि रमानिवासा

* * * *

अतिबल मधु कैटभ जिहिं मारे
महावीर दिति सुत संहारे ।
जेहिं बलि बांधि सहस भुज मारा,
सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ।

* * * *

हिरन्याच्छ भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान
जेहिं मारे सोइ अवतरे, कृपासिंधु भगवान ।

* * * *

जय राम रमा रमनं समनं,

* * * *

इत्यादि अनेक वाक्य विष्णु अवतारके मानसांतर्गत हैं। अब क्षीरशायी भगवान श्रीमन्नारायणके अवतारकी कथा सुनिये।

सदा छीर सागर सयन।

* * * *

सेष सहस सीस जग कारन

* * * *

कोउ कह पय निधि वस प्रभु सोई।

* * * *

नारद वचन सत्य सब करिहौं।

* * * *

पय पयोधि तजि अवध बिहाई

* * * *

मोर साप करि अंगीकारा,
सहत राम नाना दुख भारा।

इत्यादि। अब श्रीसाकेतविहारी परात्परतम द्विभुजका प्रकरण सुनिये।

देखे सिव विधि विस्नु अनेका,
अमित प्रभाव एकतें एका।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा,

* * * *

उपजहिं जासु अंसतें नाना
संभु बिरंचि विस्नु भगवाना।

* * * *

सुनु सेवक सुर तरु सुर धेनू।
विधि हरि हर बंदित पद रेनू।

* * * *

देखरावा मातहिं निज,अद्भुत रूप अखंड,
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड।

प्रति ब्रह्मांडमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश गिनाये है, जहां करोड़ों ब्रह्मांड रोम रोम प्रति हैं वहां ये बेचारे क्या हैं।

हरि हित सहित राम जब जोये
रमा समेत रमांपति मोहे।

* * * *

हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा।
मुनि अकुलाय उठा तब कैसे।

* * * *

की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ (विष्णु हो)
अथवा, नर नरायनकी तुम दोऊ (क्षीरशायी हो)
जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार,
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार।

अर्थात् साकेत विहारी हो ?

संकर सहस विस्नु अज तोही,
सकहिं न राखि राम कर द्रोही।

* * * *

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूपसिरोमने,

* * * *

कोटि विस्नु सम पालन करता

* * * *

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।

इत्यादि अनेक वाक्य प्रमाण हैं। इसलिये मुख्य कथा विस्तार और ऐश्वर्य्य तो श्रीसाकेतविहारीका है क्योंकि संबंधवाक्य यों है—

एहि मह आदि मध्य अवसाना,
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

इन सब बातोंसे ग्रन्थकारका विचित्र प्रबंध सिद्ध है। अनेक कल्पोंकी कथा एकही पुस्तकमें ग्रथित है, अनेक रामायणों इतिहासों और पुराणोंके अनुकूल सब मतोंकी रक्षा करते हुए अपने इष्टदेवको परात्परतम दिखाते हुए ग्रंथकारने यह रचना वस्तुतः अद्भुत की है। जो साधारणतया असंगति दोष सा प्रतीत होता है वह वस्तुतः ग्रंथकारका रचनावैचित्र्य है।

शङ्का २०—कौशल्याको महाराजने तो जन्म कालहीमें अपना वास्तविक रूप दिखा दिया था फिर पूजाके समय कौशल्याजीको भ्रम क्यों हुआ? और विश्वामित्रजीके लिये प्रकरणारंभमें ही कहा गया

तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा,
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।
एहु मिस देषउं पद जाई,
करि बिनती आनौं दोउ भाई।
ग्यान बिराग सकल गुन अयना,
सो प्रभु मैं देषब भरि नयना।
बहुविधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरयू जल, गए भूप दरबार।

और आगे जाकर राक्षसवधपर कहते हैं,

तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हा,
विद्या निधि कहुँ विद्या दीन्हा ।

इससे स्पष्ट है कि बीचमें मुनिजीको भी कौशल्याकी तरह भ्रम हो गया था । इसका क्या समाधान है ?

समाधान २०—मनु सतरूपाके प्रकरणमें वरदान मांगते समय कहा है ।

जो वर नाथ चतुर नृप मांगा,
सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ।
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई,
जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई ।
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जगस्वामी,
ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ।
अस समुझत मन संसय होई,
कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई ।
जे निज भगत नाथ तव अहहीं,
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु ।

और महाराजने उत्तर दिया है

मातु विवेक अलौकिक तोरे,
कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ।

जन्मके पहलेहो माता करके संबोधन किया और
। कि मेरे अनुग्रहसे तुम्हारा अलौकिक विवेक बना

ऐसा होते हुए भी यह बात सदैव ध्यानमें रहनी चाहिए कि मनकी वृत्ति और बुद्धिकी दशा निरंतर एक सी नहीं रहती, जो ऋषि देवता आदि कल्पित शरीरके बंधनमें पड़े हुए दिखाये गये हैं त्रिकालज्ञ होते हुए भी अनायास ही उनका सब कुछ जान लेना शरीरयुक्त होते हुए स्वाभाविक नहीं है, शिवजी त्रिकालज्ञ हैं, ईश्वर हैं, परन्तु उन्हें भी ध्यान*धरनेपर वास्तविक घटनाका ज्ञान होता है। जब शिवजीकी यह दशा है तो मुनि और कौशल्या की बात ही क्या है जिसे यह अलौकिक विवेक निरंतर बना रहता है वह परम ज्ञानवान विदेह जनक भी शरीरके प्रभावसे अपनी विदेहता भूल जाते हैं।

बंधु समेत जनक तब आए,
प्रेम उमगि लोचन जल छाए।
सीय बिलोकि धीरता भागी,
रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्हि राय उर लाय जानकी,
मिटी महा मरजाद ग्यानकी।
समुझावत सब सचिव सयाने,
कीन्ह विचारु अनवसर जाने।

शकुन्तला नाटकमें भी भाव और रसकी प्रबलता विरागी कण्वके सम्बन्धमें कालिदासने जो दिखायी है वह प्रसिद्ध है। तात्पर्य्य यह कि विवेकका काम किसी कार्य्यप्रवृत्तिके समय सदसद् विचार करनेके लियेही लगता है, मनकी तरह विवेक निरंतर हाजिर और नाजिर नहीं है, द्रष्टा और भोक्ता नहीं है केवल परिचायक है। यह वह मंत्री या सलाहकार है जो वक्त

---

* तब संकर देखेउ धरि ध्याना,
सती जो कीन्ह चरित सब जाना।

३४

ज़रूरतके बुलाया जाता है। परन्तु मन प्रत्येक इन्द्रियमें क्षणक्षण घूम घूमकर कर्ममें प्रवृत्त होता और रसोंका आस्वादन करता रहता है। इसी तरह रस और भावकी प्रवृत्तिमें विवेक और बुद्धिका निरंतर उपस्थित रहना न केवल अनावश्यक है प्रत्युत अस्वाभाविक है। महाराज अलौकिक ज्ञानका सम्प्रदान करते हुए
भ्रम भी पहले माता कहके हो संबोधन करते हैं। अर्थात पहले वात्सल्य रसकी प्रवृत्ति दिखाकर उसके साथही अलौकिक
स विवेक मंत्री या सलाहकारकी रीतिपर इसलिये देते हैं कि व्यव-हार कालमें जभी सदसद्विवेचनाकी आवश्यकता हो तभी उससे काम लिया जाय। समय समयपर कौशल्या और विश्वा-मित्रमें ऐसीही बात पायी जाती है। वनगमनके समय जहां दशरथजीको शरीरांत करनेवाला वियोग होता है वहां कौशल्या जी अलौकिक धैर्यपूर्वक अपने प्यारे पुत्रको चौदह बरसके वन-वासके लिये आज्ञा दे देती हैं। साथही साथ यह सदसद् विवेक भी कौशल्याका स्थिर है कि विमाता होते हुए भी कैकयीकी आज्ञा पालन करना रामचन्द्रजीका उतनाही कर्तव्य है जितना कौशल्याकी आज्ञाका पालन करना।

जो केवल पितु आयसु ताता
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहहिं बन जाना
तौ कानन सत अवध समाना।

विश्वामित्रजी भी जनकसे परिचय देते हुए कहते है।

'ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्रानी'

अर्थात् विश्वामित्रजी अपने प्रभुको भूले नहीं हैं। यह जो बीच बीचमें थोड़े थोड़े कालके लिये भूल सी दिखायी देती है, वात्सल्य रसकी प्रवृत्तिके कारण है। महाराजके बालचरित कौशल्याको और विश्वामित्रको अज्ञानमें न डालकर ऐसे सुख समुद्रमें डुबा

देते हैं, ऐसे आनन्दमें तन्मय कर देते हैं कि साधारण सेवक सेव्य भाव लुप्त हो जाता है और स्वामी और दासका विवेक छिपा रहता है, कौशल्याके सामने जो बालक्रीड़ा होती थी उसका कुछ उल्लेख मानसमें हुआ है और विश्वामित्रके साथकी बाललीलाका उल्लेख गीतावलीमें हुआ है, कौशल्याजीके लिये माताका संबोधन उनके पूर्वजन्म-संबधमें उल्लिखित हो चुका है और विश्वामित्रजीको सौंपते समय दशरथजीने कहा है—

मेरे प्राननाथ सुत दोऊ,
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।

विश्वामित्रजीको शिष्य-भावके अतिरिक्त राम लक्ष्मणके प्रति पुत्र-भावका होना इससे स्पष्ट होता है।

शङ्का २१—विश्वामित्रजी तो यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज-कोलाये थे फिर धनुषयज्ञमें बिना पूछे क्यों ले गये?

समाधान २१—विश्वामित्रजी पहले ही राजा दशरथसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

'धरम सुजस प्रभु तुमकहँ, इन कहँ अति कल्यान'

महाराज आप राजा हैं प्रजाकी रक्षा आपका धर्म्म है सो आप मेरे यज्ञकी रक्षा कराके धर्म्मके भागी होंगे। और आपके पुत्रोंने रक्षा की, यह आपका यश संसारमें फैलेगा। और इन राज-कुमारोंका क्या लाभ है? 'इन कहँ अति कल्यान' इनका परम कल्याण होगा। छिपा हुआ अभिप्राय यह है कि महाराजके परा-क्रमसे धन्वा टूटेगा, त्रिलोकमें कीर्ति फैलेगी और सीतारूपी विजयश्री प्राप्त होगी। इन बातोंकी तरफ दोहेमें साफ़ इशारा है। राजा अपने वात्सल्य प्रेममें इतने डूबे हुए थे कि यह प्रलोभन उनके हृदयके ऊपर कोई असर न डाल सके और थोड़ेसे ही वियोगके प्रस्तावको अति अप्रिय वाणी समझा। जो हो चलती

बेर "तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ" यह वाक्य कहके सौंपा, इससे विश्वामित्रजीको वह स्वतः पूरा अधिकार दे चुके।

शङ्का २२—जनकजीने विश्वामित्रजीसे मिलते ही श्रीरघुनाथजीको पहचान लिया था फिर सभामें होते हुए अनादर वचन क्यों बोले?

समाधान २२—बीसवीं शंकामें हम इस बातका स्पष्टीकरण कर चुके हैं कि मनकी प्रवृत्ति जैसी जिस समय होती है वैसा ही आचरण मनुष्य कर बैठता है, यद्यपि राजा जनक विवेकनिधि हैं तथापि मनकी वृत्ति सदैव एकसी नहीं दिखायी है।

लीन्ह राय उरलाइ जानकी
मिटी महा मरजाद ग्यानकी।

वात्सल्य रसमें ज्ञानकी मर्य्यादाका मिट जाना दिखाया ही है और महाराजके प्रति विदेहका वात्सल्यभाव अन्यत्र भी स्पष्ट किया है

सहित विदेह विलोकहिं रानी
सिसु सम प्रीति न जाय बखानी।

इसके सिवाय जिस प्रकरणकी यह शंका है, उसमें रौद्ररसका भी संचार स्पष्ट है।

नृपन विलोकि जनक अकुलाने,
बोले बचन रोष जनु साने।

जनकजी व्याकुल हो गये हैं और यद्यपि समयोचित आत्मसम्मानपूरित स्पष्ट क्रोधसे भरे हुए वाक्य निकल रहे हैं तथापि "रोष जनु साने" हैं, अर्थात् वस्तुतः व्याकुलताका भाव सबसे प्रबल है यद्यपि प्रकाश क्रोधका हो रहा है, सो भी क्रोध अकेला नहीं है व्याकुलताके वचनके साथ सना हुआ है। एक तो वात्सल्यभाव और दूसरे उस समय व्याकुलताके उद्वेगसे महाराजकी

उपस्थितिका ध्यान न होना मानवचरित्रके लिये परम स्वाभाविक है। ऐसे अवसरोंमें विवेकका खामखाह बीचमें कूद पड़ना बिल्कुल अस्वाभाविक और असंगत है। अतः उन वचनोंको निरादरके वचन नहीं समझना चाहिये।

शङ्का २३—सीय स्वयंवर देखिय जाई,
ईश काहि धौं देहि बड़ाई।

इसमें सीताजीका स्वयंवर कहा है, परन्तु धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञा हुई तो स्वयंवर कैसा?

समाधान २३—प्रतिज्ञा सहित स्वयंवर भी हुआ करते हैं इस बातका प्रमाण द्रौपदीका स्वयंवर है, जिसमें मत्स्यवेधकी शर्त थी और द्रौपदीने पांडवोंको स्वयं नहीं चुना था। इधर महारानी सीताजीने फुलवारीमें महाराजके दर्शन करके स्वयं वरण कर ही लिया था और प्रतिज्ञा पूरी होनेके लिये न केवल पार्वतीजीकी शरण गयी हों, प्रत्युत धनुष टूटनेके पहले कितनी घबरायी हुई थीं उसका चित्रण ग्रंथकारने अपूर्व रीतिसे किया है। पीछे जयमाला पहिराना स्वयंवरकी ही रीति है। भगवानके विवाहमें तीन रीतियां बर्ती गयीं। एक तो प्रतिज्ञा, दूसरी जयमाला और तीसरी साधारण कुल रीतिके अनुकूल विवाह।

बहुधा लोग यह युक्ति भी देते हैं कि विश्वामित्रजीने एक प्रकारकी भविष्यवाणी कही है कि महाराज आप जो स्वयं वर हैं अर्थात् विवाहके लिये चुने हुए हैं अथवा आप जो श्रेष्ठ हैं वह स्वयं सीताजीको जाके देखिये, परन्तु उद्घाटनके डरसे तुरंत ही कहते हैं कि नहीं मालूम किसको भगवान बड़ाई दे। इसपर उनके पिछले संदेहको दूर करते हुए "लखन कहा, जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।"

शङ्का २४—भूप सहसदस एकहिं बारा,
लगे उठावन टरह न टारा।

अगर धनुष उठ जाता तो कन्या किसको वरी जाती ?

समाधान २४—पहले तो धनुषकी गुरुताकी परीक्षाके लिये सब राजा लगे, कन्याके अर्थ नहीं। सभामें देव, राक्षस, गंधर्व नाग, मानव सभी आये थे। ऐसा विचारकर दस हजार राजा धनुष उठानेको एक साथ लगे कि कन्याको इतने योद्धाओंके बीचमें वरण करलें तब आपसमें स्वयंवर या युद्ध-रीतिसे निबटारा कर लेंगे, जिसमें कन्या दैत्य, दानव और गन्धर्वादिकोंमें न जाने पावे। यों तो जनकजीको मालूम ही था कि धनुष दस हजारके समूहसे भी नहीं उठनेका। यों भी अर्थ हो सकता है कि भूप सह (साथ) सहस (सभा, समूह) अर्थात् समूहमें होकर राजालोग, कई कईकी टोलियोंमें मिलकर उठाने लगे पर टाले न टला।

कोई कोई यह भी अर्थ करते हैं कि भूप सहस (को) एक दस (दशानन) ही (ने) टारा, अर्थात् मना किया। पर वह उठानेमें लगे ही। तब भी टाले न टला।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि समूह करके लोग धनुष उठानेमें लगे, पर किसीसे टला नहीं। इसपर यह शंका कि कहीं टल जाता या टूट जाता तो विवाह किससे होता, बिलकुल अनधिकार चर्चा है, क्योंकि जो बात हुई नहीं उसकी संभावना लेकर व्यर्थ बकवाद करना बुद्धिमत्ता नहीं। यदि रामावतार न होता, यदि राम धन्वा न तोड़ते, यदि रावण मारा न जाता, यदि समुद्र न बंधता, तो क्या होता, यह प्रश्न बुद्धिमत्ताके नहीं हैं। हम इतिहास कह रहे हैं, आगे क्या चाल चली जाती यह कूट-नीति-निर्णायक शास्त्र नहीं लिख रहे हैं।

शङ्का २५—संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल,
बूड़ सो सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस।

लोग कहते हैं कि सारे समाजमें राम, जनक, विश्वामित्र आदि सभी थे। सभी डूब गये। इस अर्थ विपर्य्ययको देखकर

तुलसीदासजी बड़े संकटमें पड़े तो हनुमानजीने अन्तिम पद 'चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस', लगा दिया, यह बात कहांतक ठीक है?

समाधान २५—यह बात बिल्कुल अनर्गल है, गोस्वामीजी जैसे जागरूक, चतुर और विचारवान लेखक स्वयं अपने लेखसे ऐसी कठिनाईमें नहीं पड सकते। उन्होंने भूलके यह सोरठा नहीं लिखा, इस सोरठेसे चौंतीस पद पहले उन्होंने जहाज और सागरका रूपक बांधना आरंभ किया। रामचन्द्रजीका अपार बाहुबल अथाह और बारपारहीन महासागर है, इस महासागरमें एक जहाज़ डांवाडोल है जिसका नाम है पिनाक। इसी जहाज़पर सागर पार करनेके इरादेसे कुछ यात्री सवार हैं। यह यात्री कौन हैं?

सब कर संसय अरु अग्यानू,
मंद महीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई,
सुर मुनि बरन केरि कदराई।
सिय कर सोचु जनक पछितावा,
रानिन्ह कर दारुन दुख दावा।
संभु चाप बड़ बोहित पाई,
चढ़े जाइ सबु संगु बनाई।

इन्ही सबोंका समाज था जो जहाजपर था—

(१) सबका संशय और अज्ञान कि रामचन्द्रजीसे धनुष टूटेगा कि नहीं।

(२) मूर्ख राजाओंका यह अभिमान कि धनुष टूटनेपर भी हमारे होते हुए रामचन्द्रजीको सीता न वरेगी।

(३) [illegible] यह सोच कि रामचन्द्रजी जितेंगे या नहीं।

(४) जनकजीका यह पछितावा कि मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की ?

(५) रानियोंका यह दुःख कि बालकोंसे राजा जनक धनुष क्यों उठवाते हैं ?

(६) परशुरामजीका यह गर्व कि हमारे गुरुका धनुष तोड़नेवाला हमारे होते जीता नहीं रह सकता।

(७) देवताओं और मुनियोंकी यह कातरता कि कहीं राम और सीताका विवाह न हुआ तो रावण कैसे मरेगा।

यह सातों पिनाकके टूटनेपर ही अवलंबित थे, एक ही जहाज़पर सवार थे। पिनाक टूटा, जहाज़ डूबा और इन सभोंका सर्वनाश हुआ। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि एक तरफ़ अपार सिन्धु है और दूसरी तरफ़ बिना केवटका जहाज़। कर्णधार हो नहीं तो जहाजको इस महासागरसे पार कौन लगाये। दस पदोंमें ऐसा विलक्षण रूपक स्थापित करके जहाज़को बीच समुद्रमें डावाडोल और कर्णधाररहित छोड़कर गोसाईंजी किस खूबीसे धनुषके टूटनेके बीचका शेष चौबीस पदोंमें वर्णन करते हैं। इस जहाजके डूबनेमें बड़ा शोरोगुल होता है, शायद इसी शोरोगुलमें पाठकको उस अपूर्व रूपकका अंत भूल गया हो, इसीलिये याद दिलाते हैं और दुहराते हैं

संकर चापु-जहाज, सागर रघुबर बाहुबल

बूड़ सो सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहि मोहबस।

धन्वा टूटा, और साथ ही साथ उस जहाज़के अज्ञानके वशमें सवार यात्री भी जलतलमें निमग्न हो गये। ऐसे ही स्थलोंके लिये तो भूमिकामें सरोवरके रूपकमें गोसाईंजीने कहा है।

"धुनि अवरेब कवित गुन जाती

मीन मनोहर ते बहु भाँती"।

यह स्थल उस मछलीका उदाहरण है जो एक ओर डूबी और फिर दस बीस गज़के बाद नज़र आयी, रूपकके वर्णनका सिलसिला वस्तुतः टूटा नहीं था, जहाज़ डांवाडोल है, कर्णधार नदारद, तो अब डूबते डूबनेतक जो जो बातें हुई उनका वर्णन तो प्रसंगके अनुकूल ही था, तुलसीदासजी कौन सी बात भूलते कि उसमें हनुमानजीकी सहायता दरकार होती।

इसमें परशुरामजीका वर्णन जो घटनासे पहले कर दिया है उसमें भी कोई असंगति नहीं है, क्योंकि यद्यपि परशुरामजी पीछे आये तथापि पिनाकका टूटना उनके गुरुके धनुषका भंग उनके गर्वोंका भंग ही था, बादकी बातचीत तो उनके विशेष मानभगकी चर्चा है, उन्होंने तो स्वय कहा है।

"सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा,
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाइ बिहाइ समाजा,
नतु मारे जैहहिं सब राजा।"

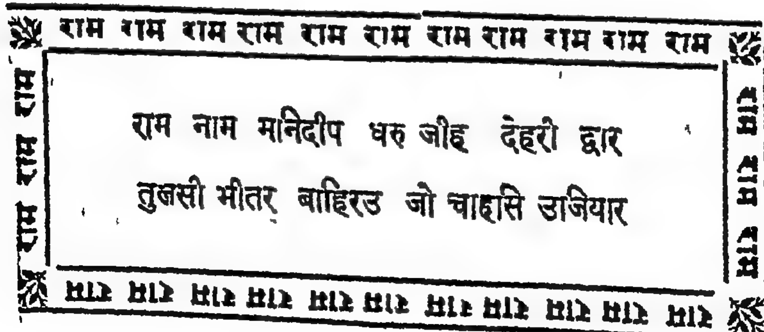
परशुरामजी आख़िर आये क्यों? उनके इस क्रोधका कारण जिसके लिये सब राजा मारे जायँगे आख़िर था क्या, यही उनके गर्व और गरुआईका भंग, उनके मानका टूटना जिसकी मरम्मतके लिये वह सभी राजाओंके सिर काटनेके लिये तुले हुए थे।

शङ्का २६—ग्रथकार गोस्वामीजी लिखते हैं कि "जनक बाम दिसि सोह सुनैना" इससे और स्मृति-वाक्यसे विरोध पाया जाता है, स्मृति प्रमाण—" पत्नी तिष्ठति दक्षिणे " और लोकमें भी दक्षिण ही ग्रहण है तब ग्रंथकारजीने "बामदिसि" क्यों लिखा?

समाधान २६—इस वाक्यमें ग्रंथकारका अगाध आशय है और अनेक-ग्रंथसम्मत है इसलिये यदि दक्षिण लिखा ह।

सो, वाम पद कदापि न देते, इसलिये वाम ही दिशा ठीक है अनेक ऋषियोंके अनेक मत हैं। जिन ऋषियोंका बायें रहना मत है, उन्हींका मत यहां ग्रंथकारको ग्राह्य है क्योंकि ग्रंथकारका पहले ही संकल्प है "नाना पुराण निगमागम सम्मतम् यत्।" ग्रंथकारने कोई वाक्य बिना प्रमाण नहीं लिखा है।

दक्षिण दिशाके पक्षमें अक्षरार्थ यों करते हैं कि वामका अर्थ है "शिव सुंदर" और सौन्दर्य और कल्याण दक्षिण दिशामें ही है इसलिये वामका अर्थ है "दक्षिण"। अथवा यों अन्वय कीजिये कि "सुनैना वाम दिसि जनक सोह" वा जनक वाम सुनैना दिसि (अर्थात् उचित दिशामें) सोह (शोभा देती है)। परन्तु दक्षिण दिशाके जितने अर्थ किये जाते है स्वाभाविक नहीं हैं। खींचातानीके अर्थ हैं।



द्वितीय सोपान-अयोध्या कांड



शङ्का १—श्रीगुरुचरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनहुं रघुवर बिमल जस, जो दायक फल चारि॥

बालकांडमें रामके यशके वर्णन करनेके लिये गुरुसमेत सबकी वंदना तो कर चुके फिरसे यहां वंदना करनेकी क्या जरूरत थी, मनका दर्पण मैला कैसे हो गया?

समाधान १—यह कविकी शालीनता है। उसका मन न भी मैला हो तब भी गुरुके चरणरजोंकी वंदना कर्तव्य है। आखिर मनका उज्ज्वल होना गुरुजी महाराजका ही प्रसाद तो है। उसके लिये रोम रोमसे श्वास श्वासप्रति कृतज्ञता दर्शायी जाय तो भी थोड़ा है, साथ ही यहां एक विशेष प्रयोजन भी है। 'राम तें अधिक रामकर दासा' यहां महाराजके यशसे अधिक रघुकुलश्रेष्ठ आदर्श अनुज भरतजीके यशोंका कीर्तन करना है, इसके लिये विशेष प्रतिभा चाहिये अतएव विशेष प्रार्थना है। क्योंकि भरतजीकी कीर्तिके वर्णनमें बड़े बड़ोंको भी लाचारी है—

'अगम सनेह भरत रघुबरको
जहँ न जाइ मति बिधि हरिहरको।
* * * *
जो न होत जग जन्म भरतको
सचर अचर चर अचर करतको
* * * *

भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकहि न सेषु
कविहिं अगम जिमि ब्रह्म सुख, अहममलिन जनेषु।

जनकजी कहते हैं—

"धरमराज तप ब्रह्म विचारू
यहां जथामति मोर प्रचारू
सो मति मोरि भरत महिमाहीं
कहइ काह छलि छुवतन छाहीं
विधि गनपति अहिपति सिव सारद
कवि कोविद बुध बुद्धि बिसारद
भरत चरित कीरति करतूती
धरम सील गुन विमल विभूती
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं
सेस गनेस गिरा गम नाहीं
भरत महा महिमा सुनु रानी
जानहिं राम न सकहिं बखानी"

इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है कि अयोध्याकांडके देवता भरत हैं और भरत-चरित्रके लिये ही यहां विशेषकर गुरुकी वंदना की गयी है। अन्तिम सोरठा इस धारणाका पोषक है। कहा है—

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं,
सीय रामपद प्रेमु, अवसि होय भव रस विरति।

यहां 'रघुबर' शब्दसे अवश्य ही भरतजीसे अभिप्राय है। यदि यह कहा जाय कि 'रघुबर' केवल रामचन्द्रजीके लिये आया है तो ठीक न होगा। रघुबरका अर्थ रघुश्रेष्ठ है। दशरथजीके लिये भी रघुनाथ शब्दका प्रयोग हुआ है इसका प्रमाण है—

'तब गुरु भूसुर सहित गृह, गमन कीन्ह रघुनाथ'

फिर लक्ष्मणजीके लिये भी रघुवर शब्दका प्रयोग हुआ है। 'माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ' और अन्यत्र भी 'रघुश्रेष्ठ' भरतको कहा ही है—

जानहु सदा भरत कुलदीपा
बारबार मोहि कहेहु महीपा।

कहते हैं कि भरतजीके चरितको अगम और अनंत मानकर ही गोसाईंजीने अयोध्याकांडकी 'इति' नहीं लगायी और अरण्यकांडमें साफ यह कहते हैं—

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई
मति अनुरूप अनूप सुहाई
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन
करत जो बन सुर नर मुनि भावन

अबतक अयोध्याकांडमें अति अनूप भरत-चरितको गुरुके चरणरजसे सुधारी हुई मतिके अनुरूप गाकर गोस्वामीजी अब रामचन्द्रजीके चरित्रके मननमें प्रवृत्त होते हैं और कांडके अन्तमें रामचरित गानकी दृष्टिसे जो छन्द, दोहा और सोरठा फलकथन रूपसे कहना चाहिये वह अरण्यकांडके आरंभमें छठे दोहेपर लिखा गया है—

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन, नयन मुख पंकज दिए
मन ग्यान गुन गोतीत, प्रभु मैं दीख जप तप का किए
जप जोग धर्म्म समूहते, नर भगति अनुपम पावई
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई।

कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल
सादर सुनहिं जे तिन्हिपर, राम रहहिं अनुकूल

कठिन काल मल कोस, धर्म्म न ग्यान न जोग जप
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर

शंका–२—ग्रन्थकार लिखते हैं—

'जबतें राम ब्याहि घर आए
नित नव मंगल मोद बधाए'

रामचन्द्रजीके विवाहके पहले क्या अयोध्याजी में आनन्द-मंगल न था ?

समाधान २—यह बात सच है कि जबसे रामचन्द्रजी विवाह करके घर आये तबसे ही पूर्ण आनंदमंगल अयोध्याजीमें हुआ। राजा दशरथको रामलक्ष्मणके वियोगमें आनंद था कहां ? उन्होंने तो छातीपर पत्थर रखके विश्वामित्रके साथ बड़ी कठिनाईसे विदा किया था 'मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ' फिर राजा दशरथके मनमें इन पुत्रोंकी रक्षाके संबन्धमें बड़ा सन्देह था, परशुरामका बड़ा डर था, वह क्षत्रियोंका निर्वीज कर रहे थे और यहां—

'चौथेपन पायेउं सुतचारी
विप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी'

बुढ़ापेके बेटे थे, बड़ी कठिनाईसे वंश चलनेका उपाय हुआ, राक्षसोंके मुकाबलेका तो कोई डर न था, वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्मरामायणमें तो दशरथजी विश्वामित्रजीसे कहते हैं कि मैं खुद अपनी सेना लेकर राक्षसोंके मुकाबिलेमें चलूंगा। वास्तविक डर था परशुरामका, और यदि परशुरामके मामा विश्वामित्र आश्वासन न देते 'इन कहँ अतिकल्याम' तो राजा दशरथ कदापि राजी न होते। रामचरितमानसमें तो दिखाया है कि परशुरामजीके आते ही सब राजा लोग थर थर लगे। राजा जनक जैसे विज्ञानीका हाल यह था कि

'अति डरु उतरु देत नृप नाहीं'

और अन्य रामायणोंमें तो ब्याह करके लौटते समय जब रास्तेमें परशुरामजी मिलते हैं तो राजा दशरथ मारे डरके बेहोश हो जाते हैं। परशुरामके हार जानेसे सारी शंकाएं निवृत्त हो जाती हैं और राजा दशरथके नज़दीक तो मानों उनके वंशकी जिन्दगीका बीमा हो जाता है। यही बात है कि जबसे ब्याह-करके रामचन्द्रजी घर आये तबसे नित्य नये मङ्गल मोद बधावे होने लगे। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनेके योग्य है कि बापके लिये बेटेका ब्याह उसके जीवन-मनोरथ की पूर्ति है। कहा भी है कि

जनक सुकृति मूरति वैदेही
दसरथ सुकृति राम धरि देही।

'जनुपाये महिपाल मनि, क्रियन सहित फलचारि' इत्यादि कथन इस बातके प्रमाण हैं कि विवाहके अनंतर आनन्द-मंगल-की वृद्धि हुई। जगज्जननी महालक्ष्मी

उपजहिं जासु अंस गुनखानी
अगनित उमा रमा ब्रह्मानी
भृकुटि विलास सृष्टि लय होई

पहले मिथिलापुरीमें थीं। विवाहानन्तर अयोध्यामें पधारीं, यही तो बात थी कि

भुवन चारि दस भूधर भारी
सुकृति मेघ बरषहिं सुखवारी
रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई
उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई

जहां यह महाशक्ति होगी वहां सम्पूर्ण आनन्दका सिमट सिमटकर भर जाना अत्यन्त आवश्यक है, यही कारण है कि

जबते राम ब्याहि घर आए

नित नव मंगल मोद बधाए।

शंका ३—* वृद्धावस्थामें दशरथ महाराजका कामकौतुक दिखाना कहांतक स्वाभाविक है?

समाधान ३—एक तो यहां भवितव्यता शब्द लिखकर साफ ही कर दिया कि होनीके वश वृद्धावस्थामें भी राजा दशरथ स्त्रीकी बातोंमें आ गये।

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ

* * * *

तब कछु कीन्ह राम रुख जानी

इत्यादि वाक्योंसे भी भवितव्यताका पोषण होता है। साथ ही स्वभाव-पक्षमें भी यह सिद्ध है कि वृद्धावस्थाके दुर्बल शरीरपर काम, क्रोध मोह लोभ आदि विकारोंका प्रबल आक्रमण होता है। कैकेयी वृद्धावस्थाकी ही ब्याही रानी थीं और उनके पितासे प्रतिज्ञा हो चुकी थी कि कैकेयीका ही पुत्र राजा होगा।

शंका ४—प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई

हरहु भगत मनकी कुटिलाई।

भक्तोंके मनमें कौनसी कुटिलाई हो सकती है, जिसके दूर करनेकी कामना यहां प्रकट की गयी?

समाधान ४—भगत अपभ्रंश है, भक्त शब्दका, जिसका एक अर्थ उपासक है और दूसरा अर्थ है वह व्यक्ति जिसे हिस्सा मिले। प्रस्तुत प्रकरणमे श्री रामचन्द्रजी इस बातपर पछताये हैं कि सब भाइयोंका जन्म लालन-पालन, भोजन-शयन, खेल-कूद, पढ़ना-लिखना, विवाहतकके सभी संस्कार, उत्साह

* तुलसी नृपति भवितव्यता वश काम कौतुक लेखई।

कालके सभी कार्य्य साथ ही साथ हुए और बराबर हुए, यह बड़ा अनुचित है कि राजके बांटमें बड़े छोटेका विचार किया जाय। भगवान भरतको जीसे चाहते हैं, क्योंकि पूर्व प्रसङ्गमें

राम सीयतनु सकुन जनाये
फरकहिं मगल अग सुहाये
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं
भरत आगमन सूचक अहहीं
भये बहुत दिन अति अवसेरी
सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी
भरत सरिस प्रियको जगमाही
इहइ सगुन फल दूसर नाहीं,
रामहिं बन्धु सोचु दिनु राती
अडान्हि कमठ हृदउ जेहि भांती

राजा दशरथको भी भरतसे कम प्रेम नहीं है

मेरे भरत राम दोउ आंखी
सत्य कहहु करि संकर साखी

राजा दशरथको और रामचंद्रको बराबर यह ख्याल था कि प्रतिज्ञानुसार भरतको ही राज मिलना चाहिये, परन्तु राजा दशरथ अपने कुल-रीतिके विरुद्ध नहीं जाना चाहते थे। मनुस्मृतिका प्रमाण है,

विनीतमौरसम् ज्येष्ठम् यौवराज्येऽभिषेचयेत्

* * * *

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पित्र्यं धनमशेषतः
अन्येतु उपजीवेयुः यथैव पितरं तथा।
(मनु० ९।१०५)

इस नृप-नीतिके निर्वाहके लिये राजा दशरथने कोई बात उठा नहीं रखी, परन्तु अपनी दोहरी प्रतिज्ञासे हार गये, श्रीरामचन्द्रजी एक तो इस संबंधमें कोई अधिकार बोलनेका नहीं रखते थे, दूसरे उनकी इच्छा स्वयं कार्य्यवश वनगमनकी थी, तीसरे भाइयोंकी अनुपस्थितिमे यौवराज्य पद लेना उन्हें अत्यन्त अनुचित जंचा, इसीलिये वह सप्रेम पछताये।

साधारण विचार करनेवालोंके मनमें इस शङ्काका आना स्वाभाविक है कि भरतजीको जान-बूझकर मौकेसे हटाया गया और मामला था राजका, जिसमें पिता-पुत्र और भाई भाई दुश्मन हो जाते हैं तो क्या श्रीरामचन्द्रजीके मनमें यौवराज्यकी लालसा न थी। उपर्युक्त घटनाओंका विचार करनेसे इस शंकाका सहज ही समाधान हो जाता है। मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी चक्रवर्ती राज्यको भाइयोंमें बांटनेके लिये उत्सुक हैं और राजधर्मके विपरीत होनेके कारण प्रेम समेत पछताते है। इस प्रकार वह इस आदर्शका निदर्शन करते हैं कि चक्रवर्ती राज्य भी हो तो भी भाई भाई आपसमें न लड़े प्रत्युत जिसका जो हिस्सा हो वह अपने हिस्सेपर अधिकार करे। महाभारतमें भी भाइयोंके झगड़ेके प्रसंगमें कहा गया है

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम्

पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरोभव।

(उ० प० १२६।१८।)

श्रीरामचन्द्रजीका यह पछताना (भगत) बांटनेवालेके मनकी कुटिलाईका हरनेवाला हो। साथ ही भगवान भक्तभावन अपने भक्त भरतके लिये एवम् भाइयोंके लिये प्रेम समेत पछताते है और ममता दिखलाते हैं कि भगवान् भक्तोंको कितना चाहते हैं। यह देखते हुए भी भक्तके मनमें भगवानके चरणोंमें अटल विश्वास न हो और परायी आशा करे तो यह उसके मनकी कुटिलता है क्योंकि महाराजने कहा है कि

मोर दास कहाइ नर आसा
करइ तो कहहु काह बिस्वासा।

भक्ति पक्षमें अर्थ यह हुआ कि महाराजका प्रेम समेत भक्तोंके लिये पछताना और यत्परोनास्ति ममत्व दिखाना भक्तोंके मनके अविश्वासको, जो कुटिलता है, दूर करनेवाला होवे।

शङ्का ५ फिरि पछितैहसि अंत अभागी
मारेसि गाय नाहरू लागी।

इस चौपाईका क्या अर्थ है?

समाधान ५—इसका अर्थ करनेमें लोग व्यर्थ वागाडम्बरसे काम लेते हैं, प्रसङ्गका ध्यान नहीं रखते। नाहरू नामक एक रोग होता है जिसे नहरुआ भी कहते हैं। यह एक प्रकारका व्रण है, जिसमें सूत सरीखे लम्बे लम्बे कीड़े निकलते हैं, और इसे गायके ताँतसे झाड़ना एक टोटका है। साधारणतया टोटकोंकी जैसी दशा होती है, इस टोटकेसे भी कोई लाभ वस्तुतः नहीं होता। ग्रन्थकारने अन्यत्र भी इस रोगकी चर्चा की है—

अहंकार अति दुखद डमरुआ,
दंभ कपट मद मान नहरुआ।

यहाँ प्रसङ्गसे यह अर्थ स्पष्ट है कि कैकेयी अन्तमें इसी तरह पछतायगी जैसे वह रोगी पछताता है जो नाहरू झाड़नेको ताँतके लिये गोवध करता है और नाहरू अच्छा भी नहीं होता और गोहत्या ऊपरसे लगती है, यहाँ रोगी कैकेयी हैं जिसे सवतिया डाहरूपी नाहरू हो गया है। इसे दूर करनेको राज्यरूपी ताँतको वह जरूरत समझती है और राजा दशरथरूपी गायकी रामवनवासरूपी हत्यासे यह ताँत रूपी राज्य प्राप्त होगा। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या राज्यके मिल जानेसे सवतिया झाल रोग मिट जायगा? क्या यह टोटका सफल होगा? क्या इस

तांतसे नहरुआ दूर हो जायगा ? राजा दशरथका अभिप्राय यही है कि यह प्रयत्न विफल होगा और कैकेयीको अन्तमें पछताना ही पड़ेगा।

शङ्का ६—कैकेयीने विशेषकर चौदह वर्षका वनवास क्यों मांगा ?

समाधान ६—राक्षसों और देवताओंका वैर पुराना था। भगवानके अवतारके लिये वरदान पाकर देवताओंने

बनचर देह धरी छिति माहीं,
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा,
हरि मारग चितवहिं मति धीरा।
गिरि कानन जहँ तहँ महि पूरी,
रहे निज निज अनीक रुचि रूरी।

रावणके पुराने साम्राज्यको उलट देनेके लिये बड़ी लम्बी चौड़ी तैयारी दरकार थी। भारतके दक्षिणी प्रदेशोंमें जङ्गलोंमें और गावोंकी बस्तियोंमें छिपी हुई असंख्य सेना देवताओंकी ओरसे तैयार हो रही है। चौदह बरस श्री रामचन्द्रजीका वनवास मसलहतसे खाली न था। रावणके साम्राज्यके वैरी और उनके भेदिये बराबर रामचन्द्रजीका स्वागत करते रहे, अयोध्या काण्डमें एक तापसका मिलना और अरण्यकाण्डमें मुनियों और ऋषियोंकी भेंट और इशारेसे रावणके अत्याचारोंका स्थल स्थलपर दिग्दर्शन, नारदका मिलना, और लड़ाईके लिये हंसा हंसीमें शूपर्णखाके नाक कान काट लेना; चौदह हजारकी सेनाका आवाहन और विनाश, सीता-हरण और उनकी तलाश, हनुमान, सुग्रीवादिकी मैत्री—निदान यह सारे काम दो चार वर्षोंके नहीं थे, देवताओंके पक्षके बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंने चौदह वर्षोंकी अटकल करके सरस्वती द्वारा प्रेरणा की। और कैकेयीने

अपनी ओरसे जो चौदह वर्षकी शर्त रखी उसके लिये पूर्ण सुसङ्गति है। मन्थराने कहा

भयेउ पाखु दिन सजत समाजू,

तुम पाई सुधि मोहि सन आजू।

जिस दिन सुधि पायो पन्द्रहवाँ दिन था, कैकेयीने चौदह दिनोतक बात छिपानेके बदले चौदह वर्षका वनवास दण्ड दिया।

शङ्का ७—वनयात्राके समय श्री जानकीजीने मार्गमें अनेक सेवाएं करनेको कहा परन्तु जब बनकी यात्रा की तब ग्रन्थकारने एक भी सेवा सीताद्वारा नहीं लिखी तो इस प्रसङ्गमें सत्यता कहाँ रही?

समाधान ७—पहले तो सीताजीके सब वचनोंका अभिप्राय यह है कि अपनी ओरसे सब तरहसे दृढ़ता दिखानी चाहिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी साथ ले चलें, अब रही वचनोंकी सत्यता सो मानसमें ग्रन्थकारने मार्गसेवा नहीं लिखी इसमें यह कोमलता है कि श्री सीताजी श्रीरामचन्द्रजीसे अति सुकुमारी हैं। क्योंकि रामचन्द्रजी तो श्री विश्वामित्रजीके साथ मिथिलातक पांव पयादे हो गये थे परन्तु सीताजीने तो पलंग पीठ, गोद, हिंडोरा छोड़कर भूमिपर कभी पैर ही नहीं रखे इसलिये श्रीरामचन्द्रजी इन्हींको सभालते रहे।

जानी स्रमित सीय मन माहीं,

घरिक विलम्ब कीन्ह बट छाहीं।

इत्यादि वाक्य इसके प्रमाण हैं।

फिर ग्रन्थकारने जो लिखा है वह असत्य भी नहीं है क्योंकि आगे चलकर चित्रकूटमें सीताजी द्वारा सेवाका वर्णन है

बट छाया बेदिका बनाई

सिय निज पानि सरोज सुहाई।

* * * *

तुलसी तरु वर विविधि सुहाए
कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए।

* * * *

सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं
जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं

मानसमें तो इतना ही सेवाप्रसङ्ग है परन्तु गीतावलीमें कुछ मार्गसेवा भी गायी गयी है।

शङ्का ८—कैकेयीने वरदान माँगा,

तापस वेष विसेष उदासी,
चौदह बरस राम बनबासी।

परन्तु रामचन्द्रजी मृगया करते थे, रथपर सवार होते थे और युद्ध करते थे, इन दोनों बातोंकी सङ्गति कैसी ?

समाधान ८—वेषमात्रके लिये तापस और विशेषकर उदासी कहा है। गृहस्थ क्षत्रियके कर्मका त्याग नहीं बताया है। यदि गृहस्थ आश्रमसे वाणप्रस्थमें प्रवेश होता तो बात दूसरी थी। यह तो वरदानकी शर्त थी कि रूप तपस्वी, उदासीका हो सो भगवानने चौदह वर्षतक अपना यही रूप रखा। कर्मणा गृहस्थ क्षत्रिय बने रहे। राजत्याग और वनवास और तपस्वियोंका वेष रावणसे भावी युद्धके लिये तैयारीमें सहायक था। इसमें महाराजकी भी मरजी थी इसके लिये प्रमाण है

तब कछु कीन्ह राम रुख जानी

* * * *

दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई
जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।

* * * *

राजा राम स्ववस भगवान्

* * * *

राम रजाय सीस सबहीके ।

शङ्का ६—दशरथजीने जब विश्वामित्रजीके साथ महाराजको भेजा तब वियोगव्यथा ऐसी नहीं हुई कि प्राण छोड़ दें, यद्यपि तब महाराजकी बाल्यावस्था थी। अब प्रौढ़ावस्थामें वनगमनपर क्यों प्राणत्याग किया ?

समाधान ६—विश्वामित्रजीने जब पुत्रोंके ले जानेकी इच्छा प्रकट की तो पहले राजाने साफ इन्कार कर दिया था। विश्वामित्र इतने कुपित हुए कि घोर शाप देनेको तैयार हो गये थे। वशिष्ठजीकी सलाहसे राजा दशरथने उन्हें मनाया। विश्वामित्रजीने स्वयम् भी आश्वासन दिया

'धरम सुजस प्रभु तुम कहँ, इन कहँ अति कल्यान'

साथ ही विश्वामित्रजी दीर्घ कालके लिये नहीं लिवा ले गये यह सब होते हुए भी राजा दशरथने साफ कहा है

'मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ'

मानो राजा दशरथने विश्वामित्रको केवल पिताका चार्ज नहीं दिया बल्कि अपने प्राणोंका भी चार्ज दिया और जबतक पुत्रोंसे मिल न लिये तबतक मानो मृतकसे थे। जब राजा बेटोंसे मिले उस प्रसङ्गमें कहा भी है

'सुत उर लाय दुसह दुख मेटे
मृतक सरीर प्रान जनु भेटे'

वनगमनका प्रसंग विश्वामित्रके संग जानेसे नितान्त भिन्न है। पहले तो वरदान ही एक छल था जिसकी बड़ी गहरी चोट राजाके हृदयपर पहुची। दूसरे श्रीरामचन्द्रजीको एकदम

चौदह बरस वनमें रहना था यह। नियत अवधि थी जिसमें जरा भी कोर कसर होना सम्भव न था। फिर भरतके राजा हो जानेपर और कैकेयीके पूर्ण अधिकार प्राप्त होनेपर मनःप्रवृत्ति प्रवाहको देखते हुए क्या आशा थी कि श्रीरामचन्द्रजी चौदह बरस बीतनेपर भी लौटते। उसके साथ शर्त यह भी कि गांवमें प्रवेश न करें, तपस्वियोंकी भांति रहें और साथ ही यह कोई आश्वासन न था कि चौदह बरसके बाद अयोध्या हो लौट आवें। इन बातोंके सिवा राजा दशरथने जिस उत्साह और उमंगसे रामके यौवराज्यका काम छेड़ा उसपर तो पाला पड़ हो गया, साथ ही राजा दशरथने जिन श्रीरामचन्द्रजीको राज्य देनेके लिये वशिष्ठ द्वारा कहलाया था कि संयमसे रहें उन्हींको बुलाकर बन जानेका संदेशा सुनवाना और स्वयं लाचार हो कुछ न कर सकना यह राजाके हृदयको प्राणान्तक आघात पहुंचानेवाली बात थी। यदि इस तरहका उनके हृदयमें महान शोक न होता तो शायद भरतको राज्य देकर राम समेत स्वयं बनको चले जाते। कैकेयीने तो इतनी जल्दबाज़ीकी कि

होत प्रात मुनि वेषधरि, जो न राम बन जाहिं
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं।

राजाने प्रतिज्ञा की

अवसि दूत मैं पठउब प्राता
ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता।
सुदिन सोधि सब साजु सजाई
देउं भरतकहुं राजु बजाई।

परन्तु कैकेयी भरतके राजतक रुकनेको तैयार न थी उसे सवेरा होते ही रामको शहर बदर करना मंजूर था। रामचन्द्रजीका एक मिनटका ठहरना कैकेयीको गवारा न था। राजा विदा करते समय फिर भी यह आशा थी कि राम-

चन्द्रजी सीता, लक्ष्मण सहित समझाने बुझानेसे लौट आवेंगे। कमसेकम सीताजीके लौटनेकी आशा नहीं, तो दशरथकी दृष्टिमें आवश्यकता बड़ी थी। सुकुमारी सीताको बन भेजकर राजा जनकके पक्षको क्या जवाब देते

'सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'

राजा दशरथके सत्यने, अपयशके भयने, और संकोच और मृदुताने उनको मृत्युको अत्यन्त निकट बुलाया और अन्धोंके शापने उसके कदमोंको मजबूत कर दिया और असह्य वियोगने मार्मिक और मांघातिक चोट पहुंचायी। मरणकालकी परिस्थिति भिन्न थी, विश्वामित्रजीके साथ भेजनेकी भिन्न।

भक्तिपक्षमें यह समाधान भी किया जाता है कि महाराजके वनवासके कष्टोंको राजा दशरथ सहन नहीं कर सके परन्तु अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा मरे पीछे भगवानके समस्त चरित्र देखनेके अभिलाषी थे। इन्द्रके साथ साथ बराबर देखते भी रहे और अन्तमें रावणके मरनेपर श्रीरामचन्द्रजीके पास आये भी थे।

शङ्का १०—महाराज दशरथने अन्तसमय छः बार राम नाम कहा परन्तु मुक्त नहीं हुए, जब कि प्रमाण ऐसा है—

मरतहु जासु नाम मुख आवा,
अधमउ मुकुत होइ स्रुति गावा,

इसका कारण क्या है ? छः बार राम नाम लेनेमें क्या युक्ति है ?

समाधान १०—महाराज दशरथजी रामभक्त हैं और भक्तलोग भक्तिके आगे मुक्तिको तुच्छ मानते हैं। भक्त मोक्ष नहीं चाहते। भक्तिके आगे मोक्षका वही मूल्य रखते हैं जो मणिके आगे काचकी रखी जा सकती है। तिसपर भी ग्रन्थकार गोसाईंजीने लंकाकांडमें बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि—

'तातें उमा मोक्ष नहिं पावा,
दसरथ भेद भगति मन लावा।
सगुन उपासक मुकुति न लेहीं,
तिन्हकहं राम भगति निज देहीं।

और भी ग्रन्थोंमें इसके प्रमाण हैं

मुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते,
तावत् श्रीराम भक्तिः सा कथमभ्युदयं लभेत्।

पूर्वमीमांसा शास्त्रके आचार्य्य जैमिनिका मत है कि स्वर्ग-सुख ही मोक्ष है 'स्वः स्वर्गे परलोके च इति'

महाराज दशरथजीके लिये और भक्तोंके लिये तो धामादिक मुक्ति बतायी गयी है परन्तु महाराज दशरथने विचारा कि अभी श्रीरामचन्द्रजी तो वनमें रणचरित्र कर रहे हैं। हम राम-भक्ति-उपासक वहाँ धाममें जाकर क्या करेंगे। यही कारण है कि जब मानवचरित्र समाप्त कर 'प्रजा सहित रघुवंसमनि' अपने धामकी यात्रा करेंगे तभी महाराज दशरथ भी जायँगे। तबतक महाराजने विचारा कि बालचरित्र तो देखा 'अब वन-रण चरित्र भी देखने ही चाहिये तो अच्छा होगा कि चलकर अपने मित्र इन्द्रके यहां रहें। वहांसे उनके साथ राम वन चरित्र तथा रणचरित्र देखेंगे। यही कारण है कि महाराज अपने सूक्ष्म शरीरसे इन्द्रलोकमें जा कर रहने लगे।

राजाने सत्यको पकड़ा रामको छोड़ा जैसा स्वयं रामचन्द्रजीने कहा है

'राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी'

और सत्यका फल स्वर्ग है इसलिये मोक्ष नहीं हुई।

राजा दशरथकी यह वासना भी थी कि मैं राम

राज्याभिषेक देखूं और जैसी वासना अन्तमें होती है वैसा ही फल मिलता है इसलिये अभी मुक्ति नहीं हुई।

शब्दार्थसे मुक्तिका प्रतिपादन चतुर रसिक यों करते हैं कि 'राउ गयेउ सुरधाम' धामोंका जो सुर वहां राजा गये, अर्थात् साकेतको गये।

छ बार राम नाम कहनेका कारण है वीप्साभाव। अत्या दर और अति शोकमें एक ही शब्द बारम्बार मुखसे निकलता है, जैसे आइये ! आइये !! हाय हाय !! इत्यादि।

वा

महाराज राम उपासक हैं और रामतारक मन्त्रभी षडक्षरी है इससे महाराजने छः बार रामनाम कहा।

वा

योगियोंकी गति षट् चक्र वेधनेसे होती है और अब समय योगका था कहां, इसीसे छः बार राम राम कह लिया।

वा

महाराजने विचारा कि हमारे इष्टदेव शिव और गिरिजा हैं वह छः मुखोंसे राम नाम जपा करते हैं अतः हम भी राम नाम छः बार कह लें इससे छः बार राम नाम कहा। शिव-जीके उपासक होनेका प्रमाण है

'इन सम काहु न सिव अवराधे
काहुन इन समान फल लाधे'

राम जैसे पुत्रोंका मिलना आदि फलोंके अनेक प्रमाण हैं।

शङ्का ११—प्रयागनिवासी तो भरतजीके स्नेहकी बड़ाई कर रहे हैं और गोस्वामीजी लिखते हैं कि भरतजी रामगुणगान सुनते हुए भरद्वाजजीके आश्रममें आये, सो भरतजीने अपने गुणोंमें रामगुण किस तरह सुने ?

समाधान ११—भरतजी रामके गुणोंमें इतने लीन हैं, ऐसे

तन्मय हैं कि उन्हें जो कुछ सुम पड़ता था वह रामके ही गुण थे।

'निजगुन सहित राम गुन गाथा
सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥'

शङ्का १२—श्री भरद्वाज मुनिने भरतजीके आतिथ्यमें बड़ी आवभगत दिखायी, विशेष वैभवके साथ उनका आतिथ्य किया। इसका क्या कारण है?

समाधन १२—(१)भरतजी चक्रवर्ती महाराजके कुमार हैं सामान्य ऐश्वर्य भोगसे तृप्त न होंगे, ऐसा समझ भरद्वाजजीने विशेषताके साथ आतिथ्यआयोजन किया।

'मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता
तस पूजा चाहिय जस देवता।

(२) भरतजी अयोध्यावासियों सहित आये हैं। यह सब राम भक्त हैं और हम भी राम भक्त हैं अतः भक्तके नाते हमें भरसक शुश्रूषा करनी चाहिये। तिसपर भी अब यह सब हमारे अतिथि हैं इसलिये मुनिने अपना सभी तपोबल लगाकर अपने सहयोगी भक्तों और अतिथियोंकी सेवा करना परम कर्त्तव्य समझ विशेष वैभवके साथ अतिथिसत्कारका आयोजन किया।

(३) भरतजी रामप्रेमके अगाध समुद्र हैं या कहिये कि 'राम प्रेम मूरति तनु आही' और इस समय चक्रवर्त्ती पदवीको छोड़े हुए रामजीके पास जा रहे हैं। इनकी बड़े ठाटबाटके साथ मेहमानदारी करनेपर इनकी रामके प्रति कितनी भक्ति है, कितना त्याग है यह सारा रहस्य खुल जायगा। यह आडम्बर वस्तुत भरतकी परीक्षा थी। गोसाईंजी आगे चलकर लिखते कि "मुनि आयसु खेलवार" यह सारा ठाटबाट और मुनिजी-

की माया सभी भरतजीके सामने बालकोंके खिलवाड़ जैसी प्रतीत हुई क्योंकि यह सभा राममक्तिके बाधक और त्यागके विरोधी हैं। भरतजीको यह वैभव क्या बहका सकता था?

शङ्का १३—निषादराज तो यमुना तीरसे ही लौट गया था परन्तु भरतजीकी यात्रामें गोसाईंजी दिखलाते हैं कि निषादराज भरतजीसे कहता है कि इस नदी किनारे श्री राघव-जीको पर्णकुटी है"। तो निषादराजको पर्णकुटीका पता क्यों कर मालूम था?

समाधान १३—गोसाईंजी निषादराजके बारेमें दो स्थलोंमें पहले ही लिख चुके हैं

'नाथ साथ रहि पंथ देखाई
करि दिनचार चरन सेवकाई '
जेहि बन जाय रहब रघुराई
परन कुटीमें करब सुहाई,
तब मोहि कहं जस देब रजाई
सो करिहौं रघुबीर दोहाई,

इन वाक्योंसे निषादराजका चित्रकूटतक जाना सिद्ध है, पहले वाक्यके अनुसार निषादराजका रामजीके साथ चार दिन का रहना इस प्रकार है कि पहले दिन शृङ्गवेरपुरसे चलकर बीचमें रहना, दूसरे दिन प्रयागराजमें रहना, तीसरे दिन यमुना तीर रहना और चौथे दिन यमुना पार होना जिसका प्रमाण है

तब रघुबीर अनेकबिधि, सखहिं सिखावनदीन्ह,
राम रजायसु सीसधरि, भवन गवन तेहि कीन्ह ।

दूसरे वाक्यसे निषादराजका कुटी बनाना सिद्ध है। यही कारण है कि निषादराज भरतजीको कुटी दिखला सका, क्योंकि

बिना जाने कुटी कैसे बतला सकता था। इससे सिद्ध है कि निषादराज यहांतक आया और कुटी बनाकर वापस गया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि निषादराज पहले रामजीके साथसे बीचहीसे वापस गया हो परन्तु वर्षके भीतर तो कई बार गया और दिन दिनकी खबर अपने सेवकों द्वारा लेता रहा इससे इसे सब कुछ मालूम है।

प्रान प्रानके जीवन जीके
स्वारथ रहित सखा सबहीके

तृतीय सोपान—आरण्य कांड

शङ्का १—जयन्त काक ही बनकर क्यों आया ? और यह दोनों भाई उस समय कहां थे जो सीताजीकी रक्षा न कर सके और जानकीजीने यह घटना राम तथा लक्ष्मणसे क्यों न कहा ?

समाधान १—"या मतिः सा गति." "श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः" "अयं खलुः क्रतुमयः पुरुषः" आदिके प्रमाणसे जयन्त जैसे नीच, कुटिल, डरपाक, हिंसक और पापी प्रवृत्तिवालेको कौवेके सिवा और कोई रूप धारण करना ही असङ्गत था। कौआ जिस समय अपनी मतिके अनुरूप रूप धारण कर आया उस समय महाराज श्री भगवती जानकीजीके अङ्कमें सिर रख सो रहे थे। भगवान् लक्ष्मणजी एकान्त देख वहांसे हट गये थे। महाराजके निद्राभङ्गके भयसे भगवतीने चोट खाकर "आह" भी न किया। कौवेके दुःस्साहसपर हिलीं तक नहीं। जागनेपर रक्त प्रवाह देखकर भगवानने सब हाल मालूम किया। कविने "बैठे फटिक सिलापर सुन्दर" कह-कर लक्ष्मणजीका उस समय न होना दिखाया। "चला रुधिर रघुनायक जाना" कहकर लक्षित किया कि केवल बैठे नहीं वरन इस घटनाके समयतक सो गये थे, रक्त प्रवाह देख पीछे उन्होंने 'जाना" अर्थात् श्री मैथिलीजीसे मालूम किया।

शङ्का २—लक्ष्मणजी तो पूर्वमें ही निषादको ज्ञान, वैराग्य तथा भक्तिका उपदेश कर चुके हैं तो फिर लक्ष्मणजीने राम चन्द्रजीसे इस विषयमें पट्प्रश्न क्यों किये जब कि आप स्वयं ही इन सब बातोंके परम ज्ञाता हैं ?

समाधान २—शास्त्रकी ऐसी आज्ञा है कि प्रकाण्ड विद्वान् भी हो तो भी उसे बारम्बार शास्त्रावलोकन और सत्सङ्ग करना ही चाहिये। "शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय" ऐसी रीति है भी छोटोंको बड़ोंसे प्रश्न करना और बड़ोंको छोटोंके लिये उपदेश करना इस उत्तम प्रकारसे समय विताना ही चाहिये। यही कारण है कि एकान्तवास तिसपर भी बनवासके दिन उत्तम प्रकार वितानेके लिये लक्ष्मणजीने श्रीरघुनाथजीसे जानते हुए भी उसी विषयके प्रश्न किये।

आगे चलकर श्रीरघुनाथजी अनेक ललित नरलीला करनेवाले हैं। ऐसे अनेक प्रश्नोंसे समाधान कर लेनेपर भविष्यमें किसी प्रसंगकी शङ्का उत्पन्न न होगी। इस विचारसे लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे प्रश्न किये। कर्त्तव्य कर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है। बड़े बड़े ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान् इसके चक्करमें पड़कर गोता खा जाते हैं। अतः लक्ष्मण-जीका प्रश्न करना उचित ही है।

शङ्का ३—शूर्पणखा तो परम सुन्दरी बनकर आयी थी; फिर लक्ष्मणजीने यह कैसे पहचान लिया कि यह रिपु-भगिनी है?

समाधान ३—पहले तो अगस्तजीसे ही सुन चुके हैं। श्री रामचन्द्रजीने अगस्त मुनिसे मंत्र पूछा था, अर्थात् गुप्त सलाह की थी उसके उत्तरमें स्थान और नामके निर्देश सहित उन्होंने सब बताया था। इससे लक्ष्मणजीने पहचान लिया। दूसरे शूर्पणखाकी बातचीत द्वारा लक्ष्मणजी जैसे चतुर राजपुरुषका ताड़ जाना कि यह जरूर राक्षसी है, क्या कोई कठिन बात है?

मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं
देखेउं खोजि लोक तिहुं नाहीं।

तातें अब लगि रहिउं कुमारी।
मन माना कछु तुमहिं निहारी ।

इन सब बातोंसे स्पष्ट था कि तीनों लोकोंमें गमन करनेवाली और बहुत पुरानी है। इससे यह मनुष्य जातिमें हो ही नहीं सकती, जरूर राक्षसी है। उसकी कामातुरता भी पता देती थी। और ऐसे भयानक जङ्गलमें मानवसुन्दरी भला कब निर्भय अकेले विचरनेका साहस कर सकती थी। रावणकी बहिन शूर्पणखाका चरित्र अगस्त्यादि ऋषियोंसे सुना था।, इसका हाल ठीक तदनुरूप पाया। इसीसे उन्होंने ताड़ लिया कि यह रावणकी बहिन शूर्पणखा है।

शङ्का ४—श्री रामचन्द्रजीने शूर्पणखासे कहा कि 'हमारे लघु भ्राता कुवारे हैं' परन्तु वास्तवमें लक्ष्मणजीका तो विवाह हो चुका है फिर श्रीरामचन्द्रजी मर्यादा-पुरुषोत्तमने ऐसा क्यों कहा ?

समाधान ४—मीठी चुटकी और लतीफ़ मज़ाक़का यह नमूना है। हास्यरसमें, व्यङ्गमें, कूटमें, काकूक्तिमें सत्यके कठिन कांटेपर वाक्योंको नहीं तोलते। उत्तर प्रत्युत्तरका होना सुसंगत होता है। श्री रघुनाथजी खूब जानते थे कि शूर्पणखा बूढी विधवा है,पर हमारे सामने आकर सुन्दरी कुमारी बन रही है। इस बनी हुई धृष्टा निर्लज्जा अनूढा नायिकाको हँसीमें ही भगवान लक्ष्मणजी जैसे क्रोधी ब्रह्मचर्य्यव्रतीके पास शिक्षार्थ यह कहकर भेजते हैं कि सुन्दरी! जैसी तू "कुमारी" है (यद्यपि विधवा है) वैसे ही मेरा छोटा भाई भी "कुमार" ही है (यद्यपि ब्याहा है) अर्थात् दोनों ही इस समय दाम्पत्य सुखसे वञ्चित हैं) तुम दोनोंसे पट जायगी। कुछ लोग यों अर्थ करते हैं कि भगवान्‌ने "कुमार" सुन्दरके श्लिष्ट अर्थमें कहा। कुमार अर्थात् कुत्सित है कामदेव

जिससे। परन्तु इस श्लेषार्थका कोई विशेष प्रयोजन नहि ज्ञान पड़ता।

शङ्का ५—मारीच तो राक्षस था वह तो कपटमृग बना था फिर उसकी छाला श्रीरामचन्द्रजी कैसे लाये?

समाधान ५—गोसाईंजीने पहले ही यह विशेषण दिया है कि

सत्यसन्ध प्रभु बध करि येही
आनहु चर्म कहति वैदेही।

इस विशेषणसे यह अभिप्राय ज्ञान पड़ा कि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं और प्रभु,हैं अर्थात् आप अकरणीय करनेमें भी समर्थ हैं। इस कारण मृगतनुका बना रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस मृगकी छालापर तो रामसीता दोनोंका ही सङ्कल्प है यही कारण उसके बने रहनेका हुआ!

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई
करै अन्यथा अस नहिं कोई।

इसी कनकमृगकी छाला श्रीराघवजी लाये। जैसा कि गीतावलीमें कहा है "हेमको हरिन हनि, फिरे रघुकुल मनि, लषन ललित कर लिये मृगछाला" फिर मानसमें भी लंकाकाण्डमें सुवेल प्रकरणमें लिखा है "तापर रुचिर मृदुल मृगछाला" मृग छालाका वर्णन रामचरितमानसमें यह पहली बार हुआ है। अवधकाण्डके प्रारम्भसे लंकाकाण्डके प्रारम्भ तक और कहीं मृगचर्म बिछाना नहीं है। केवल कुशलाथरी और तृणपल्लवोंका बिछाना वर्णन किया गया है। इस अवसरपर यह कहा जा है कि जब 'कनक मृगचर्म" श्री रामचन्द्रजी आरण्य में लाये तो गोसाईंजीने लंकाकांड में आकर उसका क्यों किया, तो कारण स्पष्ट है कि श्रीरामजी तो श्री नकीजीके लिये ही मृगचर्म लाये थे। परन्तु लाने

साथ वियोग हुआ इससे बीचमें उसकी चर्चा नहीं लिखी। अब सीताकी सुधि पाते ही जब लंकाके समीप पहुंचे तब कुछ विरह शान्त हुआ। तब उस मृगचर्मको बिछाया।

शङ्का ६—रावणने तो केवल मनमें अनुमान किया पर 'सुनत गीध क्रोधातुर धावा" क्यों? अनुमानमें शब्द तो होते नहीं, फिर गृध्रराजने सुना कैसे!

समाधान ६—यहां प्रश्नोत्तरालंकार है। कविकी इसमें चतुराई है कि कभी प्रश्न विवक्षित रखता है, कभी उत्तरवाक्यसे पूर्वकथनका बोध हो जाता है। जैसे

जानहु सदा भरत कुल दीपा
बार बार मोहिं कहेउ महीपा।

सो इह है कि और प्रसङ्गमें यह विवक्षित था।

* * * *

'रामानुज लघु रेख खचाई' इस वाक्यसे स्पष्ट है कि लक्ष्मण जीने रेखा खिचाई थी, पर प्रसङ्गपर इसका वर्णन पिहित (छिपा) है। यहां रावणने अवश्य ही कटु शब्द कहे हैं जिसे ग्रन्थकारने उसके अनुमान करने और जाननेके प्रसंगमें लिखकर "सुनना" क्रियासे लक्षित कर दिया है।

शङ्का ७—श्री राघवजीने गृध्रराजसे कहा, कि श्री चक्रवर्ती महाराजसे सीताहरण न कहना, यदि मैं राम हूं तो रावण ही सपरिवार जाकर कहेगा। परन्तु आगे चलकर कहीं भी रावण-द्वारा कहना नहीं लिखा है, इस तरह गृध्रराजको मना करनेमें क्या विशेष हेतु है?

समाधान ७—महाराज दशरथजीका वास तो स्वर्गमें है और गृध्रराजका राघवने परमधाम दिया है इससे स्पष्ट है कि महाराजसे गृध्रराजकी इन्द्रलोकमें जरूर ही भेंट होगी क्योंकि अर्चिरादि मार्गमें इन्द्रलोक भी है। इस कारण मित्रभावसे श्री रामचन्द्रजीने गृध्रराजको मना किया कि और सारा समाचार

महाराजसे कहना परन्तु सीताहरण न कहना क्योंकि यदि महाराज यह दुःखद समाचार सुनेंगे तो स्वर्गमें रहते हुए भी उन्हें महान् दुःख होगा ।

रहा अपना पुरुषार्थ, इसके लिये 'रावण वध कुल समेत' कहा । इसको इस तरह समझना चाहिये कि रावणकी मोक्ष अनेक रामायणोंमे अनेक प्रकारसे वर्णन की गयी है परन्तु गोस्वामीजीने मानसमें दो रीतियां मोक्षकी वर्णन की हैं—

तासु तेज प्रभु वदन समाना,

* * * *

निश्चर अधम मलायतन, ताहि दीन्ह निजधाम

* * * *

तासु तेज समान प्रभु आनन

* * * *

तुमहु दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्

उपर्युक्त वर्णनसे मोक्षकी दोनों रीतियां स्पष्ट हो जाती हैं । एक तो श्री भगवद्विग्रहमें होकर और दूसरी अर्चिरादि मार्गमें होकर । इसलिये जहां रावणको अर्चिरादि मार्गमें होकर जाना है वहां राजा दशरथसे श्री जानकीजी द्वारा अपनी मोक्ष कहना असम्भव नही है । शेष कुलके लिये तो स्पष्ट हैं कि विभीषणको छोड़ रावणके कुटुम्बमें कोई नहीं बचा । सभी मारे गये और स्वर्गगामी हुए ।

राम सरिसको दीन हितकारी
कीन्हें मुकुत निसाचर झारी

इस वाक्यसे व्यङ्गद्वारा सभी राक्षसोंकी मुक्ति सिद्ध होती है । गोसाईंजीकी वर्णनशैली ही है । 'अरथ अमित अति आखर थोरे' गीध अगर सीताहरणकी कथा श्री दशरथजीसे कहेगा ऐ बड़ा रञ्ज होगा, और रावण कहेगा तो उसकी वीरता-

का समाचार सुनकर महाराज प्रसन्न होंगे और सीताजीका पुनः मिल जाना सुननेसे सीता-हरणका रञ्ज भी उन्हें न होगा; और यही बात हुई भी, क्योंकि विजयके अनन्तर "तेहि अवसर दसरथ तहँ आये" रावणने सब हाल कहा। सुनकर प्रसन्न हो पुत्रको देखने आये।

शङ्का ८—"सापत ताड़त परुष कहन्ता, विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता। पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना।"

इन चौपाइयोंमें गोसाईंजीने ब्राह्मण जातिका अनुचित पक्ष किया है या नहीं?

समाधान ८—गोस्वामीजी वर्णाश्रम धर्मके माननेवाले थे। जन्मना वर्ण अवश्य मानते थे। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है

"भये बरन संकर कलो, भिन्न हेतु सब लोग"

वह ब्राह्मण जातिका महत्व भी समझते थे। इसलिये जिस जातिके होनेका उन्हें उचित गर्व था यदि उसका महत्व प्रतिपादन उन्होंने किया तो कोई अक्षम्य दोष नहीं है। परन्तु उन्होंने उपस्थित प्रसङ्गमें अपना मत नहीं, प्रत्युत स्मृतिकारोंका मत श्री रामचन्द्रजीके मुखसे कहलाया है। इसमें "विप्र" शब्दका अर्थ विद्वान् ब्राह्मण ही लेना उचित होगा। तुलसीदासजीने इसी अर्थमें विप्र शब्दका प्रयोग किया है। प्रसङ्ग यह है कि दुर्वासाने तिरस्कारपूर्वक हँसनेपर कवन्धको राक्षस होनेका शाप दिया था। कवन्धका कहना था कि इतने छोटे अपराध पर ऐसी कड़ी सजा। यह अवश्य ही ऋषिका अन्याय था कि कवन्धके गानेको समझकर उसकी प्रशंसा तो दूर रही, उसको इतना कड़ा दण्ड दे डाला। उसने इसमें ऋषिकी गुणहीनता भी दिखायी, इसपर भगवानने कहा कि दुर्वासा सरीखे विद्वान् ब्राह्मण और ऋषि चाहे शाप दे, दण्ड दे, कठोर वचन कहे, परन्तु फिर भी वह सन्तोंके (भलोंके)

निकट अधिक पूज्य होगा, "सील गुनहीन" होते भी "विप्र" अधिक आदरणीय होगा, उस शूद्रकी अपेक्षा भी जो कबन्धकी तरह अनेक गुणोंसे भूषित, ज्ञानी और चतुर हो। यह वाक्य दुर्वासा सरीखे ऋषियोंके सम्बन्धमें कहे गये हैं जिनकी आत्म-शुद्धि और आत्मबल अत्यन्त उच्च कोटिका है। गुणी, ज्ञानी, और चतुर होनेसे ही शूद्र ऋषिकी अपेक्षा ऊंची कोटिका आत्मवित् नहीं हो सकता। आजकलके साधारण रसोई बनाने-वाले महाराजा बहादुरोंके लिये यह चौपाइयां नहीं कही गयी हैं। प्रसङ्गपर विचार करनेसे मूर्ख और ब्राह्मणोंका नाम धराने-वालोंसे पक्षपात नहीं मालूम होता।

शङ्का ९—मानसमें वर्णित नवधा भक्ति श्रीमद्भागवतकी नवधा भक्तिसे भिन्न है। इसका क्या कारण है?

समाधान ९—भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें नवधा भक्तिका वर्णन भिन्न है। श्री रामचरितमानसमें श्री रामचन्द्रजीने जिस नवधा भक्तिका वर्णन किया है वह अध्यात्मरामायणके आधारपर गोस्वामीजीने लिखी है। गौण भेद तो अनेक स्थलोंपर ग्रन्थमें लिखे हैं। रामचरितमानस तो कोई अनुवाद ग्रन्थ तो है नहीं।

शङ्का १०—नारदजीने पम्पासरके तटपर श्रीरामचन्द्रजीसे अपने पूर्व मोहका कारण पूछा और श्रीरामचन्द्रजी पहले ही यह प्रसङ्ग नारदजीको समझा चुके हैं और यह भी कह चुके हैं कि

अब न तुमहिं माया नियराई।

तो फिर नारदजीने वही प्रसङ्ग क्यों दुहराया?

समाधान १०—यहां नारदजीने विचारा कि राघवका चित्त इस समय स्वस्थ है।

बैठे परम प्रसन्न कृपाला।
कहत अनुज सन कथा रसाला॥

* * * *

ऐसे प्रभुहिं बिलोकउं जाई ।
पुनि न बनिहिं अस अवसर आई ॥

अतः कुछ सत्सङ्ग करना चाहिये। यही कारण है कि नारदजी पूर्वकथित श्रीरामजीकी भक्तवत्सलता और सन्त-महिमा जानना चाहते हैं। इसीसे उन्होंने वही प्रश्न किये, जिनका उत्तर पहले भी पा चुके थे और श्रीरामचन्द्रजीने भी नारदजी-का भाव जानकर कि इनकी इच्छा सत्सङ्गकी है उसी भावसे प्रेम और वात्सल्यके साथ सारा प्रसङ्ग-वर्णन किया। यहां नारद जीका मतलब मोहादिके कारण पूछना नहीं है, बल्कि सत्सङ्ग करनेकी यह एक रीति है। इसीलिये इस पूर्वकथित प्रसङ्गों-को नारदजीने फिर दुहराकर पूछा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम रहत न प्रभु चित चूक कियेकी राम

राम राम करत सुरति सयबार हियेकी राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

चतुर्थ सोपान—किष्किंधा काण्ड



शङ्का १—'कुंदेंदीवर सुंदरावति बलौ' इस कांडके आरंभमें प्रथम श्लोकमें पहले 'कुंद' फिर 'इन्दीवर' पद दिया है। यहां 'कुंद' पदसे लक्ष्मणजी और 'इन्दीवर' श्याम कमलसे श्रीरामचन्द्रजीका बोध कराया गया है। तो 'कुंद' पद देकर लक्ष्मणजी का पहले बोध क्यों कराया गया?

समाधान १—यहां जो रामके पहले लक्ष्मणका बोध कराकर शिष्टाचार नियमका क्रम भंग किया गया है वह केवल छन्दोभंग होनेके भयसे किया है। यह छंदोभंगकी कठिनाई गद्यमें नहीं है। वहां शिष्टाचार नियम ज्यों का त्यों निवाहा जा सकता है और पाठक्रमसे अर्थक्रम ही बलवान होता है। इस पदका भी अर्थक्रम वही रहेगा जो गद्यक्रमका होना चाहिये। रामके बाद ही लक्ष्मणका बोध कराया जायगा। श्रीरामानुज सम्प्रदायके अनुयायी कहते हैं कि आचार्यरूपसे लक्ष्मणजीका नाम पहलेसे आना ही चाहिये। आगे चलकर सुग्रीवका लक्ष्मणजीकी शरणमें आना दिखाया गया ही है।

शङ्का २—जब हनुमानजी विप्रवेषमें श्रीरामचन्द्रजीके पास उनका भेद लेने गये, उस समय श्रीरामचन्द्रजी तो क्षत्रिय वेषमें थे तो विप्रवेषमें क्षत्रिय वेषको सिर क्यों नवाया?

समाधान २—हनुमानजीको श्रीराघवको देखतेही परेसे परे ईश्वर दृष्टि हो गयी आगे चलकर 'स्वामी' भी कहा है। परन्तु फिर यह पूछा है कि "आप तीन देवमें कौन हैं, विष्णु नारायण हैं अथवा अखिल भुवनपति हैं अर्थात् हैं"। यहांतक जब महावीरजीको संशय सहित थी तो नमस्कार करना तो सर्वथा उचित है।

हनुमानजीका दासभाव तो नित्य ही है इस कारण अज्ञात भावमें भी सिर झुक गया।

इसके सिवा हनुमानजी ब्रह्मचारी हैं और श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यक्ष वानप्रस्थ दशामें हैं। इससे आश्रमकी उच्चता देखकर प्रणाम किया। हनुमानजीका जो कपटरूप था वह श्रीरामके सामने स्थिर न रह सका। सच है सूर्यके आगे अंधकार कैसे टिक सकता है। देखो 'सतीजी' को भी सीताके वेषमें रामके आगे लज्जित ही होना पड़ा है। हनुमानजीको सिर झुकाना ही पड़ा, क्योंकि यह मायावी ब्राह्मण बनकर रामके सम्मुख आये थे, और राम हैं मायापति, भला मायापतिके सामने माया ठहर सकती है !

ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि

'विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ
माथ नाइ पूछत अस भयऊ'

सुग्रीवको माथा नवाकर (कि आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है) गये। अथवा 'माथ नाइ पूछत अस भयऊ' से यह भी ध्वनि निकलती है कि शीलके कारण हनुमानजीने सिर नीचा करके अर्थात् झुकाकर श्रीरामजीसे पूछना आरम्भ किया। अतः मुख्यार्थ और पक्षान्तर दोनोंसे ही सिद्ध है कि हनुमानजीका सिर नवाना अनुचित नहीं है।

शङ्का २—श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानसे भेंट होते ही कह दिया कि 'तैं मम प्रिय लछमन तें दूना' रामने हनुमानको, लक्ष्मणसे दूना क्योंकर माना ?

समाधान २—पहले तो यह लौकिक रीति है कि जब किसी-का किसीसे साक्षात् होता है तब वह उसके आश्वासनके लिये ऐसे वाक्य कहता ही है कि 'आप हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं'।

'दूना' से यह भी ध्वनि निकलती है कि लक्ष्मण और तुम दोनों ही समभाव करके प्यारे हो। दूना=दो नहीं, एक समान हो।

कवित्त रामायणमें गोसाईंजीने कहा है

नीके कै ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ी उर आखर दूकी,

* * * *

ताको भलो अजई तुलसी जिन्हे प्रीति प्रतीति है आखर दूकी,

यहां आखर दूकीसे मतलब, दो अक्षरकी है, इससे स्पष्ट है कि 'दू' के मानी 'दो' भी होते हैं।

अयोध्या काण्डमे भी मंथराकैकेयीके संवादमें

'सुख सुहाग तुम कहं दिन दूना'

इस पदका भी भावार्थ उसी तरह लगाया गया है जिस भांति कि यहाँ "तैं मम प्रिय लछमन तें दूना" का अर्थ लगाया गया है। मंथराके वाक्यसे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि तुम्हारे सुहागके दिन अब 'दो नहीं' हैं अर्थात् आजहीतक सुहाग है और ऐसा ही हुआ है कि वरदान मांगतेही सुहागका अंतही सा हो गया।

"दूना" का अर्थ द्विगुण माननेमें भी कोई बाधा इसलिये नहीं पड़ती कि हनुमानजी पशुयोनिमें होकर ऐसी भगवद्भक्ति और सेवाधर्मका निर्वाह करते हैं, जो मनुष्य-शरीरमें भी दुष्कर है। वह श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मण दोनोंके सेवक हैं और लक्ष्मणजी केवल श्रीरामजीके सेवक हैं। श्रीहनुमानजी सजीवन बूटी लाकर लक्ष्मणजीके भी प्राणदाता होनेवाले हैं। सीताजीकी सुधि लानेवाले हैं। अन्तर्यामी भगवान इस विचारसे "लक्ष्मणते दूना"का पेशगो खिताब बख्श दें, तो क्या बेजा है। "खोजत विप्र फिरहिं हम तेही"में तो विप्रसे इस काममें सहायता पानेका इशारातक मौजूद है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि शेषसे शंकरजी उत्पन्न हुए हैं। लक्ष्मणजी शेषके अवतार हैं और हनुमानजी शंकरके हैं। इस सबंधसे यदि लक्ष्मण पुत्र तो हनुमानजी श्रीरामजीके पौत्र लोकमें पुत्रसे पौत्र प्यारा अधिक समझा जाता है।

शङ्का ४—१ श्री रामचन्द्रजीकी बातोंसे ही हनुमानजीने प्रभुको कैसे पहचान लिया?

समाधान ४—श्रीहनुमानजीका श्रीरघुनाथजीसे पूर्व परिचय अवश्य था। इसके लिये मानसके अतिरिक्त कथाएं प्रमाण हैं। परन्तु पूर्व साक्षात्कार न होनेपर भी रामको वन मिलना, दशरथ-जी जैसे चक्रवर्ती राजाका स्वर्गवास, भरतका रघुवरको मनाने जाना, उनका न लौटना आदि साधारण घटनाएं न थीं। यह देशव्यापी घटनाएं सारे देशमें बिजलीकी तरह फैल गयी होंगी। यह सब घटनाएं हनुमानजीने भी सुन ही रखी होंगी। तिसपर जब श्री रघुनाथजीका साक्षात्कार हुआ और उन्हीं घटनाओंको संक्षेपतः रघुनाथजीके मुखसे सुना और उनमें तेज और पराक्रम भी असाधारण देखा तो हनुमान्‌जी जैसे विद्वान् गुप्त भेदियेको यह पहचान लेना कि यह वही रघुनाथजी हैं क्या कठिन है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक काम जो सामने था, जिसमें हनुमानजी शामिल थे, उसमें श्रीरामजीसे समस्त गुप्त देवसेना-ओंसे परिचय था ही।

शङ्का ५—श्रीरघुनाथजी तथा सुग्रीवने, केवल पावककी ही साक्षी अपने दोनोंके बीच क्यों दी?

समाधान ५—पहले तो जब श्री रघुनाथजी वनको सिधारे हैं उस बीचमें जमुनाजीके तटपर अग्नि तपस्वी* वेषमें श्रीरघु-

---

१ कोसलेस दशरथके जाये, हम पितु बचन मानि बन आये।
नाम राम लछिमन दोउ भाई, संग नारि सुकुमारि सुहाई।
इहां हरी निशिचर बैदेही, बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।

* तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा।
कबि अलखित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी।
*   *   *   *
पुनि सिय राम लखन करजोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबि तनुजा कै करत बड़ाई।

नाथजीसे आकर मिला और राम, लषन, सीताके पैरों पड़ा है। वहांसे ही श्री रघुनाथजीने निषादराजको लौटा दिया है। इस तपस्वीका न तो वापस जाना ही लिखा है, न प्रत्यक्षमें सदेह रघुनाथजीके साथ जाना ही कविने दिखलाया है। केवल इशारा कर दिया है 'कवि अलषित गति वेष विरागी' वास्तवमें देवताओंका यह प्रधान चर अदृश्य रूपसे भगवानके साथ रहा है। भगवानके साथ इसके रहनेमें कई प्रयोजन थे। यात्रामें चार जनोंका साथ मंगलकारी होता है, श्रीजनकनंदिनीकी रक्षा करना तो इसका परमोद्देश्य था। यह राम सुग्रीवके बीच साक्षी, लंका दहनमें हनुमानका सहायक और रावणवधके पश्चात् सीताजीको निर्दोष और पवित्र सिद्ध करनेमें सीताजीका सहायक हुआ। यह सारे कार्य करके सीताको रामको सौंप कर अपने लोकको गया।

"धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहिं समरपी अगिनि सो"

ऐसे हितूकी साक्षी देना असंगत नहीं है।

सुग्रीव तथा श्रीरघुनाथजी दोनोंकी मित्रता केवल वचनों-द्वारा हुई है और वाग्देवता अग्नि है अग्निकी साक्षी देनेका यह भी कारण हो सकता है।

ऐसा भी लोकप्रसिद्ध है कि शुद्धि शपथ और साक्षी सर्वत्र अग्निसे ही हुआ करती है क्योंकि अग्नि सर्वव्यापक है।

'तौ कृसानु सबकी गति जाना।'

अतः अग्निकोको सर्वव्यापक और परम तेजस्वी जान परस्पर साक्षी दी।

*शङ्का ६—श्रीरघुनाथजीने वालि, सुग्रीव दोनों भाइयोंको

---

* एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमते नहिं मारेउ सोऊ।

* * *

मेली कंठ सुमनकै माला। पठवा पुनि बल देइ विसाला।

एक रूप बताया और अपनेमें भ्रम सिद्ध किया और पहचानके लिये कंठहीमें माला मेली कोई दूसरी पहचान नहीं रखी इसका क्या कारण है ?

समाधान ६—अन्तर्यामी होनेपर भी श्रीरघुनाथजी तो नर-लीला कर रहे हैं जिसका प्रमाण अनेक स्थलोंपर मिलता है।

'उहां राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी।

* * * *

उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपालु देखाई।

इसी भावको लेकर रघुनाथजीने दोनों भाइयोंको पहचाननेमें कि इनमें कौन सुग्रीव और कौन वालि है भ्रम बतलाया क्योंकि दोनोंके रंग रूप अवस्था और कद समान ही थे, वाल्मीकि रामायणमें भी ऐसा ही उल्लेख है। स्पष्ट है कि पहचाननेके लिये ही माला पहिनायी।

इस मालाके पहनानेमें एक और भाव है।

भगवानने अपना प्रसाद दे सुग्रीवको समाश्रित कर लिया। उसकी रक्षा इस भावसे भी आवश्यक हुई। उसका वैष्णव सस्कार हो गया। वालिने यह जानकर भी कि यह भगवान् रामचन्द्रजीका आश्रित है उसका वध करना चाहा। यह वैष्णवके प्रति महाअपराध था। श्रीरघुनाथजीने कहा भी है।

'मम भुजबल आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।'

कोई कोई गौण अर्थ ऐसा भी लगाते हैं कि दोनोंको श्रीरघुनाथजीने इसलिये एक रूप बतलाया कि वालि और सुग्रीव दोनोंही एकहीसे क्षणिक ज्ञानी थे। देखिये रघुनाथजीसे मित्रता होनेके बाद सुग्रीव जब इनके बलकी परीक्षा कर चुका तो कहता है कि—

'सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई'

ए सब राम भगतिके बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक,

* * * *

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिले राम तुम समन विषादा।

यहां सुग्रीव बड़ी ही वैराग्यपूर्ण बातें कर रहा है। यहांतक कहता है कि बालिने तो हमारा हित किया है। उसीके कारण आप मुझे मिल सके। रही लड़ाई यह तो संसारी झगड़े हैं। परन्तु आगे चलकर थोड़ी ही देरमें लड़नेके समय वही सुग्रीव रामचन्द्रजीसे कहता है

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होय मोर यह काला।

यह पूर्वापर विरोध क्षणिक ज्ञानी होनेका द्योतक है और भी देखिये आगे चलकर राज्याभिषेक होनेपर तो सुग्रीवका सारा वैराग्य काफूर हो गया, रघुनाथजीको लाचार हो स्वयं कहना पड़ा कि

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी।

जिसे सुग्रीव फिर वैराग्य दिखाते हुए कहता है कि

'नाथ विषम सम मद कछु नाहीं। मुनिमन मोह करै छनमाहीं'

अब बालिकी ओर ध्यान दीजिये कि जब बालिकी स्त्री बालिको श्रीरघुनाथजीका ऐश्वर्य्य वर्णन करके समझाने लगी कि

"सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते दोउ बन्धु तेजबल सींवा।
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।"

तब बालिने कहा कि 'समदरसी रघुनाथ' अर्थात् रघुनाथजी समदर्शी हैं, वह मुझको सुग्रीवको सभीको बराबर समझते हैं। यहां ज्ञानकी बात कही और फिर तुरत ही पूर्वापर विरोधकी बात कह दी कि 'जो कदापि मोहि मारिहैं' अर्थात् यहां फौरन ही संदेह भी हो गया। पहली बातपर दृढ़ नहीं रह सका। इससे सिद्ध है कि यह भी क्षणिक ज्ञानी ही था। अतः दोनोंहीका एक रूप अर्थात् प्रकृति रंगरूप एक हीसे सिद्ध होते हैं इससे 'एक रूप' कहना यों भी सुसंगत है।

शङ्का ७—श्रीरघुनाथजीने पहले यह प्रतिज्ञा करली है कि मैं

वालिको एक ही वाणसे मारूंगा फिर* धनुषपर दूसरा वाण क्यों चढ़ाया ?

समाधान ७—श्रीरघुनाथजी कोई साधु संन्यासी नहीं हैं। वह एक महान राजनैतिक पुरुष हैं। उन्होंने विचारा कि वालि यहांका राजा है यदि वालिके घायल होते ही हम क्रोध शान्त कर लेंगे तो यह वानर जो इसकी प्रजा हैं अज्ञानवश हमें असावधान समझ हमपर टूट न पड़ें और नाहक इनका बध करना पड़े। इस कारण राजनैतिक दृष्टिसे रघुनाथजी अपना राज्य-श्रीयुक्त ऐश्वर्य तथा प्रभाव रखनेके लिये वाणपर धनुष चढ़ाये और लाल नेत्रसे क्रुद्धसे दीखे जिसमें वानर लोग समझते रहे कि अभी रघुनाथजीका क्रोध शान्त नहीं हुआ। जिससे श्रीरघुनाथजीकी ओर ताकनेकी किसीकी हिम्मत न पड़ी। रही वाणकी अमोघता, सो जब रघुनाथजी संकल्प करके वाण चढ़ाते हैं तो वह उस समय तो अमोघ है और जब स्वाभाविक ही रीतिपर चढ़ावे तो उस समय अमोघताका विचार नहीं है, क्योंकि यह तो उनका स्वाभाविक वाना है। गीतावलीमें कहा है

सुभगसरासन सायक जोरे तुलसिदास प्रभु वानन मोचत, इत्यादि।

भगवान रामचन्द्रजी भक्तवत्सल हैं। वह भक्तोंके दुःखके आगे अपनी प्रतिज्ञा भी भूल जाते हैं, छोड़ देते हैं। यहां सुग्रीव तो केवल भक्त नहीं है मित्र भी है। उसने सारी दुःखमय कहानी करुणाजनक शब्दोंमें सुनायी। उसपर भगवान्‌के हृदयसे सहसा उद्गार निकल पड़े कि

'सुनु सुग्रीव हौ मारि हौ वालिहि एकहि वान,
ब्रह्म, रुद्र सरनागत, गए न उबरहि प्रान'।

---

* सुनु सुग्रीव हौं मारि हौ, वालिहि एकहि वान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्रान।
स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुन नयन सर चाप चढ़ाए,

अरण्यकाण्डमें भी जब अस्थि समूह देखकर मालूम किया कि

"निसिचर निकर सकल मुनि खाए"

तो सुनते ही "श्री रघुनाथ नयन जल छाए।"

तुरतही

"निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाय पन कीन्ह"

दुर्वासाके प्रसङ्गमें तो भगवानने शरण्यत्व ब्रह्मण्यत्व आदि सभी त्याग दिये। बेचारे दुर्वासा ऋषिको अन्तमें भगवानके भक्त उसी राजाकी शरण लेनी पड़ी जिसका अपराध किया था। भीष्म प्रतिज्ञामें भी यही बात देखी गयी। यह है भक्त-वत्सलता!

रही अरुण नयनकी बात सो रघुनाथजीने क्रोधका नाट्य करके पहलेहीसे धनुष बाण चढ़ाये हैं यही कारण है कि रोष अबतक नेत्रोंमें भरा हुआ है, इसीसे 'अरुण नयन' है।

इस चौपाईका अर्थ यों भी कर सकते हैं जिससे कोई शङ्का रहही नही जाती। "श्याम गात है, सिरपर जटा सँवारे हैं। अरुण आँखें हैं (मानों) चाप(भृकुटी)पर दृष्टिरूपा)शर चढ़ाये हैं।

शङ्का ८—*श्री रघुनाथजीने बालिके हृदयमें अर्थात् मर्म-स्थानमें शर तानकर मारा परन्तु बालि तुरंत ही नहीं मरा, उठ बैठा। इसका क्या कारण है?

समाधान ८—जब बालिके बाण लगा और वह उसके लगते ही व्याकुल हुआ तो उसे फौरन ही ताराके वचनोंका स्मरण आ गया अर्थात् भगवान् और उनके ऐश्वर्यका स्मरण आ गया और साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि अब बचूंगा नहीं। अतः रामके दर्शन और उनसे बातचीत करने

---

*बहु छल बल सुग्रीवकरि, हिय हारा भय मानि
मारा बाली राम तब, हृदय माझ सर तानि।
पग विकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।

तथा अङ्गदादिको उन्हें सौंपनेकी उत्कट अभिलाषा बालिके हृदयमें उस समय हुई। प्रेम और अभिलाषाका संयोग क्यों न पूरा होता क्योंकि कहा है कि

जो इच्छा करिहहु मन माहीं, प्रभु प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।

स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुन नयन सर चाप चढ़ाए।

अतः बालि उठ कर बैठ गया। देखा तो भगवान आगे खड़े हैं।

पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा, सुफल जनमु माना प्रभु चीन्हा।

आगे बहुत वादविवाद वर्णन किया गया है, सो वह तो रौद्ररस वर्णनका है जो युद्धप्रसंगके अनुकूल है। परन्तु बालिका क्रोध ऊपरी है।

हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा, बोला चितइ रामकी ओरा।

हृदयकी प्रीतिने ही वास्तवमें बालिको बैठा दिया। यदि बाण लगते ही फौरन बालिके प्राण निकल जाते तो जो जो मनोरथ उसके हृदयमें थे वे ज्योंके त्यों रह जाते और मोक्ष न मिलती। परन्तु रामको तो उसे मुक्ति देनी थी क्योंकि बालिके कथनानुसार

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अत राम कहि आवत नाहीं।

* * * *

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।

यह भाव तो बालिके हृदयमें पहले ही बाण लगते ही आ गया होगा। भला ऐसे मनोरथ रखता हुआ अर्थात् मरते समय सच्चा भक्त होते हुए भी मोक्ष न पाता तो भगवानकी भक्तवत्सलतामें ही बट्टा लग जाता। अतएव बालिका उठ बैठना आवश्यक था। सङ्कल्प पूरे हो गये कोई बात दिलकी दिलहीमें रह नहीं गयी इसलिये पुनर्जन्मका झगड़ा छूट गया। मोक्षका भागी हो गया। प्राणतो उसी बाणसे गये हैं। अतः एकही बाणवाली प्रतिज्ञा भी पूरी हुई।

शङ्का ९—*श्रीरघुनन्दनने वालिके पुत्र अङ्गदके मौजूद रहते हुए वालिकी अन्त्येष्टिक्रिया सुग्रीवसे क्यों करायी ?

समाधान ९—(१) अंगद बालक है यदि वह अन्त्येष्टि-क्रिया करेगा तो उसे पितामरणका अधिक दुःख होगा। इस-लिये सुग्रीवसे अन्तक्रिया करायी।

(२) लोक-व्यवहारमें भी यह दिखानेके लिये कि वैर जीवन-तक रहता है मरणपर नहीं रहता। अब वालि मर गया है सुग्रीवको उससे अब शत्रुता नहीं रही। इसलिये सुग्रीवसे अन्त्येष्टि क्रिया करायी।

(३) सुग्रीव वैष्णव हैं अतः वैष्णवके हाथ दाह कर्मादि करानेसे हरिधाम जाना भी सिद्ध है।

(४) रघुनाथजीको सुग्रीवको राजा बनाना मंजूर था और यह राजपरंपरा है कि जो राजाकी दाह क्रिया आदि करता है वही राज्याधिकारी होता है। अतः इस नियमानुसार सुग्रीव वालिका पुत्र था, इसलिये सुग्रीवसे दाहकर्मादि कराये। वैसे लौकिक व्यवहारमें भी ज्येष्ठ भ्राता पितातुल्य कहा गया है।

शङ्का १०—श्रीरघुनाथजीने कहा कि—

'जेहि सायक मारा मैं बाली।

तेहि सर हतउँ मूढ कहँ काली'।

तो शरणागत पालन और सत्य प्रतिज्ञा कहां रही। प्रतिज्ञा-की कि कलही मारूंगा और फिर मारा नहीं ?

समाधान १०—यहां श्रीरघुनाथजीका क्रोध करना भय दिखानेके लिये है।

'साम दाम अरु दण्ड विभेदा, नृप उरबसहिं चारि कह वेदा।

वास्तवमें मारनेकी प्रतिज्ञा नहीं है। श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार क्रोध करनेसे लक्ष्मणजीको भी बहुत क्रोध हुआ। यह

* तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा।

समझकर कि लक्ष्मणको सचमुच क्रोध आगया है रघुनाथजीने उन्हें समझा दिया कि

'भय देखाय लैआवहु, तात सखा सुग्रीव'

रही प्रतिज्ञाकी बात। सो रामचन्द्रजीने 'कालि' मारनेको कहा है परन्तु लक्ष्मणजी आज ही सुग्रीवको रघुनाथजीकी शरणमें लेआये। प्रतिज्ञा पालनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ने पायी।

शङ्का ११—तीन दिशाओंमें तो छोटे छोटे सामान्य वानर ही समुद्रके पारतक गये। पर दक्षिण दिशामें सब सुभट ही गये और समुद्रके किनारे पहुँचकर सबने अपने अपने बलका वर्णन किया पर पार जानेमें सबने सन्देह जताया और अङ्गदने केवल लौटनेमें असमर्थता प्रकट की तिसपर भी जाम्बवन्तने उन्हें जानेसे रोका। इन बातोंके क्या कारण हैं?

समाधान ११—जब सब वानर चलने लगे तब सबसे पीछे हनुमानजीको रघुनाथजीने बुलाकर

'परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी'

और कहा—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह बेगि तुम्ह आएहु,

अर्थात् रघुनाथजीने सारा वृत्त हनुमानजीको समझा बुझाकर मुद्रिका देकर विदा किया। यह सब व्यवहार सब वानर देखते रहे इसीलिये बड़े बड़े योद्धाओंने भी अपने अपने बलको असमर्थताके मिस छिपाया और जाम्बवन्तने इसी कारण अगदको रोका और हनुमानजीको उत्साहित कर

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुपसाधि रहेहु बलवाना

* * * *

राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा

क्योंकि सब जानते थे कि रघुनाथजीकी आज्ञा और मुद्रिका

तो हनुमानजीपर है। हम लोगोंको अधिकार नहीं है यदि और वानर, रीछ अपना सामर्थ्य और बल वर्णन करते तो स्वामीकी आज्ञाका विरोध होता।

अंगदके लिये कहा जाता है कि उसको गुरुका शाप था कि अक्षयकुमारके एक घूंसेसे मर जायगा इसीलिये "जिय संसउ कछु फिरती बारा" था। इसे हनुमानजीने पहली यात्रामें ही मार डाला।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम

जौं परिहरहिं मलिनमन मानी।
जौं सनमानहिं सेवक जानी॥
मोरे सरन राम कइ पन ही।
राम सुस्वामि दोष सब जनही॥

राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

पञ्चम सोपान—सुन्दरकाण्ड

*शङ्का १—श्रीहनुमानजी तो संपातीसे पहले ही सुन चुके थे कि श्रीजानकीजी अशोकवाटिकामें हैं तो फिर रावणके महलोंमे प्रवेश क्यों किया, सीधे अशोकवाटिकामें ही क्यों न गये ?

समाधान १—यद्यपि श्रीमहावीरजी यह सब सुन चुके थे कि सीताजी अशोकवाटिकामें हैं परन्तु नैतिक पुरुष केवल सुननेपर ही अमल नहीं करने लगते, कुछ स्वयं भी सोचा विचारा करते हैं। यह भी निश्चय न था कि अशोकवाटिका कौन है, किधर है। अतः किसी सज्जनकी सहायता आवश्यक प्रतीत हुई। आगे चलकर विभीषण जी मिले और उन्होंने सीताजीका ठीक ठीक पता और उनसे मिलनेके तथा दूसरे कार्य करनेके सारे उपाय बतला दिये। रही नगर-प्रवेशकी बात, सो उसमें प्रवेश करना तो अत्यावश्यक था क्योंकि सीताजीका पता लगा लेना ही अभीष्ट न था बल्कि शत्रुका पूरा पूरा हर तरहका भेद भी लेना अभीष्ट था। उससे भविष्यमें चलकर लड़ना भी है और तिसपर भी अशोकवाटिका लङ्काके अंतर्गत ही थी कुछ बाहर तो थी नहीं, लंकिनीने स्वयं हनुमानजीसे कहा 'प्रविसि नगर कीजे सब काजा' इस वाक्यसे भी यही ध्वनि निकलती है कि दूतको शत्रुके विषयमें जितनी बातें जाननी चाहिये उन सबका पता लगाना परमावश्यक था।

यद्यपि संपातीने बतला दिया था कि सीता जी अशोक

---

* गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका।
तहँ असोक उपवन इक अहई। सीता बैठि सोचरत रहई।

वाटिकामें हैं तथापि विचारणीय है कि जो व्यक्ति शत्रु के हाथमें पड़ा हुआ है उसे अपने काबूमें लानेके लिये शत्रु क्षण क्षणमें अपने नियम, उपाय आदि बदल सकता है। इस बातको ध्यानमें रखकर कि संभव है सीताजी घोर विपत्तिमें हों और वह घोर विपत्ति उनके लिये एकान्तवाससे हटाकर अंतःपुरमे लाना ही हो सकती थी, हनुमानजी जैसे महाचतुर दूताचार्य्यके लिये यह आवश्यक ही था कि वह पहले अंतःपुरको देखे कि कदाचित् यहां श्रीजानकीजी घोर विपत्तिमें हो तो उन्हें विपत्तिसे मुक्त करावें। साथ ही रावणको तथा उसके रनिवास आदि गुप्तसे गुप्त स्थानको देखना भी आवश्यक था। तात्पर्य्य यह कि चतुर दूतको तो सभी कुछ देखनाभालना चाहिये। राजनैतिक कार्य बड़े सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचारोंके अंतर्गत रहते हैं। देखिये यद्यपि जटायुने भगवान रामचन्द्रजीसे सीताहरण रावणद्वारा बतलाकर यह भी बतला दिया था कि वह दक्षिण दिशामे लेगया है, तो भी, सब जानते हुए भी, श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीकी खोजमें चारों दिशाओंमें बानर रीछ भेजे। कहा भी है—

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुर ताता।

हम ऊपर भी कह आये हैं कि हनुमानजीको किसी सज्जनसे लंकाका सारा भेद जानना और परामर्श करना और अपनेमें मिलानेका प्रयत्न करना भी अभीष्ट था। अतः आवश्यक था कि सारी लंकाको छान मारें और गुप्त रीतिसे किसी राम-भक्तका पता लगा लें। ऐसा ही हुआ कि रातोंरात देखते-भालते विभीषणका महल मालूम कर ही लिया। उनसे अनेक प्रेमयुक्त परस्पर बातें हुईं अतमें परामर्श भी हुआ।

सुनि सब कथा विभीषन कही। जेहि विधि जनकसुता तहं रही।
जुगुति विभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत विदा कराई।

हनुमानजीने विभीषणसे मिलनेके बाद जितने चरित्र किये

हैं निस्सदेह सवपर विभीषण और हनुमानजीने परस्पर परामर्श कर लिया होगा। अतः हनुमान जीका सीधे अशोकवाटिकामें न जाकर नगर-प्रवेश करना परमावश्यक था।

* शङ्का २—त्रिजटाका सब स्वप्न सत्य हुआ केवल एक अंश रावणकी मृत्यु, सत्य नहीं हुआ इसका क्या कारण है?

समाधान—स्वाभाविक स्वप्न कुछ क्रमबद्ध भी नहीं होते और यह भी आवश्यक नहीं कि सभी अश पूरे हो जायँ। तिसपर भी स्वप्नमें केवल रावणकी मृत्यु ही वर्णन नहीं की है आगे विभीषणको लंकाका राज मिलना और सीताका रामके पास पहुँच जाना भी बताया है। यह सारी बातें एक साथ पूरी नहीं हुईं। त्रिजटाने तो स्पष्ट कह दिया है कि स्वप्नके सारे ही अंश चार दिन बीतनेपर सत्य होंगे। यहा चार दिनसे तात्पर्य एकसे लेकर चार दिनतक नहीं है; बल्कि यह लोकोक्ति है जिसका मतलब 'थोड़े दिन बीतने' से है। सो कुछ ही दिन पीछे धीरे धीरे सारी ही बातें ठीक हो गयीं। अगर यह कहा जाय कि 'दिन चारी' से मतलब 'बानर' से है कि जब बागसे बानर चला जायगा तब यह सपना सिद्ध होगा तो यह तो नहीं कहा कि कहां चला जायगा। चले जानेसे मतलब लौट जानेका भी हो सकता है। सो बागसे चलते चलाते सेना-वध और लंका दहन तो हुआ ही है और रघुनाथजीके पास पहुंचनेके बादसे युद्धारंभ ही हो गया है जिसमें रावणकी मृत्यु, विभीषणको राज्याभिषेक और सीताका रामसे मिलना हुआ ही है सपना प्रायः सत्य ही हुआ।

---

* सपने बानर लका जारी। जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ नगन दससीसा। मुडित सिर खडित भुज बीसा।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लका मनहु बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।
यह सपना मैं कहउ बिचारी। होइहि सत्य गये दिन चारी।

शङ्का ३—सुग्रीवको तो वालिके वधेपर राज्य दिया और विभीषणको रावणके जीते ही राजतिलक कैसे कर दिया?

समाधान ३—सुग्रीव माधुर्य्यउपासक और विभीषण ऐश्वर्य्य-उपासक था। जिसका प्रमाण यह है कि जब वालि-वधकी प्रतिज्ञा श्रीरघुनाथजीने की तो सुग्रीवको सहसा विश्वास नहीं हुआ। जब दुंदभि अस्थि और सप्तताल द्वारा परीक्षा कर ली तब भली भांति विश्वास हुआ। तिसपर भी रामने वालिके मारनेकी प्रतिज्ञा की थी न कि सारे वंशके मारनेकी प्रतिज्ञा की थी। रघुनाथजीको सुग्रीव द्वारा यह भी ज्ञात हो हो गया होगा कि वालिके अंगद नामका पुत्र है और सुग्रीवके भी दधिवल था ही। सुग्रीवने मित्रता होने और बल परीक्षाके बाद ऐसा भी कहा है:—

'सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहहुँ सेवकाई

*   *   *   *

अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजन करहुँ दिनराती।

और सुग्रीवको तो केवल वालिका भय था उसके डरसे ऋष्यमूक छोड़ कहीं जा नहीं सकता था। अतः मित्रका दुःख दूर करना ही अभीष्ट था। वालिसे कोई अपनी तो शत्रुता न थी। जब वालिने भक्ति और प्रेमसने वाक्य रामसे कहे हैं और रामने समझा कि अब यह सुग्रीवको न सतायेगा तो यहांतक कह दिया कि 'अचल करहुं तनु राखहु प्राना' अतः यहां तो रामका विचार यही था कि वालि हमारे मित्र सुग्रीवको बहुत दुःख दे रहा है उसे बिना मारे मित्रका दुःख दूर नहीं किया जा सकता। रहा राज्याभिषेक वह पीछे जैसा समय और मौका होगा किया जायगा। इसी कारण पहले राज्याभिषेक नहीं

जो ऐश्वर्य उपासक था उसने घर बैठे ही रावणको

यह समझाया था कि हे तात ! राम मनुष्य और राजा नहीं हैं पर भुवनेश्वर और कालके भी काल हैं।" और यहां तो रावणका सारा वंश ही नाश करना है ऐसा कोई भी राक्षस रखना नहीं है जो देव, मुनि द्विज तथा अपना द्रोही हो, सो विभीषणके सिवा और कोई राक्षस ऐसा न था जो रावणका साथी न हो। अतः यहां तो सबको मारना अभीष्ट ही था। तब लंकाका राजा कौन होगा। निश्चय है कि विभीषण ही लंकाके राजा होंगे क्योंकि रावणादि राक्षसोंको मार सीताको पाना ही रामका अभीष्ट था। श्रीरामचन्द्र जी स्वयं लंकाका राज्य करना चाहते न थे।

दूसरे यह एक राजनैतिक चाल भी थी कि विभीषणको पहले ही राज्याभिषेक कर दिया जायगा तो विभीषण हमारा पक्का मददगार बन जायगा। रावण जब सुनेगा तो उसके दिलमें धक्का लगेगा और यह निश्चय होगा कि हम निश्चय मारे जायँगे क्योंकि श्रीरघुनाथजी तो हमें मरा मान चुके हैं। अतः श्रीरामके पराक्रमका दबदबा सारे राक्षस-समूह तथा रावणके दिलपर बिठानेके लिये रामने पहले ही राज्याभिषेक कर दिया। यहां श्रीरघुनन्दनको विभीषणादिकी पहले ही शंका मिटा देना है कि जिस राज-वैभवका रावणको इतना अभिमान है, वह मैं तृणवत् समझता हूं अर्थात् उसको मारकर उसकी राज्यश्री लेनेका विचार मेरा नहीं है।

क्या अजब है कि विभीषण और हनुमानजीमें जब परामर्श हुआ होगा तो विभीषणकी बातोंपर गौर करके हनुमानजीने रामसे सारा वृत्त कह दिया हो कि विभीषण भी अवसर पाकर आपसे आ मिलेगा और यहां रामने अपने मंत्रियोंमें पहले ही निश्चय कर लिया हो कि विभीषणको आते ही राज्याभिषेक कर दिया जाय ताकि वह हरतरहसे हमारी सहायता करे।

इसमें यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि सीताजीको भी धैर्य बंधाना है। श्रीसीताको यह दृढ़ विश्वास है कि रामजी

सत्य तथा दृढ़प्रतिज्ञ हैं अतः विभीषणको आते ही, रावणकी मृत्युके पहले ही राज्याभिषेक कर दिया कि सीताजीको निश्चय हो जाय कि रावण मारा जायगा।

शंका ४—रावणादि पैदा तो महामुनि पुलस्त्यके वंशमें हुए हैं जैसा कहा है कि 'उपजे जदपि पुलस्त्यकुल' परन्तु विभीषण रघुनाथजीको अपना परिचय देते हुए कहते हैं 'निसिचर बंस जन्म सुरत्राता' तो यह निश्चर वंशके किस प्रकार हुए ?

समाधान ४—रावणादिका जन्म तो जरूर पुलस्त-वंशमें हुआ है परन्तु संस्कार मातृ-वंशमें हुआ। और माता इनकी राक्षसकी कन्या थी और जबसे पैदा हुए तबसे मातृवर्गमें ही रहे। वहीं लालन पालन हुआ। इससे मातृसंबंध बलवान रहा। संसारमें वंशके साथही साथ कर्म प्रधान है ही। इस: कारण विभीषणने अपनेको निश्चरवंश कहा। देखिये किसी ब्राह्मणवीर्यसे वेश्याके पुत्र उत्पन्न हो तो वह वेश्या कर्मके प्रधानत्वके कारण वेश्यापुत्रही कहलायेगा।

गौण रूपसे ऐसा भी कहा जा सकता है कि शरणागतके जहां और लक्षण हैं वहां एक लक्षण दीनता भी है अतः अपनेको तुच्छ दर्शानेके लिये ऐसा कहा।

शंका ५—समुद्रने हनुमानजीकी तो रामदूत जानकर मैनाकद्वारा शुश्रूषा की परन्तु स्वयं रघुनाथजीकी यात्रामें तीन दिन बीत जानेपर भी न स्वयं न किसीके द्वारा शुश्रूषा की और न आया। इसका क्या कारण है ?

इसका मुख्य कारण तो यह है कि समुद्र हनुमानजीका तो पराक्रम देख चुका था तो रामदूत समझ अहसान जताने या रामके प्रति अपनी भक्ति दिखानेके अभिप्रायसे हनुमान जीकी शुश्रूषा मैनाकद्वारा करायी। परन्तु रामने निश्चय किया कि

"...करिय सागर सन जाई" इस माधुर्य्यमय वचनोंसे समु-द्रको [illegible]जीकी ईश्वरतामें भ्रम हो गया परन्तु जब

'संधानेउ प्रभु बिसिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।
मकर उरग झषगन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने'।

तब श्रीरघुनाथ जीका ऐश्वर्य देख समुद्र

'कनक थार भरि मनिगन नाना। विप्ररूप आये तजिमाना'

नीतिपक्षको लेकर ऐसा भी कहा जा सकता है कि, समुद्र-ने विचारा कि मेरे दोनो तहोंमें दो शत्रु हैं। दक्षिणमें तो रावण है सो उसे मारना तो श्रीरघुनाथजीने ठहरा ही लिया है। अब उत्तर तटवासी अघरासी साठ हजार आभीर हैं उनके बधका उपाय विचारके समुद्र चुप हो रहा कि जब रघुनाथजी क्रोध करेंगे तो बाण चढ़ावेंगे। उनका बाण अमोघ है, रोदेपर चढ़कर उतर नहीं सकता, उस समय छोडनेके पहले ही मैं उनकी शरणमें जाऊंगा और बाण छोडनेके लिये यह प्रार्थना कर लूंगा कि

'एहि सर मम उत्तर तटवासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी।'

ठीक उसकी यह चाल चल भी गयी। ज्योंही श्रीरघुनाथजीने बाण संधाना अर्थात् चढ़ाया कि समुद्र शरणमें आया, सारे उपाय और अपना दुःख कह सुनाया। उस बाणसे उत्तर तटवासी अघरासी दुष्टोंका नाश कराके अपना रास्ता लिया।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

जपेउ पवनसुत पावन नामू
अपने बस करि राखेउ रामू

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

षष्ठ सोपान—लंकाकांड

*शंका १—श्रीरघुनाथजीने यह कहा है कि 'परम रम्य यह उत्तम भूमि है, इसकी महिमा अमित है, यहां शंभु स्थापना करूंगा" इसका क्या कारण है, क्या इससे उत्तम भूमि कहीं और न थी?

समाधान १—यह लोक-प्रसिद्ध बात है कि सब नदियां पवित्र और उनका तट परम रम्य माना जाता है इस विचारसे भारतवर्षमें भौगौलिक दृष्टिसे देखिये तो जितने पवित्र और बड़े बड़े तीर्थस्थान हैं वह सब नदियोंके ही किनारे हैं जैसे मथुरा, प्रयाग, काशी आदि। तिसपर समुद्र सब नदियोंका पति है क्योंकि सभी नदियां उसके अन्तर्गत हैं। इसलिये समुद्र अति पावन तीर्थ है और उसका तट परमरम्य है। जलतट और पवित्र स्थलमें देवस्थान होना अत्युत्तम है इस विचारसे श्रीरघुनाथजीने कहा कि यह स्थान पवित्र और परम रम्य है, यहां शम्भु स्थापना करूंगा।

यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि यह स्थान भारत जैसे विशाल देशकी दक्खिनी सीमा है। यहां अवश्य ही कोई न कोई पवित्र तीर्थस्थान होना ही चाहिये क्योंकि इसमें दो लाभ हैं एक तो यह कि दक्षिणमें शिवकांची और विष्णुकांची दोनों तीर्थोंकी सीमा मिलती है। शैवों और वैष्णवोंमें परस्पर विरोध रहता है। यदि यहां दोनों तीर्थोंके अलग अलग होते वैष्णवद्वारा

* परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी
करिहहु इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना

शिवकी स्थापना की जायगी तो परस्परका विरोध कम होगा। दूसरे जो यहांतक तीर्थयात्रा करेंगे वह देशाटनके लाभ उठायंगे और परस्परका मेल मिलाप बढ़ेगा। बड़े लोग इसी दृष्टिसे तीर्थ स्थापित करते हैं।

शंका २—अंगदजीने रावणसे कहा कि " फिरहिं राम सीता मैं हारी " सीताजीके हार जानेका अंगदको क्या अधिकार था ?

समाधान २—जब रावणने रघुनाथजीकी निन्दा की तो वह अंगदजीको सहन न हुई। अतः उन्होंने मारे क्रोधके दोनों भुजदण्डोंको जमीनपर दे पटका, जिसके मारे सारी सभा हिल गयी। यहांतक कि रावणके मुकुट भी गिर गये। इस तरह श्रीरघुनाथजीकी प्रभुता अंगदने रावणको दिखलायी कि मुझ जैसे उनके सामान्य दूत भी ऐसा पराक्रम रखते हैं। इसीसे हमारे स्वामीके बल पराक्रमका अंदाज लगा ले। पर अंगदजीको उस समय इतना क्रोध आ गया कि इतनेपर भी शान्ति न हुई और यह उपर्युक्त अवसर भी पराक्रम दिखलानेका मिल गया। अतः अङ्गदजीने विचारा कि यह बड़ा ऐश्वर्यवान है इससे क्या बाजी लगाकर अपने बल-पराक्रमका अन्दाजा करावें तो यह ठीक ही समझा कि सारा विवाद और झगड़ा तो सीताजीके ही कारण है। बस इन्हींका बाजी लगा दें। क्योंकि अङ्गदजीको अनेक अलौकिक आंखोंदेखी घटनाओंके कारण रघुनाथजीके प्रतापका पूरा भरोसा था ही, कि उनके भक्तों और सेवकोंके प्रण कभी झूठे हो ही नहीं सकते और रामचन्द्रजीने यह कहकर कि "बहुत बुझाय तुमहिं का कहऊं। परम चतुर मैं जानत अहहूं" यह अधिकार दे ही दिया था कि—

काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई।

अङ्गदजीको श्रीरघुनाथजीके प्रतापका पूरा भरोसा था।

परन्तु स्वयं भी कम बलवान न थे क्योंकि आखिर वालिके ही पुत्र थे। नियमानुसार पितासे पुत्र बलवान होना ही चाहिये। जिस बालिसे रावण पराजित हो चुका था उसीका पुत्र अङ्गद उसी पराजित रावणसे क्यों डरने लगा। अतः अङ्गदने खूब सोच-विचारकर यह बाज़ी लगायी थी कि यदि किसी राक्षसने भी मेरा पैर हटा दिया तो मैं सीताजीको हार जाऊंगा। अन-होनी बातकी बाजी लगाकर सम्पूर्ण राक्षसोंका बल मंथन करनेकी यह युक्ति अंगदजी जैसे राजदूतके लिये उपयुक्त ही थी। इस प्रकार रामप्रतापका सिक्का सारे राक्षसों तथा रावणके ऊपर भली भांति बिठानेका अवसर अंगदजीके हाथ लग गया।

रही अधिकारकी बात सो ऊपर कहा जा चुका है कि राम चन्द्रजीने अधिकार दे ही दिया था, तथा अंगदजीको अपने पराक्रमपर, श्रीरघुनाथजीकी अलौकिक महिमापर तथा अपने ऊपर प्रगाढ़ विश्वास था। कहा भी है—

'तेहि समाज किये कठिन पन, जेहि तौलेउ कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं, की सेवक बिस्वास॥

और वैसे भी राजा महाराजाओं तथा महाजनोंकी हार जीतका अधिकार गुमाश्तों और राजदूतोंको होता भी है। अतः अंगदजीको ऐसी प्रतिज्ञा करनेका अधिकार सर्वथा न्याय-संगत था।

शंका ३—जब लक्ष्मणजीको पहली शक्ति लगी तब रघु-नाथजीने बहुत विलाप किया और बड़े उपायोंसे उनकी प्राण-रक्षा कर सके। और फिर जब दूसरी शक्ति लक्ष्मणजीके लगी तो उसका निवारण रघुनाथजीने वचनों द्वाराही कर दिया इसका क्या कारण है? तथा हनुमानजी तो रामकाजके लिये संजीवनी लेने गये, परन्तु उनको रास्तेमें अनेक दुष्टोंका सामना करना पड़ा और भ्रम भी हुआ इसका कारण क्या है?

समाधान ३—गोस्वामीजाने रामचरितमानसमें दो प्रकारसे रामचरित दिखाया है। एक तो नरत्वमें और दूसरे ईश्वरत्वमें। इसमे प्रथम प्रकरण अर्थात् पहली वारको शक्तिका लगना तो नरत्वमें नरलीला करके दिखाया है जिसका समाधान उसी प्रकरणमें गोस्वामीजीने कर भी दिया है।

उमा एक अखण्ड रघुराई। नरगति भगत कृपालु देखाई।

रही दूसरो शक्ति लगनेकी बात, सो उसमें रघुनाथजीने अपने ईश्वरत्वको दिखाया।

ऐसा भी कहा जा सकता है कि भगवान शरणागत-पालक हैं, प्रथम शक्ति प्रकरणमें लक्ष्मणजीसे कुछ भक्तिभावमें कमी रही। उनको अपने बल और ऐश्वर्यका अहंकार आ गया जिसकी ध्वनि उनकी इस कार्यशैलीसे निकलती है।

'आयसु मांगि राम पहँ, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ।

कहा तो स्वामीके पाससे जाना और प्रणाम भी न करना, क्या यह प्रत्यक्ष अहंकार नहीं है? अपने धनुष बाण और पराक्रमके अहंकारने लक्ष्मणजीको पीड़ा पहुचायी और सफलता हाथ न लगी। परन्तु दूसरी शक्तिके प्रकरणमें जो सेवकका भाव स्वामीके प्रति होना चाहिये उसका श्रद्धा भक्ति समेत लक्ष्मणजीने भलीभांति पालन किया।

'निजदल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले सरोष तब नाइ रामपद माथ।

यहां बात हो दूसरी है यहां रामचरणोंमें सिर नवाकर स्वामीके बलपर लड़नेके लिये चले। फल तत्काल ही उत्तम मिला। दुःख भी नाश हुआ और शक्तिके प्रभावके हरते ही पुनः रावणसे जा युद्धकर उसे व्याकुल और मूर्छितकर दिया

और पुनः भगवानके चरणोंमें आ सिर नवाया। यहां तो भक्ति-पक्ष प्रबल था फिर क्योंकर भक्त लक्ष्मणजीका अमंगल हो सकता था।

जो बात लक्ष्मणजीके विषयमें वर्णन की गयी ठीक वही हनुमानजीके विषयमें भी घटती है। अर्थात् हनुमानजीको भी अपने बलका गर्व हुआ और कुछ स्वामीसेवकके सम्बन्धमें जो भक्ति-भाव होना चाहिये उसमें भी कमी हुई—

'चला प्रभंजनसुत बल भाखी'

इसमें बलका दर्प झलकता है। सेवकमें तो दैन्यभाव चाहिये चाहे वह कितना ही पराक्रमी क्यों न हो। यहां अपना बल भाषना और साथ ही प्रणाम भी न करना यह दोनों ही गलतियां हनुमानजीसे हुईं, इसीका परिणामस्वरूप दुःख और भ्रमादिक विपदाओंका सामना हनुमानजीको करना पड़ा। और अभिमान करनेका तो स्पष्ट प्रमाण है कि जब भरतजीने रामचन्द्रजीकी विपद्का हाल सुना तो हनुमानजीको शीघ्र पहुंचानेका प्रयत्नस्वरूप उन्हें अपने बाणद्वारा भेजनेको कहा। इसपर हनुमानजीको अभिमान हुआ।

'सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना।'

इससे सिद्ध है कि यहां हनुमानजीके हृदयमे अहंकार-पक्ष सबल होनेके कारण भक्ति-पक्ष निर्बल पड़ गया था। अतः उनको जो विपदाओंका सामना करना पड़ा सो अनुचित नहीं हुआ। भगवान् रघुनाथजी अपने भक्तोंमें गर्वांकुर उगने नहीं देते।

शंका ४—* 'कालनेमिने तो मायामय सर बनाया था वहां मकरी कहांसे आ गयी?

समाधान ४—इसने मार्गमें माया रची। अर्थात् आप एक मुनि बनकर बैठा। किसी उपयुक्त स्थानपर जहां बाग तालाब और मन्दिर था वहीं अपना आसन सजाया। सर मन्दिर पह-

लेखे मौजूद देखा। उसे केवल "वर बाग बनाना" सुन्दर बाग सजाना था। उसने सजाया। तालाब झूठा न था और न उसकी मकरी।

शंका ५—श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेके बाद मूर्च्छित होनेपर उनको सम्बोधन कर अपना "सहोदर भ्राता" निज जननीके एक कुमार, तथा 'सौंपेहु मोहि तुमहिं गहि पानी, कहा है इसमें सत्यता कहांतक है ?

समाधान ५,—इस प्रकरणको ग्रंथकार गोसाईंजीने मनुज अनुहारी, और 'प्रलाप' दशामें सिद्ध किया है।

'उहा राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी।

*   *   *   *

'प्रभु प्रलाप सुनि कान, विकल भये वानर निकर,

रही प्रलाप दशाकी बात कि प्रलापका क्या लक्षण है सो उसका लक्षण इस प्रकार है—

'प्रलापोऽनर्थकं वचः, (अमरकोष)

'बिनु समुझे कछु बकि उठै, कहिये ताहि प्रलाप।
देह घटै मनमें बढ़ै, विरह व्याधि सताप।

(भाषा भूषण)

अर्थात् निरर्थक वचन कहनेको प्रलाप कहते हैं जिसमें कहना चाहैं कुछ और कहने लगें कुछ।

इससे सिद्ध है कि यहां रघुनाथजीने जो कुछ कहा है नरत्व और प्रलाप दशामें कहा है। इसलिये पाठकोंको विषयकी सच्चाई-पर ध्यान नहीं देना चाहिये बल्कि रघुनाथजीकी नरलीला और काव्यके रसांगपर ध्यान देना चाहिये। फिर किसी प्रकारकी शंकाकी गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

अब ज्योंका त्यों शब्दार्थ लेकर इस प्रकार भी समाधान हो

सकता है कि पहले तो अग्निसे चरु मिला जिससे सब भाइयोंकी उत्पत्ति है, अतः इस नाते परस्पर सहोदर हैं।

दूसरे शेषोपनिषद्के प्रमाणसे यथार्थमें सहोदर हैं क्योंकि लक्ष्मणजी उसी प्रकार प्रथम श्रीकौशल्याजीके गर्भमें थे। पीछे जन्मकालमे सुमित्राजीके गर्भमें आये, जिस प्रकार कृष्णावतारमें शेषावतार बलरामजी पहले देवकीजीके उदरमें थे पीछेसे आकर्षणद्वारा रोहिणीजीके गर्भमें आये।

तीसरे ऐसा भी कह सकते हैं कि रघुनाथजीने यह कहा कि 'हे तात! तुम यही विचारकर कि जैसे हमको तुम प्रिय भ्राता मिले हो वैसे इस संसारमें सहोदर भी नहीं मिलते।

ऐसा भी कहा जा सकता है कि रघुनाथजीकी माताओंमें अभेद बुद्धि है अर्थात् उनमें अपने परायेपनका विचार नहीं है इसी भावको लेकर श्रीरघुनाथजीने सहोदर शब्दका प्रयोग किया।

निज जननीके एक कुमारा'

लक्ष्मणजीको रघुनाथजीने कहा और सुमित्राजीके दो पुत्र लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नजी हैं। सो एक शब्दके आठ अर्थ हैं, यहां प्रधान अर्थ लेना ही मुख्य है।

' एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते।' (दिनकरी)

' सौंपेहु मोहिं तुमहि गहि पानी '

इसके लिये प्रलापके सिवा और कोई समाधान नहीं है।*

कुछ लोगोंका मत है कि यहां पाणि-ग्रहणकी चर्चाके साथ इशारा उर्म्मिलाजी और सीताजीकी ओर करके कहते हैं कि "उतरु ताहि" अर्थात् जनकजीको या उर्म्मिलाजीको क्या उत्तर देंगे। यह व्याख्या संगत हैं अवश्य परन्तु पूर्व पदोंसे सम्बन्ध नहीं हैं।

* अस कहि चला रचेसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥

शङ्का ६—* श्रीरघुनाथजीकी शरणागत होकर भी विभीषण क्यों कुम्भकरणके पैरों जाके पड़ा ?

समाधान ६—जिस समय रावणने भरी सभामें विभीषणके लात मार उसका घोर अपमान किया उस समय विभीषण महा दुःखी होकर सभासे उठ सीधा श्रीरघुनाथजीके पास चला परन्तु फिर लोकनिन्दाके भयसे सोच-समझकर मातासे विदा मांग, कुबेर तथा शंकरजीसे परामर्श लेकर तब श्री रघुनाथजीके पास आया, परन्तु कुसमयमें भाईको त्यागनेका दुःख इसके हृदयसे नहीं निकला। जब विभीषण रावणको त्याग लंकासे चला था, उस समय कुंभकरण सो रहा था, इसलिये उससे विभीषण कोई बातचीत न कर सका था। अब, जब रावण-द्वारा जगाया जाकर कुंभकरण युद्धके लिये भेजा गया तो विभीषणने सोचा कि मेरी निंदा रावणने जरूर इससे की होगी। अतः अपनेको निरपराध सिद्ध करने और वास्तविक वृत्त अपनेसे बड़े भाईसे कहनेके लिये, तथा अपने प्रति उसका संदेह मिटा-कर क्षमा-प्रार्थनाके लिये विभीषण इस समयको सुअव-सर जान कुंभकरणके पास गया। जब विभीषणने चरणोंमें पड़ अपना सारा वृत्त कह सुनाया, तब कुंभकरणने रावणकी निंदा की और विभीषणकी प्रशंसा कर उसे निर्दोष सिद्ध किया। इस बातपर सन्तुष्ट हो विभीषण रामके पास आया।

इसके सिवाय यह भी ध्यान रहे कि अब कुंभकरणका भी मरण समय है। लंकामें तो वह सभी भाईबन्धु कुटुम्बियोंसे मिलकर चला ही है। एक बेचारा छोटा भाई विभीषण ही रह जाता है। इसलिये ग्रंथकार गोसाईंजीने किसी न किसी मिससे सब भ्राताओंका मिलन वर्णन कर दिया है, क्योंकि अब आगे मिलन होना असंभव है।

---

*'देखि विभीखन आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ'

यदि विभीषणका मिलन कुंभकरणसे न होता तो रावणके कथनानुसार विभीषणपर कुंभकरणका पूरा पूरा संदेह रहता, जो मरनेके समय साथ ही मनमे चला जाता ! अतः कुंभकरणकी मोक्ष न होती। इससे दोनोंका मिलन कराके संदेह मिटाकर कुम्भकरणको मोक्षका अधिकारी बनाया।

यद्यपि रामभक्त होने तथा भाईद्वारा घोर अपमानित होनेके कारण विभीषण रामकी शरणमें आया सही, पर आखिर था तो संसारी ही पुरुष ? वैर-विरोध होनेपर भी रावणकी मृत्युपर विभीषणको महान् दुःख हुआ। बस, जब उसने सुना कि कुम्भकरण रघुनाथजीसे लड़ने आ रहा है तो यह समझकर कि यह अब यहाँसे जीवित तो जा नही सकता, भ्रातृस्नेहकी रस्सीमें बंधकर भाईसे जाकर मिलना विभीषण जैसे कोमल हृदयवालेके लिये स्वभाविक ही था। इसीलिये वह कुम्भकरणसे जाकर मिला और सारा वृत्त कहकर अपनेको निर्दोष सिद्धकर भाईके स्नेहरूपी प्रसादको पा श्री रघुनाथजीके पास लौट आया।

शङ्का ७—अंगद तथा हनुमानजी ऐसे शिरोमणि योद्धाओंमेंसे हैं कि जिनके एक ही मुष्टिक-प्रहारसे कुम्भकरण, रावण जैसे योद्धा भूमिमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े, "परन्तु यही योद्धा जब क्रोध करके मेघनादको मारने लगे, तो उसके चोट भी न लगी" ऐसा कहा गया है। जब मारेसे नहीं मरा, तब फिर चल दिये। इसका कारण क्या है ?

समाधान ७—इसका सामान्य रूपसे समाधान तो इस प्रकार है कि यदि एक ही ओरकी विजय वर्णन की जावे तो रणकी वास्तविक शोभा नहीं होती। वीररस फीकासा पड़ जाता है। निर्बल और सबलका संग्राम नीरस होता है। इसीलिये रावणपक्षका भी उत्कर्ष दिखाया है।

मुख्य भाव गोसाईंजीका यह है कि लक्ष्मणजीने मेघनाद-की प्रतिज्ञा की है, इसलिये अंगद, हनुमान् जैसे योद्धाओंके

मुकाबिलेमें मेघनादका उत्कर्ष दिखाकर फिर लक्ष्मणजीद्वारा उसका वध कराके लक्ष्मणजीका उत्कर्ष बढ़ाकर दिखाया जाय। इसीलिये पहले मेघनादका उत्कर्ष दिखाया, फिर उसका वध लक्ष्मणजीद्वारा कराके वास्तवमें लक्ष्मणजीका उत्कर्ष बढ़ा-चढाकर दिखाया। श्री रघुनाथजीके भाईके मुकाबिलेमें महान् योद्धा ही आना चाहिये। देखिये आगे जाकर राम-रावणके युद्ध-प्रसगमें लिखा है कि 'लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत' यहा लक्ष्मणजीको भी विकल बताया, क्योंकि रावण-पर रघुनाथजीकी विजय होती है। इसी भांति यहां मेघनादका भी प्रसंग है।

शङ्का ८—रावण और कुम्भकरणके शवको तो रघुनाथजीने शरद्वारा लंकामें भेजा, परन्तु मेघनादके शवको स्वयं हनुमान्‌जी लंकाद्वारपर रख आये, इसमें क्या विशेषता थी?

समाधान ८—श्री लक्ष्मणजी तथा मेघनादके प्रथम युद्धमें जब लक्ष्मणजी मूर्छित हुए हैं तब

'मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनन्त किमि, उठइ चले खिसियाइ।'

सो यहां तो मेघनाद जैसे अनगिनत योद्धाओंसे भी श्रीलक्ष्मणजी न उठ सके और जब मेघनाद रणभूमिमें धराशायी हुआ तो

बिनु प्रयास हनुमान उठाए। लंका द्वार राखि पुनि आए।

अतएव जहां लक्ष्मणजी बड़े परिश्रम और अनेक योद्धाओंके उपाय करनेपर भी न उठे, वहा मेघनादको हनुमानजी अकेले बिना प्रयास उठाते हैं। रहा लंका-द्वारपर रख आना, इसमें रामदलके अभयत्व और वीरत्वका दिग्दर्शन कराया गया है और लंकाके रावण-दलकी हीनता दिखायी है। रही फेंकनेकी बात सो जाम्बवन्तद्वारा पहले ही लंकामें मेघनादको फेंकना दिखाया गया है।

शङ्का ९—गोसाईंजी राम-रावण-संग्राममें रावणके विषयमें

लिखते हैं कि 'अति गर्ब गनै न सगुन असगुन' तो रावणको तो सब असगुन ही हुए हैं, सगुन कहां हुए जो नहीं गिने ?

समाधान ९—जब भूतकालमें रावणने दिग्विजय किया, तब शकुन भी होते रहे, परन्तु अपने अपने बल-पराक्रम तथा ऐश्वर्य-के आगे इसने उन शकुनोंपर कभी विचार तथा विश्वास नही किया। यहां भूतकालके शकुन समझना चाहिये और वर्त-मान समयमें अशकुन हुए ही हैं; पहलेकी भांति इसने इन अश-कुनोंपर भी विचार नही किया और न ध्यान दिया।

छन्दका भाव स्पष्ट है कि रावणको इतना गर्व है कि वह इस बातपर ध्यान ही नहीं देता [न गनै] कि शकुन हो रहे हैं या अपशकुन हो रहे हैं। उस समय कोई शकुन नही हो रहा था, इस बातसे कोई विरोध नहीं पड़ता।

शङ्का १०—* विभीषण सदासे श्रीरघुनाथजीको ईश्वर समझता आया। परन्तु उसने राम-रावण समरमें श्रीरघुनाथजीके लिये रथकी इच्छा प्रकट की और शत्रुको जीतना कठिन बत-लाया। परन्तु रघुनाथजीने परमार्थसम्बन्धी रूपकमें उत्तर दिया। यह क्या बात है ?

समाधान १०—विभीषण श्रीरघुनाथजीको चाहे जो समझता रहा हो, परन्तु वह श्रीरामचन्द्रजीका समर-मंत्री भी था।

"सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिय जलधि गंभीरा॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिन्धु सोषक तव सायक॥

---

* रावण रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यसील दृढ़ ध्वजा पताका॥

जद्यपि तदपि नीति अस गाई। विनय करिय सागरसन जाई॥

* * * *

रिपुके समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बुलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि विधि लागिय करहु विचारा॥
तब कपीस रिच्छेस विभीषन। सुमिरि हृदय दिनकरकुलभूषन॥
करि विचार तिन मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपिकटकु बनावा॥
जथा जोग सेनापति कीन्हें। जूथप सकल बोलि तब लीन्हें॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाये॥

इन अंशोंसे स्पष्ट है कि जहां जहां मंत्रणाकी आवश्यकता हुई है, वहां विभीषणने पूरा पूरा योग दिया है। विभीषण कोरे भक्त ही न थे, बल्कि बड़े चतुर राजनीतिज्ञ भी थे। अतः समरमें बराबरीके विचारसे विभीषणको रथकी आवश्यकता प्रतीत हुई। विभीषणके इस विचारसे देवता भी सहमत थे।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उर उपजा अति छोभ बिसेखा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लेइ आवा॥

और रघुनाथजीने भी रथका विरोध नहीं किया, बल्कि—

'तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥

बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चरम संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा। बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धरममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहु रिपु ताके॥

महा अजय संसाररिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

अब देखिये वानरोंकी दशा

रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाये कपि बल पाइ बिसेखी॥
सही न जाय कपिनकै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥

इन पदोंसे स्पष्ट है कि विभीषणने जो अपने नैतिक विचार प्रगट किये थे, वे बिल्कुल यथार्थ और उचित तथा न्यायसंगत थे।

श्रीरामचन्द्रजीकी सेनामें, और विशेषतः स्वयं भगवान्‌के पास रथ न होनेसे जीतमें जो संदेह हुआ, उसे भगवान्‌ने उपदेश-द्वारा निवारण किया। तात्पर्य्य यह कि

"जेहि जय होइ, सो स्यंदन आना"। जिस रथसे वास्तविक जय होती है, वह और ही है। वह आध्यात्मिक है, आधिभौतिक नहीं। जयका अवलम्ब आज भी सेना और सामग्रीपर नहीं है, वरन् विजेताकी बुद्धि और चरित्र और आत्मबल और साहसपर है।

विश्वामित्रजीका शस्त्रबल वशिष्ठजीके आत्मबलसे परास्त हो गया था। "धिग्बलं क्षत्रिय बलं, ब्रह्मतेजो बलं बलम्"। राम-रावण युद्धमें भी श्रीरामचन्द्रजीकी धर्म्म-बुद्धि, विवेक और आत्मबलने रावणकी पाप-बुद्धि, अविवेक और कमजोरीपर विजय पायी। पिछले युरोपीय-युद्धमें भी जर्मनीकी हार उसके शत्रुओंके बलसे नहीं, बल्कि उसकी अपनी कमजोरीसे ही हुई। उसके शत्रुओंमें आत्मबल प्रबल होता तो आजतक निर्णयमें देर न लगती। जर्म्मनीकी हार जरूर हुई, पर शत्रुओंकी जीत भी नहीं हुई।

प्रस्तुत प्रसंगमें भी श्रीरघुनाथजीने वास्तविक हार जीतके सम्बन्धमें 'गीता"का उपदेश विभीषणको करके उनका मोह दूर किया।

सुनि प्रभु वचन विभीषन, हरषि गहे पदकंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपासुखपुञ्ज॥

स्पष्ट है कि विभीषणके वचन राजनैतिक विचारसे थे न कि भक्तिपक्षसे। परन्तु भगवद्‌वचन नित्य और सत्य हैं।

शङ्का ११—* शिवजीने आरण्य काण्डसे ही अर्थात् वन-गमनसे ही सतासी हजार वरस की† समाधि लगा ली, फिर भला लंकाके राम-रावण-समरमें उनका आगमन क्योंकर हुआ होगा?

समाधान ११— श्रीशिवजीकी गणना ईश्वर-कोटिमें की जाती है, इससे अनेक रूप धारण करना शिवजीके लिये असंभव नहीं है। देखिये, हनुमानजी नित्य साकेतलोकमें भी रहते हैं कदलीवनमें भी रहते हैं, जहां रामकथा होती है वहां भी रहते हैं—इसी प्रकार शिवजीके भी अनेक रूप होनेमें कोई शङ्का-की बात नहीं है। समाधानकी एक और रीति भी है। गोस्वामी-जीने कई अवतारोंकी कथा कही है और "कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं" सो शिवजीने जिस कल्पमें लम्बी समाधि लगायी थी, उसमें लङ्कामें आकर स्तुति नहीं की। उनका लङ्कामें आकर

---

* विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई

* * * *

संभु समय तेहि रामहिं देखा। उपजा हिय अति हरषु विसेखा

* * * *

सती कपट जानेउ सुरस्वामी। सब दरसी सब अंतरजामी

* * * *

† संकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा

* * *

बीतें संवत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अविनासी

* * * *

खल मल धाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन

सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।

देखि सुअवसर राम पहिं, आये संभु सुजान॥

स्तुति करना कल्पान्तरकी कथा है।

शङ्का १२—* अग्निप्रवेशद्वारा पतिव्रत सिद्ध करनेका संकल्प तो सीताजीके प्रतिबिम्बने किया, उसका जल जाना कहा है, तो पतिव्रत कैसे निभाया गया?

समाधान १२—श्रीरघुनाथजीने सीताजीको हरणके पहले ही वनमें अग्निको सौंप दिया था।

'सीता प्रथम अनल महँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अतर साखी'

देखिये खरदूषण त्रिशिरा आदिके मारनेके उपरान्त रघुनाथजीने सीताजीसे कहा कि

"सुनहु प्रिया व्रतरुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नरलीला
तुम पावकमहँ करहु निवासा। जौ लगि करहुँ निसाचर नासा"

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाते ही

'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी'

निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुविनीता

यहां लौकिक रीत्यनुसार भूमिकारूप दुर्वचन कहकर रघुनाथजीने सीताजीको अग्निसे निकालकर प्रकट किया है। वास्तवमें राम-सीता-वियोग तो हुआ ही नहीं है। रामने ललित नरलीला की है उसे निवाहनेके अर्थ यह लौकिक व्यवहार दिखाया है। अन्तमें प्रतिबिम्बको वास्तविक अंशमें मिलाना है, इसी कारण प्रतिबिम्बका लय होना दिखाकर सीताजीको स्वतः पूर्व रूपमें प्रगट होना दिखाया, क्योंकि अग्निप्रवेशके समय

'श्रीखण्डसम पावक भयो'

---

* लछिमन होहु धरमके नेगी। पावक प्रगट करहु तुम वेगी
* * * *
'प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे'

यहां लौकिक कलङ्क उतरनेके लिये कविने ऐसा दिखाया है कि 'प्रचण्ड पावक महुँ जरे।' देखिये, ज्यों ही सीताजी अनलसे निकलीं त्यों ही लौकिक कलङ्कोंका नाश हुआ और यह कीर्ति-कौमुदी चतुर्दिक फैल गयी कि सीताजी शुद्ध और सच्ची पति-व्रता हैं, क्योंकि अग्निपरीक्षा करनेपर अग्नि भी उन्हें न जला सका।

प्रतिबिम्बका जलना कहा है जो स्वतः सीताजीके प्रकट होनेके कारण ही कहा है। प्रतिबिम्ब तो रूपके देवता अग्निका रचा कृत्रिम था। वास्तविक सीताजीका स्थानापन्न था। जब असली सीताजी आ गयीं तब उसका अग्निमें समा जाना अनिवार्य्य था। प्रतिबिम्ब अग्निमें जल गया गुप्त हो गया, विलीन हो गया, क्योंकि अब उसकी आवश्यकता न रही।

इस सम्बन्धमें अनेक कथायें कही जाती हैं। कहीं वेद-वतीको सीताका रूप कहा गया है, कहीं प्रतिबिम्बको पांचाली-का रूप कहा है। परन्तु मानसकार कविका आन्तरिक अभिप्राय स्पष्ट है।

अयोध्याकाण्डमें जब वनमें भरतादि रघुनाथजीसे मिलनेके लिये आये, उस समय सासुओंकी सेवा करनेके विचारसे उतने ही रूप सीताजीने धारण किये, जितनी कि सासुएं थीं।

'सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई'

यह सब रूप भी सीताजीमें ही लय हुए। ग्रन्थकारने भगवती श्रीसीताजीमें नरलीलाके साथ ही साथ अनेक स्थलोंमें ऐश्वर्य्य भी दिखाया है। "जरे" का अर्थ "जडे" करके भी लोग समाधान करते हैं, परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं बैठती।

शङ्का १३—* विभीषणने पुष्पक विमानको जो वास्तवमें कुबेरजीका था, उनके यहां न भेजकर रघुनाथजीको समर्पण किया। इसका कारण क्या है?

* 'लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा'

समाधान १३—श्रीरघुनाथजीने विभीषणसे कहा कि हे सखा! मुझे शीघ्रसे शीघ्र अयोध्याजी पहुँचाओ, क्योंकि अब चौदह वरसकी अवधिमें केवल एक ही दिन शेष है, हम पांव पयादे एक दिनमें किसी प्रकार नहीं पहुँच सकते और यदि अवधि बीतनेपर अवधमें पहुँचा तो बडा अनर्थ होगा, महाभ्रातृ-स्नेही भरतादिका मिलना असंभव हो जायगा अर्थात् वह निराश हो प्राणत्याग कर देंगे।

'दसा भरत सुमिरत मोहि, निमिष कलपसम जात।
तापस वेष गात कृस, जपत निरंतर मोहि।
देखउँ वेगि सो जतन करु, सखा निहोरउँ तोहि॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुजप्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥

श्रीरघुनाथजीके इतने करुणापूर्ण भ्रातृ-स्नेहमें सने वचन सुनते ही विभीषणका परम कर्तव्य हो गया कि श्रीरघुनाथजीको नियत समयके भीतर अवधमें पहुँचा दें। इसीसे विभीषणने पुष्पकयानले भगवानके आगे रखा। भगवान उसके द्वारा अवधिके अन्दर अयोध्याजी आ पहुँचे। काम पूरा होनेके उपरान्त रघुनाथजीने फौरन ही पुष्पकयान कुवेरके पास भेज दिया। देखिये परायी वस्तु भेजनेमें कितनी जल्दी की कि

'नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष विरहु अति ताहु॥

अतः विभीषणका श्रीरघुनाथजीको पुष्पकयान देना उस समय उचित ही था।

सप्तम सोपान—उत्तरकाण्ड



शङ्का १—भरतजी हनुमानजीके पहले यह वाक्य कि

[१] 'जासु विरह सोचहु दिनराती। रटहु निरंतर गुनगन पाती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देवमुनित्राता'

सुनकर कुछ भी न बोले, परन्तु यह दूसरा वाक्य

[२] 'रिपु रन जीति सुजस सुरगावत। सीता अनुज सहित पुर आवत'

सुनते ही यह दशा हो गयी

'सुनत वचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाव पियूषा॥'

और फौरन ही उत्तर दिया कि

"को तुम्ह तात कहांते आये। मोहिं परम प्रिय वचन सुनाये।"

इसमें क्या हेतु है?

समाधान १—प्रथम वाक्यमें केवल श्रीरघुनाथजीके आगमनकी ध्वनि निकलती है। लक्ष्मणजीके जीवित होकर साथ लौटने और रावणको मार सीताजीको प्राप्तकर उनके साथमें लौटनेका वर्णन हनुमानजीके इस पहले वाक्यमें न पाकर भरतजी विचार-सागरमें डूब गये, इसलिये कोई उत्तर न दे सके। हनुमान्‌जी भी बड़े ही विचारवान हैं, झट अपनी भूल समझ गये और फौरन ही दूसरा वाक्य कहा, जिसमें श्रीरघुनाथजीका रावणको जीतकर सीताजी तथा लक्ष्मणजी सहित आनेका सारा प्रसंग आ गया। बस, फिर क्या था, सारा संदेह विलीन हो गया और अति शीघ्र प्रत्युत्तर दिया।

इस शङ्काके साथ यह भी शङ्का होती है कि भरतजी तो तृषावन्त रघुनाथजीके दर्शनरूपी जलके थे फिर अमृत कहांसे

मिल गया। इसका समाधान तो सहज ही किया जा सकता है कि श्रीरघुनाथजीसे उनके भक्तोंकी महिमा सदैव बड़ी कही गयी सबहै, अतः सुग्रीव, विभीषण,जाम्बवन्त, अंगदादि रघुनाथजीके परम वीभक्त भी साथमें आ रहे हैं, यही अमृतवत् है।

पय शङ्का २—*श्री रघुनाथजीने कपि ऋक्षादिकोंको अपने सब अवलम्बन्धियोंसे अधिक प्यारा कहा, परन्तु फिर उन्हें अवधमें क्यों स्तेनहीं रखा?

हो समाधान २—मुख्य बात यह है कि सुग्रीव, विभीषणादि यह सब राजा तथा गृहस्थ हैं। इनके अवधमें रहनेसे इनका परिवार और इनकी कुछ सेना भी अवधमें रहेगी। इनके राज्योंका प्रबन्ध गड़बड़ा जायगा, सारे देशोंमें भी अशान्ति फैल जायगी। इससे इनको अपने अपने देशोंको बिदा कर दिया। इसकी पुष्टि इस बातसे और हो जाती है कि हनुमानजीको वापिस नहीं भेजा, क्योंकि न तो वह कहींके राजा हैं और न गृहस्थ हैं।

गौण रीतिसे इस प्रकार भी इसका समाधान किया जा सकता है कि यह वानर रीछ आदि सब देवअंश हैं, अपने अपने अंशोंमें मिलेंगे और अवधवासी सब साकेतको जायँगे। परन्तु इस युक्तिमें एक यह शंका पैदा हो जाती है कि विभीषण तो देवअंश न था उसे ही अवधमें रख लेते।

जबतक कि जिसका अधिकार है, उसे भूमिपर रहना ही है क्योंकि द्वापरमें कृष्ण और जाम्बवन्तका युद्ध होना है और मयंद वानरका वध बलरामजीद्वारा होना है, इस कारण अवधमें नहीं रखा।

शङ्का ३—गोसाईंजीने पहले तो यह लिखा कि 'दुइ सुत सुन्दर सीता जाये' और आगे जाकर लिखते हैं कि

---

* अनुज राज सम्पति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
न मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥

"दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे।"

यहां दूसरे वाक्यमें सब भ्राताओंका नाम लिया और पहले वाक्यमें सीताजीका नाम लिया, रघुनाथजीका कहीं भी नाम नहीं लिया। इसका क्या कारण है?

समाधान ३— भरतादिक भ्राताओंके पुत्र तो अयोध्यामें पैदा हुए हैं इस कारण लौकिक रीत्यनुसार पिताके नामसे प्रसिद्ध किये। परन्तु सीताजीके पुत्र लवकुश महामुनि वाल्मीकिजीके आश्रममें पैदा हुए और वाल्मीकिने सीताजीको पुत्रीवत् माना जिसके प्रमाण वाल्मीकीय रामायणादिमें मिलते हैं। अतः वह मुनि-आश्रम ही सीताजीका नैहर हुआ। नैहरमें बालक माताके ही नामसे प्रसिद्ध होते हैं अतः श्री रघुनाथके नामसे न कहकर सीताजीके नामसे प्रसिद्ध किये। गोस्वामीजी श्री रामजानकी युगलरूपका नित्य संयोग मानते हैं। रामचरितमानसमें सीताहरणके पूर्व श्री जानकीजीका अग्निप्रवेश और प्रतिबिम्बमात्रको हरा जाना दिखाया गया। यहांतक भक्तकविको सह्य था, किन्तु एक तो सीताजीके वनवाससे वास्तविक असह्य वियोग, दूसरे उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी कथाके प्राधान्यका अभाव, यह दोनों बातें भक्तिभावके अनुकूल नहीं पड़ती थीं। इसीलिये गोस्वामीजीने सीताजीके वनवासकी कथाका इशारा "दुइ सुत सुन्दर सीता जाये" पदमें किया है।

शङ्का ४—*जब श्रीरघुनाथजी सब वानर रीछ आदिको

* तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति विनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि॥
"सुनु सरबग्य कृपा सुखसिंधो। दीन दयाकर आरतबंधो।
मरती बार नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली॥
असरनसरन बिरद सभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।

बिदा करने लगे तो अंगदजीने बहुत अनुनय विनयकी। पर श्री-रघुनाथजीने इतने दयालु होनेपर भी अंगदको आश्रममें न रखा, इसका क्या कारण है?

समाधान ४—किष्किंधाकांडमें देखिये कि पहले ही मरते समय बालिने अंगदको इसलिये सौंप दिया कि गद्दीकी परम्परा नष्ट न हो।

'यह तनय मम सम विनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये
गहि बांह सुरनरनाह आपन दास अंगद कीजिये'

बालिके इस मतलबको समझकर रघुनाथजीने सुग्रीवको राजा बनानेके साथ ही अंगदको युवराज बना दिया

'लछिमन तुरत बोलाये पुरजन बिप्रसमाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहु, अंगद कहुँ युवराज।'

उसी समयके वचनको ध्यानमें रखके श्रीमहाराजने उसे विदा किया। निर्भय करने या अधिक प्रीति दर्शानेको श्रीरघु-नाथजीने अंगदको 'निज उरमाल, और बसन' पहिराकर बिदा किया।

'निज उरमाल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ।'

मोरे प्रभु तुम्ह गुरु पितु माता। जाँउ कहा तजि पद जलजाता॥
तुम्हहिं विचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा।
बालक ग्यान बुद्धि बलहीना। राखहु सरन जानि जन दीना॥
नीच टहल गृहकी सब करिहउँ। पद पकज बिलोकि भव तरिहउँ।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाहीं। अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं।
अगद वचन बिनीत सुनि, रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाय उर लायउ, सजल नयन राजीव।

शङ्का ५—*श्री शंकरजीने भुशुंडीद्वारा रामकथा मरालतन धारण करके सुनी। प्रकट होकर नहीं सुनी इसका क्या कारण है?

समाधान ५—अनेक श्रोताओंका मरालरूप देखकर आप भी मराल बन गये, जिससे सबमें मिलके सुन सकें। अपने दिव्य रूपसे श्रोता-समाजमें शिव भगवान होते तो और सब पक्षियोंको स्पष्ट ही कठिनाई होती और गुप्त रीतिसे सुननेसे कथाका यथार्थ रसास्वादन भी होता है।

बात मुख्य यह है कि शंकरजी तो भुशुंडीके मानसचरित्र सुनानेवाले स्वयं आचार्य्य थे। सतीके वियोगमें भ्रमण पर्य्यटन सत्संगद्वारा शिवजी अपना समय काटते फिर रहे थे। इसी बीचमें काकभुशुंडीको रामोपासक जान शिवजी नीलगिरिपर सत्संगके लिये आये। परन्तु यह ध्यान रखा कि यदि मैं अपने रूपमें यहां कथा सुनूंगा तो भुशुंडी संकोचके मारे उस स्वतंत्रताके साथ कथा वर्णन न करेगा जिस प्रकार इस समय कर रहा है। ऐसी दशामें वास्तविक आनंद जो श्रोताओं और वक्ताके बीच कथामें आना चाहिये वह न आयेगा। इसीलिये शिवजीने इस नीतिका अवलम्बन किया।

यह शंका हो सकती है कि मरालका ही रूप क्यों धारण किया। और पक्षी क्यों न बने। इसका समाधान यह है कि कोई काम निष्प्रयोजन नहीं होता। हंस नीरक्षीर विवेकयुक्त ज्ञानकी मूर्त्ति समझा जाता है। शिवजी भी ज्ञानरूप हैं। अतः उनको हंसका ही रूप धारण करना सुसंगत था।

शङ्का ६—श्री रघुनाथजीके उदरमें भुशुंडीको कई कल्प बीत

अगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव रामकी ओरा।
बार बार कर दण्ड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।

* तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुने रघुपति गुन, पुनि आयउ कैलास।

गये, परन्तु मुझसे बाहर निकले तो केवल दो घड़िया बीती थी। यह कैसे संभव है ?

भुशुंडिजीके लिये यह भी कहा कि "महाप्रलयहु नास तब नाही" यह कैसे संभव है ?

समाधान ६—कालका मुख्य मान रात दिन * है जो अपने धुरेपर धरतीकी गति है। वर्ष उस कालको कहते हैं जो पृथ्वी-पिंडको सूर्यकी एक परिक्रमामें लगता है। भिन्न भिन्न पिंडोंके लिये उनके परिक्रमणभेदसे भिन्न कालमान हैं। बृहस्पतिका वर्ष-मान हमारे पार्थिव वर्षमानके बारह बरसोंका है। इसी तरह शनि-लोकमें हमारे तीस बरसोंका एक बरस होता है। यह छोटे छोटे पिंडोंके उदाहरण हैं। अनन्त आकाशमंडलमें ऐसे ऐसे पिंड हैं, जिनके एक एक वर्ष हमारे करोड़ो बरसोंके बराबर हो सकते हैं। साथ ही छोटे पिंडोंका हिसाब कीजिये तो कालभेद अत्यन्त बड़ा वा अत्यन्त छोटा दीखता है। एक एक परमाणुमें विद्यु-त्कण एक सेकंडमें एक लाख अस्सी हजार मीलके वेगसे धन-कणका परिक्रमण करते हैं। अतः हमारे एक सेकंडमें विद्यु-त्कणके लाखों बरस बीत सकते हैं। ब्रह्मके लिये कहा है "अणोरणीयान् महतो महीयान्"। यदि भगवान्के सूक्ष्म भाव-पर निगाह दौड़ाते हैं अथवा कागभुशुंडिके रूपसे भगवान्की सूक्ष्म सृष्टिमें भ्रमण करते हैं तो हमारी दो घडीमें अर्थात् २८८० सेकंडमें परमाणु ब्रह्मांडके विद्युत्कणोंके [प्रति सेकेंड केवल दो लाख वर्ष मानकर] लगभग छः अरब बरस होते हैं। यदि वैज्ञानिकोंद्वारा अनुभूत विद्युत्कणोंसे भी सूक्ष्म पिंडोंकी कल्पना करें तो घडीमें अनेक कल्पोंका बीतना कोई असंभव

*एक कल्प पार्थिव बरसोंके मानसे ४अरब ३२करोड़ बरसों-का होता है।

*भ्रमत मोहि ब्रह्माण्ड अनेका। बीते मनहुँ कलप सत एका॥
सब घडीमहँ मैं सब देखा। भयेउँ स्रमित मन मोह बिसेखा॥

यात नहीं ठहरती। कालकी और देशकी कल्पना सापेक्ष है। इस स्थलपर अधिक विस्तार संभव भी नहीं। इसपर पूर्ण दार्शनिक विचारके लिये लेखकप्रणीत वैज्ञानिक अद्वैतवादमें "कालकी कल्पना" देखिये।

जाग्रत अवस्थामें भिन्न पिण्डोंके गतिक्रमसे कालमानमें कितना बड़ा अन्तर पड़ता है, यह बात वैज्ञानिक विचारसे स्पष्ट हो जाती है। जाग्रतसे भिन्न स्वप्नावस्थाका कालमान तो अत्यन्त अद्भुत है। सपनेमें देखता हूं कि हिमालय पर्वत है, गंगा है जो अवश्य ही अरबों बरससे है, और मैं स्वयं महीनों यात्रा करता हूं, अनेक घटनाएं घटती हैं जिनकी संख्या, भेद, विस्तार आदि बातें बरसोंका अनुमान उत्पन्न करती हैं, परन्तु आंख खुली, अवस्था बदली तो मालूम हुआ कि दस मिनिटसे अधिक न सोया हूंगा। यह दस मिनिट जाग्रतके हैं, पर स्वप्नावस्थाके अरबों बरस बीत गये। अवस्था-भेदसे देशकालवस्तुमें भेद प्रतीत होना स्वाभाविक है, क्योंकि देश काल वस्तु तीनों सापेक्ष हैं अतः असत्य और अनित्य हैं। देशातीत, कालातीत, वस्त्वतीत, नित्य सत्य सत्ता अपेक्षाकृत नहीं है, अतः उसमें विकार संभव नहीं। भुशुण्डिजी "मनहुँ कलप सत एका" भिन्न भिन्न ब्रह्माण्डोंमें घूमते रहे, परन्तु वस्तुतः [अर्थात् जाग्रत अवस्थामें जिसे व्यवहारमें वास्तविक समझते हैं] दो ही घड़ीका समय लगा। "मनहुँ" शब्द भुशुण्डिजीके अवस्थान्तरका, दूसरी अवस्थामें,—शायद समाधिकी अवस्थामें—प्रवेश करनेका पता देता है। इस भिन्न अवस्थामें उन्होंने एक सौ एक कल्प बिताया और फिर जब पूर्वावस्थामें लौटे तो उस अवस्थाके मानसे दो ही घड़ियां बीती थीं।

इसी तरह "महा प्रलयहु नास तव नाहीं" को भी समझना चाहिये। सृष्टि और प्रलय दोनों कालकी सीमाके भीतर हैं। परन्तु जो अवस्था कालातीत है, उसमें आदि अन्त कहां? जन्म-

मरण कहाँ ? यह अवस्था ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। इसे "सालोक्य मुक्ति" कह सकते हैं। सगुणोपासक गोलोक, साकेतलोक, आदि लोकोंको देश काल वस्तुसे परे मानते हैं।

शङ्का ७—*भुशुण्डिजीने मोहमें भरतादिकोंके अनेक रूप देखे और श्रीराघवका एक ही रूप देखा। भरतादिकोंमें यह अनित्यत्व क्यों दिखाया ?

समाधान ७—यह सब श्री रघुनाथजीकी मायाकी करतूत है। भरतादिकके एवं विश्वम्भरके अनेक रूप कौतुकवत् हैं। सविकार और अनित्य हैं। एक बात और भी है। भुशुण्डिको मोह केवल राघवके प्रति ही हुआ है अतः श्रीरघुनाथजीने सबसे विलक्षण नित्य और सर्वविकाररहित केवल अपना ही रूप दिखाया। यदि सब भ्राताओंमें भुशुण्डिको संदेह होता तो श्रीरघुनाथजी सबको एक ही रीतिसे दिखाते। जैसे कि सतीजीको राम, सीता तथा लक्ष्मणजी तीनोंमेंही संदेह हुआ था इसलिये वहां महाराजने सतीको तीनोंका एकसा रूप दिखाया।

'सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता'

इस प्रकार सतीके प्रसंगमें वर्णन किया गया है।

शङ्का ८—श्रीरामचरितमानस चार व्यक्तियोंद्वारा संवादरूपमें वर्णन हुआ है। इनमेंसे उत्तरकाण्डके अन्तमें तीन

---

* अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी
दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। विविध रूप भरतादिक भ्राता
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखेउँ बाल विनोद उदारा
भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउ प्रभु, राम न देखेउ आन॥

* (बालकाण्डमें)

(१)जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई॥

संवादोंकी तो 'इति' लगायी है। परन्तु याज्ञवल्क्य और भारद्वाजके-संवादकी 'इति' नहीं लगायी। इसका क्या कारण है?

समाधान ८—भारद्वाजका प्रश्न रामस्वरूपका है। सप्तकाण्ड रामायण सुननेका प्रश्न नहीं है।

'रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही।। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं।'

इसीसे आधे बालकाण्डतक रामस्वरूप और जन्महेतु कहकर याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद गुप्त कर दिया गया।

याज्ञवल्क्यद्वारा सातों काण्डोंकी कथा कहलाना भी सिद्ध कर सकते हैं। बालकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यजीने आरंभ किया कि

'कहहुं सो मति अनुहार अब, उमा संभु संवाद'

और अन्तमें उत्तरकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यका वैसे ही शब्दोंमें उपसंहार भी है—'यह सुभ संभु उमा संवादा' हां, गोस्वामीजीने याज्ञवल्क्यजीके विदा होनेका समाचार नहीं कहा। शायद मुनियोंके समागमका अन्त करना नहीं रुचा और रामकथा हो

---

(२) प्रभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा
(३) सोइ सिव कागभुसुंडिहिं दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा

*　　*　　*　　*

(४) भाषा बध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

*　　*　　*　　*

(उत्तर काण्डमें)

(१) तासु चरन सिरनाय करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

*　　*　　*

(२) गिरजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं वेद पुरान॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहिं भवपासा।

*　　*　　*　　*

(३) रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।

आनेपर प्रयोजन भी नहीं रहा कि आनुषंगिक कथाका विस्तार करें। यह स्मरण रखने योग्य है—

सुनु मुनि आजु समागम तोरे, कहि न जाइ जस सुख मन मेरे।

इस सुखका अन्त करना गोस्वामीजी जैसे भक्तिरसिकके लिये इष्ट न था।

शङ्का६—" सत पंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं" इस पदमें सतपंचका अर्थ "अच्छे पंच" है अथवा यह संख्या-सूचक पद है ?

समाधान६—ग्रन्थकारने इस विचारसे कि कोई घटावे बढ़ावे नहीं, चौपाइयोंकी संख्या दी है। महन्त श्रीरामचरण दासजीने मुख्यार्थ ५१०० श्लोकाक्षरोंकी गणनासे संख्या दी है, जो मिलती नहीं, अतः मान्य नहीं है। उन्होंने फिर युक्तिसे "अच्छे पंच" अर्थ किया है। यही अर्थ पं० श्रीमहावीरप्रसादजी मालवीय वैद्यको भी मान्य है। उन्होंने अपनी टीकाके अन्तमें एक सारिणी दी है जिसमें कुल चौपाइयोंकी संख्या ४५६४, अर्द्धालियोंकी संख्या ६४,डिल्लाकी संख्या ४, उसकी अर्द्धाली १ दी है। इस तरह कुल चौपाइयोंकी संख्या ४६६२ हुई। श्री मालवीयजीने यदि *डिल्ला (जो चौपाईका एक विभेद है) गिना तो लङ्काकांडमें ही ४डिल्ला गिनना ठीक नहीं। पोथी भरमें डिल्ला, पादाकुलक आदि सभी भेदोंके अनेक उदाहरण मिलेंगे। डिल्ला आदिकी अपेक्षा १५ मात्राकी चौपाइयां अलग गिनाते तो अधिक उचित होता। उन्होंने चार चार पदोंकी चौपाइयां गिनीं पर जो दो पद बच रहे उन्हें ही अर्द्धाली गिना। जान पड़ता है कि गोस्वामीजीने दो पदोंकी भी चौपाई गिनी है, और चार पदोंकी भी। कहीं कहीं, जैसे अयोध्याकांडमें, उन्होंने नियमतः दो दोहोंके बीच

*वसु वसु मत्ता डिल्ला जानहु अर्थात् ८-८परयति अन्तमें भगण ही हों तो डिल्ला है।(छन्दप्रभाकर)

चार चार चौपदी चौपाइयां रची हैं। परन्तु अनेक स्थलोंमें दो दोहोंके बीच ११, १३, १५, १७, १९, ३७ द्विपदियां रखी हैं। हम जब द्विपदियों और चौपदियोंको पूरी चौपाइयां करके गिनते हैं तो जो रामचरितमानस नन्दग्रन्थमालामें दूसरी संख्याके नामसे छपा है उसमें ५१४६ चौपाइयाँ होती हैं, अर्थात् ४६ चौपाइयाँ बढ़ती हैं। हमने हालके छपे सभावाले संस्करणसे भी गिनती करायी तो उपर्युक्त संस्करणके पाठान्तरोंके मिलाने और कुछ ही घटाने बढ़ानेसे ५१०३की संख्याकी उपलब्धि हुई। हमें विश्वास है कि हमारी गिननेकी पद्धति ठीक है। सतपंचका अर्थ अवश्य ही ५१०० है। तीनकी अधिक संख्याकी सहज ही कहीं भूल हो सकती है। पूरी पोथी श्री गोस्वामीजीकी ही लिखी उपलब्ध होती तो इस शंकाका निवारण हो जाता। हमारी निश्चित धारणा है कि कविने यहां चौपाइयोंकी संख्या ही बतायी है, अन्यथा यदि "अच्छेपंथ" वाला ही अर्थ अभिप्रेत होता तो चौपाई छन्दपर ही क्या विशेषता थी! "इन मनोहर चौपाइयोंको सतपंच मानकर जो हृदयमें धारण करेंगे"की जगह इस मनोहर रघुवरयशको सतपथ जानकर जो हृदयमें धारण करेंगे" बहुत विशद होता अथवा हरिगीतिकामें ही

"सतपंथ हरिहरजस मनोहर जानि जे नर उर धरैं"

बड़ी उत्तमतासे कह सकते थे जिसमें रकारके अनुप्रासकी बहार थी। "यश" और "पथ" में लिंगभेद भी न होता। चौपाईका उल्लेख बालकाण्डमें कविने इस प्रकार किया है—

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगति मंजु मनि सीप सुहाई

श्री गोस्वामीजी सरीखे उत्कृष्ट कवि चौपाईको पुरइनिकी उपमा देकर अन्तमें स्त्रीलिंग शब्दकी उपमा "अच्छे पंथ" पुल्लिंग शब्दसे कदापि न देंगे। इस धारणापर हम सतपंचका अर्थ ५१०० ही करेंगे, अच्छे पंथ नहीं।

शङ्का १०—रामचरितमानसमें अनेक स्थलोंमें छन्दोभंग है। गोस्वामीजीने अनेक दोहे १२, ११,१२, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(१) ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मनकीन्ह बिचार।
जौन ब्रह्मसर मान उं, महिमा मिटइ अपार।

कहीं कहीं १२, ११, १३, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(२) कैकइ सुअन कुटिल मति, राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहिसे अधमके राज।

नियमतः दोहा १३, ११, १३, ११ मात्राओंका ही होता है। अनेक चौपाइयां भी १५-१५ मात्राओंकी लिखी हैं,

जस—(३) करिहउँ इहां संभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना

* * * *

मुठिका एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ठनमनी

ऐसे अशुद्ध पद्य गोस्वामीजो जैसे सत्कविके नहीं हो सकते। क्या यह सब क्षेपक नहीं हैं?

समाधान—१०—बहुत प्रामाण्य प्रतियोंसे मिलान करनेसे जान पड़ता है कि यह पद्य क्षेपक नहीं हैं, ग्रन्थकारके ही लिखे हैं। ग्वालकविने दोहाका लक्षण दिया है—

षटकल चौकल जगन बिनु, पुनि इककल फिर दोइ,
पुनि षट चौइक इमि दुकल, दोहा सगती होइ।

इसके अनुसार पहले तीसरे चरण ६+४+१+२=१३मात्राओंके और दूसरे चौथे चरण ६+४+१=११मात्राओंके होते हैं। पहले तीसरे चरणान्तमें जगणका न होना दोहेके लिये आवश्यक है गोस्वामीजीने इन लक्षणोंसे युक्त दोहे बहुत लिखे हैं। जो दोहा ऊपर १२, ११, १२ ,११ मात्राओंका दिया है वह “पंचा

दोहा" का उदाहरण है, जिसका लक्षण हरदेव* कविने यों दिया है—

छकल चतुष्कल द्वै कलहि, विषम थलन कवि आन,
दुकलहि एक घटाय सम, पंचा दोहा जान।

विषम चरणोंमें ६+४+२=१२मात्रा और सम चरणोंमें ६+४+१=११मात्रा होनी चाहिये। ऐसे दोहे जायसीने भी लिखे हैं।

अब रही दूसरे दोहेकी बात जिसमें चारों चरण क्रमश १२, ११, १३, ११, के हैं। इसमें प्रथम चरणान्तका लघु नियमसे गुरु पढा जायगा और गुरु गिना जायगा। इस तरह दोहा १३, ११, १३, ११ का हो जायगा। चरणान्तमें लघुका गुरु पढ़ा जाना प्राचीन नियम है। जैसे भर्तृहरिके नीचे लिखे प्रसिद्ध वसन्त तिलकामें, जिसका लक्षण त, भ, ज, ज, ग, ग, अर्थात् गुर्वन्त है, चौथे चरणमें अन्त्याक्षर लघु है, पर गुरु पढ़ा जाता है —

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भये न नीचैः
प्रारभ्य विघ्न विहिताः विरमति मध्याः
विघ्नैः पुनः पुनरपिप्रति हन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति। (नीतिशतक)

हिन्दीमें आचार्य्य केशवदासने इस नियमसे कैसा लाभ उठाया है? देखिये वह लिखते हैं—

श्रीरामचन्द्र अति आरतवन्त जानि
लीन्हों बुलाय शरणागत सुःखदानि
लंकेश आउ चिरजीवहि लकधाम
राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम (रामचन्द्रिका)

*देखो छन्द पयोनिधि वेंकटेश्वर (१९६३) पृ०९९।

इसमें चारों चरणान्तमें लघुको गुरु पढ़ना पड़ता है। आचार्य्य केशवका इसमें दोष नहीं समझा जाता।

आचार्य्य दासकविने भी छन्दोर्णव पिंगलमें लिखा है—

कहुँ कहुँ सुकवि तुकन्तमें, लघुको गुरु गनि लेत।
गुरुहूका लघु गिनत हैं, समुझत सुमति सचेत ॥

यहां स्पष्ट ही तुकन्तसे चरणान्त ही अभिप्रेत है, क्योंकि संस्कृतमें प्रायः अन्त्यानुप्रासहीन ही कविता होती है और यह नियम संस्कृतमें भी सर्वमान्य रहा है।

पन्द्रह पन्द्रह मात्राओंकी चौपाइयां, चौपइयां नहीं, गोस्वामीजीने अनेक लिखी हैं। सभी पिंगल ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है। जायसीने भी चौपाइयां लिखी हैं। चौपाइयोंके साथ चौपाइयां देना कोई दूषण नहीं है। किसीने इसका निषेध नहीं किया है। किसीको पसन्द न आवे तो दूसरी बात है। दासकवि कहते हैं—

पन्द्रह कला गनो चौपई। हंसी तिन्हा दुज भुज ठई

यह नियम स्वयम् "हंसी" चौपईमें है। दासकविने तो चौपाई या चौपई १० मात्रावाले ही छन्दको कहा है। १६ मात्रावालेका १५९७ भेद बताते हुए रूपचौपाई या रूपचौपई सामूहिक नाम बताया है। गोस्वामीजीने चौप लिखकर छन्दोभंग नहीं किया है। हां, भेद दिखाये बिना सब तरहकी चौपइयोंको साथ रखा है। उनका तात्पर्य्य था रामकथा कहना न कि पिंगलका पाण्डित्य दिखाना।

समाप्त।



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

तीसरा खण्ड

मानस-कथा-कौमुदी



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

तीसरा खण्ड



मानस-कथा-कौमुदी



(१) प्रस्तावना

श्रीरामचरित-मानसके पढ़नेवालोंको विशेषतः और हिन्दुओंको साधारणतः पौराणिक कथाओंका जानना जरूरी है। पौराणिक कथाएं हमारे इतिहासकी परम्परा हैं, हमारी सभ्यताकी अटूट शृंखलाएं हैं, जिनका प्रत्येक हिन्दूको उचित अभिमान है। सच्चे भारतवासीको, चाहे किसी धर्म वा पंथका क्यों न हो, यदि उसका प्राचीन पारिवारिक इतिहास हिन्दू-धर्ममें निहित है, अवश्य ही हमारे प्राचीन कथा-नायकोंका उचित गर्व होगा। मानसका पाठ करनेवालोंके सुभीतेके लिये हम सृष्टिक्रमसे संक्षेपमें सभी आवश्यक कथाएं देते हैं।

(२) कालमान

एक दिनरातके चक्रको ही स्वभावतः संसारमें कालका मान मानते आये हैं। दिनरात साठ घड़ीका और एक घड़ी साठ पलोंकी मानते हैं। वर्षमें छः ऋतुएं होती हैं। चैत्र, वैशाख वसन्त, ज्येष्ठ आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण भाद्रपद वर्षा, आश्विन कार्त्तिक शरद, मार्गशीर्ष पौष हेमन्त और माघ फाल्गुन शिशिर ऋतु समझे जाते हैं। वेदोंका क्रम कुछ भिन्न होता है। प्रत्येक ऋतु दो मास वा साठ दिनोंकी और वर्ष ६ × ६०=३६०

दिनोंका मानते हैं। इस गणनामें प्राय. ५ दिनोंकी कमी पड़ जाती है। परन्तु जहां लाखों वरसोंकी गणना होती है, वहां इस अन्तरपर विशेष विचार न करनेसे कोई हानि नहीं होती। मोटी तौरसे चार लाख बत्तीस हजार बरसोंका कलियुग, इससे दूने समयका द्वापर, तिगुने समयका त्रेता और चौगुने समयका सतयुग माना जाता है। चार युगोंकी एक चतुर्युगी होती है। एक हजार चतुर्युगियोंका एक कल्प माना जाता है।

प्रत्येक कल्पके आरंभमें ब्रह्माण्डकी सृष्टिका आरंभ भी माना जाता है। कल्पके अन्तमें सृष्टिका क्षय होता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं। एक एक कल्प महाब्रह्माका एक एक दिन माना जाता है। इस हिसाबसे महाब्रह्माकी आयु सौ वर्षकी मानी जाती है। महाविष्णु और महाशिवकी आयु अपरिमित है। ब्रह्माण्डोंका प्रलय भिन्न भिन्न समयोंपर होता है और सृष्टिके काल भी भिन्न हैं। उनकी स्थितिका काल उनकी ही गणनाके अनुसार एक कल्प अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ बरस होते हैं। ऋषियोंने मानवी सृष्टिको कल्पके भीतर भी चौदह भागोंमें बांटा है। प्रत्येकको मन्वन्तर कहते हैं। इस तरह मन्वन्तर लगभग साढ़े इकहत्तर चतुर्युगियोंका होता है। वर्त्तमान मन्वन्तर हमारे सौर ब्रह्माण्डके लिये वैवस्वत नामका है। कल्पका नाम श्वेत वाराह कल्प है जो महाब्रह्माके दूसरे पहरके पहले आधेमें परिगणित है। सत्ताईस चतुर्युगियां इस कल्पकी बीत चुकी हैं। यह अट्ठाईसवां कलियुग है। इसके पहले चरणमें जब ४६७५ वर्ष बीते थे तब गोस्वामी जीने रामचरितमानसका लिखना आरंभ किया था *।

* युग कल्प आदि कालमानमें हमने रात्रि, संध्या और संध्यांशकी गणनाकी भी इसलिये छोड़ दी कि साधारण पाठकोंको गणनाविस्तारमें कोई विशेष नहीं होती। ले०

(१) सृष्टिका आरंभ

प्रायः सभी पुराणोंका सृष्टिके आरंभके सम्बन्धमें मतैक्य है। क्षीरसागर कोई साधारण पार्थिव समुद्र नहीं है। यह अत्यन्त सूक्ष्म तेजोमय मूलप्रकृतिका सागर है, जो अनन्त आकाश देशमें विस्तृत है। इस तरल तेजोमय पदार्थका नाम "नारा" है। जो अपरिमेयशक्तिका मूल अनादि पुरुष इसमें "शेष" या "अनन्त" सत्तापर शयन करता है उसका नाम "नारायण" है। "शयन" इसलिये कि मूलप्रकृति और अनादि पुरुष सृष्टिके पहले अभेद हैं। एक ही सत्ता है, किन्तु कल्पनाकी परिधिमें लानेको दो वर्णन किये जाते हैं। एक रूप दूसरेमें प्रच्छन्न है। उसी सत्तामें जब "एकोऽहं बहुस्यामः" का स्फुरण हुआ तब "नारायण" की "नाभि" से अर्थात् शक्तिकी रजोगुण विशिष्ट कुण्डलीसे अष्टदल कमल, या देशका द्योतक आठों दिशाओंका सूचक सत्ताका प्रादुर्भाव होता है। इसी कमलपर रजोगुण-विशिष्ट भावा सृष्टिके कर्तार ब्रह्मा प्रकट होते हैं। शक्तिके मूलरूप "तपस्" या तपस्याके अवलम्बसे, शक्ति-संवरण या शक्ति-संचयसे वह सृष्टि-रचनामें समर्थ होते हैं। वेद या आत्मज्ञान उनके मुखसे निकलते हैं। ब्रह्मासे महत्, महत्‌से अहंकार, अहंभावसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधियां, ओषधिसे अन्न, अन्नसे रेतस, रेतससे शेष प्राणी उत्पन्न हुए। इस मेदिनी नामक पार्थिव-पिण्डकी रचनाके लिये कथा है कि नारायणके कानसे अर्थात् दो शक्ति-कुण्डलियोंसे दो दानव अर्थात् तमोमय महापिण्ड निकले, युद्ध हुआ, मारे गये। यह मधुकैटभ थे। इनका मेद "नारा" में बहा। वही मेदिनीका मूलरूप हुआ। यह मेदिनी "शेष" वा अनन्त सत्तापर स्थिर हुई। मंगल ग्रह इसीके गर्भसे निकलकर

पिण्डरूप हुआ। ब्रह्माके अनेक मानस पुत्र हुए। मरीचि, अंगिरा, भृगु, नारद, वशिष्ठ, अत्रि आदिमें पहले दोनों अग्निके वाचक हैं। मरीचिके कश्यप, कश्यपसे बारह सूर्य्य हुए। अंगिराके बृहस्पति और भृगुके शुक्र हुए। सूर्य्यसे शनि हुए। पीछे मेदिनाके मंथनसे चन्द्रमा निकला। इससे और बृहस्पतिपत्नी तारासे बुध हुआ। इनके सिवा अनेक "देव" अर्थात् ज्योतिर्मय पिंड उत्पन्न हुए। अगणित ग्रह और तारे, जो सभी "देव" वा ज्योतिर्मय थे, ब्रह्माने उत्पन्न किये। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, दो अश्विनीकुमार, यह तेंतीस कोटि या प्रकारके देवता भी उत्पन्न हुए। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः सत्यम् लोक भी उत्पन्न हुए। बहुतोंके मतसे पहले तीन त्रिलोक वा त्रिभुवन कहलाते हैं। इन्हींका क्षय प्रलयमें होता है, शेषका नहीं होता। बहुतसे मर्त्य, स्वर्ग, नरक और कई पाताल, मर्त्य और स्वर्ग त्रिभुवन मानते हैं। इनके सिवा ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक इन सातों लोकोंसे एकदम भिन्न समझे जाते हैं, और अधिक स्थायी। कृष्णोपासक गोलोक और रामोपासक साकेतलोक, को नित्य सत्य और इन सबसे परे मानते हैं।

साकेतलोक और गोलोक नित्य और अविनाशी हैं। भगवानका नाम, रूप, लीला, धाम सभी नित्य माने जाते हैं। मुक्त होकर जीव इन्हीं लोकोंमें जाता है। उसे चार प्रकारकी मुक्ति मिलती है, [सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य]। उपास्यदेवका रूप धारण करना सारूप्य है। उपास्यदेवके ही लोकमें नित्य निवास सालोक्य है। उपास्यदेवका पार्षद होकर रहना सामीप्य है। उपास्यदेवका अंग वा आभूषणादि होकर रहना सायुज्य है। यह दोनों लोक देश, काल और वस्तुकी कल्पनासे परे पुरुषोत्तमरूप ही समझे जाते हैं। वर्णनातीत होनेके कारण ही यथार्थ यह अंग, अंगी, लोक, रूप पार्षद आदिको कल्पनाके साथ जाते हैं।

सातों लोक और सातों पाताल (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, और पाताल) मिलकर चौदह भुवन कहलाते हैं। महाप्रलयमें इनका नाश हो जाता है। इनकी सृष्टिके लिये ब्रह्मा किसीको प्रजापतिका पद देते हैं। प्रजापति मैथुनी सृष्टिका आरंभ करते हैं। ब्रह्माजीने दस प्रजापतियोंकी सृष्टि की। दक्षको अंगूठेसे उत्पन्न किया। दक्ष भी एक प्रजापति हुए थे, जिनकी कथा रामचरितमानसमें है।

भू, भुवः, स्वः आदि लोकोंमेंसे भूः तो यह पृथ्वी है। भुवः अन्तरिक्ष और स्वर्लोक स्वर्ग है। स्वर्गका स्वामी इन्द्र है। यह कश्यपके बारह आदित्योंमेंसे वा पुत्रोंमेंसे एकका नाम भी है। परन्तु स्वर्गपति इन्द्र व्यक्तिका नाम नहीं है। यह पदका नाम है। नहुष, बलि आदिके इन्द्रपदके सम्बन्धकी चर्चासे यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वर्गमें देवता रहते हैं। देवताओंके गुरु बृहस्पति हैं। दैत्योंके गुरु शुक्र हैं। देवता और दैत्य दोनों ही कश्यपसे उत्पन्न बताये जाते हैं। कश्यपपत्नी अदितिसे आदित्य देवता, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव, मनुसे मानव वा मनुष्य, विनतासे गरुड़, कद्रूसे सर्पादि इस प्रकार कश्यपकी अनेक स्त्रियोंसे अनेक सन्तान हुईं। ब्रह्माके मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपके विवस्वन्, विवस्वन्के वैवस्वत मनु और वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुकी वंशपरम्परामें रामावतार हुआ। विवस्वन्के कारण यह सूर्यवंश प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार चन्द्रमाके बुध, बुधके इला आदिकी परम्परासे चन्द्रवंश प्रसिद्ध हुआ।

पहला सार्वभौम मनुष्य राजा जो राजधर्मका नियमन और शासनका संगठन करता है "मनु" कहलाता है। कल्पके आरम्भमें पहले मनु स्वायंभुव हुए थे। उनके पीछे फिर प्रत्येक मन्वन्तरके अधिष्ठाता भिन्न भिन्न मनु हुए। यह मनु शब्द पदवाचक है और कश्यपकी स्त्री मनुसे भिन्न है।

सृष्टिमें चार दिशाओंके चार लोकपाल हुए। पूर्वके इन्द्र, दक्षिणके यम, पश्चिमके वरुण, उत्तरके कुबेर। पूर्व और दक्षिण के बीच आग्नेयकोणका देवता अग्नि, दक्षिण पश्चिमके बीच नैऋत्यकोणका देवता निऋति, मृत्यु या काल, पश्चिमोत्तरके बीचके वायव्य कोणका देवता वायु और पूर्वोत्तरके बीचके कोण ईशानके देवता ईश हुए। लोकपालोंकी जहां आठकी गिनती होती है, यह भी लोकपाल कहे जाते हैं। इन आठों दिशाओंके रक्षार्थ दिग्गजोंकी भी कल्पना की जाती है।

सृष्टि-रचनाका आरम्भ जो ऊपर वर्णित है, करोड़ों बरसोंके विस्तारमें हुआ है। ऐसा नहीं कि ईश्वरने कहा कि जगत् हो जाय और जगत् हो गया। सौर ब्रह्माण्डका नायक सूर्य्य है। शेष पृथ्वी, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह और चन्द्रमादि उपग्रह इसी सूर्य्यकी मुख्य या गौण रूपसे परिक्रमा करते हैं। इन पिंडोंकी रचनाका आरम्भ कई अरब बरस पहले हुआ। इनमें-से अनेककी रचना अबतक जारी है। उनके कल्प और युगका परिमाण पृथ्वीके युग और कल्पसे अवश्य ही भिन्न है।

पृथ्वीका पिंड आरम्भमें अत्यन्त तेजोमय तरल पदार्थका था, जो आज ठंढा पड़नेपर बड़े कड़े चट्टानके रूपमें दिखाई पड़ता है। उस उद्दण्ड तापके समय सारा वातावरण घनी उत्तप्त मेघमालासे घिरा रहता था। सूर्य्यके गिर्द घूमनेकी क्रियाका आरम्भ हो जानेपर भी अहर्निशकी ठीक व्यवस्था न थी क्योंकि सरलता और घनत्वके न्यूनाधिक्यसे पृथ्वीके भिन्न भिन्न अंश भिन्न कालोंमें ध्रुवकी आवृत्ति करते थे। दिनमान ही निश्चित न था। दक्षिण दिशामें भूतलका अर्धभाग जो तरल समुद्ररूप था बहुत वेगसे दैत्य और देवोंकी शक्तिके सहारे मथा गया। इसकी मथानी मंदराचलको सँभालनेके लिये रक्षक भगवानने कच्छपका रूप धारण किया। केन्द्राभिगामिनी और केन्द्रत्यागि शक्तियोंका आधार केन्द्र और गुरुत्व और लघुत्वका मूल

परमात्माका चक्र है जो पिंडोंको धारण करता है। यही कच्छपावतार कहलाता है। इसी मंथनमें पृथ्वीका एक अंश, चौदह रत्नोंमें से एक रत्न, चन्द्रमा निकला और वही आकाशमें पृथ्वीमाताकी परिक्रमा करने लगा। बृहस्पति शनि आदि ग्रहोंके अनेक चन्द्रमा भी पिंडोंके इसी संघर्ष या मंथनसे निकले।

पृथ्वी इस घटनाके पीछे लाखों बरसमें इतनी ठंढी हो गयी कि द्रव-प्रस्तर मय मेघमालाके बदले वर्तमान जलकी आनन्द-कादम्बिनी आकाश-मंडलको सुशोभित करने लगी। पृथ्वी जलमय दिखाई देने लगी। हिमालय या मेरु सदृश कहीं कहीं पहाड़ोंके उत्तुंग शिखर स्थलके रूपमें दिखाई पड़ते थे। ऐसे युगमें जलमें कठिन आवरणवाले दानव ही विचरते थे, जिन्हें शंख कहते थे। शंखोंके उपद्रवसे सारा जलजगत् जब प्रक्षुब्ध हुआ तब भगवानने मत्स्योंकी सृष्टिकी और स्वयं मत्स्यावतार धारणकर मत्स्योंको प्रजाकी नीति सिखायी और शंख महासुरका संहार किया।

धीरे धीरे जल घटता जाता था और अधिकाधिक स्थल निकलता जाता था। कभी जल कभी स्थल हो जाता था। एकाएकी किसी समय स्थल जलमग्न हो गया। सूर्य्य-जनित अत्यधिक वर्षा हिरण्याक्षने पृथ्वीका अपहरण कर लिया। श्वेत वाराहरूप भगवान्ने स्थलका पुनरुद्धार किया। श्वेत उत्तम वडवा ज्वाला रूपी कराल दांतोंसे भूगर्भको खोदकर हिला दिया पर्वतमालाएं उभर उभरकर खड़ी हो गयीं। स्थलके आधिक्यसे सब ओषधियोंका आरम्भ हुआ। सारा धरातल हरे हरे ऊंचे ऊंचे पर्वतकी चोटियोंसे बातें करते महावृक्षोंसे भर गया। इन जंगलों मे वाराह जातिके एवं व्यालजातिके महा विशालकाय दानवाकार जन्तु भर गये। उस समय इन्हीं जन्तुओंका साम्राज्य था दैत्योंकी सन्तानने पृथ्वीपर अधिकार कर लिया। हिरण्यकशिपु उनका प्रसिद्ध सम्राट हुआ। उस समय मनुष्य जीवनव

विकास नहीं था। इसी राजाने मत्त हो विष्णुसे लड़ाई छेड़ी। प्रह्लाद इसका लड़का विष्णुभक्त और प्रसिद्ध सत्याग्रही हो गया। इसी भक्तकी रक्षाके लिये नृसिंहावतार हुआ। मनुष्य और सिंहके सम्मिलित रूपमें खंभा फाड़कर भगवान् प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादको गद्दी दी। इसी प्रह्लादके पोते बलिने भू-साम्राज्य स्थापित किया, इन्द्र-पदकी इच्छासे यज्ञ किये। इन्द्रकी विनतीपर उससे भगवानने वामनावतार हो समस्त जगत् दानमें ले लिया। वामनको त्रिविक्रम भी कहते हैं। यही समय मानवजातिके विकासारंभका था। दैत्य धीरे धीरे भूतलसे पाताल चले गये। मनुष्यजातिका युग आया। दैत्योंके साम्राज्यके नष्ट होनेपर ही मनुष्यका सर्वभौम राज्य हुआ। मनुसे मनुष्योंका विकासारंभ हुआ। मानव चतुर्युगी और कल्पका आरंभ हुआ।

मनुष्योंकी चतुर्युगीके सतयुगमें ही ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें बहुत कालसे झगड़े चल रहे थे। सहस्रबाहु अर्जुनके पुत्रोंने ध्यानावस्थित जमदग्नि ऋषिका सिर काट लिया। उनके पुत्र परशुरामने जो भगवान्के अंशावतार थे प्रतिज्ञा करके इक्कीस बार पृथ्वीके क्षत्रियोंका संहार किया।

भगवान् रामचन्द्रजी सातवें और श्रीकृष्ण भगवान् आठवें अवतार हुए। कथाएं प्रसिद्ध हैं।

बुद्धदेव नवें अवतार हुए। इनके देहावसान हुए सवा दो हजार बरसोंसे अधिक हुए। कल्कि अवतार होनेवाला कहा गया है।

भूमिका रूपसे सृष्टिका वर्णन यहां दिया गया। रामचरितमानसमें जितनी कथाएं आयी हैं उन्हें भरसक सम्बद्ध और कालक्रमसे हम देते हैं।

(४) दक्ष प्रजापति

ब्रह्माजीने सृष्टिकी उत्पत्तिके लिये मानस पुत्र उत्पन्न किये।

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद आदि पुत्र तपस्या करके परमार्थ और निवृत्ति मार्गमें चले गये। तब ब्रह्माने और पुत्र उत्पन्न किये जिनको प्रजापतित्व दिया। दक्षको अंगूठेसे उत्पन्न किया और प्रजोत्पत्तिका काम सौंपा। भगवानकी रजोगुणी मायासे उत्तेजित दक्ष प्रजापतिने पंचजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नीसे विवाह किया। उससे हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए जो सभी एक आचार और स्वभावके थे। पिताकी आज्ञासे सृष्टि रचनेके लिये पश्चिमको गये। सिन्धुनद और समुद्रके संगम नारायणसरमें स्नान करते ही मन निर्मल हो गये। वहां वे उग्र तप कर रहे थे, उसी समय नारदजीने आकर कहा कि "हे हर्यश्वो, तुम अज्ञानी हो। (१) पृथ्वीका अन्त, (२) एक पुरुषवाला देश, (३) जिसमें निकलनेका मार्ग नहीं देख पड़ता ऐसी गुफा (४) बहु रूप धरनेवाली स्त्री (५) व्यभिचारी पति पुरुष (६) दोनों ओर बहनेवाली नदी (७) पच्चीस पदार्थोंसे अद्भुत प्रतीत होता घर (८) कोई विचित्र कथा कहता हुआ हंस (९) आपसे घूमता और छुरे वज्रोंसे बना चक्र, और (१०) अपने सर्वस्व पिताकी आज्ञा। इन दस बातोंको जाने बिना सृष्टि क्योंकर रचोगे?" यह कूट प्रश्न सुन हर्यश्व अपनी बुद्धिसे अनेक बातें विचारने लगे और अन्तमें विचार करके मुनिकी परिक्रमा कर सभी हर्यश्व मुक्तिमार्गको चले गये। यह समाचार सुन दक्ष दुःखित हुए। ब्रह्माजीने समझाकर उन्हें शान्त किया। फिर दक्षने असिक्नीसे शबलाश्व नामक एक हज़ार पुत्र सृष्टि कर्मके लिये और उत्पन्न किये। वह भी वहीं जाकर भारी तप करने लगे। इनसे भी नारदजीने आकर वही कूट प्रश्न किये। नारदजीके उपदेश सुन शबलाश्वोंने भी अपने भाई हर्यश्वोंका अनुसरण किया और फिर घरको न फिरे*। यह समाचार सुन दक्षने अति कुपित हो नारदजीको

*दच्छ सुतन उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई।

शाप दिया कि "सम्पूर्ण लोकोंमें भटकते भटकते तेरा कहीं भी ठिकाना न रहेगा।" नारदजीने इस शापको स्वीकार कर लिया।

(५) ब्रह्मसभामें दक्षप्रजापतिका क्रोध

* प्रजापतियोंके सत्रमें ब्रह्माकी सभा लगी, जिसमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि बैठे थे। इस सभामें तेजस्वी दक्ष प्रजापति भी आये। उन्हें देख ब्रह्मा और शिवको छोड़ शेष सभी सभासद उठ खड़े हुए। जगद्गुरु ब्रह्माजीको नमस्कार कर दक्ष बैठ गये। उनके समीप महादेवजी पहलेसे ही विराज रहे थे। उनको देख वे अपना अनादर न सह सके। क्रोधसे बोले कि "हे देवता और अग्नि सहित ब्रह्मर्षियो! अज्ञान और मत्सरको छोड़ मैं जो कहता हूं सो सुनो। इस निर्लज्जने तो लोकपालोंके वंशमें कलङ्क लगा दिया, सत्पुरुषोंके चलाये मार्गको इस घमंडीने दूषित कर दिया। यह मेरी कन्या सतीका पाणि-ग्रहणकर मेरे शिष्यभावको पहुंचा है और मैं जो उठकर नमस्कार करनेके योग्य हूं उसका इसने वाणीसे भी सम्मान नहीं किया। इस क्रियाहीन, अपवित्र, मर्यादा तोड़नेवाले, अभिमानीको मैं अपनी कन्या देना नहीं चाहता था, परन्तु जैसे कोई शूद्रको वेद पढावे, वैसे मैंने इसको अपनी कन्या दी। यह मरघटमें प्रेत, भूत, गणोंको साथ ले उन्मत्तकी नाईं नङ्गा, खुले केश हँसता और रोता फिरता है तथा चिताकी भस्म लगाकर, प्रेतोंकी मुंडमाला और हड्डियोंके गहने पहन घूमता फिरता है। नाम तो इसका शिव है, पर है यह अशिव। आप भी मत्त है और मत्त ही लोग इसे भले लगते हैं और केवल भूत-गणोंका ही यह पति है। इस आचारभ्रष्टको ब्रह्माजीके कहनेसे मैंने अपनी कन्या दे दी।" इस प्रकार निन्दा कर सभासदोंकी बात

* ब्रह्म सभा हमसन दुख माना। तेहिते अजहुं करहिं अपमाना॥
भइ जग विदित दच्छ गति सोई। जस कछु सम्भु विमुख कै होई॥

न मान हाथमें जल ले दक्षने शाप दिया कि "यह देवगणोंमें नीच महादेव देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पावे।" शिवजीके मुख्य गण नन्दीश्वरने क्रुद्ध हो शाप दिया कि "किसीसे द्रोह न करनेवाले महादेवसे जो पुरुष मनुष्य-शरीरको श्रेष्ठ समझकर द्रोह करता है, वह भेददर्शी पुरुष तत्वसे विमुख हो जावे। केवल विषय-सुखकी लालसामें लगा हुआ यह दक्ष अत्यन्त ही स्त्रीकी कामना-वाला हो जावे और तुरत ही इसका मुख बकरेका हो जावे। जो लोग यहां दक्षका अनुसरण करनेवाले हैं वे जन्म-मरण पाया करें और महादेवके द्वेषी केवल कर्ममें आसक्त रहें। भक्ष्याभक्ष्य-विचारशून्य; केवल पेट भरनेके लिये विद्या, तप, व्रत धारण करनेवाले, ये ब्राह्मण इस जगतमें भिक्षुक हो-कर मांगते फिरें।" नन्दीश्वरका ब्राह्मणोंपर ऐसा शाप सुन क्रोधित हो भृगुऋषिने शापरूप ब्रह्मदंड चलाया कि "जो शिव-जीका व्रत वा अनुसरण करते हैं वे पाखंडी हो जावें और आचारभ्रष्ट होकर वे मूढ़ बुद्धिवाले जटा भस्म अस्थि धारण करके शिवजीकी दीक्षामें प्रवेश करें कि जहां मदिरा और आ-सव यहां देववत् पूजनीय गिने जाते हैं। मनुष्योंकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंकी तुम लोग निंदा करते हो। अतः तुम पाखंडमें पड़े रहो। परम शुद्ध वेदकी निंदा करके तुम पाखंडमें पड़ो कि जहां भूतोंका पति तुम्हारा स्वामी है"। इस झगड़ेसे सभा भंग हो गयी और बहुत काल पीछे सतीके शरीर-त्यागके समय दक्षकी दुर्गति हुई।

(६) गणेश*

गणेशजी आदि देव हैं। पार्वतीजीसे इनका अवतार हुआ। पार्वतीजीने शृंगारके समय इनको मन्दिरके द्वारपर तैनात कर दिया कि किसीको मेरी आज्ञा बिना मत आने देना। उसी

* "महिमा जासु जान, गनराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ"

समय देवयागसे शिवजी आये। माताकी आज्ञाके दृढव्रती गणेशजीने शिवजीको रोका। शिवजीने क्रुद्ध होकर गणेशजीका सिर अपने त्रिशूलसे उडा दिया। जब भीतर गये तो पार्वतीजीने स्वागत किया, परन्तु आश्चर्यसे पूछा कि हमारे नवनिर्मित पुत्रने आपको कैसे आने दिया। शिवजी बोले कि हमने उसकी धृष्टतापर उसका सिर उडा दिया। इसपर पार्वतीजी विलाप करने लगीं। शिवजीने उनके परितोषके लिये गण भेजे कि तत्काल ही किसी ऐसे बच्चेका सिर ले आवें जिसकी माताने उससे उपेक्षा की हो। गण एक हाथीके बच्चेका सिर लाये। उसे लगाकर गणेशजीको शिवजीने पुनरुज्जीवित कर दिया।

गणेशजीके सिवा शिवजीके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय भी हुए। स्वामि कार्त्तिकेय गणेशजीसे जेठे हैं। यह देवताओंके सेनापति हुए। इन्होंने तारकासुरका वध किया। गणेशजी बुद्धिके देवता प्रसिद्ध हुए।

एकबार ब्रह्माजीने देवताओंसे पूछा कि तुम लोगोंमें प्रथम पूजने योग्य कौन है। इसपर देवता आपसमें लडने लगे। अंतमें ब्रह्माजीने कहा कि जो सबके पहिले विश्वकी परिक्रमा कर आवेगा, उसीको हम स्थान देंगे। सब देवता अपने अपने वाहनों-पर चढ़ दौड़े, पर सबसे पीछे गणेशजी रह गये, क्योंकि उनका वाहन मूसा शीघ्र नहीं चल सकता था। इसपर वे बडे व्याकुल हुए। उसी समय नारदजी वहां आ गये। उन्होंने गणेशजीको सम्मति दी कि पृथ्वीपर रामनाम लिखकर और उसकी परि-क्रमा करके तुम ब्रह्माजीके पास चले जाओ। उन्होंने वैसा ही किया और अन्तमें राम नामका प्रभाव समझकर ब्रह्माजीने उन्हींको प्रथमपूज्य पद दिया।

(७) पार्वतीजीका रामनामपर विश्वास*

* "सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेई पिय संग भवानी"

किसी समय कैलासपर्वतपर शंकरजी विष्णुपूजन कर भोजन करने बैठे और पार्वतीजीसे कहा कि "हे पार्वती, तुम भी आओ, हमारे साथ भोजन करो।" इसपर पार्वतीजी बोलीं, "आप भोजन करें, मुझे अभी भगवान्‌के सहस्रनामका जप करना है, सो मैं पाठ करके प्रसाद लूंगी।" यह सुनकर महादेवजी हँसे और बोले, "तुम धन्य हो और परम भक्त हो। हे वरानने! तुम 'राम' यही नाम उच्चारण कर हमारे साथ भोजन करो, तुमको सहस्रनामके समान फल हो जायगा और तुम्हारा नियम भंग न होगा।" यह शिवजीका वचन सुन, विश्वास कर, श्रीरामनामोच्चारणकर महादेवके सङ्ग बैठकर भवानीने भोजन कर लिया।

(८) चन्द्रमा और बुध*

चन्द्रमाने जब त्रिलोकको जीतकर राजसूय यज्ञ किया तब उसने गर्वसे गुरु बृहस्पतिकी स्त्री ताराको बलात् हर लिया। बृहस्पतिने कई बार मांगा, पर चन्द्रमाने न दिया। तब देवता और दैत्योंमें घोर युद्ध हुआ। बृहस्पतिके द्वेषसे दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य भी चन्द्रमाके साथ हो गये, और शिवजीने बृहस्पतिके पिता अंगिरासे विद्या पढ़ी थी, इसलिये अपने पार्षदों सहित गुरु-पुत्र बृहस्पतिके पक्षमें हुए और देवताओं समेत इन्द्र भी बृहस्पतिके पक्षमें हुए। इस तरह ताराके लिये देवासुर संग्राममें भारी विनाश हुआ। फिर बृहस्पतिकी प्रार्थनासे ब्रह्माने चन्द्रमाको डांटकर तारा बृहस्पतिको दिला दी। बृहस्पतिने जब जान लिया कि तारा गर्भवती है तब तारासे बोले, "हे अभागिनी, यह दूसरेका गर्भ मेरे क्षेत्रसे जल्दी त्याग दे और मुझे संतानकी इच्छा न होती तो मैं ऐसी दशामें तुझे भस्म कर डालता। ताराने लज्जित हो गर्भको त्याग दिया। तेजस्वी बालकको देख बृहस्पतिने चाहा कि मैं लूं और उधर चन्द्रमाने

* ससि गुरुतियगामी नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर यान।

चाहा कि मैं। फिर इस बारेमें झगड़ा उठा। ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा, वह लज्जावश कुछ न बोली। इसपर कुमारने क्रोधित हो कहा, "हे कदाचारिणी, क्यों नहीं बोलती ?" ब्रह्माजीने एकान्तमें दिलासा देकर पूछा तो धीरेसे बोली, 'चन्द्रमाका है।' इससे वह पुत्र चंद्रमाने लिया। इसकी बुद्धिकी प्रखरता देख ब्रह्माने इसका नाम 'बुध' रखा।

(६) शिवजीका हलाहलपान और राहु केतुकी उत्पत्ति*

समुद्र मथनेसे चौदह रत्नोंमेंसे जब हलाहल विष निकला, तब चराचर जीव विकल हो कहीं शरण न पा श्रीसदाशिवजीकी शरण गये और प्रार्थना की कि हे भगवन्, इस विषसे हमारी रक्षा करो। प्रार्थना सुन और सबको दुःखी देख श्रीशंकरजीने उस हलाहल विषको हथेलीमें लेकर खा लिया। उस विषने महादेवजीके गलेको नीला कर दिया। वह भी शंकरजीका विभूषण हो गया। प्रायः साधु परदुःखसे दुःखी होते हैं और यही सर्वात्मा श्रीहरिकी मुख्य आराधना है। महादेवके हाथमेंसे जो किंचित् विष गिर पड़ा था, उसे सर्प, बिच्छू, जहरीली ओषधि और जहरीले जीवोंने ग्रहण किया।

सुरा निकली। उसे दैत्योंने ले लिया। शंख, धनुष, लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णु भगवान्‌ने लिये। ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा इन्द्रने लिये। पारिजात कल्पवृक्ष स्वर्ग गया। कामधेनु ऋषियों और देवोंके यहां गयी। रंभा इन्द्रने ली। चन्द्रमा पृथ्वीका और भगवान् भास्करका आश्रित हुआ। पंच

---

* नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमीको॥
असुर सुरा, बिष संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

धारण रहा हुए। अन्तमें मथनका सारभूत अमृतका कलश लिये हुए धन्वन्तरि वैद्य निकले तो दानव उनसे अमृतघट छीनकर ले भागे और देवता बेचारे मुह देखते रह गये। नारायणने कहा घबराओ मत, मैं उपाय करता हूं। इधर दानव आपसमें झगड़ने लगे कि "हम पहले, तुम नहीं, तुम नहीं।" जो दुर्बल दैत्य थे पुकारने लगे कि भाई देवताओंने भी परिश्रम किया है, अतः सबको बराबर भाग मिलना चाहिये। इतनेमें भगवान् अत्युत्तम सुंदरी स्त्रीका मायारूप धारणकर वहां पहुंचे उन्हें देख दैत्य काममोहित हो गये, उसे ही अमृतकलश सौंप दिया। तब स्त्री-रूप भगवानने मुस्कुराकर कहा कि यदि मैं कुछ उचितानुचित भी करूं तो तुम्हें मंजूर है? तब तो मैं बांट दूं? दैत्योंने वह भी स्वीकार किया, तब सबके सब स्नान, व्रत, होम दानादि कर-स्वस्तिवाचन करा, कुशके आसनपर एक गृहमें पूर्वाभिमुख बैठे। मोहिनीरूप भगवानने दुष्ट दैत्योंको अमृत देना मानो सर्पोंको दूध पिलाना समझा। देवता और दैत्योंकी दो जुदी जुदी पंक्तियां कीं और स्त्री चरित्रसे दैत्योंको ठगकर दूर बैठे हुए देवताओंको अमृत पिला दिया और दैत्य अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाह तथा उस स्त्रीके स्नेहसे कि यह रुष्ट न हो जाय, चुप बैठे रहे और कुछ भी न बोले। उस अवसरपर राहु नामक दैत्य देवताओंका रूप धरकर देव पंक्तियोंमें सूर्य्य और चन्द्रमाके बीचमें घुस बैठा था और अमृत पीने लगा। इसकी चन्द्र सूर्य्यने सूचना दी सो भगवानने चक्रसे उसका सिर काट दिया। कंठके नीचे अमृत चला गया था इससे धड़ और सिर अमर हो गये। उस धड़ और सिरको ब्रह्माजीने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया।

(१०) प्रह्लाद और नृसिंहावतार

हिरण्यकशिपुके चार बेटे थे, जिनमेंसे छोटे प्रह्लाद बड़े भारी

विष्णुभक्त थे। पिताको विष्णुसे विरोध था। इसीलिये पुत्र सदा नजरबन्द रहता था। पुत्र शंड और अमर्क दोनों अपने घरके काममें लगे थे, उसी समय प्रह्लादने अपने साथके पढ़नेवाले बालकोंको बुलाकर ज्ञानका उपदेश किया कि तुम लोग वृथा अपनी आयु मत गंवाओ और ईश्वरका भजन करो, इसीमे कल्याण है। मैंने यह ज्ञान नारद मुनिसे पाया, सो तुमसे कहा। बालक बोले कि हम तुम एक ही अवस्थाके हैं और सिवाय गुरुके अबतक हमको या तुमको कोई और शिक्षक नहीं मिला,फिर तुम्हे यह ज्ञान नारदजीसे कैसे मिला? प्रह्लादने कहा, भाइयो, जब मेरे पिता मंदराचलपर तपस्या करने गये तब देवताओंने दैत्योंको निराश्रय जान घोर युद्धका उद्यम किया और उनके भयसे दैत्योंके यूथपति घबराकर अपने स्त्री-पुत्र धनादि सब छोड़ इधर-उधर भाग निकले। ऐसा अवसर पा देवताओंने राजाका शिविर लूट लिया। इसीमें मेरी माता कयाधुको पकड़कर ले चले। उसी समय अनायास नारद आन मिले। बोले "हे सुरेन्द्र! इस पतिव्रता निरपराधिनी स्त्रीको छोड़ दो, इसे न ले जाना चाहिये।" इन्द्र बोले "भगवन्! इसके उदरमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है; जो अत्यन्त भयंकर होगा। प्रसव होनेतक अपने पास रखूंगा, उत्पन्न होनेपर लड़केको मारकर इसे छोड़ दूंगा।" इसपर नारदजी फिर बोले "इसके उदरमें निष्पाप महावैष्णव महात्मा है, जो मारे न मरेगा, क्योंकि भगवान्के भक्त महा बलवान् होते हैं।" ऐसा वचन सुन मेरी माताकी प्रदक्षिणाकर, इन्द्र स्वर्गको चला गया। नारदजीने मेरे पिताके आनेतक मेरी माताको अपने आश्रममें ले जाकर रखा। दयालु मुनिने धर्मका तत्व और ज्ञान मेरी माताको समझाया, साथ ही पुत्रको भी बोध देनेका उद्देश्य था। स्त्री होने और बहुत काल बीतनेके कारण मेरी माताको तो बोध बिल्कुल जाता रहा, परन्तु मुझे नारदजीकी कृपासे उसका स्मरण अबतक बना है। यदि तुम

लोग भी मेरी बात मानो तो तुमको भी बोध हो सकता है और श्रद्धा हो तो मेरे ही जैसी ब्रह्मविद्या भी प्राप्त हो सकती है। अतः हे दैत्य-पुत्रो! प्राणीमात्रको अपने बराबर जान सबपर दया करो और ईश्वरकी भक्ति तथा नाम स्मरण करो, यही मुख्य स्वार्थ है।" अपने पिताके विरुद्ध प्रह्लाद इसी तरह जब जब अवसर मिलता था, उपदेश करता था। हिरण्यकशिपु प्रह्लादको अनेकानेक यातनाएं देने लगा, साथ ही भगवान् रक्षा भी करने लगे। पिताने विरोधकर इनपर शस्त्रोंसे प्रहार करवाया, पर्वतपरसे गिरा दिया, जलमें डुबो दिया, अग्निमें डाल दिया, विष पिला दिया, हाथीसे रौंदवाया, सर्पसे कटवाया, पर किसी प्रकार प्रह्लादको न मार सका। उधर प्रह्लादके सत्संगसे पवित्र हो प्रह्लादके साथी बालक गुरुकी शिक्षा छोड़ प्रह्लादके अनुगामी हुए। डरके मारे गुरु शुक्राचार्यके पुत्रोंने यह समाचार हिरण्यकशिपुको जा सुनाया। वह क्रोधसे थर्रा उठा और पुत्रको बुला अति कठोर वाणीसे बोला "रे कुलकलंक, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले, तू निर्भयकी नाईं किसके बलसे बर्ताव करता है? प्रह्लादने उत्तर दिया "हे राजन्! सब स्थावर जंगममें, तुम्हारेमें मेरेमें, तथा सम्पूर्ण सृष्टिमें एक ईश्वर ही ब[ल] और आधार है। अपना असुरभाव छोड़ मनमें समता ला[ओ] इस अजित और चंचल विपरीतगामी मनमें समता रखना ह[ी] ईश्वरकी बड़ी आराधना है"। हिरण्यकशिपु फिर बोला "[तू] निश्चय मरना चाहता है, बहुत बकवाद कर रहा है। अच्छा, [रे] मन्दभाग्य, मेरे, सिवा तेरा दूसरा ईश्वर कहाँ है"। प्रह्लादने कहा, "सब कहीं"। हिरण्यकशिपु बोला, "तब इस खंभेमें क्यों नहीं है"? प्रह्लाद बोले, "इसमें तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है" यह सुनकर हिरण्यकशिपुने खम्भेकी ओर देखकर कहा, "[तू] विपरीत बोल रहा है। अभी मैं तेरा सिर धड़से अलग क[र] देता हूँ । जिस विष्णुका करता है उसे . देखूँ ।

कैसे तेरी रक्षा करता है"। इस प्रकार महावैष्णव पुत्रको दुर्वचनसे पीड़ित कर खड्ग ले आसनसे उछल उसने खम्भेमें एक मुक्का मारा। तुरत उस खम्भेसे महा भयंकर शब्द हुआ जिसे सुन त्रिलोक काँप उठा। दैत्य डर उठे। शब्द करनेवालेको किसीने न देखा। हिरण्यकशिपु भौंचक सा हो चारों ओर देख रहा था कि उसी खम्भेको चीर श्री नृसिंह भगवान् निकल पड़े। इनका रूप नर और सिंहसे मिश्रित देख हिरण्यकशिपु घबड़ाया कि ब्रह्माके वरदानोंसे विलक्षण यह रूप न तो मनुष्यका है और न पशुका, अवश्य यह रूप मेरे मारनेको विष्णुने धारण किया है। यह सोच उसने दौड़कर एक गदा भगवान्की छातीमें मारी पर उन्होंने इसे पकड़ लिया। फिर खेलानेके लिये छोड़ भी दिया। फिर यह ढाल तलवार लेकर दौड़ा, तब उन्होंने इसे देहलीके ऊपर सायंकालके समय गोदमें लिटाकर अपने नखोंसे चीर डाला और प्रह्लादकी रक्षा की।

इस प्रकार नाम जपनेसे श्रीहरि प्रसन्न हुए और प्रह्लादको भक्तशिरोमणि * बनाया। इन्हीं प्रहलादजीके पोते राजा बलि हुए।

(११) कश्यप, अदिति, वामन और बलि

ब्रह्माके एक पुत्र मरीचि हुए। मरीचिके कश्यप। महर्षि कश्यपने दक्षकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया। इनके ही गर्भसे असख्य और अगणित प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। नाग, व्याल, कीट, पक्षी, दैत्य, दानव, मानव, देवता, पशु, निदान सारे प्राणियोंके पिता कश्यप भगवान् हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके यही प्रजापति हैं। गरुड़ इन्हींके पुत्र हैं। वामन भगवान् इनके

*"नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू"।

दो पुत्र अदितिके गर्भसे हुए। इन दोनोंने पुनः तपस्या की कि भगवान् फिर फिर उनके पुत्र हों। भगवान्‌ने इन्हें इस सम्बन्धमें वर दिये। एक कल्पमें इसी वरदानके अनुसार कश्यप और अदिति दशरथ और कौसल्या हुए।

दितिके वंशज दैत्योंमें हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद हुए। वलि इनके पोते थे।

जब इन्द्रने प्रह्लादके पोते वलिकी सब सम्पत्ति छीन ली और प्राण भी ले लिये तब भृगुवंशी ब्राह्मणोंने उसे पुनः जीवित किया, इसपर वलि शिष्य-भावसे उनकी सेवा करने लगा और उसकी इच्छा स्वर्ग जीतनेकी हुई। तब भृगुवंशी ब्राह्मणोंने प्रसन्न हो उससे विश्वजित नामका यज्ञ कराया जिससे प्रसन्न हो अग्निने उसे इन्द्रके समान दिव्य शस्त्रास्त्र इत्यादि दिये और प्रह्लादने एक पुष्पमाला दी जो कभी न सूखे। तदनन्तर उसने सुसज्जित हो इन्द्रपर चढ़ाई की और पुरीको घेरकर शुक्राचार्य्यके दिये हुए "महास्वन" शंखको बजाया। वलिका ऐसा भारी उद्यम देख भयभीत हो अपने गुरु बृहस्पतिसे इन्द्रने सब वृत्त कहा, तब बृहस्पति बोले "हे सुरेन्द्र, वलिको ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने अपना तेज दिया है। इस समय सिवाय परमेश्वरके इसके सामने कोई भी नहीं ठहर सकेगा। सो तुम स्वर्ग छोड़ सब देवताओंके संग भाग जाओ। जब यह उन्हीं ब्राह्मणोंका अपमान करेगा स्वयं श्रीहत हो जायगा। यह सुन सब देवता छिपकर भाग गये और राजा वलिने इन्द्रकी पुरीमें रहकर त्रिलोकीको वश कर लिया। इस घटनासे इन्द्रादि देवताओंकी माता अदिति अति पीड़ित और उद्विग्न हो गयी। कश्यपमुनिके कहनेसे उसने भगवान विष्णुका पयोव्रत किया जिससे प्रसन्न हो भगवान्‌ने अदितिका पुत्र होकर देवताओंका उद्धार करना स्वीकार किया। भादों सुदी द्वादशीको कश्यप अदितिको पहले चतुर्भुज दर्शन हुआ और फिर वही रूप बटु वामनका हो गया जिसे देख सब

ऋषि प्रसन्न हुए और कश्यपने जातकर्म किया। समयपर वामन-को यज्ञोपवीत दिया गया जिसमें सूर्यने गायत्रीका उपदेश, बृहस्पतिने उपवीत, कश्यपने मेखला, भूमिने कृष्णाजिन, चन्द्रमाने दंड तथा अन्नपूर्णाने भिक्षा दी। इस प्रकार सबसे आदर पाकर वामन वटुने हवन किया। पीछे उन्होंने सुना कि भृगुवंशी ब्राह्मण बलिको एकसौ अश्वमेध यज्ञ कराते हैं। यह सुन वामन बलिके यज्ञमें पधारे। यजमान प्रसन्न हो आप आसन लाया और चरण धोकर वामन भगवानकी पूजा की और बोला "हे वटु! पृथ्वी, धन, कन्या, भूमि अथवा जो आपको वाञ्छित हो मांगो और लो।" इसपर भगवान उसकी प्रशंसाकर बोले "हे राजा तुम्हारा सत्य वचन तुम्हारे कुलके योग्य है और तुम्हें धर्मयुक्त यशस्वी होना ही चाहिये, क्योंकि आपके प्रवर्त्तक भृगुवंशी ब्राह्मण और पितामह प्रह्लाद-प्रमाणभूत हैं। आप भी अपने पूर्वज तथा और भी उदार-कीर्त्ति जनोंका अनुसरण करते हो। अतः मैं थोड़ी पृथ्वी मांगता हूँ सो भी कितनी? कि अपने पैरसे तीन पैर। सो हे दैत्येन्द्र, चाहे आप जगत्के स्वामी बड़े उदार हो परन्तु मैं इससे अधिक कुछ नहीं चाहता।" बलि बोले कि "हे ब्राह्मणके बालक, तेरी बातें तो बड़े बड़े वृद्धोंके समान हैं, परन्तु अबतक तू अज्ञान ही है। जो मेरे पास आया वह फिर याचनाके योग्य नहीं रहता। इसलिये हे वटु, जिसमें तेरा काम चले उतनी पृथ्वी तू इच्छानुसार मांग ले।" इसपर भग-वान् बोले "हे देव, जिसे तीन पैर पृथ्वीमें सन्तोष नहीं उसे त्रैलोक्य मिलनेसे भी तृप्ति न होगी। जो इच्छासे मिल जाय उसीमें सन्तोष करनेसे ब्राह्मणका तेज बढ़ता है। अतः आपसे मैं तीन ही पैर पृथ्वी मांगता हूं।" तब बलिने कहा "अच्छा, जैसी आपकी इच्छा जितना चाहिये उतना ही लीजिये।" यह कहकर उसने दान करनेके लिये जलपात्र हाथमें लिया। भग-

वान्का अभिप्राय जान अपने शिष्य बलिसे शुक्राचार्य्य बोले "हे राजा, यह बटु नहीं किन्तु भगवान्ने माया करके अदितिके गर्भसे उत्पन्न होकर रूप रचा है। यह तेरा सब राज्य लेकर इन्द्रको दे देवताओंका कार्य्य-साधन करेंगे और तेरी प्रतिज्ञा भी पूरी न होगी। ये विश्वरूप एक पैरसे पृथ्वी और दूसरेसे आकाश नाप लेंगे फिर तीसरा पैर कहांसे आवेगा? फिर तू प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो नरकका अधिकारी होगा"। बलि थोड़ी देरतक चुप रहा। फिर कुछ विचारकर बोला "मैं प्रह्लादका पौत्र होकर धनके लोभसे ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके नहीं कर जाऊं, यह न होगा। किन्तु मैं दूंगा, मैं अपने सर्वस्वके जाने वा नरकसे वा किसी और हानिसे नहीं डरता जैसा कि मैं ब्राह्मणसे ठगी करते डरता हूं। धनादि सब पदार्थ अनित्य हैं, न देनेसे भी तो यह सब मर जानेपर छूट ही जावंगे, तो इससे अपने हाथसे ही क्यों न दे दें। अतः ये चाहे विष्णु हों, अथवा कोई हों मैं तो इनको मनवाञ्छित दूंगा।" बलिने गुरुका कहना न माना। शुक्राचार्य्यने शाप दिया कि तू बड़ा मूर्ख है, तूने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये तुरंत ही लक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।" इसपर भी वह महात्मा सत्यसे न डिगा और पूजनकर वामन भगवान्को पृथ्वी संकल्प करके देने लगा। उसकी स्त्री विन्ध्यावली सोनेकी झारीमें जल लेकर आयी और राजाने वामनके पैर धो वह जल अपने माथेपर छिड़का। उस समय देवताओंने दुन्दुभि बजाकर फूल बरसाये और प्रशंसा करने लगे कि इसने जानकर भी यह दुष्कर कर्म किया। तदनन्तर बलिने संकल्प कर दिया और वामन भगवान बढ़ने लगे। उनके शरीरमें सम्पूर्ण जगत् समाया हुआ देख पड़ने लगा, सब चराचर जीव, देवता, दैत्य, उस रूपमें ही देख पड़े। भगवानने एक पैरसे पृथ्वी तथा दूसरे पैरसे स्वर्गादि लोक नाप लिये, तीसरे पैरके लिये कुछ भी न बचा। उस समय सब देवता पूजा और स्तुति करने लगे और ऋक्षराज जाम्बवान् भेरीका शब्द

कर परिक्रमा करने लगे। वलि छले गये यह देख उसके अनुचर के लिये शस्त्र ले भगवान्‌को मारने दौड़े और पार्षद उनका मुका-बला करने लगे। वलिने अपने अनुचरोंको तुरन्त रोका। गरुड़-जीने भगवान्‌का अभिप्राय जान वरुणपाशसे वलिको बांध लिया। सब दिशा और सब लोकोंमें हाहाकार मच गया। भगवान्‌ने कहा "हे दैत्य! तूने मुझे तीन पैर पृथ्वी दी है, सो दो पैरमें तो मैंने सब नाप ली, अब तीसरा दे। जो प्रतिज्ञा करके न देगा नरकमें पड़ेगा, इसमें तेरे गुरुकी भी सम्मति है। तूने मुझे धनके अभिमानसे 'हां दूंगा' कहकर ठगा है।" बलिने इसपर भी धैर्य न छोड़ा और दृढ़तापूर्वक बोला "सुरवर्य! यद्यपि मैंने आपको नहीं किन्तु आपने ही मुझे ठगा है क्योंकि जिस रूपसे आपने मुझसे पृथ्वी ली उससे नहीं किन्तु दूसरे रूपसे नापी है, तथापि मैं अपनी प्रतिज्ञा नही छोड़ता। तीसरा पैर आप मेरे सिरपर धरिये। मैं पदच्युत होनेपर भी जैसा झूठसे डरता हूं वैसा अपनी मानहानि वा नरकसे नहीं डरता। निस्सं-देह आप परोक्षरूपसे हम मदान्ध दैत्योंके गुरु हैं और पद-भ्रष्ट-कर दण्ड दे हमारी आँखें खोलते हैं। आपने मुझे बांधा यह परम अनुग्रह किया। सो मैं तो इसका पात्र न था परन्तु मेरे दादा प्रह्लाद जो आपके अनन्योपासक थे उन्हीका महाभाग्य मुझे आपके चरणोंमें लाया है, यह मेरे पुण्यका प्रताप नहीं किन्तु प्रह्लादहीके पुण्यका प्रताप है।" ऐसा बलि कह रहा था उसी समय परम भक्त प्रह्लाद भी वहां आये जिन्हें देख वलिने प्रणाम किया, परन्तु पूर्वकृत अभिमानसे लज्जित हो सिर झुका लिया और प्रह्लादजी आँखोंमें जल भर लाये और भग-वान्‌को प्रणामकर स्तुति की कि "हे भगवन्! आपने मेरे पौत्रको बांधा + नहीं किन्तु उसपर अनुग्रह किया कि इतना ऐश्वर्य

+ वलि बाधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाय।

देकर लौटा लिया, सो मानो मोहसे छुड़ा लिया।" भगवान् बोले "मैं जिसपर अनुग्रह करता हूं उसका साभिमान ऐश्वर्य हर लेता हूं और फिर अपनी इच्छासे उसे सम्पत्ति देता भी हूं। यह बलि मेरी मायाको जीत गया है। यह इतनी आपत्ति आनेपर भी नहीं घबराया, न तो गुरुके झिड़कने और शाप देने और न मेरे छलयुक्त वचनोंपर ही इसने सत्यधर्म छोड़ा। अतएव देव-दुर्लभपद इसे मिल चुका है। सावर्णि मन्वन्तरमें यह इन्द्र होगा और तबतक यह सुतललोकमें रहे जहां आधिव्याधि किसी प्रकारका उपद्रव नहीं है। भावी इन्द्र! तुम अपने ज्ञातिवालोंको ले सुतललोकमें जाओ जहां लोकपाल भी तुम्हारा पराभव न कर सकेंगे और जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेगा उन्हें मेरा सुदर्शन चक्र मार डालेगा और मैं स्वयं सदा तुम्हारी रक्षा करूंगा। हे वीर! मैं सदा तेरे द्वारपर रहूंगा और तुझे सर्वदा मेरे दर्शन हुआ करेंगे। जिससे तेरा आसुर-भाव भी धीरे धीरे सब मिट जायगा।" ऐसा कहकर भगवान्‌ने बलिको बन्धनमुक्त किया और बलि तथा प्रह्लाद भगवानकी स्तुति और परिक्रमाकर दण्डवत करके सुतललोकको चले गये। बलिने सर्वस्व खो दिया पर अपने वचनपर दृढ़ रहा।

(१२) ध्रुवकी ग्लानि और तपस्या*

आदि कल्पके पहले मनुके पुत्र राजा उत्तानपादकी स्त्रियां थीं सुनीति और सुरुचि। दोनों रानियोंमेंसे छोटी सुरुचिपर राजाका अधिक प्रेम था। इनके एक एक पुत्र भी था बड़ी सुनीतिके पुत्रका नाम ध्रुव और छोटी सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम था। एक समय राजा उत्तमको गोदमें बैठाकर प्यार कर रहे थे जब सुनीतिका पुत्र ध्रुव भी खेलते खेलते आकर राजाकी गोदीमें चढ़ने लगा। परन्तु राजाने कुछ आदर वा प्यार

*ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं, पायेउ अचल अनूपम ठाऊं।

न किया। गोदीमें चढ़नेका अभिलाषी देख विमाता ध्रुवसे डाहसे बोली "बेटा तुम राजाके पुत्र तो हो, पर मेरे गर्भसे उत्पन्न नहीं हुए। इसलिये राजाके आसनपर चढ़ने योग्य नहीं हो। तुम चाहो तो तपसे परमेश्वरकी आराधना करो कि मेरे गर्भसे जन्म धारण करो।" विमाताका ऐसा दुर्वचन सुन ध्रुवका हृदय ग्लानिसे विध गया और क्रोधसे भर होठ फरकाते रोते हुए, उदासमुख, दीर्घश्वास लेते बालक अपनी माता सुनीतिके पास चला आया। रानी सब वृत्तान्त सुन अपने पुत्र ध्रुवसे यों बोली, "हे तात किसीको दोष मत दो। सुरुचिने जो कहा है सो ठीक ही है क्योंकि एक तो तू मुझ दुर्भागिनीसे जन्मा फिर मेरे ही दूधसे पला। सो हे बेटा, यदि तू उत्तमके ऐसा राज्यासन चाहता है तो भगवान्की आराधना कर। भगवान्के सिवाय तेरा दुःख मिटानेवाला कोई नहीं है।" माताका ऐसा वचन सुन बुद्धिको स्थिर कर ध्रुव घरसे निकले। ध्रुवके इस अभिप्रायको जान मार्गमें नारदजी मिले और उनके माथेपर हाथ धर बोले कि "वाह रे क्षत्रियोंके मानभंगका प्रभाव कि ऐसा छोटा बालक भी विमाताका दुर्वचन न सह सका।" फिर उन्होंने ध्रुवसे कहा कि "हे पुत्र! अभी तू बालक है, असंतोष मत कर। दुःख सुख सब कर्मोंके अनुसार होता है। हठ छोड़ दे, जब बड़ा हो तब तपस्याका साहस करना।" दृढ़मति ध्रुव बोले "आपने जो कुछ कहा सब ठीक है, परन्तु मुझ घोर क्षत्रिय-स्वभावको प्राप्त दुर्विनीतके हृदयमें वह नहीं ठहर सकता क्योंकि विमाता सुरुचिके वाक्यसे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। हे ब्राह्मण, मैं ऐसा त्रिलोकी पदको जीतना चाहता हूं जहां मेरे पिता वा और कोई भी न पहुंच सके। इसके लिये जो उत्तम मार्ग हो सो बताइये।" ध्रुवके ऐसे दृढ़ वचन सुन नारदजी प्रसन्न हुए और द्वादशाक्षर मंत्र ध्यानादि सहित बताकर कहा कि तुम जमुनाजीके तटपर मधुवनमें जाकर

ईश्वरका ध्यान और तप करो। एकाग्रचित्त हो बालक नारदके आज्ञानुसार भगवानका भजन करने लगा। प्रथम मासमें प्रत्येक तीसरी रात्रिके अन्तमें कैथ और बेर खाकर भगवान्‌का अर्चन किया, दूसरे मासमें छठे छठे दिन आपसे गिरे पत्ते और घास खाकर अर्चन किया, तीसरे मासमें नवें नवें दिन जलमात्र पीकर, चौथेमें बारहवें बारहवें दिन पवनमात्र पीकर तथा श्वास रोककर ईश्वरका ध्यान किया और पांचवें मासमें श्वास रोककर एक पैरसे वृक्षकी नाईं अचल होकर तप करने लगा। ऐसे उग्र तपसे भगवानका आसन डोल गया। भगवान् गरुड़पर चढ़ भक्त ध्रुवके सम्मुख साक्षात् प्रकट हुए और उसकी ध्यानमूर्त्तिको खींच लिया, जिससे घबराकर उसने आंखें खोल दी। सामने वही मूर्त्ति देख उसने दण्डवत् किया और स्तुति करनेकी अभिलाषा करता था परन्तु बालक होनेके कारण स्तुति करना नहीं जानता था। इस अभिप्रायको समझ भगवान्‌ने अपना शंख बालकके गालोंमें छुआ दिया जिससे वह दैवी वाणीको प्राप्त हो भक्तिपूर्वक भगवान्‌की स्तुति करने लगा। जब स्तुति कर चुका, भगवान् बोले, "हे राजपुत्र, मैं तेरे हृदयके संकल्पको जानता हूं। तेरा कल्याण होगा और जिस पदको आजतक कोई नहीं पहुंचा और जिसका प्रलयतक नाश नहीं होता तथा जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र, तारा और सप्तर्षि आदि सब परिक्रमा करते हैं वह अति दुर्लभ पद मैं तुझे देता हूं और तेरा पिता तुझे राज्य देकर बनमें चला जायगा और तू छत्तीस हजार बरस पृथ्वीपर राज्य करेगा। तेरा भाई उत्तम मृगयामें मारा जायगा और उसीके ध्यानमें उसकी माता वनमें जाकर अग्निमें जल मरेगी। फिर यज्ञोंद्वारा मेरा भजन कर और यहांके सुख भोग तू अन्तमें मेरा स्मरण करेगा, तदनन्तर सबसे पूजनीय सप्तर्षियोंसे भी ऊपर मेरे उस पदको प्राप्त होगा जहां जानेसे फिर आवागमन नहीं होता।" ऐसे वर प्रदानकर

भगवान् अपने धामको पधारे और ध्रुवकी अब कुछ राज्याभिलाषा यद्यपि न थी तथापि भगवान्‌की आज्ञासे अपने पुरको चले गये।

(१३) वेनु *

ध्रुवके वंशमें कई पीढ़ी पीछे एक बड़े धर्मात्मा राजा अंग हुए। अंगके सन्तान न थी। ब्राह्मणोंने यज्ञ कराया। यज्ञपुरुषने खीर दी जिसे राजाने अपनी भार्या सुनीथाको खिलाया। समय होनेपर पुत्र हुआ। वही वेनु था। यह लड़का बचपनसे ही अपने पिताकी मृत्यु मनाने लगा। शिकारको निकलता था तो पशुओंको तथा दीन जनोंको मारा करता था। इससे जिधरसे यह निकलता, लोग देखकर कहते 'वेनु आता है'। वेनु बड़ा निर्दय और क्रूर था। खेलते हुए बराबरके बच्चोंको पशुकी तरह मार डालता। राजाने अनेक भांति शिक्षा की, पर इसे बुद्धि न आयी। दुःखी होकर आधी रातको अपनी स्त्री सुनीथाको सोती छोड़ राजा घरसे चला गया। बहुत खोज हुई परन्तु राजाका, जो कहीं दूर नहीं गये थे, कहीं पता न लगा। अन्तको ब्रह्मवादी भृगु आदि ऋषियोंने मंत्रियोंका विरोध होते हुए भी वेनुका ही राज्याभिषेक कर दिया। भयंकर वेनुके राजा होते ही प्रजा छिपने लगी। अपनेको सबसे बड़ा माननेवाला वेनु महात्माओंका अपमान करने लगा और निरंकुश मस्त हाथीकी तरह आकाश और पृथ्वीको कँपाता रथपर बैठ घूमने लगा। फिर उसने डौंड़ी पिटवा दी कि "द्विजो! तुम न तो होम करो, न दान दो, और न भजन करो।" वेनुकी कुचालोंसे लोगोंको दुःखी होते देख सब ऋषि इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि एक ओर तो अत्याचारियों और चोरोंका भय, दूसरी ओर राजाका भय, यह तो वह दशा हुई कि जो दोनों ओरसे जलती हुई लकड़ीके बीचमें बैठे हुए कीड़ेकी हो। अराजकताके भयसे स्वयं हमने ही

---

* लोक वेदतें बिमुख भा अधम न वेनु समान।

इसे राजा बनाया, अब जैसे सांप दूध पिलानेवालेको ही काटता है वैसे ही यह स्वभावसे दुष्ट राजा प्रजाका नाश करना चाहता है। अस्तु एकबार चलकर समझा दें, जिससे फिर पापके भागी न हों। ऐसा विचार अपने क्रोधको गुप्त रख मुनि उसके पास गये और नीतियुक्त वाणीसे उसे शान्त कर बोले, "हे राजा, आपकी आयु, बल, लक्ष्मी, और कीर्ति बढ़ानेके लिये हमलोग विनती करते हैं, सुनिये! मन, वाणी, काय और बुद्धिसे धर्माचरण करो, इससे यह लोक मिलता है और निष्काम कर्म करनेसे मोक्ष भी मिलता है। इसलिये प्रजाकी रक्षाका राजधर्म नष्ट न होना चाहिये। धर्म नष्ट होनेसे राजा राजसे भ्रष्ट हो जाता है। दुष्ट कारिन्दों और चोरोंसे प्रजाकी रक्षा करनेसे राजाको दोनों लोकोंमें सुख मिलता है। हे महाभाग, जिस राजमें प्रजा अपने अपने धर्मके अनुसार भगवान्‌की अर्चा करती है उससे ईश्वर भी प्रसन्न रहते हैं। सो हे महाराज! सब लोग तुम्हारे ही कल्याणके लिये यज्ञद्वारा देवता और वेदमय भगवानका पूजन करते हैं। अतः देवताओंका अपमान करना उचित नहीं है।" यह सुन वेनु बोला, तुम लोग अधर्मको धर्म माननेवाले मूर्ख हो, क्योंकि आजीविका देनेवाले पतिको छोड़कर जारकी उपासना करते हो। विष्णु कौन है, जिसकी तुम लोग दृढ़ भक्ति करते हो? विष्णु और सब देवता राजाके शरीरमें रहते हैं। राजा सर्वदेवमय है। हे ब्राह्मणो! मत्सर छोड़कर तुम सब यज्ञादि कर्म और बलिसे मेरा पूजन करो। मेरे सिवाय कौन पुरुष आराधना योग्य है?" फिर भी ऋषियोंने उसे अनेक भांति समझाया, पर उस हतभाग्यकी समझमें कुछ न आया। अब ब्राह्मण अपने क्रोधको रोक न सके। सोचा कि इस दुष्टको मार डालना ही उचित है। जीयेगा तो जगतको पीड़ा देता रहेगा। ऐसा निश्चयकर ब्राह्मणोंने क्रोधकर "हुंकार" शब्दसे राजाको मार डाला। ... नहीं रहा। अतः इन माता-

(१४) पृथुराज*

राजा वेनुके मरनेपर जगत्में अराजकता छा गयी। इसपर ऋषियोंने वेनुके जघेको मथा। अर्थात् वेनुद्वारा स्थापित और तदाश्रित वैश्य-समाजको मथा। उससे एक मनुष्यको राष्ट्रपति-के आसनपर बिठाया। इसीलिये उसका नाम "निषाद" हुआ। परन्तु वह महाचाण्डाल निकला। उसे भी ऋषियोंने शापित करके निकाल दिया। फिर बाहु मथा, अर्थात् वेनुद्वारा स्थापित और तदाश्रित क्षत्रियोंमेंसे एक वीर्य्य बुद्धिशाली आत्मवान् पृथु-को राजा चुना। पृथुने राज्यका अपूर्व प्रबन्ध किया। इसने धनुष बाण ले पृथ्वी रूपी गौको जिसने अपने स्तनोंमें रत्नरूपी दूध चुरा लिया था दौड़ाया। अन्तमें चतुःसमुद्रपयोधरा वसुंधराने अपने रत्न दिये। भूमण्डलमें खेती जोर शोरसे होने लगी। चारों समुद्रोंमें जहाजोंद्वारा वाणिज्य व्यापार बड़े वेगसे चढ़ा। सारे संसारपर राजा पृथुका प्रभुत्व हो गया। भारतका यह सार्वभौम प्रजातंत्र राज्य पहलेपहल राजा पृथुके राष्ट्र-पतित्वमें हुआ। इसीलिये इस भूतलका नाम पृथ्वी पड़ा। राजा पृथु बड़ा भक्त था। इसने भगवान्से वरदान लिया कि आपके चरित और सुयश,सुननेको मेरे कानोंमें दस हजार कानोंकी शक्ति हो जाय।

(१५) चित्रकेतु

शूरसेन देशमें† चित्रकेतु नामका चक्रवर्त्ती राजा था। इसके अनेक रानियां थीं। कोई पुत्र न था। महर्षि अंगिराने त्वष्ट्र देवताका चरु बनवाकर यज्ञ किया और उसकी बड़ी तथा सर्व-श्रेष्ठ पटरानी कृतद्युतिको उस चरुका अवशिष्ट अन्न दिया और कहा, " हे रानी, इसके खानेसे तुमको एक पुत्र होगा

*पुनि प्रनवउं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहसदस काना।
†चित्रकेतु कइ घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

परन्तु यह तुमको हर्ष और शोक देनेवाला होगा"। काल पाकर उस यज्ञके प्रभावसे कृतद्युतिने एक अति सुन्दर बालक जना। राजाने जातकर्मकर प्रसन्न हो लाखों गाय हाथी, घोड़े, सुवर्ण इत्यादि दान दिये। राजाको कुमारसे अत्यन्त प्रीति बढ़ी परन्तु रानीकी सवतोंको संतान न होनेके कारण भारी परिताप हुआ। कुमारको उन्होंने विष दे दिया। पुत्रको जब मरा देखा तो राजा और रानी मूर्छित हो गिर पड़े। रोने-पीटनेका शब्द सुन सब सवतें भी बनावटी शोक करने लगीं। नारदजीके संग वही अंगिरामुनि फिर उस समय आये। राजाको मुर्देकी नाईं पड़े और शोकसे थकित देख दोनों ऋषियोंने अनेक उपदेश दिये और अंगिराऋषि बोले "हे राजा, जब तुमको पुत्रकी इच्छा थी उस समय पुत्रके देनेवाले अंगिरा हम हैं और यह नारदजी हैं। पहले मैं जब आया था, संसारमें तुम्हारी आसक्ति देख तुमको पुत्र दिया। अब तुम जान गये कि पुत्रवालोंको कैसा दुःख होता है। इसी प्रकार स्त्री, घर, धन और अनेक ऐश्वर्य सभी दुःखदायी हैं"। नारदजी बोले, "हे राजा हम तुम्हें शेष भगवान्‌की विद्या देते हैं। सात रात्रि अखंड चिन्तनसे तुझे शेष भगवान्‌के दर्शन होंगे"। फिर नारदजीने सबके देखते उस मरे बालकसे कहा "हे जीवात्मा, अपने शरीरमें प्रवेश कर और शोकपीड़ित माता पिता बन्धु आदिको देख तथा अपनी शेष आयुको इनके साथ भोग और राज्यको अंगीकार कर"। तब शरीरमें प्रवेशकर जीव बोला— "मैं जो कर्मोंके वश हो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि अनेक योनियोंमें भटकता फिरता हूं सो मेरे कौनसे जन्ममें यह मेरे माता पिता हुए थे? मेरे मरनेसे जो पुत्र जानकर शोक हुआ है तो शत्रु जान अब हर्ष क्यों नहीं करते? क्योंकि सब सबंधी अनुक्रमसे आपसमें शत्रु-मित्र-भावको प्राप्त हुआ करते हैं"। मेरे पीछे अब इस देहसे मेरा कुछ भी संबंध नहीं रहा। अतः इन माता-

पितासे भी मेरा कोई संबंध नहीं है। इसलिये मेरे हेतु शोक न करना चाहिये"। इतना कह जीव फिर उस शरीरसे निकल गया। राजाका शोक दूर हुआ। हत्यारी स्त्रियोंने भी लज्जित हो यमुनापर प्रायश्चित्त किया और ज्ञानप्राप्त चित्रकेतुको नारदजी संकर्षण मंत्र देकर चले गये। राजा तप करके संकर्षण भगवान्से वर पाकर कृतार्थ हो गया। नारदके उपदेशसे राजा अन्तको राज्यादि छोड़ विद्याधर हो विमानपर बैठ आकाश-मार्गमें घूमने लगा। यही पार्व्वतीके शापसे वृत्रासुर हुआ, जिसे दधीचिकी अस्थिका वज्र बनाकर इन्द्र ने मारा।

(१६) गज ❀

किसी प्राचीन सतयुगमें क्षीरसागरके मध्यमें त्रिकूट पर्वत था, जिसकी एक कंदरामें वरुण भगवान्का "ऋतुमत" नाम बगीचा था। उसमें एक बड़ा भारी सरोवर था। इसी सरोवरपर किसी समय एक गजयूथपति अपनी हथिनियोंके झुंड सहित झाड़ियोंको तोड़ता और पेड़ोंको गिराता आया, जिसकी गंधसे वनके सब पशु भाग गये। गजराजके मस्तकसे मद चू रहा था। आँखें विघूर्णित थीं। घामसे तपा हुआ और प्याससे व्याकुल था। आते ही सरोवरमें धँसा और सूँड़में भरकर इसने खूब जल पिया और स्नान किया, जिससे उसको शान्ति हुई। फिर वह दयालु गजराज अपनी सूंड़से बच्चों और हथिनियोंको भी जल पिला और नहला रहा था कि उसी समय बलवान् ग्राह (मकर)-ने आकर उसका पैर धर लिया। जहांतक गजराजको बल था वहांतक उसने खूब पराक्रम किया और इसके सहायकोंने भी उसे निकालनेका बहुत उद्यम किया, पर कोई भी उसे जलसे निकाल न सका। इन महाव्यालोंकी खींचाखींचीमें हज़ारों बरस बीत गये। जब अपने जीवनसे हताश हो गया और देखा कि

❀ अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ।
नकटु कइ घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

मेरे साथी हाथी भी मुझे नहीं उबार सकते, तब उसने अन्तको यही निश्चय किया कि सिवाय परमात्माके कोई शरण नहीं है। ऐसा मनमें दृढ़ कर भगवानका ध्यान हृदयमें करके यह गज जो पूर्व जन्ममें इन्द्रद्युम्न राजा था भगवानकी स्तुति करने लगा। इस प्रकार आर्त्तनाद सुन हाथमें चक्र ले गरुड़तकको छोड़ भगवान् तुरंत गजेन्द्रके सामने आये। आकाशसे चक्रधारी भगवान्को आते देख, गजेन्द्र सूंड़से कमल उठाकर दीन वचनों-से पुकारने लगा, "हे नारायण, मैं आपकी शरण हूं" इतनेमें भगवान्ने गजराजकी सूंड थाम उसे ग्राहके सहित जलसे बाहर खींच चक्रसे ग्राहका मुख फाड गजराजको छुडा लिया। वह ग्राह "हू हू" नामका गंधर्व था जो देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया था। वह भी अपने पूर्वरूपको पा अपने लोकको चला गया और गजराजको भगवान् अपना पार्षद बनाकर अपने संग ले गये।

(१७) दंडकारण्य*

इक्ष्वाकुने अपने कनिष्ठ पुत्रको नीतिपूर्वक दंड देनेकी शिक्षा की, उसका नाम भी 'दंड' रखा और उसे विन्ध्याचल और नीलगिरिके मध्यप्रान्तका राज्य दिया। राजधानीका नाम मधुमत्त हुआ। एक समय वसंतऋतुमें राजा दंड घूमते घूमते शुक्रके आश्रमके पास जा निकले और वहां अति सुहावने वनमें अत्यन्त रूपवती शुक्रकी 'अरजा' नामकी ज्येष्ठ कन्याको देख, उसपर आसक्त हो अपना मनोरथ कहा। इसपर अरजा विनयपूर्वक बोली, "हे राजन्, मैं शुक्राचार्यकी कन्या अरजा हूं और तुम मेरे पिताके शिष्य मेरे धर्मके भाई हो। तुमको तो औरोंसे भी मेरे धर्मकी रक्षा करनी उचित है। यदि तुम्हारी

---

*दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिवर कइ हरहू।

प्रबल इच्छा है तो मेरे पिताकी आज्ञासे मुझे वर लो, नहीं तो तुम्हारा भला न होगा।" अरजाकी अरज राजाने न मानी और कामान्ध होकर बलात् उससे अपना मनोरथ पूरा किया और अपने राज्यमें चला गया। अरजा रोती हुई अपने पिताके आश्रममें आयी और पितासे राजा दंडकी सब अनीति कह सुनायी। शुक्रजी बोले, "देखो, राजा दंडने कैसी अनीति की है। यह राजा अपने देश और भृत्यादि सहित नष्ट हो जाय और इसके राज्यके चारों ओर एक सौ योजनतक इन्द्र पत्थर बरसाकर सब स्थावर-जंगमका नाश कर दें। सात रातमें यह सब बातें हो जायँ"। इसी शापसे भूमि निर्जन और निर्वृक्ष हो गयी और इसीसे इसका नाम दंडकारण्य पड़ा।

(१८) सुरनाथ *

एक समय ऐश्वर्यके मदसे भरी सभामें जब परम पूज्य गुरु बृहस्पति पधारे तो इन्द्रने उनका देह, मन वा वाणीसे भी कोई सत्कार नहीं किया, वह अपने आसनसे हिला भी नहीं। तब विद्वान् और समर्थ गुरु बृहस्पति ऐसा समझकर कि इसको लक्ष्मीका विकार हुआ है चुपचाप सभासे अपने घर लौट गये। उनके चले जानेपर इन्द्रने समझा कि मुझसे अपराध हुआ और फिर मनमें अत्यन्त पछताया। सोचा कि चलकर उनके चरणोंपर सिर धरकर उन्हें मनाऊंगा। इतनेमें बृहस्पति अपनी मायाके प्रभावसे घरमेंसे भी अदृश्य हो गये। इन्द्रने बहुत खोज की, पर पता न मिला। जब दैत्योंको मालूम हुआ तो वे सब अपने गुरु शुक्राचार्य्यकी सम्मतिसे हथियार ले देवताओंपर चढ़ दौड़े। सब देवता इन्द्रका साथ ले ब्रह्माजीके पास गये और शरण मांगी। देवताओंको दुःखी देख ब्रह्माजी बोले, "हे देव!

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

तुमने राजमदसे गुरुका अनादर किया, उसीका फल है कि तुम दैत्योंसे हार गये। दैत्योंपर उनके गुरुका अनुग्रह है। ब्राह्मण, और भगवानका जिनपर अनुग्रह होता है उनका बुरा कभी नहीं होता। अब तुम लोग त्वष्टाके पुत्र तपस्वी विश्वरूपकी शरण जाओ और उनकी आज्ञा शिरोधार्य करो तो तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।" ब्रह्माकी आज्ञासे सब देवता विश्वरूप ऋषिके पास गये और अनेक प्रार्थनापूर्वक उनको राजी कर अपना पुरोहित बनाया और उनकी सहायतासे अपनी राज-लक्ष्मी लौटा ली।

(१६) दधीचि *

जब वृत्रासुर इत्यादि देवताओंपर दौड़ा, तब देवता अपने अस्त्र-शस्त्रसे युद्ध करने लगे। वह देवताओंके सब अस्त्र शस्त्र लील गया। देवता घबराकर इधर-उधर भागे और फिर सब इकट्ठे हो नारायणकी स्तुति करने लगे। नारायणने दर्शन दिया और कहा कि तुम लोग मत घबराओ, यह तुम्हें मार न सकेगा। मैं जो युक्ति बताता हूं उससे तुम इसे मारो। दधीचि मुनि बड़े तपस्वी और धर्मके जाननेवाले हैं, तुम उनके पास जाओ और विद्या, व्रत और तपसे दृढ़ हुए उनके शरीरको मांगो, देर मत करो। वह तुमको अपनी अस्थि दे देंगे और उनसे विश्वकर्म्मा तुमको वज्र नामक शस्त्र बना देंगे, उससे तुम वृत्रासुरका सिर उड़ा दोगे। इतना कह नारायण तो अन्तर्धान हो गये और देवताओंने ऋषिसे प्रार्थना की। दधीचि मुनि प्रसन्न हो बोले कि "हे देवताओ, क्या तुम नहीं जानते कि संसारमें सबको अपना जीवन और देह सबसे अधिक प्यारा है ? फिर अपनी देह स्वयं

* सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा ।
...
सिवि दधीचि हरिचन्द कहानी

देनेको कौन तैयार होगा ?" देवता बोले कि "आप जैसे महात्मा जो प्राणियोंपर दया करनेवाले परोपकाररत हैं उनको क्या परित्याग करना अशक्य है ? जो मांगनेवालोंके संकटको जानते हैं वे समर्थ होनेपर नाहीं नहीं करते।" मुनि बोले कि "मैंने केवल तुम्हारे मुखसे धर्मकी बात सुननेहीको इतना कहा था। अस्तु, यह देह जो एक दिन मुझे छोड़ देगी उसे मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये स्वयं छोड़ता हूं, पराये दुःखसे दुःखी और सुखसे सुखी होना यही महात्माओंका कर्तव्य है।" इतना कह भगवानके स्वरूपमें लीन हो मुनिने देह त्याग दी। इनकी हड्डियों-से विश्वकर्माने वज्र बनाया, जिससे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा।

(२०) नहुष *

जब इन्द्रने तपस्वी ब्राह्मण वृत्रासुरको मार डाला तब उसके पीछे "ठहर, ठहर" कहती हुई चांडाली बुढ़ापेसे जर्जर यक्ष्माके कफसे लिप्त, रक्ताक्त वस्त्र पहिरे, सफेद बाल बिखेरे और दुर्गंधसे मार्ग-को भरती ब्रह्महत्या दौड़ी। ब्रह्महत्यासे पीड़ित इन्द्र आकाश तथा सब दिशाओंमें फिरे, पर कहीं शरण न मिली। अंतमें घबराकर ईशान कोणमें मानस-सरोवरमें जा घुसे और एक हजार बरस-तक कमलनालके तन्तुओंमें छिपे। मनमें हत्यासे छुटकारा पानेका उपाय सोचते रहे। इधर इन्द्रासन भी खाली न रहे इसलिये बृहस्पतिने विद्या, तप, योग और बलसे पूर्ण राजा नहुषको इन्द्र बनाया। कुछ दिन पीछे राजमदसे मत्त नहुषने इन्द्राणीसे कहला भेजा कि अब हम इन्द्र हैं, तुम हमारे पास आओ। इन्द्राणीको बड़ा दुःख हुआ। उसने बृहस्पतिको बुलाकर सब समाचार कहा। गुरुने धैर्य दिया और कहा कि इन्द्राणी ! तू उसे कहला दे कि "पालकीपर बैठके और ब्राह्मणोंको कहार बनाकर आवे तो मैं स्वीकार करूं।" इन्द्राणीने वैसा ही किया और नहुष भी

* ससि गुरुतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुरयान।

ऋषियोंके कंधेपर चढ़कर चला। जल्दीके मारे अगस्त्यमुनिसे बोला "सर्प सर्प" अर्थात् जल्दी चलो जल्दी चलो। इसपर क्रोधित हो अगस्त्य ऋषिने शाप दिया कि "तू मृत्युलोकमें जाकर सर्प हो जा।" नहुष वहीं स्वर्गसे भ्रष्ट हो सर्प हो गया। पीछे ब्राह्मणोंके बुलानेसे इन्द्र फिर स्वर्गमें गये। जबतक कमलनालमें थे, ईशानकोणके देवता रुद्र और विष्णु-पत्नीने ब्रह्महत्यासे उनकी रक्षा की। अब महर्षियोंने अश्वमेधयज्ञ की, विधिपूर्वक दीक्षा दी और यज्ञका अनुष्ठान किया। इन्द्रकी हत्या छूटी और फिर वह इन्द्रासनपर बैठा।

(२१) राजा ययाति *

राजा नहुषके छः पुत्र थे। उनमेंसे एकका नाम ययाति था। बड़े भाईने राज्य जब न लिया तो यह राजा हुए और शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा दैत्यकी कन्या शर्मिष्ठाको रानी बनाकर राज्य करने लगे। शुक्राचार्यने ययातिको आज्ञा दी थी कि वह शर्मिष्ठासे सम्भोग न करे परन्तु ऋतुकालमें स्त्रीकी प्रार्थनासे राजा उसे अस्वीकार न कर सके इससे उसे गर्भ रहा। सपत्नी देवयानी रूठकर अपने पिताके घर चली आयी और कामी राजा भी मधुर वाणीसे मनाता उसके पीछे चला आया परन्तु पैर दबानेकी सेवा करके भी उसे प्रसन्न न कर सका। तब शुक्राचार्य्यने कुपित होकर कहा, "हे कामी, मन्द मनुष्योंको विरूप करनेवाला बुढ़ापा तुझे प्राप्त हो।" तब राजा बोले, "हे ब्रह्मन्! आपकी कन्यासे सम्भोगकर मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूं। अतः यदि मेरा बुढ़ापा लेकर कोई अपनी जवानी देना स्वीकार करे तो मैं उससे बदल सकूं, ऐसा उपाय कीजिये।" शुक्राचार्य्यने स्वीकार किया, तब ययातिने सबसे बड़े पुत्र यदुसे

* तनय जजातिहि जोबन दयऊ।
पितु अग्या अघ अजस न भयऊ॥

पहले कहा, "हे तात, अपने नानाका दिया हुआ बुढ़ापा मुझसे लेकर अपनी जवानी मुझे दे। हे वत्स! मैं अभी विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हूं सो तेरी जवानी लेकर कितने ही वर्ष रमण करूंगा" यदु बोला कि "बीच हीमें बुढ़ापा लेकर मैं नहीं रहा चाहता, क्योंकि विषय-सुखको जाने बिना तृष्णा नहीं मिटती।" इसी प्रकार राजाने अपने पुत्र तुर्वसु, द्रुह्य और अनुसे भी कहा परन्तु सब धर्मको न जाननेवाले और अनित्यको नित्य समझनेवाले नाहीं कर गये। तब उन्होने गुणपूर्ण पुरु, सबसे छोटे पुत्रसे कहा, "हे वत्स, तू भी अपने भाइयोंकी तरह मत भागियो।" तब पुरु बोला कि "पिताके उपकारोंका बदला कौन दे सकता है? जो पुत्र कहेपर भी न करे तो वह पिताका विष्ठारूप है।" इस प्रकार पुरुने प्रसन्न मनसे पिताका बुढ़ापा ले, उसे अपनी जवानी दे दी। राजा विषय-भोग करने लगा। हजारों वर्ष बीत गये, परन्तु विषय-सुखसे तृप्ति न हुई। तब ज्ञानके प्रकाशसे अपनी भूल समझ पुत्रोंको राज बांट राजा तपस्या करने चला गया।

(२२) इन्द्र, अहल्या और गौतम *

श्रीरामचन्द्रजी जब मिथिलापुरीके समीप पहुंचे थे तो उपवनमें एक प्राचीन और निर्जन परन्तु रमणीय आश्रम देखकर मुनिसे पूछा भगवन्, यह निर्जन आश्रम किसका है? विश्वामित्रजी बोले हे राम, पूर्वमें यह आश्रम महात्मा गौतमका था, इसमें अपनी पत्नी अहल्याके साथ रहकर मुनिने बहुत कालतक तपस्या की। एक समय मुनिरहित आश्रम देख, उन्हीं मुनिका भेष धारणकर इन्द्र आया और अहल्याको छलकर उसका सतीत्व नष्ट किया। अहल्यामें भी उस समय पाप-बुद्धि समायी और रतिकालमें यह ज्ञान जानेपर भी कि गौतम नहीं है, उसने

---

* पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी
सकल कथा मुनि कही बिसेषी

छद्मवेशी इन्द्रका तिरस्कार नहीं किया। उसी समय गौतमक आहट पाकर बोली कि "हे इन्द्र यहांसे जल्दी जाओ और मेरी और अपनी रक्षा करो।" जब इन्द्र उस कुटीसे निकल रहा था तभी तपोधन तेजस्वी मुनि हाथमें काठ और कुश लिए स्नान करके आ पहुंचे। मुनिने मुनि-वेषधारीको देख सारा वृत्त समझ लिया और क्रोधसे कहा, दुर्मते तूने मेरा रूप धर यह दुराचार किया, इसलिये तू नपुंसक हो जायगा! तू ऐसा कामी है, तेरे सहस्र भग हो जायँगे। फिर अपनी स्त्रीको शाप दिया कि तू इसी स्थानमें सहस्र वर्षतक केवल वायु पीकर अदृश्य रहेगी। जब दशरथके पुत्र राम यहा आवेंगे तब तू लोभ और मोहरहित हो उनका सत्कार करेगी, तब इस दुष्कर्मसे पवित्र हो अपना रूप पा हर्षित हो मेरे पास आवेगी। इन्द्रकी प्रार्थना पर ऋषिने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीके अवतार लेनेपर यही भग सहस्र आखे हो जायँगी। ऐसा कह गौतम मुनि हिमाचलपर जाकर एक रमणीय शिखरपर तपस्या करने लगे। यह शिलारूपिणी महाभागा अहल्या तुम्हारी बाट जोह रही है।

(२३) सगर और भागीरथी

*अयोध्याके राजा सगरके संतति नहीं थी। इनके दो स्त्रियां थीं, 'केशिनी' और 'सुमति'। राजा सगर दोनों पत्नियोंके सहित हिमवान्‌के एक प्रदेशमें जाकर तप करने लगे तपके फलसे कुछ दिन पीछे राजाको बडी रानीसे असमंजस नामका एक पुत्र हुआ और सुमतिको साठ हजार पुत्रोंका एक तुंबा उत्पन्न हुआ, जिसके बढ़ने और अनेक काल पीछे फूटनेसे सब बालक निकले। उन बालकोंको घृतके कुण्डेमें रख धाइयोंने पाला और बढाया। वे सब बालक बढकर रूपवान और बलवान हुए। उनमेंसे असमजस लडकोंको पकड पकड सरयूमें फेंक देता था और उन्हें डूबते देखकर हँसता था। राजाने उसके

* गाधि सुअन सब कथा सुनाई। जहि प्रकार सुरसरि महि आई।

दुश्चरित्रोंसे दुखी होकर उसे देशसे निकाल दिया। उसेअंशुमान नामक एक पुत्र हो चुका था जो बड़ा सज्जन और प्रियभाषी था

एक बार राजाकी इच्छा हुई कि यज्ञ करूं सो हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचमें उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। राजाका पौत्र अंशुमान यज्ञके घोड़ेका रक्षक था। अश्वालम्भनके दिन इन्द्रने उस घोड़ेको हर लिया। इसपर राजाने अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा कि "हे पुत्रो, मैं वेदीपर बैठा हूं। विघ्नके निवारणमें असमर्थ हूं, इसलिये तुम लोग एक एक योजन करके संपूर्ण पृथ्वीमें उस घोड़ेको और हरनेवालेको खोजो।" पुत्रोंने खोजते खोजते कहीं न पाया तो अन्तमें पृथ्वीको खोदना आरम्भ किया। उनमेंसे एक एक पुत्र वज्रसमान भुजाओंसे योजनभर पृथ्वी एक बेर खोद डालते और उनके शूलयुक्त हलोंसे खुदते हुए पृथ्वी बड़ा शब्द करती थी और इस भयंकर खुदाईमें राक्षसादि अनेक जीवोंका भयङ्कर नाद हुआ, और बहुतेरे मर गये। उन लोगोंने साठ हजार योजन भूमि खोद डाली, मानों पातालमें खोजनेकी इच्छा हुई। इतनेपर भी अपना मनोरथ न पाकर पिताके पास जाकर बोले, "महाराज, बड़े बड़े बलवान् देव दानवोंको हमने मार डाला, पृथ्वी सब ढूंढ़ डाली परन्तु चोर न मिला। अब क्या करें?" क्रुद्ध हो राजा बोला, "हे पुत्रो, फिर पृथ्वी खोदो और चोरका पता लगाकर मेरे पास आओ। इस बातपर सब रसातलकी ओर दौड़े और खोदते खोदते ईशानकोणकी ओर पहुँचे। उन्होंने भगवान् कपिलको देखा और उनके पीछे घोड़ा भी बँधा देख उन्हींको चोर समझ बड़े क्रोधसे हाथमें फरसा, कुठारी, वृक्षादि ले बोले कि "खड़ा रह तू ही चोर है। रे दुष्टबुद्धि हमने तुझे पकड़ लिया"। यह कठोर वचन सुन भगवान कपिलने क्रोधसे हुंकार किया और सबके सब वहीं भस्म हो ढेर हो गये।

बहुत दिन बीते और पुत्र न आये,तब सगरने अंशुमानको

पितृव्योंकी और घोरको खोजमें भेजा। सौम्य अंशुमान खोजते खोजते अन्तको वहाँ पहुँचा जहा पितरोंके भस्मका ढेर लगा था और घोड़ा चर रहा था। अंशुमान पितृव्योकी मृत्युसे दुःखित हो विलाप करने लगा और अपने पितरोंको तिलाजलि देनेको जल खोजने लगा, पर कोई जलाशय न मिला। वहां गरुड मिले, उन्होंने सब समाचार सुनाकर कहा कि भगवान कपिलने इनको भस्म किया है, अतः लौकिक जलसे उन्हें जलांजलि मत दो, किन्तु हिमाचलकी ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाके जलसे इनकी जल-क्रिया करनी चाहिये। तुम यह घोडा लो और दादाका यज्ञ पूरा करो, इतना सुन अशुमान घोड़ा ले वट अपने दादाकी यज्ञ-शालामें पहुँचा और उसने उनसे सब हाल कह सुनाया। राजा सगर यज्ञ पूरा कर अपने पुरमें आये। गंगाके लानेका कोई उपाय न मिला और काल पाकर राजा भी स्वर्गको सिधारे।

पीछे अंशुमान राज्यासनपर बैठा और कुछ काल पीछे इसका पुत्र दिलीप जब बडा हुआ तब उसे राज दे हिमाचलपर जा बड़ी कठिन तपस्या करके अन्तमें स्वर्ग पाया। दिलीप भी गंगाके लानेका कुछ उपाय न कर सका। दिलीपके मरनेपर उनके धर्मात्मा पुत्र भगीरथ राजा हुए। इनके कोई सन्तान न थी। इन्होंने मंत्रियोंको राज्य सौंप गोकर्णमें जा गंगाके लानेके हेतु अति कठोर तप आरभ किया। जब हजार वर्ष तप करते बीत गये तब देवताओंके सहित ब्रह्माने आकर कहा कि मैं इस तपस्यासे प्रसन्न हूं, वर मांग। राजा हाथ जोड़ बोले, भगवन्! यदि प्रसन्न हों तो सगरके पुत्र मुझसे गंगाजल पावें और उनकी भस्म उसीसे बहायी जाय और वे स्वर्ग जावें और मेरे पुत्र हो। यह सुन ब्रह्माजी बोले, "हे भगीरथ, ऐसा ही होगा। परन्तु इस गंगाजलके धारण करनेके लिये तुम शिवजीकी प्रार्थना करो, क्योंकि गंगाके आकाशसे गिरनेका आघात पृथ्वी न सह सकेगी इसको थामनेवाला शिवके सिवाय कोई नहीं देख

पड़ता।" भगीरथको ऐसा वर दे गंगाको आज्ञा दे, देवताओंको साथ ले ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गये।

ब्रह्माजीके जानेपर भगीरथने अंगूठेपर खड़े हो एक वर्ष-पर्यन्त शिवजीकी आराधना की। वर्ष पूरा होनेपर आशुतोष शिवने राजासे कहा, "हे * नरश्रेष्ठ, मैं तुमपर प्रसन्न हूं। जो तुम्हारा प्रिय कार्य्य है सो मैं करूंगा, अपने मस्तकपर गंगाको धारण करूंगा।" फिर गंगा देवीने अपने मनमें यह विचारा कि मैं अपने वेगसे शिवजीको भी लेकर पातालको चली जाऊंगी और शिवजीने गंगाजी की यह अभिलाषा जान, उसे अपनी जटा-मेंही छिपा रखनेकी इच्छाकी। तदनंतर गंगा शिवजीके मस्तकपर गिरी और किसी प्रकार भी भूमिपर न जा सकीं, अनेक वर्षों तक जटामंडलमेंही घूमती रह गयीं। गंगाजीको न निकलते देख भगीरथ राजाने फिर शिवजीको कठोर तपसे प्रसन्न किया, तब शिवजीने प्रसन्न हो हिमालय पर्वतमें बिन्दु-सरोवरपर गंगाको छोड़ा। छोड़ते ही उसके सात सोते हो गये जिनमेंसे ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएं तो पूर्व दिशाको गयीं और सुचक्षु,सीता और महानद सिन्धु ये तीन पश्चिम दिशाको गयीं और सातवीं धारा भगीरथके रथके पीछे भगी। चलते चलते राजा वहां पहुंचे जहां जह्नु ऋषि यज्ञ कर रहे थे। सो गंगाने सामग्रीसहित उनकी यज्ञशालाको बहा दिया। क्रुद्ध हो जह्नु ऋषि सब जल उठाकर पी गये, फिर प्रार्थनापर जह्नु ने प्रसन्न हो अपने शरीरसे गंगाको निकाला, तभीसे वह जाह्नवी नामसे प्रसिद्ध हुई। फिर गंगा भगीरथके पीछे पीछे सागरको भी पहुंची और उस कार्य्यकी सिद्धिके लिये रसातलको प्राप्त हुई। इस प्रकार भगीरथ यत्नसे गंगाको वहां ले गये जहां पितामहों-की भस्म पड़ी थी। तब गंगाने अपने जलसे उस भस्मराशिको बहाया और अंशुमानके पितरोंने स्वर्ग पाया।

* गाधि सुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

बड़े बड़े भीषण विशाल गर्त्त, जो सगर-पुत्रोंने खोदे थे, सब भर गये। सगरपुत्रोंके नामसे सागर कहलाये। भगीरथके नामसे गंगाजीका नाम भागीरथी पड़ा। जहां गंगाजी सागरसे मिलती हैं, गंगा-सागर तीर्थ हुआ।

(२४) अम्बरीष और दुर्वासा।

*राजा नाभागका पुत्र अम्बरीष परम वैष्णव और बड़ा धर्मात्मा हुआ, जिसको ब्राह्मणोंका शाप भी न छू सका। इस हरिभक्त राजाने ज्ञान-दृष्टिसे सम्पूर्ण वैभवको नश्वर जान स्वप्नवत् मान रखा था। जो कुछ कर्म करता सब ईश्वरको अर्पण कर देता था। राजाकी इस एकान्त भक्तिसे प्रसन्न हो भगवानने अपने दासकी रक्षाके लिये, शत्रुओंको भय देनेवाला सुदर्शनचक्र दे दिया। फिर इस राजाने रानीके साथ एक वर्षभर अखंड एकादशी व्रत धारण किया। व्रतके अन्तमें कार्तिक मासमें त्रिरात्र व्रत नियमानुसार करके भगवान्का पूजनकर ब्राह्मणोंको लाखों गाएं दानकीं। फिर अच्छे स्वादिष्ट भोजनसे ब्राह्मणोंको तृप्तकर आज्ञा ले पारणकी ज्योंही तैयारी की, उसी समय अतिथिरूप भगवान दुर्वासा मुनि आ पहुंचे। राजाने उनकी पूजा कर भोजनके लिये प्रार्थना की और मुनि स्वीकार कर मध्याह्न नित्य कृत्य करने यमुना तटपर गये। वह जो यमुनाजलमें पैठ भगवद् ध्यानमें लगे तो इतना विलम्ब हुआ कि पारणकी द्वादशी एक घड़ी ही रह गयी और मुनि न लौटे। राजाने इस धर्मसंकटमें पड़ ब्राह्मणोंके साथ विचार किया कि यदि मुनिके आये बिना पारण करता हूं तो भी दोष, और द्वादशीमें पारण नहीं करता तो भी दोष होता है। ऐसी दशामें क्या करना चाहिये। अन्तमें निश्चय हुआ कि जलसेही पारण कर लें। अतः जलपान कर भगवान्का ध्यान करते हुए राजा दुर्वासा

* लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा।

मुनिके आनेकी बाट जोहने लगा। मुनि भी अपने कृत्यसे निपट राजाके पास आ पहुँचे और राजाने यद्यपि उनका सत्कार किया, तो भी दुर्वासा मुनिने सब जान लिया और क्रोधसे कांपने लगे। हाथ जोडे खड़े राजासे दुर्वासा मुनि बोले, "अहो! इस अभिमानी अम्बरीषने जो निमंत्रित कर आतिथ्य किये बिना भोजन किया है इस अपराधका फल मैं अभी देता हूं।" यह कहते हुए अपनी एक जटाको नोच उससे एक कालानलके समान कृत्या उत्पन्न की जो हाथमें खड्ग लिये अम्बरीषकी ओर झपटी, परन्तु अम्बरीष निश्चल खड़े रहे। तब तो सुदर्शनचक्रसे न सहा गया। कृत्या तो जलकर भस्म हो गयी अब दुर्वासापर ही सुदर्शन झपटा। दुर्वासा डरके मारे इधर उधर भागने लगे, परन्तु वे जहांजहां छिपनेके लिये भागे वहीं वहीं चक्रको अपने पीछे लगा पाया। जब कहीं शरण न मिली तो घबराकर ब्रह्माजीकी शरण गये। कोरा जवाब मिला। शिवजीने भगवान् विष्णुके पास भेजा। दुर्वासाके दीन वचन सुन भगवान् बोले कि 'हे मुनि! मैं तो भक्तोंके अधीन हूं और उनका प्यारा हूं। जिनको मैं ही परम गति हूं उनको छोड़कर मैं अपने शरीर तथा लक्ष्मीको भी नहीं चाहता। जो अपने प्राण, धन, जन सम्पूर्णसे ममता छोड़ मेरे शरण आये हैं उनको मैं कैसे छोड़ सकता हूं। मेरेमें मन लगादेनेवाले भक्त मोक्षकी भी परवाह नहीं करते, तब नश्वर पदार्थ उनके आगे कौन वस्तु है? साधु मेरे हृदय हैं, और मैं उनका। इसलिये हे मुनि! मैं एक उपाय यही बताता हूं कि तुमको जिससे यह दुःख उत्पन्न हुआ है उसीके पास जाओ। यद्यपि तप और विद्या ब्राह्मणोंको कल्याणकर है तथापि क्रोधी ब्राह्मणोंको वे ही अकल्याणकारी होते हैं। अतः हे ब्राह्मण! आप इसी महाभाग राजासे क्षमा मांगो तब शान्ति होगी। निदान सब जगहसे हार मुनिने दुःखित हो अम्बरीषके पैर पकड़ लिये। मुनिके

चरण पकड़नेसे लज्जित, दयासे पीडित राजाने भगवानके चक्र-की स्तुति कर शान्त किया। तब मुनिने राजाको आशीर्वाद दिया और प्रशंसा की और कहा कि "भगवान्‌के दासोंकी बड़ाई मैंने आज देखी कि तुमने मेरे अपराधको न गिना और मेरे प्राण बचाये। बड़ा भारी अनुग्रह किया"। अब राजा जो फिर भी मुनिके आनेकी बाट जोहता रहा था मुनिको खिलाकर तब स्वयं भोजन किया।

(२५) राजा रन्तिदेव

*राजा रन्तिदेवको जो धन अकस्मात् मिल जाता उसीसे निर्वाह करता था और जो पास होता सो सब दे डालता था, फिर जो नया मिलता उसीको भोगता था। पास कुछ न रहते भी धैर्य कभी न छोड़ता था। एकबार कुटुम्ब सहित बहुत दुःखित हो गया, यहांतक कि अढ़तालीस दिन बीत गये जल-तक पीनेको न मिला। उनचासवें दिन घृत, खीर, लपसी और जल अकस्मात् ही सवेरे ही प्राप्त हुए। भोजनकी तैयारी हो ही रही थी कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। राजा बड़ा त्यागी और भक्त था उसे आदरपूर्वक अपना भाग खिलाकर विदा करके शेष अन्न भोजन करनेको ही था कि एक शूद्र आ निकला। इसने कुछ उसे दे दिया। इतनेमें कुत्ते लिये दूसरा अतिथि आन पहुँचा। उसने कहा, "हे राजा, मैं और मेरे कुत्ते सब भूखे हैं, मुझे अन्न दीजिये।" उसने बड़े आदरसे बचा अन्न उन्हें देकर सबको प्रणाम किया। जलमात्र शेष रह गया जिससे एक मनुष्य तृप्त हो सके। राजा पीनेको ही था कि एक चांडाल आया और बोला, "मुझ नीचको जल दीजिये।" उसकी

---

*रन्तिदेव बलि भूप सुजाना
धरम धरेउ सहि संकट नाना

परिताप भरी दीन वाणी सुन राजा दयासे पीड़ित हो अमृतसी वाणी बोला—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्

कामये दुःख तप्ताना प्राणिनमार्त्तिनाशनम्

अर्थात् मुझे न तो राज्यकी और न मोक्षकी ही इच्छा है। मेरी यही कामना है कि सब प्राणियोंकी पीड़ा मिट जाय। इसीको मैं अपना दुःख छूटना समझता हूं।" इतना कह, आप प्यासा रह, उसे जल दे दिया। फल न चाहनेवालोंको फल देनेवाले ईश्वर तथा ब्रह्मादि देवता कुत्ते आदिका मायारूप धरकर आये थे। उन्होंने फिर अपना रूप धारणकर राजाको दर्शन दिया। राजाने उनको भक्तियुक्त प्रणाम किया पर कुछ इच्छा न की। ईश्वरकी भक्तिमें ही मन लगाया था, इससे भगवत्का गुणमयी माया स्वप्नवत् नष्ट हो गयी।

(२६) वसिष्ठ और विश्वामित्र

राजा गाधिकी रानीके कोई सन्तान नहीं होती थी। राजा गाधिको दो फल आशीर्वाद सहित मिले। एक फलके साथ क्षत्रिय सन्तान और दूसरे फलके साथ ब्राह्मण सन्तानके होनेका आशीर्वाद था। रानीने भूलसे ब्राह्मणवाला फल आप खा लिया और क्षत्रियवाला अपनी बेटी रेणुकाको खिला दिया। रेणुका जमदग्निको ब्याही थी। फलस्वरूप गाधिके विश्वामित्र और जमदग्निके परशुराम हुए।

महाप्रतापी राजा विश्वामित्र चन्द्रवंशी क्षत्रियोंके कुलभूषण एक बार दैवयोगसे महर्षि वशिष्ठके यहां पाहुने हुए। वशिष्ठने दरिद्र ब्राह्मण होते हुए भी राजा विश्वामित्रका उनकी सेनाके साथ पूरा सत्कार किया। अपूर्व सत्कार देख राजा विश्वामित्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने पता लगाया कि वशिष्ठके घर कामधेनु है। उसके ही प्रभावसे इनके यहां

कुछ कमी नहीं है। चलती बेर इस राजा मेहमानने ऋषि वशिष्ठसे अपना मनोरथ कहा। राजाने प्रार्थना की कि कामधेनु मुझे दे दीजिये। यह अपूर्व चीज राजाओंके ही योग्य है।

वशिष्ठने समझाया "भूपते! यह गाय मेरी नहीं है, ऋषियोंकी पञ्चायती है। जब जिसे आवश्यकता पड़ती है तब यह उसके पास चली जाती है। मैं श्रीमान्‌को भेंट करनेमें असमर्थ हूं।"

विश्वामित्र इस उत्तरसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने न देनेके लिये इसे बहाना समझा। बोले "ऋषिदेव! यदि न दोगे, तो मैं राजा हूं, क्षत्रिय हूं, तुमसे बलपूर्वक छीन लूंगा।"

राजा विश्वामित्रको आज्ञा देनेकी देर थी। सेना सन्नद्ध हो गयी। उधर वशिष्ठजीके पुत्र भी सेना इकट्ठी कर लाये। युद्ध छिड़ा। घोर घमासान हुआ। क्षात्रबल प्रबल रहा। वशिष्ठ हार गये। उनके पुत्र खेत रहे। अब कामधेनु राजाके अधिकारमें आवेगी!

इतनेमें मुगलों पठानोंकी सेना तैयार होकर आयी। वशिष्ठजीकी कुमक देखकर विश्वामित्र चकराये। फिर संग्राम हुआ। अन्तमें मुगल पठान भी हार गये।

इसी तरह यवन, तुरुष्क, काम्बोज, चीन, निषाद, किरात इत्यादि अनेक योद्धा जातियां कुमकमें आयीं। सब लड़ीं। नष्ट हो गयीं। विजयकी ध्वजा विश्वामित्रकी ही फहरायी।

वशिष्ठने देखा कि सब तरहसे क्षात्रबल ही प्रबल रहा। विजयश्री राजाकी ही रही। कामधेनुकी भी एक न चली। पुत्र भी मारे गये। सर्वनाश हो गया। ब्राह्मणका शरीर तपके तेजसे प्रज्वलित हो गया। एक बार सत्यसंकल्प ऋषिने अपने तपोबलसे काम लिया। क्षात्रबल और पशुबलको नष्ट करनेके लिये आत्मबल, ब्राह्मबलका प्रयोग किया। एक बार समाधिस्थ हो अपने समस्त आत्मबलको, चरित्रबलको, समेटकर एक

हुङ्कारकमें क्षात्रबलके सामने लगा दिया। विश्वामित्रकी अन्याय-पर अवलंबित सेना नष्ट हो गयी। राज्यश्रीका भस्मावशेष रह गया। ब्राह्मबल, ब्राह्मतेज, जगत्में विजयी होकर फैल गया। वशिष्ठकी अन्तिम विजयका डङ्का बज गया। विश्वामित्रका रङ्ग फीका पड़ गया। राजाने माना कि सच है, ब्रह्मबलके सामने क्षात्रबल हेच है। मुझे धिक्कार है। मैं भी तप करूंगा। ब्राह्मण हुए विना न रहूंगा।

घोरव्रती क्षत्रियने क्षत्रियबलसे ब्रह्मबल पानेकी कठिन तपस्या आरंभ की। दिन, सप्ताह, पखवारे, महीने बीतने लगे। बरसों गुज़रे। तपस्यामें विश्वामित्र दृढ़ रहे। देवता डर गये। उनकी तपस्यामें विघ्न डाला। व्रत तोड़ा। व्रताग्रही विश्वामित्र-ने फिरसे तपस्या आरम्भ की। फिर अनेक काल बीते। ब्रह्माने आकर पूछा "राजर्षि! क्या चाहते हो?" विश्वामित्र न बोले, ब्रह्माजी निराश लौट आये। तपस्या जारी रही।

ब्रह्माका आसन फिर डोल गया। आकर पूछा "ब्रह्मर्षि, क्या इच्छा है?"

विश्वामित्र बोले "चाहता हूं कि वशिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहें" ब्रह्माने कहा "एवमस्तु" और अन्तर्धान हो गये।

* * * * *

विश्वामित्र वशिष्ठसे मिलने आये। परन्तु रात हो गयी थी। कुटीसे बाहर जरा खड़े होकर बुलानेको थे कि कुछ बातचीत सुन पड़ी। खड़े खड़े सुनने लगे।

अरुन्धतीने कहा "भगवन्! इन दिनों संसारमें राजर्षि विश्वामित्रकी तपस्याकी धूम है। सभी प्रशंसा करते हैं।"

वशिष्ठ बोले "सच है, देवी! राजर्षि नहीं अब उन्हें "ब्रह्मर्षि" कहो, क्योंकि ब्रह्माजीने यही वर दिया है। जब ब्रह्माजीकी हुई तब समझो कि उनकी तपस्या ब्राह्मणोंकी तपस्यासे

कई दरजे बढ़ ही गयी है। इस युगमें ऐसा तेजस्वी ब्राह्मण दूसरा नहीं है!"

शुद्ध श्रद्धा और सच्ची सराहनाके जलसे मुद्दतका मैल धुल गया। प्रेमने किवाड खटखटाये। श्रद्धाने खोल दिये। कभीके दो जानी दुश्मन आज चावसे गले मिले। द्वेषपर प्रेमने, क्ष त्रबलपर ब्रह्मतेजने, पशुतापर तपस्याने विजय पायी।

(२७) विश्वामित्र और गालव

विश्वामित्रजी जब तपस्या कर रहे थे, उनके धर्मकी परीक्षाके लिये साक्षात् धर्म, वशिष्ठका रूप धर उनके पास गये। विश्वामित्र आश्रममें आतुर हो पाक बना रहे थे, उसी समय क्षुधापीड़ित छद्मवेषधारीने भोजनकी इच्छा प्रगट की, परन्तु पाक सिद्ध होनेकी प्रतीक्षा न की और किसी दूसरे तपस्वीके दिये हुए अन्नसे अपनी क्षुधा मिटायी। जब धर्म भोजन कर चुके, विश्वामित्र भी गर्म अन्न लेकर उपस्थित हुए। धर्म बोले कि हम भोजन कर चुके। तुम यहीं ठहरो—जबतक मैं लौट न आऊं, यह कह धर्म वहासे चले गये। दृढ़व्रत विश्वामित्र भी दोनों हाथोंसे पात्र सिरपर रखे वायु भक्षण करते आश्रमके समीप खड़े खड़े उनके आनेकी प्रतीक्षा करते रहे। इस अवस्थामें उनके प्रिय शिष्य गालव मुनि गौरवके हेतु उनकी टहल करते रहे। सौ बरस पीछे फिर धर्मराज वशिष्ठका रूप धर भोजन करने आये और देखा कि धृतिमान महर्षि ज्योंके त्यों तबसे खड़े हैं और अन्न भी वैसा ही गर्म और ताजा बना है। धर्मने वही अन्न भोजन किया और बोले "विप्रर्षि! मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हूं"। इतना कह धर्म तो चले गये। धर्मके वचनसे क्षत्रियत्वसे छूट ब्राह्मणत्वको पाकर विश्वामित्र अति प्रसन्न हुए।* फिर अपने शिष्य तपस्वी गालवकी सेवासे प्रसन्न हो बोले "पुत्र गालव, तुम्हारी सेवा पूर्ण हुई। मैं आज्ञा देता हूं कि जहां

* यह दूसरी कथा है।

तुम्हारी इच्छा हो जाओ"। गालव मुनि प्रसन्न होकर बोले "हे गुरो! गुरुदक्षिणामें आपको क्या दूं, क्योंकि बिना दक्षिणाके कार्यका फल नहीं प्राप्त होता"। भगवान् विश्वामित्र सेवाकी ही दक्षिणा पा सन्तुष्ट हो चुके थे, इसीसे उन्होंने दक्षिणाकी अभिलाषा न कर बारबार कहा कि 'तुम जाओ'। परन्तु गालव मुनि भी बारबार हठपूर्वक यही कहते रहे कि "क्या दक्षिणा दूं ? क्या दूं" ? इस हठसे कुछ रुष्ट हो महर्षि विश्वामित्र बोले "अच्छा गालव, चन्द्रमाके समान उजले और एक ओर श्यामकर्ण आठ सौ घोड़े लाकर दान करो।"

यह कठिन आज्ञा सुन गालव चिन्तासमुद्रमें डूब गये, आहार निद्रा सब कुछ छूट गया और चिन्तासे सूखकर पीले पड़ गये, अपने हठपर बहुत पछताये, पर कर क्या सकते थे। अन्तमें गरुड़जीकी सहायतासे राजा ययातिके यहां पहुंचे। राजाने उनका सत्कार कर आनेका कारण पूछा। गरुडजीने अपने मित्रका सारा हाल कह सुनाया और प्रार्थना की कि गालव मुनिकी तपस्याके एक अंशके बदले इन्हें आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े दीजिये। राजा ययाति यों बोले "मैं जैसा पूर्वमें धनवान् था, वैसा अब नहीं हूं। फिर भी मैं इस तपस्वीकी आशाको निष्फल नहीं करना चाहता। अतः "हे गालव मुनि, आप इस चार वंशकी थाप करनेवाली और सब धर्मोंसे अभिज्ञ मेरी कुमारी कन्याको लीजिये। इसके बदले घोड़ोंकी तो क्या बात है, राजा अपना सारा राज्य दे सकते हैं।"

माधवी नाम्नी उस कन्याको लेकर इक्ष्वाकुवंशी अयोध्याके राजा हर्यश्वके पास जाकर गालवने अपना अभिप्राय कहा।

काम-मोहित राजा हर्यश्व दीन भावयुक्त हो बोले "यद्यपि मेरे यहां सैकड़ों घोड़े हैं, परन्तु जैसे आप चाहते हैं वैसे केवल दो सौ हैं। हे गालव, इसलिये मैं इस कन्यासे एक ही पुत्र उत्पन्न करूंगा"। हर्यश्वके वचन सुन कन्या बोली "हे मुनि,

एक ब्रह्मवादी ऋषिने मुझे वर दिया है कि तुम प्रसवके पीछे कन्या ही बनी रहोगी, इससे आप घोड़े लेकर मुझे राजाको दे दीजिये। इसी प्रकार चार राजाओंके यहांसे आपको आठ सौ घोड़े मिल जायँगे और मेरे भी चार पुत्र उत्पन्न हो जायँगे।" निदान राजाने मांगे धनका चतुर्थांश देकर कन्या ले ली और ब्याह करके एक पुत्र उत्पन्न कर लिया। जो पीछे वसुमना नामका प्रसिद्ध राजा हुआ।

फिर मुनिने आकर पूर्व प्रतिज्ञानुसार कन्या लौटा ली। इसी प्रकार गालव मुनि उस कन्याको राजा दिवोदास और राजा उशीनरके यहां ले गये और एक एक पुत्रके बदले दो दो सौ घोड़े उनसे लिये। अन्तमें छः सौ घोड़े और उसी कन्याको लेकर विश्वामित्रके पास जाकर बोले, "हे गुरुदेव। आपने जैसे घोड़े मांगे थे वैसे छः सौ घोड़े उपस्थित हैं और शेषके बदले आप इस कन्याका पाणिग्रहण कर लीजिये। इसके गर्भसे तीन राजर्षियोंने तीन पुत्र उत्पन्न किये हैं, आप भी एक पुत्र उत्पन्न कर लें। इस प्रकार आठ सौ घोड़े पूर्ण हो जायँ और मैं भी जाकर तपस्या करूं"।

विश्वामित्रने गालवका प्रस्ताव मान लिया। विश्वामित्रने उसके गर्भसे 'अष्टक' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। उसे ही घोड़े दे दिये और शिष्यको कन्या लौटाकर तप करने चले गये। गालव मुनि गरुड़की सहायतासे इस प्रकार गुरु-दक्षिणा दे प्रफुल्लित हो आप माधवीसे अपनी कृतज्ञता प्रगट कर उसे उसके पिता ययातिके घर पहुंचा गरुड़की अनुमतिसे वनको चले गये।

(२८) गालव और ययाति

* जब गालवमुनिने माधवीको राजाके पास पहुंचा दिया,

---

* लेइ उसास सोच एहि भांती। सुरपुरतें जनु खसेउ जजाती॥

तब राजा ययातिने फिरसे उसका स्वयंवर करना चाहा। पुरु और यदु भाइयोंके साथ माधवी बहुत घूमी। अन्तमें "वन" को वरणकर तपस्या करने लगी। इधर राजा ययातिने कई हजार वर्ष अपनी आयु भोग पहले राजाओंकी तरह वनमें जाकर शरीर छोड़ा। फिर स्वर्ग जाकर कई हजार वर्ष वहांके उत्तम सुख भोगे, परन्तु अन्तको मोहमें पड, अभिमानसे मत्त हो वे अपने सहवासी पुण्यात्मा राजर्षि और महर्षियों, देवों और मनुष्योंका मन ही मन अनादर करने लगे। इन्द्रने उनका अभिप्राय जान लिया और सब राजर्षि उन्हें धिक्कारने लगे। उनकी ओर देख स्वर्गीय यह तर्क करने लगे कि "यह पुरुष कौन है? किस राजाका पुत्र है? किस कर्मसे सिद्ध हुआ है? कहां तपस्या की थी? कैसे स्वर्ग पाया? इसे कौन जानता है? स्वर्गवासी आपसमे यों तर्क करने लगे और द्वारपालसे भी पूछने लगे, पर सबने उत्तर दिया कि 'हम इसे नही जानते'।

अब राजा ययातिका सिर घूमने लगा, आसनसे भ्रष्ट हो गिरने लगे। अत्यन्त शोक और दुःखसे पीडित होनेसे उनका ज्ञान नष्ट और उज्ज्वल माला मलिन हो गयी। सिरके मुकुट और विचित्र भूषणादि सब गिर पड़े, सब अंग शिथिल हो गये। और उस समय उन्हें कोई भी नहीं पहचानता था। सब विषयोंसे रहित हो वे अपने मनमें चिन्ता करने लगे कि 'हाय! यह क्या और क्यों हो रहा है।'

पुण्यहीनोंको स्वर्गसे गिरानेवाले पुरुषने इन्द्रकी आज्ञासे ययातिसे आकर कहा 'हे राजन्, तुमने अभिमानसे सबका अनादर किया है, तुम्हें कोई नहीं जान सकता सो जाओ जल्दी गिरो'। यह सुन नहुषके पुत्र ययातिने कहा, 'साधुओंके बीच गिरूंगा'। वे तीन बार यही कहकर वहां गिरे जहां उसी समय वसुमना, प्रतर्दन, शिवि और अष्टक ये चारों राजा नैमिषारण्यमें वाजपेय [illegible] इन्द्रको तृप्त कर रहे थे। राजपुत्रोंने पूछा "आप कौन हैं?

यहां क्यों आये हैं ? और क्या चाहते हैं ?" राजा बोले, "मैं राजर्षि ययाति हूं, पुण्यक्षीण होनेसे स्वर्गसे गिरा हूं।" राजा लोग बोले, "हे पुरुषर्षभ! आपकी अभिलाषा पूरी हो। आप हमारे पुण्यका फल ले फिर स्वर्ग जायँ।" ययाति बोले, "मैं क्षत्रिय हूं, प्रतिग्राही ब्राह्मण नहीं हूं, विशेष करके दूसरोंका पुण्य क्षय करनेमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती।" उसी समय ब्रह्मचर्य-परायणा, वनवासिनी माधवी भी आ पहुंची। चारों पुत्रोंने प्रणाम कर विनती की "हे तपोधने! हम तुम्हारे पुत्र हैं, सो कहो तुम्हारी क्या आज्ञा पालन करें ?"। यह सुन माधवीने हर्षसे गद्गद हो पिताके पास जा उन्हें प्रणाम कर और पुत्रोंके मस्तकको स्पर्श कर कहा, "हे राजेन्द्र, ये पुत्र तुम्हारे दौहित्र हैं सो यही तुम्हारा उद्धार करेंगे। हे राजन्! मैं तुम्हारी पुत्री माधवी हूं, इससे मेरे संचित पुण्यका भी आधा ग्रहण करो। मुझे गालवमुनिको समर्पण करते समय जो आपने दौहित्रकी इच्छा की थी उसका भी यही प्रयोजन है।" उस समय गालवमुनि भी वनसे आये और ययातिसे बोले, "हे राजन्! मेरी तपस्याके अष्टम भागसे तुम फिर स्वर्गको चले जाओ।"

प्रतर्द्दनादि सब साधु पुरुषोंको जान उनके वचन सुनते ही मोह और शोकसे रहित हो दिव्य शरीरमाला और भूषण धारण करके ययातिका फिर स्वर्गारोहण हुआ।

(२६) त्रिशंकु

जब महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षिपदके लिये स्त्री-सहित वनमें जाकर उग्र तपस्या कर रहे थे, उसी समय इक्ष्वाकुवंशके राजा त्रिशंकुने अपने पुरोहित महात्मा वशिष्ठमुनिको बुलाकर कहा, "महाराज, मैं ऐसा उपाय करना चाहता हूं कि इसी देहसे स्वर्ग चला जाऊं।" वशिष्ठमुनि बोले कि "यह बात अशक्य है"! तब राजाने गुरुपुत्रोंके पास जाकर अभिलाषा प्रगट की।

यह जानकर कि वशिष्ठने स्वयं अशक्यता मानी है गुरुपुत्रोंने राजाका तिरस्कार किया और बोले कि "जो वशिष्ठ नहीं कर सके, हमसे कब हो सकता है।" इसपर राजाने कहा "अच्छा, अब हम तीसरेके पास जाते हैं, "आपकी स्वस्ति हो।" राजाका यह अनादर वचन सुन ऋषिपुत्रोंने शाप दिया कि "तू चांडाल हो जायगा"।

रात बीतनेपर राजाके वस्त्र और शरीर नीले हो गये, शिखा झड़ गयी, देहमें भस्म लपट गया, गलेमें हड्डियोंको माला पड़ गयी और सब आभूषण लोहेके हो गये। राजाका यह रूप देख उसके सब अनुचर भाग गये। राजा दुःखित हो धीरजधर विश्वामित्रके पास आया। ऋषिने पहचान लिया और उनका सत्कार किया। सारे समाचार सुने। राजाको पूर्ण आश्वासन दिया। उन्हें सदेह स्वर्ग भेजनेके लिये यज्ञ आरंभ किये। ऋषियों और देवताओंको निमंत्रण भेजा पर इस यज्ञके निमंत्रणपर वशिष्ठ और उनके पुत्रोंने दुर्वचन कहे। इसपर विश्वामित्रजीने उन्हें शाप दिया। अन्य ऋषियोंने विश्वामित्रके डरसे यज्ञका विधिवत् अनुष्ठान किया। परन्तु जब देवगण न आये तो क्रुद्ध हो विश्वामित्रने अपने तपोबलसे त्रिशंकुको स्वर्ग भेजा। परन्तु वहां पहुंचते ही इन्द्रने उन्हें लौटा गिराया। गिरते हुए त्रिशंकुने विश्वामित्रकी दुहाई दी। राजाकी यह दशा देख विश्वामित्र क्रुद्ध हो बोले, "तिष्ठ तिष्ठ" (ठहर ठहर) और ऋषियोंके मध्यमें दक्षिण मार्गमें दूसरे सप्तर्षिमंडल और नक्षत्रमाला बनाने लगे। फिर दूसरा इन्द्र अथवा बिना इन्द्रका ही लोक बनाने लगे, देवगणोंका बनाना भी आरंभ किया। तब तो देवता, ऋषि और दैत्य, सब घबराये और विश्वामित्रके पास आकर विनयपूर्वक बोले, "हे तपोधन! यह राजा गुरुके शापसे पतित है, इसलिये सदेह स्वर्ग नहीं जा सकता।" विश्वामित्रजीने ...र दिया, "हे देवताओ! मैंने इसे सदेह स्वर्ग पहुंचानेको

प्रतिज्ञा की है। सो अवश्य होगा। इसके लिये स्वर्ग बना रहेगा। और मेरे बनाये ध्रुव सहित नक्षत्र भी स्थिर रहेंगे, इसमें आपलोग भी सम्मत हूजिये।" देवता बोले, "ऐसा ही होगा।" देवता इस प्रकार आश्वासन दे और उनकी स्तुति कर चले गये। *

(३०) विश्वामित्र और राजा हरिश्चन्द्र

अयोध्याके राजा हरिश्चन्द्र बड़े धर्मात्मा और सत्यव्रती थे। इन्द्र उसका यश सह न सका और किसी तरह उन्हें नीचा दिखलानेका विचार किया। उसने विश्वामित्रको परीक्षाके लिये उभाड़ा। एक रात स्वप्नमें विश्वामित्रने सारी पृथ्वी राजा हरिश्चन्द्रसे दान ले ली और दूसरे दिन सवेरे जाकर उसकी दक्षिणा मांगी। राजाने सारा राज उन्हें सौंप दिया और दक्षिणा चुकानेके लिये कुछ कालकी अवधि मांगी। विश्वामित्रने मान लिया और राजा सकुटुम्ब काशीकी ओर चल पड़ा। मार्गमें अनेक प्रकारके कष्ट सहते सहते जब काशी पहुंचे तो ऋषिजीने उन्हें आ घेरा और दक्षिणाके तकाजे शुरू कर दिये। अंतमें राजाने अपनेको और अपनी पत्नीको भी बेच दक्षिणा चुकायी। अपनेको डामके चौधरियोंके हाथ बेचा और उसने उन्हें यह काम सौंपा कि श्मशानपर जितने लोग मुर्दा जलाने आवें सभीसे कफ़नका टुकड़ा लेकर तब जलाने देना। इन्द्रकी कुटिलता और नीचताका अब भी अन्त न हुआ। राजाका एक मात्र पुत्र रोहित मर गया और रानी उसे जलानेके लिये मरघटपर ले गयी पर सत्यव्रती हरिश्चन्द्रने बिना कर लिये जलाने न दिया, यह जानकर भी कि मेरा ही पुत्र मर गया है, और मेरी ही पत्नी बिलप रही है, दृढ़ राजा हरिश्चन्द्र सत्य और धर्ममार्गसे विचलित न हुए। अंतमें रानीने चाहा कि अपने शरीरका वस्त्र आधा फाड़कर दूं और

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

वह ऐसा किया ही चाहती थी कि पृथ्वी कांपने लगी और देवताओंने हाहाकार मचाया। उसी समय शिवजीने प्रगट हो सबको समझाया और इन्द्र विश्वामित्रादि सबने राजाकी प्रशंसा की और अपना छल एवं परीक्षा स्वीकार कर राज्य लौटा दिया। पुत्र रोहिताश्व भी जी उठा। *

(३१) शिवि

काशीके राजा शिवि बड़े दयालु और धर्मात्मा थे। इन्होंने सौ यज्ञ करनेका विचार किया। जब बानबे यज्ञ कर चुके तो इन्द्र डरा कि कहीं आठ यज्ञ और करके मेरे पदका अधिकारी न हो जाय। यह सोच अग्निको कबूतर बना आप बाज बन यज्ञमें विघ्न डालनेको राजाकी यज्ञशालामें पहुँचा। कबूतर झपटकर राजाकी गोदमें छिपा। बाज उसका पीछा किये पहुँचा और बोला "आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं। यह कबूतर मेरा आहार है। यदि आप न देंगे तो मैं भूखके मारे मर जाऊंगा और आपको पाप लगेगा। राजा बोले कि "मैं शरणागतको नहीं छोड सकता।" अंतमें बाजने कहा कि "इस कबूतरके बराबर तौलमें यदि अपने शरीरका मांस मुझे आप दे दें तो इसे छोड़ सकता हूं।" राजाने मान लिया और तराजूके एक पलड़ेपर उस कबूतरको रख दूसरी ओर अपने शरीरका मांस काट काटकर रखने लगे। सारे शरीरका मांस काट डाला, पर पलडा भारी न हुआ। तब उन्होंने अपना गला काटना चाहा, उसी घडी विष्णु भगवानने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें अपने लोक भेज दिया।

(३२) वाल्मीकि

अध्यात्म रामायणमें लिखा है कि जब श्री रामचन्द्र वनको गये और वाल्मीकि मुनिके आश्रममें पहुँचे तब उन्होंने अपने

* सिवि दधीचि हरिचन्द्र कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥

मुखसे यह वृत्तान्त कहा कि "हे राम, आपके नामका माहात्म्य कौन किस प्रकारसे कहे कि जिसके प्रभावसे मैं ब्रह्मर्षित्वको प्राप्त हो गया हूं। पूर्वकालमें मैं किरातोंमें रहा करता था और उन्हींमें पला। जन्ममात्र द्विजकुलमें हुआ, परन्तु सर्वदा शूद्रोंका आचरण करता रहा और एक शूद्रा स्त्रीसे मैंने कई पुत्र उत्पन्न किये, चोरोंके साथ रहकर चोर हो गया। पथिकोंकी हत्या करता और लूट लेता था। एक दिन सप्तर्षि उस महा वनमें मुझे दीख पड़े। मैं उनपर झपटा और उनको पकड़ना चाहा। तब मुनियोंने मुझे देखकर कहा कि रे द्विजाधम क्यों आता है? तब मैं बोला कि हे मुनिश्रेष्ठो! मैं कुछ हरणको आता हूं। क्योंकि मेरे बहुतसे पुत्र और स्त्री आदि सब भूखे हैं और उन्हीं-की रक्षाके लिये मैं पर्वत और वनोंमें घूमा करता हूं। तब वे निर्भय होकर मुझसे बोले कि 'अच्छा तू अपने कुटुम्बमें जाकर एक एकसे पूछ तो आ कि मैं जो पाप बटोरता हूं, उसके भागी तुम होगे या नहीं। तबतक हमलोग निश्चय यहां ही खड़े रहेंगे। मैं गया और अपनी स्त्री और पुत्रोंसे पूछा। सबने उत्तर दिया कि "वह सब पाप तेरा ही है, परन्तु फल जो धनादि तू लाता है उसके भागी हम सब हैं।" यह सुनकर मुझे वैराग्य हुआ और मैं मनमें विचारता हुआ मुनियोंके पास जा चरणोंपर गिर पड़ा और बोला कि मुनीश्वरो! नरकमें बहते हुए मेरी रक्षा करो, वह बोले, "उठ, उठ, तेरा मंगल हो। सत्संगका फल अवश्य ही होता है। हम लोग तुझे कुछ उपदेश देंगे, उसीसे तू पापोंसे छूट जायगा"। हे राम, इतना कहकर उन्होंने मुझे उलटे अक्षरोंमें आपका नाम 'मरा' यहीं बैठकर एकाग्र मनसे जपने और जब-तक वे फिर लौटकर न आवें तबतक सदा जपते रहनेको कहा और चले गये। मैंने भी एकाग्र मन होकर जप किया और सब बाहरी विषयोंको भूल गया। निश्चलरूप सर्वसंगृहीत बहुत काल

बीतनेसे मेरे ऊपर बाँबी जम गयी। सहस्र वर्ष बीतनेपर वे ऋषि फिर आये और उन्होंने मुझसे कहा कि "निकल आओ"। यह सुन मैं झट उठ खड़ा हुआ। तब मुझसे मुनि बोले कि "तुम वाल्मीकि मुनीश्वर हो, क्योंकि तुम वल्मीकसे उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ इसीसे वाल्मीकि नाम हुआ"। उलटा नाम जपते जपते इस प्रकार मैं ब्रह्मर्षि हो गया *।

(३३) नारद

एक बार व्यासजीके यहां देवर्षि नारदजी गये और उन्हें कुछ उदास बैठे देख पूछा कि व्यासजी, आप सब तत्वोंके जाननेवाले हैं, उदास क्यों हैं? व्यासजी बोले कि जो आपने कहा ठीक है, तथापि मेरी आत्मा प्रसन्न नहीं होती, इसमें क्या गुप्त कारण है? इसपर नारदजीने उत्तर दिया कि मेरी समझमें आपने भगवानके निर्म्मल-यशरहित धर्म्मादिका वर्णन किया है यही न्यूनता है, ध्यानावस्थित होकर भगवान्‌के चरित्रोंका स्मरण करके वर्णन करो जिससे सब बंधन कट जायँ। हे मुनि, देखो मैं पूर्व जन्ममें वेद-वादी ऋषियोंकी किसी दासीका पुत्र था। वहां मुनि लोग चातुर्मास्यका व्रत किया चाहते थे। मेरी माताने मुझे उन मुनियोंकी सेवामें रख दिया और मैंने सब बालकपनकी चंचलता छोड़ जितेन्द्रिय हो उनकी सेवा आरंभ की। मेरी सेवासे प्रसन्न हो उन, महात्माओंने मुझपर कृपा की। उन मुनियोंकी जूठन जो बचती वह मैं उनकी आज्ञासे केवल एक ही बार खाया करता। उसीके प्रभावसे मेरे पाप निवृत्त हो गये, मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और भगवद्धर्म्ममें रुचि हो गयी। अन्तमें उन्होंने प्रसन्न हो भगवान्‌के कहे हुए अति गुप्त ज्ञानका मुझे उपदेश किया। जिससे मैंने यह जान लिया कि सम्पूर्ण कर्मों को भगवान्‌में अर्पणकर देना यही प्राणियोंको उचित है इससे कर्मों को

* वालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।

निवृत्ति हो जाती है। मुनिगण व्रतपूर्ण करके चले गये। मेरे मनमें भक्तिका संस्कार हो गया। मेरी माता एक मूर्ख स्त्री और लोगोंकी दासी थी। मैं एक ही पुत्र था, अतएव वह मुझे बहुत चाहती थी, परन्तु पराधीनतासे कुछ भी नहीं कर सकती थी और मैं भी उस माताके स्नेहबन्धनमें पड़ा पांच वर्षका बालक उस ब्रह्मकुलमें रहने लगा। एक रात्रि गाय दुहने निकली कि सांपने काट खाया और वह मर गयी। इसे मैं ईश्वरकी कृपा मान उत्तर दिशाको चल दिया। मार्गमें अनेक देश और शोभित वन पर्वत लांघते एक घोर निर्ज्जन वनमें पहुचा। वहां तपस्या करने लगा। वहा भगवान्‌के ध्यानमें मन अनुरक्त हुआ। पर शरीरकी अनुपयुक्तता-से ध्यान स्थिर भावसे न रह सकता था, जिससे मैं अत्यन्त विकल हो जाता था। एक दिन मैंने काल पाकर वह शरीर छोड़ा और कल्पान्तमें, जब नारायण जलमें शयन कर रहे थे, ब्रह्माजीके प्राणके साथ मेरे आत्माका भी प्रादुर्भाव हुआ और जब ब्रह्मा इस जगत्‌की रचना करने लगे उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषि तथा मैं प्रगट हुआ। अब इस वीणाको लिये सर्वत्र हरिगुण-गान करता विचरा करता हूं। कहीं मेरी गति नहीं रुकती और सर्वदा भगवान् हृदयमें दर्शन देते रहते हैं। भगवान्‌का गुणकीर्तन और सत्संग भवसागरके लिये नौका है, यही मेरे जन्म कर्म की कथा है*।

(३४) घट-योनि अगस्त्य ऋषि

एक बार अगस्त्य ऋषिने शिवजीसे कहा कि मेरे पिता मित्रावरुणजी तप कर रहे थे। आकाशमार्गसे रम्भा शृंगार किये जाती थी। अचानक पिताजीकी दृष्टि उसपर पड़ी, जिससे उन्हें काम-वासना हुई और उन्होंने अपने वीर्य्यको एक

---

* वालमीकि नारद घट जोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।
बढ़त बिंध्य जिमि घटज निवारा।

घड़ेमें रख दिया। उसीसे मेरी उत्पत्ति हुई और इसीलिये मैं घटज या घटयोनि भी कहलाया। ऐसे नीच स्थानसे उत्पन्न होनेपर भी मैं इस पदवीको प्राप्त हुआ, जिसका मुख्य कारण सत्संग ही है।

हिमालयकी स्पर्धामें एक युगमें विंध्याचल बढ़कर ऊंचा होने लगा। इतना ऊंचा हो गया कि उसके भयसे देवतालक चिन्तित हुए। उन्होंने अगस्त्यजीसे अपना भय कहा। अगस्त्यजीने दक्षिणको ओर यात्रा की। जब विंध्यके पास गये तो अपने गुरु अगस्त्यजीको साष्टांग प्रणाम करनेको विंध्य लेट गया। अगस्त्यजीने आशीर्वाद दिया और आदेश किया "बेटा, जबतक मैं दक्षिणसे न लौटूं इसीतरह पड़े रहो।" विंध्य आजतक पडा हुआ है, क्योंकि अगस्त्यजी दक्षिणसे अबतक न लौटे।

(३५) अगस्त्य और समुद्र

*एक समय समुद्र किसी चिड़ियाके तीन बच्चोंको बहा ले गया। चिड़िया बडी दुखी हुई। और वह मारे क्रोधके, समुद्रको उलच डालनेके संकल्पसे, प्रतिदिन अपनी चोंचसे पानी भर भरकर बाहर फेंकने लगी। अगस्त्य ऋषिने यह देखकर उससे पूछा। उसने अपना दुखडा रो सुनाया। ऋषिराजको बड़ी दया आयी और उन्होंने उस चिड़ियासे कहा कि यह समुद्र बड़ा दुष्ट है, तू इसे रहने दे, मैं कभी इसका बदला लूंगा। कुछ काल पीछे एक दिन अगस्त्यजी समुद्र किनारे बैठे पूजा कर रहे थे। एक लहरने इनकी पूजाकी सामग्री नष्ट कर दी। इसपर अगस्त्यजीको बड़ा क्रोध आया और साथ ही उन्हें उस चिड़ियाकी बात भी याद आ गयी। मारे क्रोधके तीन अंजुलीमें सारा समुद्र पी गये। बहुत दिनोंतक वह सूखा पडा रहा। अन्तमें देवताओंके बहुत कहने सुननेपर अगस्त्यजीने लघुशंका करके फिर सारा समुद्र भर दिया।

* कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा।

(३६) परशुराम

* एक समय परशुरामजीकी माता रेणुका गंगाजीपर जल लेनेको गयी थी। वहां उसने गन्धर्वराज चित्ररथको कमलोंकी माला पहने अप्सराओंके साथ क्रीडा करते देखा। तमाशा देखनेमें उसे बहुत देर हो गयी और होमका समय भूल गयी। चित्ररथ गन्धर्वपर इसकी इच्छा भी प्रकट हो गयी। जब इसे होमकी याद आयी और देरका ख्याल आया तो शापसे डरती तुरंत आ मुनिके आगे कलश रखकर रेणुका हाथ जोड़कर खडी हो रही। व्यभिचारको जान मुनिने क्रोधित हो पुत्रोंसे कहा कि "इस पापिनीको मार डालो," पर जमदग्नि मुनिकी यह बात किसीने न मानी। ऋषिने परशुरामसे कहा और उन्होंने पिताकी आज्ञा मान माता तथा अपने सब भाइयोंको भी मार डाला क्योंकि यह अपने पिताके तप और प्रभावको भली भांति जानते थे। इस बातस प्रसन्न हो पिताने कहा कि "वर मांगो" तब परशुरामजीने यही वर मांगा कि "मेरे भाई तथा माता पुनः जीवित हो जायं और यह लोग यह बात न जानें कि मैंने इन्हें मारा था।" पिताने उनको अपने तपके प्रभावसे फिर जिला दिया, मानों कोई सोकर फिर उठ बैठे।

इस प्रकार पिताकी आज्ञा पालनेसे परशुरामजीको न तो पाप ही हुआ और न लोकमें किसी तरहका अपयश।

(३७) सहस्रार्जुन और रावण

हैहयवंशी राजा अर्जुनने नारायणके अंशरूप दत्तात्रेयजीको सेवासे प्रसन्न किया, जिससे उसे सहस्रबाहु तथा अणिमादि सिद्धि मिली और उनके प्रसादसे उसकी इन्द्रियोंकी शक्ति, लक्ष्मी,

* परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोग सब साखी॥

तेज, वीर्य, यश, और बल किसीसे खंडित नहीं होता था और न वह शत्रुओंसे पराभव पाता था। इसकी गति अव्याहत थी। वायुकी तरह हर कहीं घूमता-फिरता था। एक दिन रेवा नदीमें स्त्रियोंके साथ विहार करता था। वहां मदोन्मत्त हो इसने अपने हजार हाथोंसे नदीके वेगको रोका, जिससे नदीका जल रुककर उलटा बहने लगा और उससे रावणका डेरा बह गया। तब वीरताभिमानी रावण राजाके पराक्रमको न सहकर युद्ध करने गया। सहस्रार्जुनने* उसे सहज ही पकड़कर अपनी माहिष्मती नगरीमें कैद कर लिया और फिर कुछ दिन पीछे जैसे बंदरको छोड़ देते हैं वैसे छोड़ दिया।

एक समय रावण हैहय राजा सहस्रार्जुनके नगरमें गया। सहस्रार्जुनने देखकर इसे बांध लिया। तब पुलस्त्य मुनिने जाकर उसे वहांसे छुड़ा दिया।

(३८) सहस्रबाहु और परशुराम

एक दिन हैहय सहस्रबाहुवंशी राजा सहस्रार्जुन शिकार खेलते खेलते जमदग्नि मुनिके आश्रममें आ निकला। मुनिने कामधेनुके प्रभावसे अमात्य और सेनासहित उसकी भलीभांति पहुनाई की। ऋषिमें अपनेसे भी अधिक सामर्थ्य देख राजा प्रसन्न तो न हुआ किन्तु उसकी आज्ञासे उसके आदमी उस धेनुको बलात्कारसे बछवे सहित माहिष्मती नगरीमें ले गये। पीछे ऋषिपुत्र परशुरामजी आये और उसकी दुष्टता सुन अत्यन्त क्रोध हुआ और अपना फरसा, धनुष और तरकस आदि ले उसके पीछे झपटे। परशुरामजीको पुरीमें आते सुन राजाने शस्त्र और अस्त्रोंके सहित सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, जिसे परशुरामजीने बिना प्रयास अकेले ही काट गिराया। रणक्षेत्रमें सेना कटती देख राजा क्रोधयुक्त हो आप युद्ध करने आया और एकबारगी पांच

---

* जानउं मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहुसन परी लराई।

सौ धनुषपर वाण चढ़ा परशुरामपर छोड़ने लगा।* परन्तु परशुरामजीने अपने एक ही धनुषसे उसके सभी वाण काट गिराये। फिर वृक्ष और पर्वत ले युद्धमें दौड़ते सहस्रार्जुनको देख अपने कुठारसे उसकी भुजाएं काट डालीं और फिर उसका सिर भी उड़ा दिया। जब सहस्रार्जुन मर गया तो डरके मारे उसके दस हजार पुत्र भाग खड़े हुए। परशुरामने बछवासमेत अपनी गऊ लाकर अपने पिताको दी और सब हाल सुनाया। इसपर पिता जमदग्नि बोले "हे महाबाहु राम! सर्वदेवमय राजाको वृथा मारा, यह तूने बड़ा पाप किया। ब्राह्मण क्षमासेही पूज्य हैं। राजाका वध ब्रह्महत्यासे भी अधिक है, सो अब तुम यम, नियम, ध्यान और तीर्थयात्रासे इस पापका प्रायश्चित्त करो।

(३६) परशुरामद्वारा क्षत्रियनाश

जब परशुरामजीने सहस्रार्जुनको मार डाला, तब उसके पुत्र बदला लेनेका सुअवसर खोजने लगे। एक दिन परशुरामजी जब भाइयोंके साथ वनमें गये तब अवसर पा वे सब वैर लेनेको आश्रममें आये और ध्यानावस्थित जमदग्निका सिर काटकर ले गये। दूरसे माताका आर्त्तनाद सुन परशुरामजी आश्रममें आये और पिताको मरा देख शोकसे विह्वल और बदला लेनेके विचारसे अधीर हो गये। पिताकी देह भाइयोंको सौंप, हाथमें फरसा ले, क्षत्रियोंके अन्तका विचारकर, माहिष्मतीमें जाकर क्षत्रियोंके सिर काट काट एक बड़ा पर्वत बना दिया। उन्होंने समस्त अन्यायी क्षत्रियोंका वध करना आरम्भ किया। इसी प्रकार इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया क्योंकि माता रेणुकाने ऋषिके शोकमें इक्कीस बार छाती पीटी थी, फिर कुरुक्षेत्रमें नौ बड़े बड़े तालाब बनाये। पीछे पिताका सिर ले धड़से जोड़कर सर्वदेवमय आत्मरूप ईश्वरका

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसकू। केहि न राजमद दीन्ह कलकू॥

यज्ञ किया। उसमे होताको पूर्व, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दी। दूसरे ऋषियोंको अवान्तर दिशाएं दी। कश्यपको पृथ्वीका मध्य भाग, तथा आर्यावर्त्त और शेष पृथ्वी सब सभासदोंको दी। तब ब्रह्मनदी सरस्वतीमें अवभृथ स्नान कर पापमुक्त हुए। जमदग्नि सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये।*

(४०) रावण और कैलास

रावण जब अपने भाई कुवेरसे पुष्पक विमान जीत उसपर सवार स्वामिकार्तिकेयके उत्पत्तिस्थानवाले जङ्गलमें घुसा त्यों ही पुष्पक चलनेसे रुक गया। वह अचरजमें हो था। विकराल कृष्ण पिंगल वर्ण वामनरूप विकट मूर्ति, सदाशिवके मुख्यगण श्रीनन्दीश्वर रावणके पास आकर बोले कि "हे दशग्रीव, तू यहांसे चला जा, यहां भगवान् शिव क्रीड़ा कर रहे हैं। तू अपने विमानको लौटाकर चला जा।" रावण शिवजीका नाम सुन और नन्दीश्वरका रूप देख तिरस्कारसे हँसा। उसके हँसनेसे क्रोधित हो नन्दीश्वर बोले, "अरे दशानन, तू मेरे वानररूपका अनादर कर हँसा। इसलिये वानर लोग तेरे कुलका नाश करेंगे।" शापपर कुछ भी ध्यान न दे रावण क्रोध कर बोला, "हे रुद्र, जिस पर्वतसे विमानकी गति रुकी, मैं उसको ही उखाड़ फेंकता हूं।" इतना कह उसने बड़ी फुर्तीसे अपनी भुजाओंको पर्वतके नीचे घुसाकर उसे उठा लिया और तौलने लगा। जब पर्वत डगमगा उठा तो शिवके गण कांपने लगे और पार्वती भी विस्मित हो शिवके शरीरसे लिपट गयीं। तब तो भगवान् शिवने कौतुक हो पर्वतको अपने पैरके अंगूठेसे दबाया और उसके दबानेसे रावणकी भुजाएं पर्वतके तले मरमरा उठीं और दबनेसे तथा क्रोधसे रावणने ऐसा भयङ्कर नाद किया कि

* मातहिं पितहिं उरिन भये नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जीके।

त्रैलोक्य कांप उठा। देवता, ऋषि, गन्धर्व सब चकित हो गये। हैरान और लाचार हो रावण आशुतोष शिव भगवान्‌को प्रणामकर, सामवेदके मंत्रोंसे स्तुति करने और रो रो विलख विलख प्रार्थना करने लगा। इस तरह हजार बरस बीत गये। तब शङ्करजीने प्रसन्न हो उसके भुजोंको दाबसे छोडकर कहा, "हे वीर दशानन, मैं तेरी सामर्थ्यसे प्रसन्न हुआ और पर्वतकी दाबसे जो तूने नाद किया उससे त्रैलोक्य भयभीत होकर रो उठा, इससे आजसे तेरा नाम "रावण" विख्यात होगा। अब जैसे चाहे चला जा, हम अनुमति देते हैं।" सदाशिवने उसे अपना प्रसाद 'चन्द्रहास' नामक एक खड्ग और शेष आयुर्बल दिया।*

(४१) रावण और बालि

† एक बार रावण वानरराज बालिको मारनेकी इच्छासे किष्किंधा चला गया परन्तु बालिने उसे अपनी कांखमें दबा लिया और उसे चारों समुद्रोंपर घुमा-फिराके छोड दिया। बालिके इस पराक्रमको देख सन्तुष्ट हो रावणने उससे मित्रता कर ली।

(४२) गरुड़ और भुशुण्डिकी लड़ाई

× एक समय जब दशरथके आंगनमें श्रीराम बाललीला कर रहे थे, कागभुशुण्डिके मनमें मोह उत्पन्न हुआ तब वे रामचन्द्रके हाथसे पूरीका टुकड़ा लेकर उड़ गये। रामने यह ढिठाई देख गरुडको स्मरण किया जिसपर गरुड और कागभुशुण्डिमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमें कागभुशुण्डि घायल होकर तीनों लोकमें

---

* सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुजलीला॥

† समर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा॥

× होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवइ चह कृपानिधाना॥

भागा, पर गरुड़ने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा। अन्तमें वह फिर रामकी शरण आया। तब उन्होंने गरुड़को निवारण कर उसकी रक्षा की। इसपर गरुड़को अभिमान हुआ कि कागभुशुण्डिसे मेरी भक्ति बढ़ी चढ़ी है।

(४३) ताड़काको वरदान

*सरयू और गंगाके संगमके पास पूर्वयुगमें देवताओंके बनाये 'मलद' और 'करूष' दो देश थे। वह देश सुन्दके अधिकारमें थे। उस समय सुकेतु नामका एक वीर्य्यवान और संतानहीन यक्ष था। उसने संततिके लिये महातप किया। ब्रह्माने उसे ताड़का नामकी अति रूपवती कन्या दी और उसकन्याको सहस्र हाथीका बल दिया। जब वह युवती हुई तब सुकेतुने सुन्दसे उसे ब्याह दिया। जब अगस्त्यमुनिके शापसे सुन्द मारा गया तब ताड़का अपने पुत्र मारीचको साथ ले क्रोधसे मुनिको खाने दौड़ी। मुनिने पुत्रके साथ अपने ऊपर दौड़ते देख मारीचसे कहा तू राक्षस हो और ताड़कासे कहा, तू पुरुषको खानेवाली हो और इस रूपको छोड़ भयङ्कर रूप धारण कर। इस शापसे क्रोधित हो ताड़का अगस्त्यमुनिकी तपोभूमिको उच्छिन्न किये डालती थी। विश्वामित्रजीके बहुत समझानेपर ही श्रीरामचन्द्रने ताड़का स्त्रीको मारकर मुनियोंकी रक्षा की।

(४४) कैकेयीद्वारा युद्धमें दशरथकी सहायता

†पूर्वकालमें एक बार देवासुर-संग्राममें इन्द्रने सहायताके लिये महाराज दशरथसे प्रार्थना की राजाने स्वीकार कर लिया और केकयीसहित सेनाको साथ ले राक्षसोंसे युद्ध करने गये। युद्धके अवसरमें महाराजके रथके धुरेकी कील टूटकर

* "ऋषि हित राम सुकेतु सुताकी। सहित सेनसुत कीन्ह बिबाकी"

† दुइ बरदान भूपसन पाती। मांगहु आजु जुड़ावहु छाती॥

गिर पड़ी पर राजाको इस बातकी कुछ ख़बर न हुई। केकेयीने अति धैर्य्यसे स्वामीकी जीव-रक्षाके लिये कीलके छिद्रमें अपना हाथ डाल दिया और नेत्रोंमें स्वाभाविक श्यामतातक न देख पड़ी। राजाने शत्रुओंको मारनेके पीछे कैकेयीको उस प्रकार बैठे देखा तो आश्चर्ययुक्त हो उस साहससे बड़े प्रसन्न हुए और अपने आप बोले कि जो तुम्हारी अभिलाषा हो वर मांग लो। मैं तुम्हें वर देता हूं।" केकयीने कहा कि यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो यह दोनों वर हमारी धरोहरकी भांति अपने पास रहने दीजिये, जब समय होगा तब इसपर मांग लूंगी। महाराजने "तथास्तु" कहा।

(४५) सीताजीको नारदका आशीर्वाद

*एक बार जानकीजी गिरिजापूजनके लिये जाती थीं। नारदजीसे भेंट हो गयी। जानकीजीने प्रणाम किया। नारदजी-ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया कि जाओ इसी वाटिकामें पहले-पहल तुम अपने पतिको देखोगी। इसपर जानकीजीने पूछा कि महाराज मैं उनको कैसे पहचानूंगी। तब नारदजीने कहा कि इस बगीचेमें जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय वही तुम्हारा पति होगा।

(४६) दशरथद्वारा सरवनका बध

†राजा दशरथ कौशल्याजीसे बोले कि पूर्वकालमें युवावस्थामें मृगयामें आसक्त रात्रिके समय महावनोंमें नदीके तीर मैं धनुष-बाण ले घूमा करता था। एक बार जलमें महा गम्भीर शब्द हुआ, जिससे मैं समझा कि कोई हाथी पानी पीता है। मैंने शब्दवेधी बाण मारा और साथ ही वहांसे आर्त्तस्वरसे यह

* सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।

† तापस अध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥

शब्द सुन पड़ा कि "हाय, मैं मारा गया।" तब मैंने समझा कि यह तो कोई मनुष्य है। मैं धीरे धीरे जलके पास चला। उस समय फिर यह शब्द सुन पड़ा कि 'हा विधि! मैंने तो किसीका कोई भी अपराध नहीं किया, फिर किसने मुझे मारा? मेरे पिता-माता जलकी इच्छासे मेरी बाट जोहते होंगे। भयभीत हो मैं धीरे धीरे पास जाकर बोला कि 'हे स्वामिन्, मैं राजा दशरथ हूं और अज्ञानके वश मुझसे यह अपराध हुआ है। अतः मैं क्षमाके योग्य हूं।' इतना कह गद्‌गद् वाणी हो मैं उनके चरणोंपर गिर पडा, तब मुनि बोले 'हे श्रेष्ठ नृप, तुम मत डरो, तुमको ब्रह्महत्या न होगी, क्योंकि मैं तपपरायण वैश्य हूं; परन्तु मेरे माता-पिता प्याससे व्याकुल हैं, उन्हें जल पिलाओ, शीघ्रता करो, नहीं तो पिताजी क्रोधित हो तुमको भस्म कर डालेंगे। हे महाराज, तुम उन्हें जल पिलाकर प्रणाम करके पीछेसे अपना अपराध कह देना तो तुम इस अज्ञात पापसे छूट जाओगे। महाराज, मेरे हृदयसे बाणको निकालो, मैं प्राण छोड़ता हूं, मैं बहुत कालतक इसकी पीड़ा नहीं सह सकता।' यह सुन मुनिकुमारकी देहसे बाण निकाल, जलका भरा कलश ले मैं उसके माता पिताके समीप गया। दोनों अति वृद्ध अंधे तथा भूखप्याससे व्याकुल थे मेरे पैरोंकी आहट सुन उसके पिता बोले, पुत्र विलम्ब क्यों किया? हमको उत्तम जल दो और हे वत्स, तुम भी पीओ, जब वह पी चुके, तब मैं धीरेसे उनके चरणोंपर गिरा और विनयपूर्वक मैंने सब समाचार कह दिये और उनसे दीन हो विनती की कि "हे मुनि, मैं वही मुनिघातक नराधम हूं और उनकी आज्ञासे यहां आया हूं। दया करके शरणागतकी रक्षा कीजिये।" यह सुन दोनों अति दुःखित हो भूमिपर गिर पड़े और शोकसे विलाप करते बोले, 'हमारा पुत्र है, वहीं हमें शीघ्र ले चलो। मैं उन अन्ध [illegible] उनके आज्ञानुसार घाटपर ले आया। अपने पुत्रको

दोनों हाथोंसे पकड़कर दम्पति विलाप करने लगे। उनकी आज्ञासे शीघ्र मैंने एक चिता बना दी और उन वृद्धोंने अपने मरे हुए पुत्रको गोदमें लिया और उसपर बैठ गये। मैंने उसमें अग्नि लगा दी और वे भस्म होकर स्वर्गको चले गये। चितामें बैठने समय उस वृद्धने मुझसे कहा, 'तुम भी ऐसे ही होगे, अर्थात् तुम भी पुत्र-शोकमें मरोगे।

(४७) शबरीको मुनिका आशीर्वाद

* जब शबरीके गुरु परमधाम सिधारने लगे तो शबरीने प्रार्थना की कि मैं भी यह शरीर छोड़ परमधामको जाऊंगी। इसपर उन्होंने कहा कि तू अभी इसी कुटीमें रह। कुछ दिन पीछे यहां राम लक्ष्मण आवेंगे तब तू उनके दर्शन करके परमधाम जाइयो। तबसे शबरी बराबर उनकी बाट जोहती रही।

(४८) वालि, दुंदुभी और ताल

† दुंदुभी नामका दैत्य बड़े प्रचण्ड शरीरका अत्यन्त ही बलवान था। एक बार आधी रातको यह दैत्य किष्किन्धामें आया और बड़े भयंकर नादसे वालिको ललकारा। महाक्रोधी वालि सुनकर अधीर हो गया। उसी समय बाहर जाकर सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और उसकी छातीपर लात धर सिर मरोड़कर अलग कर दिया और हाथमें ले उसके बोझका अनुमानकर पृथ्वीपर उसे सहज ही फेंक दिया। पर ऊंचेसे फेंके जानेसे वह एक योजनपर मतंग ऋषिके आश्रममें गिरा और उस सिरसे बहुत सा रक्त बहा। यह देख ऋषिने क्रोधकर

---

* सबरी देखि रामु गृह आये। मुनिके वचन समुझि जिय भाये।

† इहां सापबस आवत नाहीं, तदपि सभीत रहउ मनमाहीं।
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये, बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

बालिको शाप दिया कि "आजसे जो तू यहां आवेगा तो तेरा मस्तक फट जायगा। और तू मर जायगा।" इसी शापके भयसे बालि उस पर्वतपर नहीं जाता था। सुग्रीवने उस दुंदुभी-का पर्वताकार सिर दिखाया। श्रीरामजीने मुस्कुराकर पैरके अंगूठेसे उस सिरमें सहज ही एक ठोकर मारी कि जिससे वह दस योजनपर जा गिरा। इस अद्भुत कर्मको देख सुग्रीवने राम-चन्द्रकी सराहना की और कहा, "हे रघुवर, देखिये, यह सात तालके वृक्ष हैं, जिनके पत्ते बालि सहज ही हिलाकर गिरा देता है। यदि आप इन सातों वृक्षोंको एक ही बाणसे छेद दें तो मुझे बालिके मारनेका विश्वास हो जाय।" यह सुन श्रीरामचन्द्रजी-ने धनुषपर बाण चढ़ाया और छोड़ा। तब वह बाण सातों तालोंको भेद और पर्वतसे लगकर फिर तरकशमें पूर्ववत् आ गया। यह देख सुग्रीवको बड़ा अचरज हुआ।

(४६) हेमा और स्वयंप्रभा

*वानर सीताजीकी खोजमें बनवन घूमते घूमते बड़े प्यासे हुए और कहीं पानी न मिला। भींगे पक्षियोंको एक गुफासे निक-लते देख हनुमान्‌को आगे कर सब उसमें घुसे। कुछ दूर अंधकार-मय मार्ग काटकर उसमें उन्हें एक बगीचा मिला, जिसमें एक सरोवर और फल-फूलोंसे लदे वृक्ष और अच्छे वस्त्रादिसे भरे कई घर थे; परन्तु वहां कोई मनुष्य नहीं देख पड़ा। फिर एक घरमें एक तपस्विनी देख पड़ी जो ध्यान लगाये एक मैला वस्त्र धारण किये बैठी थी और बड़ी कान्तिमती थी। वानरोंने कुछ भक्ति और कुछ भयसे उसे प्रणाम किया। तब उसके पूछनेपर हनुमान्‌जीने रामकी कथा सीताहरण और खोजका सारा

*दूरिते ताहि सबन्हि सिर नावा। पूछे निज वृत्तान्त सुनावा।
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहा रघुराई।

वृत्तान्त कहा और अन्तमें बोले कि प्यासके सताये, विना आज्ञा हम इस विवरमें घुस आये।

यह सब सुन तपस्विनी बोली "हे हनुमानजी, 'हेमा' नामक विश्वकर्माकी कन्या बड़ी रूपवती है। उसने नृत्यकर महादेवजीको सन्तुष्ट किया। शिवजीने प्रसन्न हो उसे यह दिव्य नगर दे दिया। वह सुन्दरी अनन्तकालतक यहां रही। मैं 'दिव्य नामक गन्धर्वकी कन्या हूं और मेरा नाम 'स्वयंप्रभा' है और हेमासे मेरी मित्रता है। मुझे मोक्ष पानेकी इच्छा है। इसीसे मैं विष्णुकी आराधनामें लगी हूं। हेमाने ब्रह्मलोक जाते समय मुझसे कहा कि 'यहां कोई प्राणी नहीं रहता, तू यहां तप कर, त्रेतायुगमें दशरथके पुत्र होकर परमात्मा भूभार उतारनेको वनमें आवेंगे। उसकी स्त्रीकी खोजमें वानर तेरी गुफामें आवेंगे। उनका सत्कार करके रामजीके पास जाइयो और उनकी स्तुति कीजियो। उससे तू परमपद पा जायगी, सो हे वानरो, अब मैं वहां जाऊंगी। तुम लोग आंखें मूद लो, आपसे आप गुफाके बाहर हो जाओगे।

(५०) नारदका कुंभकर्णको उपदेश

*जब कुंभकर्णको रावणने जगाकर बुलाया और वह आकर सभामें राजाको प्रणामकर आसनपर बैठा, तब रावण दीनवाणीसे बोला, "भैया कुंभकर्ण ! मेरे ऊपर बड़ा संकट पड़ा है। दशरथके पुत्र रामने वानरोंकी सहायतासे मेरी सब सेना काट डाली, जान पड़ता है कि मेरा भी मृत्युसमय निकट आ गया, अब क्या करूं ? हे बलवान्, मैंने तुझे इसलिये जगाया है कि तू इनका नाश कर।" तब कुंभकर्ण ठठाकर हँसा और बोला, "हे राजन् ! पहले एकान्तमें जो एक दिन हेम

* नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा।
कहतेउं तोहि समय निरवहा।

तरजनीमें पर्वतके शिखरपर मैं बैठा था मुझे नारदऋषि देख पड़े। मैंने उनसे पूछा कि हे ज्ञानवान्, आप कहांसे आते हैं! यह सुन नारद बोले, "देवताओंका कुछ गुप्त विचार हो रहा था। वहीं मैं बैठा था और वहींसे आ रहा हूं। विचार यह था कि तूने और तेरे भाईने देवताओंको बहुत कष्ट दिये हैं। वे सब विष्णुके पास गये थे। और उन्होंने भक्ति-पूर्वक उनकी बड़ी स्तुति कर प्रार्थना की कि रावण त्रीलोकीको कष्ट दे रहा है, आप इसका वध कीजिये। ब्रह्माजीने पूर्व ही यह संकेत कर रखा है कि इसकी मृत्यु मनुष्यसे होगी, सो आप मनुष्यका अवतार ले इसे मारिये। इसपर महाविष्णुने "अच्छा" कहा है। उनका संकल्प कभी अन्यथा नहीं हो सकता, उन्होंने रघुकुलमें रामके नामसे अवतार लिया है, वह तुम सबका नाश करेंगे।" इतना कह नारदजी स्वर्गको चले गये। सो हे रावण, यह निश्चय समझो कि रामचन्द्र सनातन ब्रह्म हैं और श्रीसीताजी योगमाया हैं और यह हमको मुक्त करने आये हैं।

(५१) नलनीलको आशीर्वाद

*एक समय समुद्रके किनारे ऋषिलोग शालग्रामका पूजन-कर जब आँख बंदकर ध्यान करने लगे तो बालक नलनीलने शालग्रामकी मूर्ति समुद्रमें फेंक दी। इसपर मुनि लोगोंने दयापूर्वक शाप दिया कि तुम लोगोंका छुआ हुआ पत्थर पानीमें न डूबेगा।

(५२) सीताजीका वनवास

श्रीरामचन्द्रजी राज करते थे उस समय एक दिन सभामें अनेक बातें हो रही थीं। गुप्तचरोंकी कथाके बीचमें महाराज

* नाथ, नीलनल कपि दोउ भाई।
लरिकाई रिषि आसिष पाई॥

एकसे बोले "हे दुर्मुख, आजकल देशके वासी लोग मेरे और सीताके तथा भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और माता कैकेयीके विषयमें क्या कह रहे हैं, क्योंकि अविचारशील राजाका प्रायः अपवाद होता है।" ऐसा सुन दूत हाथ जोड़कर बोला कि "हे महाराज, पुरवासी आपकी प्रशंसा करते हैं और दशग्रीवके वधकीबात विशेष किया करते हैं"। फिर श्रीरामचन्द्र बोले कि "यह नहीं, वे लोग जो जो कुछ भला या बुरा कहते हैं उसे निःशंक होकर सविस्तर कहो, क्योंकि मैं भलेका आचरण और बुरेका परित्याग करूंगा।" ऐसा सुन भद्र फिर बोला कि "महाराज, जहा कुछ लोग बैठे रहते हैं वहा प्रायः ऐसा कहा करते हैं कि 'राघवने जो समुद्रमें पुल बाँधा यह बडा अद्भुत कर्म किया, जिसपरसे सम्पूर्ण कटकको भी उतार ले गये। ऐसा किसी पहेसे नहीं सुना कि कभी किसीने किया हो, तथा रावणको सपरिवार मारा यह भी बडा उत्कट कर्म किया, परन्तु रावणको मार और निन्दाका विचार न कर उन सीताजीको घर ले आये जिनको रावण गोदीमें उठाकर ले गया और जो राक्षसोंके वशमे इतने दिन रही। इन बातोंपर महाराजको क्रोध न हुआ। सो हे भाइयो, हमलोगोंको भी, अपनी स्त्रियोंके विषयमें ऐसाही सहना पड़ेगा क्योंकि राजाके अनुसार लोग व्यवहार करते हैं। ऐसा बहुत लोग कहते हैं।" यह सुन श्रीरामने अपने सुहृद्जनोंकी ओर देखकर कहा कि "क्या प्रजा ऐसा कहती है"? ऐसा सुन जो लोग बैठे थे सबने हाथ जोडकर कहा कि पृथ्वीनाथ, यह बात ऐसी है इसमें संशय नहीं है।

सभा-विसर्जन होनेपर भगवान् रामचन्द्रने भाइयोंको बुलवाया। उन्हें गले लगा, आसनपर बैठनेकी आज्ञा दे सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया कि मेरे विषयमें ऐसा बीभत्स अपवाद हो रहा है जो मेरे मर्मोंको विदीर्ण किये डालता है। लक्ष्मण, तुम तो जानते ही हो कि रावण सीताको ले गया था सो उसे

मैंने नष्ट कर डाला। फिर मेरी ऐसी बुद्धि हुई कि राक्षसके घरमें रही हुई सीताको मैं अयोध्या कैसे ले जाऊं, सो भी तुम्हारे सामनेकी बात है कि सीताने अग्निमें प्रवेश किया और अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, इन्द्र, देवता, ऋषि सबने सीताको निर्दोष ठहराया तथा मेरी बुद्धिसे भी निर्दोष ठहरी तब मैं ले आया, पर लोकमें अपवाद है और निंदित जन अधम लोकमें गिरा दिये जाते हैं। जबतक उनकी निन्दा शान्त न हो वहीं पड़े रहते हैं। सो इस अपवादपर मैं अपना प्राण दे दूंगा और सीता क्या तुम सबको भी छोड़ दूंगा। सो हे सौमित्रे, कल तुम सीताको रथपर चढ़ा गंगापार वाल्मीकिके आश्रमके समीप छोड़ आओ। पूर्वमें वह ऐसा कहती भी थी कि मैं गंगाजीके तटपर मुनियोंके आश्रमोंको देखूंगी सो मैं तुमको अपने प्राण और चरणोंकी शपथ दिलाता हूं कि इस कार्य्यके सम्बन्धमें मेरी कुछ विनती न करना और जो मुझे इस बातमें रोकेगा वह मेरा अहित होगा। ऐसा कह श्रीरामचन्द्र आंखोंमें आंसूभर सबको विदाकर आप अपने भवनमें चले गये।*

श्रीलक्ष्मणजी बड़े शोकके साथ रथ जोतवाकर जानकीको ऋषि-दर्शनके बहाने ले गये और वहां छोड़कर व्याकुल हो मूर्च्छित हो गये और फिर सीताके बहुत पूछनेपर सब वृत्तान्त कह दिया और बताया कि यह समीप ही महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम है। आप वहीं जाकर रहें। इसपर जानकीजी भी अति विह्वल हुईं और बोलीं कि हे सौमित्रे, मेरा जन्म दुःख भोगनेको ही हुआ है। अस्तु यदि मेरे परित्यागसे आपका अपवाद मिटे तो मुझे स्वीकार है और यह तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्ध है। आपको उचित है कि भाइयोंके समान प्रजागणसे व्यवहार करें जिसमें लोकमें कीर्ति हो। मुझे तो आपहीकी गति है। देखो मैं गर्भवती हूं। इतना संदेसा मेरा महाराजसे कहना और मेरी सासुओंसे मेरा प्रणामपूर्वक कुशल कहना।

तदनन्तर लक्ष्मण चले आये और वाल्मीकि मुनि बालकोंसे संदेसा सुन श्रीजानकीजीको आश्रममें ले गये और उन्हें तपस्विनी स्त्री-जनोंको सौंप दिया। लक्ष्मणजी आकर अत्यन्त खेदित हुए। तब सुमंतने समझाया कि सौमित्रे, एकबार चातुर्मास्यमें दुर्वासा मुनि वशिष्ठके आश्रममें गये और चार महीने वहीं रहे, उसी समय तुम्हारे पिता भी वहीं गये थे। एक दिन मध्याह्नमें कथा-वार्ता होते तुम्हारे पिताने पूछा कि हमारा वंश किस प्रकार चलेगा, राम कितना राज्य भोगेंगे। तब दुर्वासाने कहा कि देवासुर-संग्राममें दैत्योंसे भयभीत होकर देवगण भृगुपत्नीकी शरण गये और उन्होंने अभयदान दिया। तब विष्णुने क्रुद्ध हो चक्रसे भृगुपत्नीका सिर काट लिया। इसपर भृगुने क्रुद्ध हो शाप दिया कि तुम मनुष्य-देहमें अवतार लो और तुमने निरपराध मेरी स्त्रीको मारा सो तुमको भी बहुत कालतक स्त्रीका वियोग हो। ऐसा कह फिर वे विष्णुके प्रसन्नतार्थ तप करने लगे। तब विष्णुने दर्शन दे शापको भी अंगीकार किया। सो हे राजन्, वही तुम्हारे राम हुए हैं। यह ग्यारह हजार वर्ष राज करेंगे और इनके दो पुत्र होंगे सो हे लक्ष्मण, तुम सीताजीके विषयमें सोच न करो। वह समाचार तुम्हारे पिताने गुप्त रखनेको कहा था इससे मैंने अबतक इसे मनमें रखा। सो तुम भी भरत और शत्रुघ्नसे इसे प्रकाशित न करना। ऐसा सुन लक्ष्मण हर्षित हुए और साधु साधु कहने लगे।

तदनन्तर लक्ष्मण अयोध्या पहुंचे और रथसे उतर अति दीन भावयुक्त होकर रामचन्द्रके पास चले गये तो देखा कि रामचन्द्र नीचा मुँह किये आंखोंमें आँसू भरे अति दुःखित सिंहासन-पर विराजमान हैं। यह देख वे बोले कि महाराज मैं आज्ञानुसार जानकीजीको वाल्मीकि मुनिके आश्रमके निकट छोड आया हूं। परन्तु ऐसे नरश्रेष्ठको सीताके लिये ऐसा विषाद न करना

*सियनिंदक अघ ओघ नसाये, लोक विसोक बनाइ बसाये।

चाहिये, क्योंकि जिस संसारमें संयोग हुआ है, उसमें एक दिन वियोग भी होहीगा और आपके संताप करनेसे जिस अपवादके भयसे आपने पतिव्रता मैथिलीका त्याग किया है, वही फिर फैलेगा। ऐसा लक्ष्मणका वचन सुन रामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ठीक है तुम्हारे वाक्योंसे मैं सन्तुष्ट हुआ और मेरा सोच निवृत्त हुआ। इस प्रकार सीताकी निन्दाके अपराधको क्षमाकर पुरवासियोंको शोकरहितकर अपने पुरमें बसाया और अन्तमें मोक्ष प्रदान किया।

(५३) गणिका

*सतयुगमें परशु नामका एक वैश्य युवावस्थामें श्वासरोगसे मर गया। उसकी नवयौवना स्त्री जीवन्ती पतिके मरे पीछे यौवनके मदसे व्यभिचार करने लगी और गृहस्थी और धर्म-मार्गसे विरुद्ध हो गयी। सज्जनोंसे निन्दित हो वनसे दूर जाकर उसने वेश्या-वृत्ति धारण की। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गेका बच्चा बेंचता हुआ उसके द्वारपर आया। वेश्याने मोल ले लिया। उसे कोई सन्तान न थी, सुग्गेको उसने पुत्रवत् पाला। उसे राम-नाम पढ़ाया करती थी। इसी पढ़ने-पढ़ानेकी अवस्थामें दोनों एक ही समय मर गये और उस पावन नामोच्चारणके प्रभावसे तर गये।

(५४) अजामील

* कान्यकुब्ज देशमें एक दासीपति ब्राह्मण अजामील था जो दासीके संबंधसे दूषित और आचारभ्रष्ट हो गया था। कैदी पकड़ता, जुआ खेलता, चोरी तथा ठगी आदि निन्दित कर्मोंसे अपना जीविका निर्वाह करता और प्राणियोंको पीड़ा दिया करता था। इसी प्रकारके कुकर्मोंसे अट्ठासी बरसका बूढ़ा हुआ। इसके दस बेटे थे। सबसे छोटेका नाम नारायण था।

---

* गनिका अजामिल गीध व्याध गजादि खल तारेउ घना।

माता-पिताको बड़ा प्यारा था। मूर्ख बुड्ढा अजामील उस बेटेमें ऐसा अनुरक्त था कि मृत्युको भी भूल गया। मरनेके समय भी उसका ध्यान उसी पुत्रमें था। यहांतक कि इसके प्राण लेनेको तीन यमके दूत आये और उन्हें सामने देख बड़े व्याकुलेन्द्रिय अजामीलने दूर खेलमें आसक्त पुत्र नारायणको मरते मरते जोरसे पुकारा। भगवान्के पार्षद वहाँ तुरन्त आये और उसके प्राणोंको हृदयसे खींचते हुए यमदूतोंको ज़बरदस्ती रोकने लगे। तब यमदूतोंने विष्णुके पार्षदोंसे कहा कि यमराजकी आज्ञाको रोकनेवाले तुम कौन हो। यह आजीवन महापातकी जीव अपने अत्याचारों और दुराचारोंका फल भोगने यमालयमें जा रहा है। पार्षद बोले कि "यह अजामील करोड़ों जन्मके प्रायश्चित्त कर चुका। यद्यपि इसने परवश होकर ही भगवान्का नामोच्चारण किया तो भी इसका प्रायश्चित्त हो गया क्योंकि शास्त्रविहित प्रायश्चित्तोंसे तो छोटे-बड़े पाप नष्ट होते हैं, परन्तु भगवन्नामस्मरणमात्रसे ब्रह्महत्यादि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं और प्राणी जानकर वा बिना जाने, किसी प्रकारसे भी नामस्मरण करते ही शुद्ध हो जाता है, जैसे अग्निमें जाने वा बिना जाने छोटा वा बड़ा कोई भी काष्ठ फेंक दो तो वह भस्म हो ही जायगा"। इस प्रकार भगवद्धर्म समझाकर विष्णुदूतोंने अजामीलको यमदूतोंके पाससे निकाल, मृत्युसे छुड़ा दिया। अजामील विष्णु-पार्षदोंसे कुछ बोलनेकी चेष्टा करता था कि वे अंतर्धान हो गये। इस व्यवहारको देख अजामीलको पश्चात्ताप हुआ। सबको छोड़ गंगातटपर आकर भगवद्धर्ममें प्रवृत्त हुआ। अपनी शेष आयु जब अजामील भोग चुका तब फिर वही चतुर्भुज चार विष्णु-पार्षद उसे देख पड़े और वह शरीर छोड़ तद्रूप हो विमानपर चढ़ बैकुण्ठ गया।

—* इति शम् *—

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

देखिय रूप नाम आधीना
रूप ग्यान नहिं नाम विहीना
सुमिरिय नाम रूप विनु देखे
आवत हृदय सनेह विसेखे
नाम रूप गति अकथ कहानी
समुझत सरस न जाति बखानी
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

नन्द-ग्रन्थमाला



१—श्रीमद्भगवद्गीता

मूल १६ पेजी बंबइया टाइपोंमें बड़ी सुन्दरतासे छापी गयी है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य केवल लागतमात्र रक्खा गया है। भक्तजनोंको मगाकर अवश्य प्रचार करना चाहिये। जिल्द सहित मूल्य ।=)

२—रामायण

तुलसीकृत रामचरितमानसका शुद्ध पाठ

जिल्द बँधी पोथी

केवल एक रुपयेमें

इस पोथीका पाठ सवत् १७२१ की लिखी एव इससे भी पुरानी अन्यत्र छपी पोथियोंसे मिलाकर शोधा गया है। ऐसी शुद्ध पोथी इतने सस्ते दामोंमें ऐसी उत्तम छपाई-बधाईकी और कहीं नहीं मिलती। सर्वसाधारणके लाभके लिये और शुद्ध पाठके लिये हमने इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान् और साहित्य-मर्म्मज्ञ अध्यापक श्री रामदास गौड से कराया है।

गोसाईंजीका जीवनचरित्र भी है और अतमें कठिन शब्दोंका एक कोष दिया गया है। ६३५ पृष्ठ का मूल्य केवल लागतमात्र १)

३—विष्णु सहस्र नाम

नित्य पाठ करनेके योग्य पुस्तक मोटे टाईपमें चित्रों सहित छापी गयी है। दाम केवल लागतमात्र रखा गया है। मूल्य सजिल्दका =) मात्र

बालरामायण

लेखक—स्वर्गीय गिरिजाकुमार घोष

भारतीय साहित्यमें) रामचरित मानस) का बहुत ऊंचा आसन है। उसके प्रत्येक पात्रसे हमें शिक्षा मिलती है। धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक आदि शिक्षाओंके लिये यह ग्रन्थ अपना जोड़ी नहीं रखता। इसीलिये रामायणके सातों काण्डोंकी कथा इस पुस्तकमें सार रूपसे सीधी सादी भाषामें लिखी गई है। लिखनेका ढंग इतना अच्छा है और भाषा ऐसी बढ़िया है कि यहांके कई स्कूलोंने अपनी पाठ्य पुस्तकोंमें नियत कर दिया है। इसीलिये जल्दीके कारण इस संस्करणमें चित्र नहीं दिये जासके। अगले संस्करणमें कई चित्र देकर पुस्तककी उपयोगिता और सुन्दरता बढ़ा दीजायगी। ऐसी सरल और उपयोगी पुस्तक बच्चोंके हाथमें अवश्य दीजिये। दाम भी खूब सस्ता रखा गया है। सुन्दर तीन रंगा कवर आर्ट पेपरपर छापा गया है। १६१ पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ॥=)



श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका

चौथा खण्ड

मानस-शब्द-सरोवर



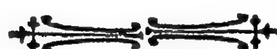
श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका



चौथा खण्ड



मानस-शब्द-सरोवर



अंक—गिनती। गोदी। चिह्नांकित, लिखित, लिखा हुआ, मुद्रित।

अंकित—चिह्न किया हुआ।

अंकुर—अखुआ, कोपल, फुनगी, (क्रिया) अखुआ निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। "उर अकुरेउ गरब तरु भारी।"

अकुस—आकुस। अकुश हाथीको वशमे रखनेके लिये लोहेका एक टेढा मेढा हथियार।

अंग—शरीर।

अंगदादि—अगद आदि वानर। विजायठ आदि गहने।

अंगना—स्त्री [गाई।

अंगरी—कवच, जिरहबखतर।

अंगव—(क्रिया) सहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" के अनुरूप होते है।

अंगवन—सहना, अँगेजना।

अंघ्रि—पैर, पाव, वृक्षकी जड़।

अंचल—आंचर। दामन।

अंचव—(क्रिया) पीनेके अर्थमे इसके सभी रूप "चढ" के अनुरूप होते है।

अंज—(क्रिया) अजन लगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुकी तरह होते है। अंजि=आखोंमें लगाकर।

अँजोरी—उजाला।

अंड—अंडा, गोल चीज, भूगोल ।

—कटाह, अर्धांड, ब्रह्माण्ड ।

अंतर—भीतर (जैसे अंतरहित अंत-र्यामी, इत्यादि), भेद।

अंतरजामी—अंत:करणका जानने-वाला। अंत:करणको अपने वशमें रखनेवाला।

अंतरधान—(अंतर्धान) छिपना ।

अन्तरहित—(वा अंतर्हित) असीम। जिसका अंत न हो । गायब, गुप्त, अन्तर्धान ।

अंतस्थ—अंत करणमें बैठा हुआ ।

अंतावरि—आंत, अँतड़ी ।

अम्ब, अंबा—माता ।

अंबक—(अम्बक) आंख । नेत्रका ।

अंबर—वस्त्र,कपड़ा । आकाश । एक ओषधि ।

अंबरीष—एक राजाका नाम जो परम वैष्णव था ।

अंभोज—कमल ।

अंबु—जल ।—द, जल देनेवाले मेघ ।—धर,जल धारण करने-वाला, मेघ ।—धि, समुद्र ।—पति, जलका स्वामी, वरुण ।—निधि, समुद्र ।

—आवा, भट्ठी जिसमें मिट्टीकी बनी चीजें पकायी जाती हैं। हिस्सा, भाग । अंश ।

अंसिक—भागका, अंशका ।

अकंटक—शत्रु विना । बाधारहित कांटा विना ।

अकथ, अकथनीय—जो कहा न जा सके ।

अकन —(क्रिया) [आकर्ण्य] कान लगाकर सुननेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुके अनु-रूप होते हैं ।

अकरन—नाहक, विना प्रयोजन ।

अकरुन—करुणा रहित । बेदर्द । निठुर ।

अकल—कलारहित । हाथ पाव आदि अङ्ग विना । न चलनेवाला ।

अकसर—अकेला ।

अकाजेउ—मगन । काम बिगड़ा । काममें रुकावट पड़नेपर भी ।

अकाम—जिसको कुछ चाह न हो । कामनाहीन ।

अकालके—ऋतुके विपरीत ।

अकिंचन—दीन, जिसके कुछ न हो।

अकुंठ—कुंडा, अकुंठा, नाशरहित वा तीक्ष्ण।

अकुल—निगोड़ा । कुलरहित ।

अकुलाना—विकल हुआ । घबराया ।

अखारा (अषारा)—नाच । अखाड़ा । रंग भूमि । नाचकी जगह ।

अखिल—सब । सकल ।

अखण्ड—समूचा, पूरा, नाश न होनेवाला ।

अग—पहाड़, जो चल न सके ।

अगम—जहां पहुंचना कठिन या असम्भव है ।

अगनित—गिनतीसे बाहर । आगे ।

अगरु—सुगन्धित काठका एक भेद ।

अगहुड़—आगेकी ओर ।

अगस्त—अगस्त्य ऋषिका नाम जो मैत्रावरुणिके वीर्य्यसे घड़ेसे उत्पन्न हुए थे। इन्हें पुलस्त्यका पुत्र भी कहते हैं, इनकी स्त्रीका नाम लोपामुद्रा था। विन्ध्यने जब अत्यन्त ऊंचा होकर सूर्य्यका मार्ग रोकना चाहा था, यह उसके पास गये। उसने इन्हें साष्टाग दण्डवत् किया। अगस्त्यजीने उससे कहा कि तुम इसी तरह पड़े रहो जबतक कि हम दक्षिणसे लौट न आवें। विन्ध्य तबसे पड़ा हुआ है। कहते हैं कि अगस्त्यजीने समुद्रको एक चुल्लूमें पी डाला था। इन्हें कुम्भज, घटयोनि, घटज आदि भी कहते हैं।

अगाध—अथाह ।

अगुन—निर्गुण ब्रह्म । दोष ।

अगोचर—इन्द्रियोंकी गतिसे बाहर । अविषय ।

अग्य—अज्ञानी मूर्ख ।

अग्यात-विना जाना हुआ ।

अग्यान, मूढ़ता ।

अघ—पाप, दोष । दुःख ।

अघटित-जो कभी नहीं हुआ वा बना ।

अघात—चोट ।

अघाती—तृप्त होती । चोट वाला । चोट न करनेवाला ।

अघारी—पापोंका शत्रु,ईश्वर । दुःख दूर करनेवाला ।

अचंचल—स्थिर ।

अचगरी—खुटाई, दुष्टता । मूर्खता ।

अचल—पर्वत । स्थिर ।

अच्छ—आंख । स्वच्छ । साफ,सुंदर अक्षय ।

अछत—होते, बेदाग, रहते ।

अछय—जिसका क्षय न हो ।

अज—जो जन्मा न हो । ब्रह्म । बकरा । ब्रह्मा ।

अजगव—शिवका धनुष । (रामचरितमानसके शुद्ध संस्करणोंमें यह शब्द नहीं है।)

अज्ञ—मूर्ख ।—**ता**, मूर्खता ।

अजर—जो सदा जवान रहे। बुढ़ौती बिना।

अजसी—निन्दित।

अजहुँ, अजहूँ—अब भी।

अजामिल—एक ब्राह्मण जो अत्यन्त नीच काम करता था। किसी महात्माके उप-देशसे उसने अपने पुत्रका नाम नारायण रखा। मरतीबेर अपने पुत्रको पुकारा। अन्त-कालमें नारायण नामोच्चारणके प्रभावसे मुक्त हो गया।

अजित—जो जीता न गया हो।

अजिन—मृगछाला

अजिर—आंगन।

अजै—अजेय। जो जीता न जासके।

अजेय—अजीत।

अट—(क्रिया) भ्रमण करने, घूमनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

अटन—(क्रिया) भ्रमण। चलना। अटन, अटारी।

अट्टहास—ठठाकर हँसना,

(आतंक)—डर। रोग। रोब।

बिना शरीरके, कामदेव।

बेदलील। तर्कसे बाहर।

अति—बहुत, ज्यादा, अटकलसे बाहर।

अतिथि—मेहमान, पाहुन। अभ्या-गत।

अतिसय, अतिशय—बहुत ही। बड़ा।

अतीत—सन्यासी, त्यागी। बीता, रहित। हुआ।

अतीव—अत्यधिक।

अतुल—तुलनारहित, बेअन्दाज।

अतुलित—निरुपम। अत्यधिक।

अत्र—यहां। इस विषयमें।

अत्रि—एक ऋषिका नाम जो ब्रह्मा-जीके पुत्र थे। अनुसूया इनकी स्त्री थी, चित्रकूटमें स्थान था। रामचन्द्रजी चित्रकूट छोड़ती बेर इनसे मिले थे।

अत्रिप्रिया—अनुसूया।

अथ—तब, तदनन्तर।

अथयउ—अस्त हो गया।

अथाई—बैठक।

अदभ्र—पूरा, सम्पूर्ण।

अदभुत—अचरज।

अदिति—देवमाता, कश्यपकी स्त्री।

अदेय—जो नहीं दिया जाय।

अदृष्ट—नहीं देखा गया, भाग्य।

अदृश्य—गुप्त। छिपा हुआ।

अद्रि—पहाड़, गिरि।
अद्वैत—एक, भेद रहित, जिसके समान दूसरा नहीं।
अध—नीचे या तले।
अधर—नीचेका होठ, अन्तर, मध्य, लघु।
अधगो—गुदेंद्रिय। मलद्वार।
अधार (आधार)—सहारा।
अधिकारी—अधिकार योग्य।
अधिगत—ऊपर गये हुए, स्वर्गीय, मुक्त।
अधिप—राजा।
अधिवास—टिकनेका स्थान, रहना, निवासकी जगह।
अधीस—स्वामी, मालिक।
अधोमुख—नीचे मुंहवाला, सलज्ज।
अनंग—शरीर विना। कामदेव।
अन अहिवात, विधवपन।
अनइस—बुरा। निकम्मा। बुराई, खुटाई।
अनइसे—बुराईसे, खुटाईसे।
अनक (आनक)—मृदग। छोटा। नीच।
अनख—ईर्षा, द्वेप। क्रोध।
अनघ—पापरहित, पवित्र। दुःख-रहित। शोकरहित।
अनट—अनुचित, गाठ, ऐंठ, छल। अन्याय।
अनत (अन्यत्र)—दूसरे ठौर। इसके सिवा। फिर। सीमा, हद्द। और कहीं। (जैसे...."पुनि अनत निहारे")
अनन्य—जिसके दूसरा भरोसा न हो। दूसरा नहीं।
अनपायिनी—नाशरहित, नित्य, दृढ दु ख रहित।
अनभिज्ञ—अनजान, नादान।
अनमन, अनमनि (स्त्री)—उदास। बेमनकी। अन्यमनस्क।
अनयन—विना आखका, अन्धा।
अनयास (अनायास),—आपसे आप, विना परिश्रम। विना जतन।
अनल—अग्नि, वह्नि, देवमुख, हुताशन, पावक।
अनवद्य—दोप विना।
अनहित—शत्रु। बुरा। बुराई।
अनादि—आदि रहित। जो जन्म न ले।
अनामय—नीरोग, भला।
अनामिका—चौथी उगली, मध्यमा और कनिष्ठिकाके बीच-वाली उगली।
अनारम्भ—सावधान। गर्वहीन। निश्चेष्ट।
अनिंदिता—जिसकी निन्दा न हुई हो।

अनिमा (अणिमा)–अष्टसिद्धि-योंमेंसे एक जिसके द्वारा अत्यन्त छोटा रूप धारण कर सकते है।

अनिप–सेनापति।

अनिल—वायु, बयार, बतास, पवन मारुत, मरुत, हवा, वात।

अनिर्वाच्य— जो कहा न जाय।

अनिस—बराबर, निरन्तर।

अनी–नोक, किनारा, सेना, क्रोध।

अनीक–सेना, कटक, समूह, सेनाका।

अनीस,(अनीश)—ईश्वर नहीं। अनीश्वरवादी। जीव।

अनीह—चेष्टारहित, अनिच्छा। बोदा। तृष्णा रहित। ब्रह्म।

अनु—पीछे, अधीन, समीप। [जैसे "अनुकहउ" पीछेसे कह दो।] आगे वा पीछे। अत्यन्त छोटा।

अनुकथन—बराबर कहना, चर्चा। दोहराना। फिर कहना।

अनुकरन—नकल, ज्योंका त्यों करना।

अनुकूल–प्रसन्न। अनुसार।

अनुग–अनुगामी, पीछे चलनेवाला।

अनुगामी—आज्ञाकारी।

अनुग्रह–दया। कृपा।

...–नौकर, सेवक। दास।

... जसी।

अनुज–छोटा भाई, पीछेसे जनमा हुआ।

अनुजा–छोटी बहिन।

अनुदिन—प्रतिदिन, दिनदिन, सदा।

अनुभव—यथार्थ ज्ञान, विचार। तजरबा। प्रत्यक्ष।

अनुभवति—जानती है। तजरबा करती है। समझती है। प्रत्यक्ष करती है।

अनुमत—सहमत, एकराय।

अनुमान—विचार, अनुमार, प्रमाण, अंदाज।

अनुमानी—नैयायिक। समझकर। अन्दाजा किया।

अनुमोदन—प्रशंसा।

अनुराग—प्यार, मुहब्बत, अत्यन्त ललाई।

अनुरूप—तुल्य, सदृश। अनुसार, लायक।

अनुरोध—रोक। अनुराग, उपकार। अनुसार। आग्रह।

अनुवाद–बार बार कहना। दुहराना।

अनुसंधान—कामना। बन्दोबस्त। खोज।

अनुसर–(क्रिया) अनुसार या पीछे चलनेके अर्थमें। अनुसरइ अनुसरत, अनुसरा, अनुसरि, अनुसरेउ, इ० "चढ़"की तरह।

अनुसासन—आज्ञा।
अनुसूया—अत्रिमुनिकी भार्या।
अनुहर—(क्रिया) तद्रूपहोने, वैसा-ही होने, अनुकूल होनेके अर्थमें। ठीक "अनुसर" की तरह। लायक।

अनूप
अनुपम } उपमारहित।

अनृत—झूठा, मिथ्या।
अनेक—बहुरूप।
अनैसे—टेढ़े, बुरी नज़रसे। कुदृष्टिसे।
अन्य—और, दूसरा।
अन्यथा—उलटा, भिन्न, और तरह-पर (जैसे, "करइ अन्यथा अस नहिं कोई)
अन्वय—सम्बन्ध, वंश, कुल।
अन्वहं—निरन्तर, हमेशा, क्रोध।
अपकार—निरादर।
अपकीरति—अपयश, निंदा।
अपगा—नदी, दरिया।
अपडर—झूठा डर वा निज ओरसे भय।
अपत—पापी, निर्लज्ज। प्रतिष्ठारहित।
अपभय—अपना डर, झूठ डर। नीच भय।
अपनी भांति—अपनी ओरसे।
अपर—दूसरा, बेगाना। (बोली अपर कहेहु सखि नीका)। और।
अपरना (अपर्णा)—उमा, अम्बिका जगदम्बा, माया, गौरी, पार्वती, भवानी, गिरितनया, गिरिजा, सती, शैलकुमारी, शिवा।
अपरिचित—अनजाना।
अपरिमित—बेप्रमाण, बेहद।
अपलोक—अपयश। बदनामी।
अपवर्ग—मोक्ष, मुक्ति।
अपवाद, अपबाद—निन्दा, बुरा भला कहना, अपजस।
अपहर—(क्रिया) छीननेके अर्थमें "चढ़" की तरह।
अपहारी—छीननेवाला। नाश करने-वाला।
अपान—अपना, अपनपौ। एक वायुका नाम।
अपि—भी, निश्चय।
अपीह—यह भी।
अपेल—अचल। जो हटाया न जा सके।
अप्रतिहत—विनारोक, अपीड़ित।
अबध्य—न मरने योग्य, वध न करने योग्य।
अबला—स्त्री।

अबाधा—विना बाधा, अतर्क ।
अबिरल—सघन ।
अब्ज—कमल ।
अभंग—विना टूटा, समूचा ।
अभि—सब ओरसे ।
अभिअंतर(अभ्यंतर)—अन्दरका । भीतरी ।
अभिज्ञ—प्रवीण, ज्ञानी, समझदार ।
अभिजित—एक नक्षत्रका नाम । जीता हुआ ।
अभिनन्दन—सेवा, अनुमोदन, प्रशंसा, स्तुति । सराहना ।
अभिमत—वाछित, चाहा हुआ ।
अभिमान—घमड, अकड ।
अभिराम—सुदर वा सुखद ।
अभिषेक—जल छिडकना वा स्नान ।
अभीरू—निडर, निर्भय ।
अभीष्ट—वाछित ।
अभूतरिपु—शत्रु रहित ।
अभेद—भेद रहित, एक ही, समान, एकसा ।
अभ्यागत—पाहुन, आया हुआ, नित्य न आनेवाला, भिक्षुक ।
अभ्र—आकाश, मेघ ।
अमर—देवता, जो कभी न मरे ।
अमर्ष (अमर्षण)—क्रोधी । सहनेवाला । क्रोध, रज ।
अमराई—आमकी वारी, वारी ।
अमरावती—इन्द्रकी पुरी, स्वर्ग ।
अमान—मान रहित वा प्रमाणसे परे वा बाहर ।
अमाना—अभिमान न करनेवाला, उदासीन ।
अमानुष—जो मनुष्यसे न हो सके ।
अमित—बहुत, अनन्त ।
अमिय, अमी, अमृत—पीयूष, सुधा, जो नहीं मरा ।
अमिय मूरि—सजीवन जड़ी ।
अमृषेव—सत्यकी नाई, सचके जैसा ।
अमेय—अनुपम, अतुल, बेपरमान ।
अमोघ—सफल, जो कभी निष्फल न हो । अचूक । रामबाण ।
अय—लोहा, वज्र, संबोधन ।—मय, लोहेका, लौहमय । वज्रका बना ।
अयन—गृह, घर, सूर्य्यका मार्ग ।
अयान—लड़काई, मूर्खता । मूर्ख अनजान ।
अयुत—दस हजार ।
अरगजा—शरीरमें लगानेका एक सुगन्धित लेप जिसमें श्वेत चदन (४ भाग) तेज पत्ता (एक भाग) नेत्रवाला (२ भाग), खस (४ भाग), नाग-

केशर (३ भाग), अगर (४ भाग) कपूर (४ भाग) बेरकी गुठली (२भाग) इत्यादि विविध सुगन्ध गुलाब और केवड़े-के अर्कमें पिसे रहते हैं। यहा नुसखेका एक उदाहरणमात्र दिया गया।

अरथ (अर्थ)—धन, कारण, हेतु कार्य्य।

अरधंग—आधा शरीर।

अरधजल—मरतीवार।

अरगाई (अरगानी)—अलगकी, जुदा हुई। चुप हुई।

अरति—वैराग्य, नहीं प्रीति, विरक्ति।

अरध—आधा।

अरनि (अरणि)—काठ जिसे रगड़नेसे आग निकलती है।

अरनी—आग मथनेकी लकड़ी।

अरन्य (अरण्य)—वन, कानन जगल।

अरविन्द—देखो, "कमल"।

अरंड—रेंड़ वृच।

अरंभ (आरंभ)—प्रारम्भ, आदि। शुरू।

अराती—वैरी, शत्रु।

अरि—वैरी, शत्रु।

अरिमर्दन—शत्रुनाशक, शत्रुघ्न, भानु प्रतापका छोटा भाई।

अरु—और।

अरुभि—उलझ कर।

अरुन (अरुण)—लालरग, सूर्य्यका सारथी। प्रात'कालका सूर्य्य। —चूड, सिखा, कुक्कुट, मुर्गा।

अरुनारे, लाली लिये।

अरुनोदय, भोर, तड़का।

अरुनोपल, लाल, मानिक, लाल पत्थर।

अर्क—मदार वृच। सूर्य्य।

अर्चन—पूजन।

अर्णव—सागर।

अर्पा—दिया। "अर्प" धातु दे डालनेके अर्थमें आती है। इसके सभी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

अर्भक—बच्चा।

अलक—बालोंके पट्टे, काकुल।

अलख (अलक्ष)—जो न देख पड़े। अगोचर, ईश्वर।

अलषित—जो लखा नहीं गया।

अलच्छि—अलक्ष्मी।

अलप (अल्प)—कुछ, थोड़ा, किंचित, छोटा।

अलान—हाथीके बाधनेका रस्सा। सिकड़।

अलि—भवँग, सखी ।

अलिन्द—भौंरा ।

अलिन—भौंरी ।

अलिनी—भवरी, सखिया ।

अलीक—झूठा, असार ।

अलीहा—झूठा ।

अलुझि—उलझकर ।

अलोला—स्थिर ।

अलौकिक—अनोखा, अद्भुत, दिव्य असाधारण, लोकसे भिन्न ।

अलंकार—गहना, भूषण । शोभा, साहित्यका एक अंग ।

—कृत, शोभायमान ।

अलंकृति—सजावट ।

अव—नीचे ।

अवकलित—निश्चित,दृढ ।

अवकीर्न (अवकीर्ण)—जिसका व्रत वा नियम बिगड़ जाय, भ्रष्टनियम । खोटा हुआ ।

अवगति—ज्ञान ।

अवगथ—अपवाद, बुराई, निंदा ।

अवगाह (अवगाहा)—स्नान, डुबकी । अथाह, अति गहरा, अनंत ।

अवग्या (अवज्ञा)—अपमान । न मानना । अनादर ।

अवघट (औघट)—अडवड़, ऊँचा नीचा ।

अवचट (औचट)अवचक,अचानक ।

अवडेर (क्रिया)—त्यागने, धोखा देने, और छोड़नेके अर्थमें । रूप "चढ़" धातुकी तरह ।

अवढर—नीचपर भी दयालु, विना विचार दया करनेवाला ।

अवतंस—शिरोभूषण, चूड़ामणि । कानका भूषण ।

अवतर— (क्रिया) नीचे उतरने, उतारने, लेने, अवतार लेनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप ।

अवदात—निर्मल, शुभ्र, सफेद ।

अवद्य—अधम,नीच,न कहने योग्य

अवध—अयोध्या ।

अवधि—हद । करार । प्रतिज्ञाकी सीमा । देश कालकी सीमा।

अवधूत—एक प्रकारके साधु,जटिल।

अवनत—झुका हुआ ।

अवनि—पृथ्वी, भूमि ।—प, राजा । —पर्वनि, रानी ।—**नीस**, राजा ।

अवयव—हाथ पैर आदि शरीरके अंग, किसी वस्तुके विधायक अंग ।

अवर्त्त (आवर्त्त) चक्र । घुमाव । जलका घुमाव जिसे भवर कहते हैं । राजा आदिका

एक प्रकारका गोल घर देराका भाग।

अवराध—(क्रिया) सेवा, पूजा, करनेके अर्थमें अवराधहु अवराधत, अवराधा, अवराधि, अवराधेउ इत्यादि "चर" धातुके अनुरूप।

अवराधक—सेवक।

अवरेख—(क्रिया) लिखने, निशान, करनेके अर्थमें। अवरेखइ, अवरेखत, अवरेखा, इत्यादि "चढ" धातुकी तरह।

अवरेखी—लिखी।

अवरेव—कुपेंच। पेंचपाचकी रचना।

अवली—क़तार, पंक्ति।

अवलोक—(क्रिया देखनेके अर्थमें) अवलोकइ, अवलोकत, अवलोका, आदि "चढ" की तरह।

अवलोकय—देखिये।

अवसेषा—बाकी। बचा।

अवशेषन—बाकी बचा हुआ, जो बचा।

अवसान—अन्त, नाश, मरण।

अवसि—अवश्य, निश्चय करके। जरूर।

अवसेरि—देर। प्रतीक्षा। उत्कंठा।

अवाँ—आवा, पजावा।

अवास—आवास, घर, मंदिर।

अवाधी—सुख रूप। वाधाहीन।

अवारी—दुकान। पाती। पंक्ति।

अविकल—ज्योंका त्यों।

अविकारी—विकार रहित। कामादि छः विकार जिसमें न हों।

अविगत—व्यापक।

अविचल—स्थिर।

अविच्छिन्न,अविछीन—निरन्तर। सर्वदा, जो कभी न टूटे।

अविद्या—मूर्खता, अज्ञान, मोह, माया।

अविनय—ढिठाई।

अविनासी(अविनाशी)—जिसका कभी नाश न हो।

अविरल—निरन्तर, सघन।

अविवेक—अज्ञान।

अबुध—मूढ़। नासमझ।

अविरोधा—अनुसार। विना विरोध। अनुकूल।

अव्यक्त—प्रकृति, ब्रह्म, गुप्त, छिपा हुआ।

अव्याहत—न रोकने योग्य, जिसकी कोई रोक न हो।

अष्टादस—अठारह भार वनस्पति

अस—ऐसा, इस प्रकारका।

असगुन—बुरा चिह्न ।
असन—आहार, भोजन ।
असनि—वज्र, कुलिश ।
असम-जिसके बराबर कुछ न हो । नाबराबर, विषम,ऊबड़खाबड, टेढ़ा ।
असमय—विपत्ति समय वा अनवसर । बे मौका ।
असमसर—नाबराबर या असमान संख्याके और टेढे मेढे लगनेवाले वाण । कामदेव जो पाच वाण रखता है ।
असमंजस—आगा पीछा । दुविधा । बेमेल । ठीक न बैठनेवाला ।
असम्भावना—अनिश्चय । अनहोनी बात । सन्देह ।
असंमत—प्रतिकूल ।
असहाई—सहाय विना ।
असाधि—असाध्य । काबूसे बाहर । जो किया न जा सके ।
असि—तलवार । ऐसी । है ।
असित—काला, श्याम ।
असिव अमगल ।
असीम—सीमा रहित, वेहद ।
—आशीर्वाद देनेके अर्थमें । इसके भी रूप "वद" धातुके अनुरूप होते हैं ।
असोक—शोक रहित, प्रसन्न । एक वृक्षका नाम जिसका पंचाग स्त्री रोगोंमें लाभकारी होता हैं । उत्तेजक है । कहते हैं कि कुमारियोंके चरण स्पर्शसे फूलता है ।
असुर—दैत्य
असुरसेन–गया तीर्थ वा दैत्य सेना । गया नामक असुर ।
असौच—अपवित्रता ।
अस्व—घोडा ।
अस्विनीकुमार—सूर्यके पुत्रोंका नाम । विबुध वैद्य,देववैद्य ।
अस्तुत—स्तुति, भजन, सराहना ।
अस्थि—हड्डी, हाड़ ।—मात्र, हाडभर, हड्डी ही बची हुई ।
अह—खेद, आश्चर्य । अहकार, कष्ट, दिन ।
अह—[क्रिया,प्रस्तुत रहने या विद्यमान रहनेके अर्थमें] ।
१-हो [अस=अह] धातु ।
२-होइ [अहइ=है] ।
३-होउ । ४-होत । ५-होतिउ ।
६-होनहार । ७ होब ।
८-होबउ ।९-होसि[अहसि =तू है] १०—होहि ।

[अहहि, हहि] ११ होहु [अहहु = हो]

अहमिति—हमी, अहंकार। मैं इतना बड़ा हूं, ऐसा भाव।

अहह—खेद, आश्चर्य, अतिदुःख। बड़ा कष्ट है। अहाहा, (प्रेममें) "अहह धन्य लछिमन बड़भागी"। हा। (शोक में) "अहह बधुतें कीन्ह खोटाई"।

अहि—सर्प—नी, सर्पिणी।—प, —पति सर्पराज, शेषनाग। —भुज, सर्पकीसी भुजावाले, सर्प खानेवाले। मोर, गरुड़।—राज सर्पराज। शेषनाग।

अहीस (अहीश) नागराज, शेषनाग।

अहिवात—सोहाग। सौभाग्य।

अहेर—मृगया, आखेट, शिकार।

अहेरी—शिकारी।

अहो—हे (आदर सूचक)। "अहो कवन मैं परम कुलीना" अचरज, भाग्य दुःख, हर्ष-सूचक।

आ

आंक—निश्चय।

आंकुरे—अंकुर।

आकर—खानि

आकुल—दुःखी, व्याकुल, घबराया हुआ।

आकृति—स्वरूप, ढांचा, आकार।

आखर—अक्षर, वर्ण।

आगर—चतुर, सयाना, पूर्ण।

आगरी—कोठरी, चातुरी, नागरी, पूरिता। मुख्य।

आगार—घर।

आगिल—होनिहार।

आचर—(क्रिया): चलने या आचरण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" के रूपोंकी तरह होते हैं।

आचरज—आश्चर्य, अचम्भा।

आचरन—चलन, करतूत, रीति।

आचरनी—करतूत।

आचार—आचरण।

आचार्य—वेदकी व्याख्या करनेवाला

आतप—ताप, तपन, धूप। घाम।

आतनोति—विस्तृत करता है, फैलाता है।

आतमहन (आत्महन)—अपनी जान मारनेवाला।

आतुर—जल्दबाज, घबराया हुआ।

आदिकवि—बालमीकि मुनि।

आदेस—(आदेश) आज्ञा।

आधीन—आज्ञाकारी, वशीभूत।

आन—और, दूसर। मर्याद। शपथ। लाकर। क्रिया, लानेके अर्थमें, "चढ" धातुके अनुरूप।
आनवी—ले आना।
आनन—मुह, मुख।
आपद—आपत्ति, दु ख।
आपन्न - विपत्ति सहित।
आभीर—अहीर, गोप।
आमलक—आवला, औंरा।
आमिष—मास, अखाद्य वस्तु।
आयत—चौडा, बडा, विशाल।
आयतन—घर।
आयसु—आज्ञा।
आयु, आई—वय, उम्र।
आयुध—हथियार। शस्त्र।
आरज—ससुर। श्रेष्ठ।
आरत—(आर्त) अत्यन्त दुःखी।
आरति—अति प्रीति।
आरती—नीराजन, दीपक जलाकर सत्कारार्थ सामने घुमाना।
आरव—आहट।
आराती—शत्रु।
आराधन—सेवा, उपासना।
आराध्य—सेव्य, उपास्य, सेवाके योग्य। देखो "अवराव"।
आराम—बगीचा। सुखदाता।
आरूढ़—चढ़ा हुआ।
आलवाल—थाला, घेरा।
आलय—घर, गृह।
आलस—(आलस्य), सुस्ती।
आली—सखी, सहेली। लकीर।
आवाहन—मन्त्रद्वारा देवताओंको बुलाना। बुलानेकी क्रिया।
आस्रमी—ब्रह्मचारी गृहस्थ आदि।
आस्रित—आधीन, सेवक।
आसक्त—अत्यधिक लिप्त।
आसा—आसरा। दिशा।
आसावसन—नङ्गा, दिगम्बर, महादेवजी।
आसिष - आशीर्वाद, वर, दुआ।
आसीन—बैठा।
आसु—जल्दी, तत्काल।

इ

इन्द्रजाल—नटविद्या, छल, कपट।
इन्द्रजीत—मेघनाद, जिसने इन्द्रको जीत लिया था।
इन्द्री—हाथ, पैर, मुख आदि १० इन्द्रियोंकी शक्तिया।
इंद्रीद्वार—हाथ पैर, आख नाक आदि इन्द्रियोंके अंग।
इंदिरा—रमा, मा, लक्ष्मी।
इन्दु—चन्द्रमा।

इंधन—जलावन, लकड़ी उपली आदि ईंधन।
इक अङ्ग—एक पलड़ा।
इच्छाचारी—मनमौजी, मनके अनुसार घूमनेवाला।
इच्छित—चाहा हुआ, वाञ्छित। अनइच्छित—वे चाहा।
इत—इधर, यहा, अबसे, यहासे।
इतउत—इधर उधर, इधर उधरसे (जैसे, "इतउत चितइ पूछि मालीगन।")
इतराई—अभिमान करके, निरादर करके, ऐंठसे। "इतरा" क्रिया "रिसा" के अनुरूप।
इति—इसतरह, इतना, समाप्त।
इतिहास—पुरानी कथा,समाचारादि
इदम्—यह।
इदमित्यम्—यह इसी तरह है, यह ऐसा ही है। ("इदमित्थ कहि जायन सोई।")
इमि—ऐसे, यों।
इव—जैसे।
इष्टदेव—पूज्य देवता।
इह—यहा, यह, इस, इस लोकमें।

ई

ईति—उपद्रव, आपदा। १ अत्यन्त वर्षा, २ सूखा पड़ना, ३ टीड़ीसे नाश, ४ चूहोंसे नाश, ५ चिड़ियोंसे बरबादी, ६ लूट चढ़ाई, ७ महामारी यह सात ईति हैं
ईंधन—लकड़ी आदि जलावन।
ईरषा—दाह, द्रोह।
ईस—ईश्वर, राजा, शिव।
ईसान—शिव।
ईषना—(ईषणा) लालसा, चाह। वासना।
ईहा—इच्छा। (अनीह-इच्छा रहित)

उ

उअ—(क्रिया) उदय होने, निकलनेके अर्थमें। उअइ, उअत, उआ, उइ, उयेउ इत्यादि "चढ़" की तरह।
उकठ—गठीली,टेढी मेढ़ी लकड़ी।
उकस—(क्रिया) ऊंचे होने, उठनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप।
उक्ति—वचन,
उग्र—तीव्र, प्रखर।
उघार—खोलनेके अर्थमें "चढ" के अनुरूप।
उचाट—उचाटन,
उच्च—ऊंचा, श्रेष्ठ।
उचित—योग्य, मुनासिब।

उछंग—गोद।

उजरे—उजड़े, नष्ट होनेसे। उजले, सफेद। "उजर" क्रि० उजड़के अर्थमें।

उजागर—प्रसिद्ध।

उजियार—उजेला।

उजैनी—उज्जयिनी। उज्जैन, मालवा देशकी राजधानी सात पुरियोंमेंसे एक जिसे अवन्तिकापुरी भी कहते हैं। महाकालेश्वर शिवकास्थान और प्रसिद्ध विक्रमादित्यकी राजधानी।

उडु—तारा।

उतंग—ऊँचा। उत्तुंग।

उत—उधर, उस ओर।

उतकरष—बड़ाई। ऊँचे उठानेकी क्रिया।

उतकण्ठा—बड़ी चाह, तीव्र अभिलाषा।

उतपति (उत्पत्ति)—जन्म, पैदाइश।

उतपात—उपद्रव।

उतसव—उत्साह।

उदक—जल।

उदघाटी—चोटी, उभारी, उदयाचलकी घाटी।

उदधि—समुद्र।

उदभव (उद्भव)—जन्म।

उदय—उभाड़, निकलना, चमक।

—गिरि. पहाड़ जिससे सूर्य देवता निकलते हैं।

उदर—पेट।

उदरवृद्धि—जलोदर रोग।

उदवेग (उद्वेग)—उत्कंठा, भय, क्षोभ

उदार—दाता।

उदास—बेपरवाह, निरपेक्ष, तटस्थ, बेमनका, रंजीदा।

उदासी—संन्यासी, उदासीन (देखो)

उदासीन—शत्रुमित्रभाव रहित, तटस्थ, बेपरवाह, विरक्त।

उदित—निकला हुआ।

उदगिरि—उदयाचल।

उद्यम—पेशा।

उप—ऊपर।

उपकार—एहसान, निहोरा, भलाई। (प्रत्युपकार=बदला।)

उपचार—उपाय, सेवा, चिकित्सा, इलाज, यत्न।

उपज—(क्रिया) पैदा होनेके अर्थमें "उपजै" के अनुरूप। उपजा=किया पैदा करनेके अर्थमें "उपजा" क्रियाके अनुरूप।

उपदेस—नुसखा। औषध या रस बनानेकी विधि। मंत्र। नसीहत। नियम।

उपद्रव—बखेड़ा। उतपात।

उपधान—तकिया, सिरहाना। चादर, दुपट्टा।

उपनिषद्—वेदका रहस्यभाग। वेदान्त।

उपपातक—छोटा पाप।

उपबन—बगीचा। क्रीड़ाबाग।

उपबरहन (उपबर्हण)—तकिया

उपमा—बराबरी।

उपरना—दुपट्टा। चादर।

उपराग-चन्द्रमा या सूर्य्यका ग्रहण। निन्दा। यन्त्रणा।

उपाय, उपाया—उपाय। तदबीर। पैदा किया। रचा।

उपराजा—उत्पन्न किया, रचा। "उपराज" क्रिया पैदा करनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप होती है।

उपल—पत्थर, ओला। बहुमूल्य पत्थर।

उपवास, उपास—भूखे रहनेकी क्रिया। भूखे रहनेका व्रत।

उपवीत—जनेऊ, यज्ञसूत्र।

उपहार—भेट।

उपहास—ठट्ठा।

उपाज, य, व—(क्रिया) उत्पन्न करने, रचनेके अर्थमें। चढ़की तरह।

उपाई—उपजायी। रची। उपाय।

उपाउ—उपाय।

उपाटी (उत्पाटी)—उखाडी। नोच लीं।

उपाधि—उपनाम, अल्ल, उपद्रव। समीप प्राप्त। माया।

उपाये—उत्पन्न किये। उपायमें।

उपारे—उखाडे। उपार क्रिया, उखाडनेके अर्थमें "चढ"के अनुरूप

उपासक—भक्त, सेवक।

उपासन—भक्ति। उपासना।

उबटि—उबटन लगाके उबट—क्रिया लेपनद्वारा मैल छुड़ानेके अर्थमें चढकी तरह।

उबर—बचकर, बढकर। क्रिया, बचने उठनेके अर्थमें, **उबार** क्रिय बचाने, उभारने, बाहर करनेके अर्थमें, दोनोंके रूप 'चढ़'-की तरह होते हैं।

उभय—दो, युगल, दोनों। (उभय भाति देखा निज मरना)।

उमग—(क्रिया) उमड़ने, जोशमें आने, खुश होनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप। **उमगा** क्रिया उमड़ाने, जोशमें लाने, प्रसन्न करनेके अर्थमें "चढा" क्रिया के अनुरूप।

उमा—शिवा, भवानी पार्वती।

उयेउ—उगा, उदय हुआ, निकला।

"उ अ" क्रियाका एकरूप [देखो "उ अ"]

उर—हृदय,कलेजा,छाती। —**ग**=साप.

—**गाद**—सर्पोंके खानेवाले,गरुड़

—**गारी**—सर्पशत्रु गरुड़।

उरिन (उऋण),—ऋणसे छुटा हुआ।

उर्विजा, उरविजा,—जानकीजी (ऊर्मी) पृथ्वीकी पुत्री

उलूक—उल्लू।

उलका—लूका, आग।—**पात**,तारे टूटना।

उसासु—लम्बी सास, ठंडी सास। उच्छ्वास।

उहार—उघार, खोल, पट, परदा।

ऊ

ऊंच—पर्वतादि उत्कृष्ट स्थान। ऊंचा। उत्तम। भला।

ऊना—ऊन,कम,सुस्त। घटी। रज।

ऊमर—गूलर, उदुम्बर।

ऊरु—जाघ, रान। चौड़ा, विशाल।

ए

एकंत—एकान्त, अकेले। एकान्त-स्थान।

एक—मुख्य, प्रधान,अलग। सख्या एक।—**त्र**,इकट्ठा,एक जगह।

—**मेल**,ऐक्यमत। गुट,सलाह।

—**ऑ**, अकेला। अकेला रहनेवाला। एक ही।

एतादृस—ऐसा, इसके जैसा।

एव—ठीक ठीक। बिलकुल।

एवम्—इस तरह, ऐसा।

एवमस्तु—ऐसा ही हो।

एहा—यह, ऐसा, यही।

एहू—यह भी, और भी।

ऐ

ऐक—अटकल।

ऐक्य—एकता, एका।

ऐन(अयन)—घर। स्थान। ठीक। सूर्य्यका मार्ग।

ओ

ओघ—समूह, ढेर।

ओदन—भात।

ओध,—लगे, पास।

ओड़नखांड़े—तलवारकी चोट रोकनेमें, पटेबाजीमें।

ओड़—(क्रिया) ओट करने,ढकने रोकनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप।

(ओडियहि हाथ असनि-हुक घाये।)

ओर—अंत। तरफ।

ओरे—बनौरी। वरफके ओले। उपल।

ओहि—उसे, उसीको।

औ

औढर—अटपट । न्यारी टार । तुरन्त । एरुवागमी ।

क

कंक—काक, वगला, सफेद चील । कुही ।

कंकन—कंगन । चूड़ी ।

कंचन—सोना ।

कंचुकी—चोली, अंगिया । केंचुली ।

कंज—कमल ।

कंटक—काटा । वैरी ।

कंठाभ—कंठके तुल्य । गलेका रंग या आभा ।

कंडु—खाज, खजुरी ।

कंत—पति ।

कंद—मूल । मेघ । समूह । मिसरी ।

कंदरा—गुहा । खोह ।

कंदुक—गेंद । गोला ।

कंध—कंधा, मोटी डार ।

कंधर—कंठ, कंधा, गला ।

कंप—कांपना ।

कंपति—समुद्र ।

कंबु—शंख ।

कंबल—पशमीना ।

कइकई—कैकेयी । राजा दशरथकी एक रानी जो भरतकी माता थीं और केकय (कश्मीर) के राजाकी लड़की थीं ।

कच—बाल, केश ।

कच्छप—कछुआ ।

कज्जल—काजल । श्यामता । कालख ।—गिरि, कालापहाड़ ।

कटक—दल, सेना । —ई, दल, सेना ।

कटकट—(क्रिया) किचकिचानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं ।

कट्ट—(क्रिया) काटनेके अर्थमें "चढ" के अनुरूप ।

कटाह—कड़ाहा ।

कटि—कमर । —सूत्र, करधनी, मेखला ।

कटु—कड़ुआ । —क, कड़ुआपन ।

कड़िहारु—कर्णधार । पतवार पकड़नेवाला । खेनेवाला । ठीक दिशामें ले जानेवाला । पार लगानेवाला मल्लाह ।

कत—क्यों, कहां ।—हू, कहीं भी ।

कति—कितना ।

कथनीय—वर्णनीय । कहने योग्य ।

कदंब—कदमका पेड़ । समूह । झुंड ।

कदराई—कायरता।

कदली—केला।

कदा—कब, किस समय।

कद्रू—दक्ष प्रजापतिकी कन्या, और कश्यपकी स्त्री, नागोंकी माता जिससे विनतासे होड़ लगी थी।

कनक—सोना, धतूरा।—कशिपु, हिरण्यकश्यप,प्रह्लादका पिता। —लोचन, हिरण्याक्ष, प्रह्लादका चचा।

कनकनी—किनका, थोड़ा भी। बूंद।

कनहार—कर्णधार, खेनेवाला, मल्लाह।[देखो कड़िहारु]

कपट—छल।

कपाट—किवाड़।

कपाल—खोपड़ा।—ली, कपाल रखने या पहननेवाला। शिव। अघोरी।

कपि—वानर।—कुंजर,बड़ा बंदर —न्द, श्रेष्ठ कपि। कपीन्द्र।

कपिल—कपिल मुनि, सांख्य शास्त्रके आदिम आचार्य्य। रक्ताभ भूरा रंग। भूरे बालवाला। कुत्ता। लोबान। सूर्य्य। एक देशका नाम।

कपिला—भूरी गाय। जोंक।

कपीस (कपीश)—वानरराज। बन्दरोंका राजा। वानरोंमें श्रेष्ठ।

कपूत—नालायक बेटा। कुपुत्र।

कपोत—कबूतर।

कपोल—गाल।

कपिंद्र(कपींद्र)—कपिराज, वानरोंमें श्रेष्ठ।

कबंध—बिना सिरवाला,एक राक्षसका नाम।

कबार—हुनर,गुण, पेशा, झगड़ा। खंगड़मंगड़।

कबुली—राजीकी गयी। पचोमेद।

कमठ—कछुआ।

कमनीय—सुघर, सुन्दर।

कमल—पंकज, जलज। कंवल। —नाभ—भगवान जिनकी नाभिसे कमल निकला।

कमला—लक्ष्मी, रमा।

कर—हाथ,सूंड। किरण। महसूल। क्रिया, करनेके अर्थमें "कृ" धातुके अनुरूप।—गत, हाथ लगा हुआ।—ज,हाथसे उत्पन्न, अँगुली, नख।—तल हथेली।—तार,—तारी, हाथकी ताली,अंगूठा, सुंदरी।

करक,—कढक, दर्द।

करष (कर्षा)—खेंच,, खिंचाव

—ई होड़ । जोश । (क्रिया) खींचनेके अर्थमें "चढ़" धातुके अनुरूप ।

करदम—कीच, कीचड़, एक मुनिका नाम ।

करन (कर्ण)–कान, इन्द्रिय । साधन, कारण । करना।—धार पतवार पकड़नेवाला । खेनेवाला ।

करनीया—करनेके योग्य ।

करबरे—विपदा । आपदा । अचानक आनेवाला संकट ।

करवाल—तलवार, खड्ग ।

करष (कर्षा)—ईर्षा, वैर, होड़, चढ़ाऊपरी । खिंचाव ।

करार—इकरार, वादा । कराल, भयकर । किनारा । जलसे ऊंचा तट ।

कराल—भयानक । कठोर ।

करि—हाथी ।—नी, हथिनी ।

करीला—करील वृक्ष ।

करुआई—कड़ुआपन, तिताई ।—

करुणा,—दया ।—करति, गुण कथनपूर्वक विलाप ।

करुन—द०

करोर (करोरी)—सौलाख ।

कल—गत दिन । आगामी दिन । आराम । सुन्दर । मीठा । —कंठ, कोकिल ।

कला—हुनर इच्छानुसार रूप धरने कला ।

साठ—महादेवके वेग, शिव ।

कलप (कल्प), युवती ।

बातें कर—मनामें लिप्त । खींचनेके अनुरूप । ब्र

हजार चतुर्युग—एक ।

बत्तीस करोड़ पृथ्वी का होता है । तरह—म । पच-

—ना, तर्क, विचार, गोना, रज ।—तरु, कल्प—मित्त, इच्छा पूरी करनेवाला पेड़ ।

कलपांत (कल्पांत)—महा प्रलय तक । कल्पके अन्त ।

कलपित (कल्पित)—माना हुआ । बनाया । झूठ । खयाली बिना प्रमाण ।

कलबल—छलकपट, दावघात ।

कलभ—हाथी या ऊटका बच्चा ।

कलमल—(क्रिया) कुल बुलाने, रेंगनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते है ।

कलमले—कलमलाये, चंचल हुए, कुलबुलाये ।

कलहंस—सुन्दर हंस । राजहंस ।

कलाप—समूह, ढेर ।

कलि—युगका नाम है । बखेड़ा ।

कदराई—कायरता ।
कदली—केला ।
कदा—कब, किस समय ।
कद्रू—दक्ष प्रजापतिकी कन्या, कश्यपकी स्त्री ।
कर—...
कलि—कलियुग । ...कलियुगके पाप—जिससे युक्त ।
कर्दम—...थी । कीचड । दलदल ।
कनक—...रूप ।
...हि—देह, शरीर ।
(क्लेश)—दुःख, कष्ट ।
...—क्रीडा, खेल, आनन्द । कल्लोल ।
...लोलिनि—कल्लोल करनेवाली, खेल करनेवाली । नदी ।
कलंक—लाञ्छन । लोहेका रस । मुरचा ।
कवच—बखतर, वर्म, लोहेका वस्त्र जो लडाईमें पहना जाता है ।
कवल—कवर, ग्रास ।
कवि—कविता रचनेवाला, पंडित, —त, रचना, पद्य ।
कविनासा—कर्मनाशा नदी ।
कश्यप—एक मुनिका नाम जो ब्रह्माके पुत्र थे, जिन्होंने पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस, असुर, देवता सभी योनि-प्राणी पैदा किये ।
कस—कैसा, कैसे, क्यों । (क्रिया) कसौटीपर घिसने या दबानेके अर्थमें, "चढ" के अनुरूप [कसे=कसौटीपर परखे]
कसमसा—(क्रिया) घबराने, दम-घुटने, कस जाने, व्याकुल होनेके, अर्थमें । "चढ"-की तरह ।
कहानी—कथा । किस्सा ।
कहुँ—कहीं, किसी स्थानमें ।
कांचा—कच्चा । शीशा । कांच ।
कांजी—राईका उठान । खट्टा । सिरका ।
कांधी—स्वीकार करके, कबूल करके कंधेपर रखा ["कांध" क्रिया कंधेपर रखनेके अर्थमें "चढ" के अनुरूप है, संज्ञा कंधेसे बनी हुई]
काउ, काऊ—कभी । किसीसे, किसीने । क्या किसी समय भी ।
काकपच्छ (काकपक्ष)—सिरके पट्टे, कौवेका पर । कौवे-के परकी तरह सँवारी हुई जुल्फें ।
काकु—व्यंग वचन, टेढी बोली । कठोर बातें ।

कापासोती—कंधेसे काखतक लिपटी हुई।

काग, कागा—कौआ, काक। का (क्या) गा (गया)= क्या गया?

कागद—कागज।

काग भुसुण्ड—प्रसिद्ध रामभक्त कौआ।

काछ—(क्रिया) धोती या कपड़े पहननेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप। लाग। धोती। वस्त्र पहननेका ढंग।

कातर, कादर—कायर, डरपोक। लाचार, हैरान। बेबस।

कानन—वन, जंगल। कानों तक, कानोंमें, कानोंको, कानोंने।

कानि (कानी)—लज्जा, मान, संकोच। एक आँखवाली।

काम—कार्य, काज। कामना, इच्छा। लालसा। इरादा। विषय-वासनाका देवता। रतिका स्वामी जिसे शिवजीने जलाया।—तरु, कल्पवृक्ष। —द, दा, कामनाका देनेवाला। कामता चित्रकूटका एक शिखर।—दुगाई, कामधेनु।—ना, मनोरथ, चाह।—रूप, इच्छानुसार रूप धरनेवाला।

कामारि—कामदेवके वैरी, शिव।

कामिनि—स्त्री, युवती।

कामी—भोगवासनामें लिप्त। स्त्री-लोलुप।

काय—देह, शरीर।

कायर, कादर—डरपोक।

कारज—कार्य। कामधाम। पंच-भूतादि सृष्टि।

कारन—प्रयोजन, पिता, निमित्त, प्रकृति। पैदा करनेवाला। —करन, प्रेरक शक्ति और हथियार दोनों।

कारक—क्रिया, करनेवाला।

कारमुक—धनुष। कर्मसम्पादक।

कारिख—स्याही। कालख, कजली।

कारि, कारी—काली, श्याम।

कारुनीक—कृपालु, दयालु। करुणामय।

काल—समय। दुर्भिक्ष। सर्प। मृत्यु। यमराज। काला। —कूट, विष। हलाहल। —निशा, कालरात्रि। प्रलयकी रात, दीवालीकी रात। मौतकी रात।—नेमि, एक राक्षसका नाम जिसने हनुमान्‌को बहकाना चाहा।

कालिका—काली देवी, महाकाली।
काली—श्यामवर्ण।—न, ना, समयवाला, बहुत पुराना।
कास (काश)—श्वासरोग, खांसी। सरपत, सरहरी।
कासी (काशी)—सात पवित्र पुरियोंमें प्रसिद्ध पुरी, जिसे आजकल बनारस कहते हैं।
काह—क्या, कौन।
काहू—किसीने, कोई, किसीको।
किंकर—नौकर, दास, सेवक। किंकरी—दासी। चाकरानी।
किंकिनि—क्षुद्र घंटिका। घुंघरू।
किंचन—थोड़ा। कुछ।
किंतु—परन्तु, लेकिन, तब भी, जब भी, बल्कि।
किंनर—गंधर्वोंके समान एक जाति जिसका रूप देखकर संदेह हो कि यह मनुष्य है वा नहीं। गानेवाली देवजाति, किम्पुरुष।
किंवा—वा, यातो, अथवा, शायद।
किंसुक—पलाश।
कि—क्या, क्यों, कि। क्यों न, क्यों नहीं। किसने।
किन्नर—एक देव जाति। वानर जाति [देखो किंनर]।
किमपि—कुछ भी।
किमि—क्यों कर, किस भांति।
किरात—वनचरोंकी एक जाति। किरातिनि, भीलनी।
किरिच—दुडाक।
किरीट—राजमुकुट, ताज।
किल—निश्चय, अवश्य।
किलकिला—किलकारका शब्द।
किसलय—मलके पत्ते।
किसु—किसका, किसको।
किसोर—सोलह वर्षकी अवस्थावाला युवा।
कीट—कृमि, कीड़ा।
कीती—कीर्ति, यश।
कीर, कीरा—सुग्गा, तोता। कीड़ा। साप।
कीरति (कीर्त्ति)—यश। शुहरत।
कील—तृण। काटा
कीस, कीश—वानर, मर्कट, कपि।
कुंचित—घुंघराले।
कुंजर—हाथी।
कुंजित—गूंजा हुआ।
कुंठित—कुंद, बेकाम।
कुंत—बरछी, भाला।
कुंभ—घड़ा, हाथीका मस्तक। —कर्ण घड़ेकेसे कानोंवाला

रावणका एक भाई।—ज, घड़ेसे जन्मे हुए अगस्त्य मुनि।

कुंवर— राजकुमार।

कु—पृथ्वी। बुरे और नीचके अर्थमें, जब कभी किसी शब्दके पहले लगा दिया जाता है, जैसे "कुमारग" बुरा मार्ग, "कुवेष" बुरा वेष, इत्यादि।

कुक्कुट—मुर्गा, अरुणशिखा।

कुचाह—बुरी घटना, बुरे समाचार, अनिष्ट दृश्य। बुरी खबर। बुरी इच्छा। खोटी वासना।

कुजोगी—विषयी। बेमौके बात वा घटनासे असम्बद्ध।

कुटिल—टेढ़ा। खोटा। कुटना। झगड़ा पैदा करनेवाला।

कुटिलाई—कुटिलपन। खोटाई कपट, छल।

कुटीर—कुटी।

कुठार—फरसा, कुल्हाड़ी।

कुठाहर—नीच जगह।

कुतर्क—व्यर्थकी हुज्जत। उलटे। विचार। भ्रांति।

कुत—कुत्र, कहांसे।

कुदान—बुरादान, कूदनेका स्थान।

कुदारी—भूमि खोदनेका औजार।

कुदृष्टि—पाप-दृष्टि। बुरी निगाह।

कुधर—बुरी भूमि, खराब जमीन। पहाड़।

कुधातु—लोहा सीसा आदि घटिया धातु।

कुपथ, कुपथ्य—अयोग्य भोजन। बदपरहेजी भोजन। —कुपथ,बुरी राह।

कुवलय—कमल, कोई।

कुविहग-बुरा पक्षी, निषिद्ध पक्षी।

कुबेर—यक्षराज, देवधनाध्यक्ष। बुरे समय। बुरी वेला।

कुवेष —खोटा स्वाग, बुरा भेस।

कुमार—बटुक, कुआरा बालक, राजपुत्र, कुवर। जिसने कामदेवको भी निन्दित ठहराया हो। कुमारी— कुँवारी बिना व्याही, राज-कुमारी।

कुमुद—कोई, नलिनी। एक वानर का नाम।—बन्धु, कोई-का हितू चन्द्रमा।—कुमु-दिनी, कोई,कमलिनी।

कुम्हड—कोहड़ा फल।

कुरग—बुरा रग। बुरा ढग। हरिन।

कुररी—कुज। जलाशय पर रहने-वाली एक चिड़िया।

कुराई—पाव फसानेवाली बिल य गड्ढा। ढेर लगवायी।

कुरी—सब जाति, वंश। ढेरी।
कुरुचि—नीच वासना।
कुल—वंश, समूह, घर।
कुलह—टोपी। डैने।
कुलि—सब, कुल।
कुलिस—वज्र, हीरा।
कुलीन—उत्तम कुलवाला।
कुस—कुशा, पवित्र घास। श्रीराम-चन्द्रजीके बड़े बेटेका नाम।
—केतु, राजा जनकके एक भाईका नाम।—ल, कल्याण, चतुर, ठीक।—लाई, कल्याण, चतुराई, दुरुस्ती।
—ली, सुखी नीरोग।
कुसमउ—अनवसर, आपतकाल। फूल भी।
कुसुम—पुष्प, फूल। कुसुमित—फूला हुआ। प्रफुल्लित।
कुहबर (कोहबर)—कोहबर, वह जगह जहां विवाहकालमें वर दुलहिनको ले जाकर कौतुक रहस्यादि करते है।
कुहू—कूक। अमावास्याकी रात। कोयलकी बोली। अंधेरी रात।
कूक—कोयलकी बोली। कोकिलके शब्द।
कूजन—(क्रिया) गुजार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चद" की तरह होते हैं।
कूट—पहाड़। शिखर। हंसी। कुचलकर। व्यंग वचन।
कूड़ि—लड़ाईमें पहिरनेकी लोहेकी टोपी। कुटी। पथरी।
कूप—कुआ, गड्ढा।
कूर—मूर्ख, उजड्ड, खल, कठोर हृदयवाला।
कूरम (कूर्म)—कछुआ।
कूल—तट, किनारा। वास्तिकी टट्टी।
—द्रुम, नदी-तटका वृक्ष। जिसका जीवन अनिश्चित हो।
कृत—किया हुआ, रचित।—कृत्य, जिसका मनोरथ मिल गया हो। पूर्णकाम, कृतकार्य।
—ज्ञ, अहसान माननेवाला।
—युग, सतयुग।—निंदक कृतघ्न, उपकारकी निन्दा करनेवाला।
कृतारथ—मनोरथको पाये हुए। कृतार्थ।
कृतांत—यमराज।
कृपान—तलवार।
कृपिन (कृपिण)—सूम, कंजूस।
—ई, कंजूसी।
कृमि—कीड़ा, कीट।
कृस—दुबला, पीड़ित, दुर्बल। कृश।

कृसानु(कृशानु)—अग्नि, आग ।
कृषी—खेती ।
केकय—आधुनिक पंजाब और कश्मीरके बीच एक प्रांतका प्राचीन नाम है, जहां केकयीका नैहर था ।
केकी—मोर ।
केतिक—कितनी, कितना ।
केतु—नवम ग्रह । पताका । पूंछ-वाला तारा । ध्वजा ।
केते—कितने, कै ।
केदलि—केला ।
केन—किसने ।
केर—का, की, के ।
केलि—खेल, विहार ।
केवट—कैवर्त्तक, खेनेवाला, मल्लाह ।
केवल—सिर्फ, अकेला, मात्र ।
केस—सिरके बाल ।
केसरी—सिंह, शेर । हनुमानजी-के पिता ।
केहरि—सिंह । एक प्रकारका वानर ।
केहि—किसे, किसको ।
कैकय—केकयदेशके राजाका नाम । काश्मीरके एक प्राचीन प्रान्तका नाम ।
कैकेयी—राजादशरथकी रानी, भरतकी मात

कैटभ—एक दैत्यका नाम ।
कैरव—कुमुदनी । श्वेत कमल । चांदनी । धूर्त, शठ
कैलास—हिमालयका एक अत्यन्त ऊंचा शिखर जिसपर शिवजी रहते हैं ।
कैवल्य—मुक्ति, मोक्ष ।
कोक—विष्णु । मेंढक । भेड़िया । रतिशास्त्र । चकई चकवा ।
कोकनद—लाल कमल ।
कोकिल—कोइल ।
कोकी—चकई । चक्रवाकी ।
कोष—खजाना, तलवारका म्यान । कोख ।
कोछे—कोखमें, गोदीमें । अंचलमें ।
कोटर—खोडरा । पेड़के तनेके भीतर का बिल ।
कोटि—करोड़ । पक्ष । धनुषका गोशा । जाति । प्रकार ।
कोदंड—धनुष ।
कोद्रव—कोदो, एक मोटी जातिका अन्न ।
कोप—क्रोध, रिस । कोपी-क्रोधी । कोई भी ।
कोपर—एक तरहका बरतन । और कौन ?
कोये—आंखके ढेले ।
कोरि—खोदकर । करोड़ ।

कोरी—सादी, अछूती, टटकी। कोर। बीन।

कोल—सूअर। एक जंगली जाति। अंक, गोद।

कोलाहल—गुलगपाड़ा। शोर।

कोविद—पंडित, चतुर।

कोस—दूरीकी माप। कमलका मध्य। खजाना।

कोसल—आजकलके संयुक्त प्रान्तका अधिकांश भाग पहले "कोसल" कहलाता था।
—पति, ईश, कोसलके राजा--पुरी, अयोध्या,

कोह—(कोहु, कोहू) क्रोध, रिस।
—वर, देखो "कुहवर"।

कोही—क्रोधी।

कोहाब—रूठना, मान करना। क्रोध करना।

कौतुक—खेल, दिल्लगी तमाशा।

कौतुकी—खेलवाड़ी, नट।

कौ—पूछनेमें।

कौतूहल—तमाशा।

कौमुदी—चांदनी।

कौल—वाममार्गी।

कौसल—अवधपुरवासी। चतुराई।

कौसल्या--राजादशरथकी बड़ी रानी, श्री रामजीकी माता।

कौसिक—विश्वामित्र मुनि। उल्लू।

क्रमनासा—कर्म्मनाशा नदी जिसमें स्नान करने या जिसका जल छूनेसे शुभ कर्म्म नष्ट हो जाते हैं।

क्रीड़ा—खेल। विहार।

क्वचित—कभी, कुछ, कोई, कहीं।

ष, ख

गोस्वामी तुलसीदासजीकी वर्णमालामें "क" के बाद "ष" आता है। उसका उच्चारण "ख" है। आजकलकी शुद्ध पाठवाली रामचरितमानसकी प्रतियोंमें "ख" और "ष" दोनोंका प्रयोग हुआ है। इसीलिये यहा शीर्षकमें ष, ख, दोनों दिखाया है। नीचे दिये शब्दोंमें जहां ष या ख है, एकके होते दूसरेका भी वैसा ही प्रयोग समझकर पाठक शब्दार्थ देखें।

षंजन (खंजरीट)—एक छोटा पक्षी। यह एक श्याम रंगकी बड़ी चंचल चिड़िया है जिससे नेत्रोंकी उपमा दी जाती है।

षंड—टुकड़ा।

रया) गुजार करनेके अर्थमें। क्रस—दुबला, पीड़ित, दुर्बल। कृश।

खग—पक्षी ।—केतु, भगवान । —नायक गरुड़ ।—हा, व्याधा । पक्षियोंका मारनेवाला ।

खगेस—पक्षियोंका स्वामी । गरुड़ ।

खग्ग—तलवार ।

खचा—(क्रिया) लकीर खिंचानेके अर्थमें । इसके रूप 'चढ़ा' धातुकी तरह होते हैं ।

खचित—पची, जड़ाऊ । खिंची हुई ।

खट—छः ।

खटा—(क्रिया) स्थिर रहने, खर्च होने, निपटने और पूरे पड़ने-के अर्थमें । "रिसा" के अनु-रूप ।

खटाइ—स्थिर रहती है, ठहरती है । अम्ल, खटी चीज ।

खद्योत—जुगनू ।

खन—(क्रिया) खनने या खोदनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हैं । क्षण । पलभर समय । अत्यन्त थोड़ा समय । टुकड़ा, खंड ।

खप्पर—खोपरी । जोगियोंका बरतन ।

खभार—(खभारू) क्षोभ, मोह, हल-चल ।

खर—दूषणका भाई । तीक्ष्ण, तीखा । तृण, घास ।

खरब—खर्व, छोटा, तुच्छ ।

खरभर—क्षोभ । उथलपथल । गुलगपाड़ा ।

खरारि (खरारी)—खरके दुश्मन । श्री रामचन्द्रजी ।

खरा—चोखा, तीखा । पका हुआ । साफ साफ ।

खल—दुष्ट, नीच । खरल जिसमें ओषधि कूटते हैं ।

खलु—निश्चय करके, सचमुच । खल पाजी, बदमाश, खोटा ।

खस—नीचे जाति । एक जंगली जाति पहाड़ी देशोंकी रहने-वाली । (क्रिया) गिरने और सरकनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हे

खसी—गिरी । आख्ता बकरा ।

खाग, खँग—(क्रिया) कम होने और घट जानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हैं ।

खाई—परिखा । किलेके चारों ओर-की नहर । खाय, भक्षण कर जाय ।

खागा—तलवार, खड्ग । घट गया, कम हुआ ।

खांच—(क्रिया) खिचाने, खींचनेके अर्थमें, "चढ" के अनुरूप ।

खाटी—खट्टी । खाट, चारपाई ।

खानिक—खानका, आकरका।

खानी—खानि, घर। खजाना।

खारा—नोना, क्षारयुक्त।

खाल, खालु—चर्म्म। गड्ढा।

खिन्न—दुखिया।

खीन—दुर्बल,दुबला पतला। दुखिया, खिन्न।

खीस, खीसा—दांत। कमी। खराब जेब।

खुनुस—क्रोध।

खेत—क्षेत्र, मैदान। समरभूमि स्थान।

खेद—दुःख, क्लेश। अफसोस।

खेरे—पुर, गांव, ग्राम, छोटी छोटी बस्तियां।

खेलवार—खिलाडी। खेल,कौतुक।

खोव—(क्रिया) गुम करनेके अर्थमें।

खोई—गुप्त या नाश करायी। बान, स्वभाव। फोकस, कूडा।

खोज—पता, ठिकाना, पहचान। निशान। (क्रिया) तलाश करने, ढूँढनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप।

खोड़स—सोलह, १६।

खोरि, खोरी—ऐब, दोष। खुटाई। गली। चन्दनादिकी रेखाएं।

खोरा—खोटा, दोषी। लगड़ा।

खोह—गुफा, गुहा।

खोरे—लंगड़े।

खौर—लहरियादार रेखाओंवाला तिलक।

ग

गंजन—नाश करनेवाला।

गंजा—नाश किया। जिसकी चांद-में बाल न हों।

गंध—विलेपन, चंदन, सुगन्ध।

गंधर्व—स्वर्गके गवैये। नचनिये। घोडा।

गंभीर—गहरा, शांत।

गॅव—गौं, मौका।

गई—गति प्रतिष्ठा, मान। बिगड़ी। गुजरी।

गईबहोर—बिगडीको बनाने वाला। गई हुईको फेर लानेवाला। मान और प्रतिष्ठाका फिरसे प्रति-पादन करनेवाला।

गगन—आकाश। शून्य।

गज—हाथी—बदन या आनन, हाथीका मुख वा देहवाला, गणेशजी।—अरि, हाथी-का शत्रु, केहरि, बाघ।

गति—मुक्ति। रास्ता। चलना। ज्ञान। स्वरूप। दशा। आधार। प्रतिष्ठा।

खाड़िया है **खंड**—टुकड़ा।

गथ—मोल, दाम, कीमत।

गन (गण),—समूह। सेवक —नाथ,नायक, गणेश —राऊ, गणेश—राज, गणेश। (क्रिया)गिननेके अर्थमें चढ़के अनुरूप।

गनक (गणिक)—गिनती करनेवाला, ज्योतिषी, मुनीम।

गनिका—वेश्या। एक वेश्या जो सुग्गेको राम नाम पढ़ाते पढ़ाते मुक्त हो गयी।

गनी—धनी। विचार किया। गिनती की।

गने—गिनती की।—स, गणपति। विनायक।

गन्य (गण्य)—गिननेके योग्य, गिनतीमें।

गभुआरे—गर्भके बाल,भडूले केश।

गम—गमन, गति। जाननेकी सामर्थ्य। चिंता।—न, जाना, चाल, विदाई, विसर्जन।

गम्य—जाने योग्य, प्रवेशके योग्य, समझनेके योग्य।

गय—गयन्द, हाथी।

गयल—मार्ग, राह।

गर—गला। विष, जहर (क्रिया) गलने, लज्जित होने और नम्र होनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

गरद—रज, धूर। विष देनेवाला। —न, गला, कंठा।

गरदा—देखो "गरद"।

गरल—विष।

गरवित—अभिमानी। गरूरमें।

गरह—ग्रह। सूर्य्यादि नवग्रह। गठिया बात।—दशा, सर्वांचरी दशा।

गरुअ—भारी।

गरुता—भारीपन, गौरव, बड़ाई।

गलित—नष्ट, गला हुआ।

गवन (क्रिया)—गवन करे अर्थात् जानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। गौना।

गवनि (गवनी)—गमन करनेवाली, चलनेवाली। जाकर। चली गयी।

गवाँहूँ—गौंसे, मतलबसे, चुपकेसे।

गवासा—गोमच्छी, कसाई।

गह—(क्रिया) पकड़ने, धरने, ग्रहण करने और स्वीकार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

गहगह—आनन्दके बाजोंकी ध्वनि

गहन—सघन वन। घोर जगल

पकड़ना।

गह्वर—सघन, घना। वन। सँकरा। संकुचित। सोच-से भरा।

गहरु—देरी, विलंब।

गा—गया, जाता रहा।

गाउँ—गांव। गाऊँ।

गाज—(क्रिया) गरजनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। वज्र। फेन।—न,गर्जन।नाद।

गाड़—गड्ढा, खड्डा। चुभन, गड़न।

गाँडर—खस या उशीरकी घास।

गाडर,गाँडर—गढाली, उसीर वा खसवाली। घास।

गाढ़ा—कठिन वा दृढ।

गात—(गात्र) शरीर, अंग, देह।

गाथ—(क्रिया) गूथले, बांधने, पिरोनेके अर्थमें "चढ़" की तरह। गाथा, कथा, गीत।

गाथा—कथा, कहानी गीत, पद्य।

गादुर—चमगादड़, चमगादुर।

गाधि—विश्वामित्रके पिताका नाम जो प्रसिद्ध राजा थे।

—**सुवन**, राजा गाधिके पुत्र विश्वामित्र मुनि।

गामिनी—गमन करनेवाली, जानेवाली।

गामी—चलनेवाला।

गायक—गानेवाला कथक।

गायगोठ—गायगोष्ठ, गोशाला। ढोर।

गारुड़ि—सर्पका विष हरनेवाला। सँपेरा।

गाल—कपोल। वाचाल। गप।

—**बजाना**, बढ़ बढ़के बातें करना, डींग मारना।

गालव—एक मुनिका नाम जो विश्वामित्रके अति भक्त शिष्य थे। [देखो गालवकी कथा]

गाहक (**ग्राहक**)—चाहनेवाला, लेनेवाला। पकड़नेवाला।

गाहा—गाथा, गुणगान। गीत। कहानी।

गिरा—गिर पड़ा। वाणी,कविता।

—**ग्राम**,ग्रामीण भाषा, देहाती बोली। वाणीका स्थान या उठनेकी जगह।

गिरि—पर्वत। —जा, पार्वती।

—**धारी**, पहाड़ लेकर।

—**न्द्र**, पर्वतराज हिमालय।

—**नन्दिनी**,पार्वती।—**नाथ**, शिव, हिमालय। —**राज**, हिमालय, सुमेरु। शिव।

—**वर**, पर्वत श्रेष्ठ, सुमेरु।

गिरीश—शिव, हिमालय।

गिल—(क्रिया) निगलनेके अर्थमें "चढ़"के अनुरूप।—**गिलई,** निगल जाय, लील जाय।

गीध—जटायु, गिद्ध।

गुंज—(क्रिया) गुजनेके अर्थमें, चढकी तरह।

गुंजत—गूजता है।

गुंजा—घुघची।

गुडी—गुड्डी, पतग। गुडिया।

गुदर—(क्रिया) हटने या छोड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी 'चढ' धातुके अनुरूप होते हैं।

गुदारा—पार उतारनेकी क्रिया। उतारा। गुजारा।

गुन—(क्रिया) समझने, गिननेके अर्थमें। "चढ" की तरह। चतुराई, त्रिगुण (सत, रज, तम,)। रस्सी। यश, कीर्ति। सुभाव। विद्या।
—**ग्य,**—**ज्ञ** गुणका जाननेवाला, समझनेवाला।
—**द,** लाभदायक, गुनदायक।
—**हु,** समझो, गुणन करो। लाभ भी। गुण भी।

गुनातीत—तीनों गुणोंसे परे, परमात्मा।

गुनी—गुणवान, विद्वान, समझा।

गुमान—मान, अभिमान, गरूर।

गुमानी—अभिमानी, मगरूर।

गुरु—आचार्य, पुरोहित, भारी। बड़ा।—**जन,** बड़े लोग।

गुसाईं—मालिक, स्वामी, गोस्वामी।

गुह—निषादराजका नाम।

गुहरा—(क्रिया) पुकारनेके अर्थमें "चढ़ा" क्रियाकी तरह।

गुहरावत—गुहराजा, निषादराज। पुकारता हुआ।

गुहा—गुफा, खोह।

गुहार—रक्षार्थ जोरसे बुलानेका शब्द।

गुहारी—दोहाईपर मददपर आया पुरुष। पुकारी।

गूढ़—गुप्त

गृहादी—गृहादि, घर आदि।

गृही—गृहस्थ, घरका स्वामी, घरवाला।

गृहीत—पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ, वशमें।

गे—गये, चले गये, बीत गये।

गेरु—गेरू, लाल रङ्गकी मिट्टी युक्त विशेष पत्थर। गैरिक।

गेह—गृह, घर।

गो—इन्द्रिया। दिशा। वाणी। जल। स्वर्ग। वज्र। गाय। बैल। पृथ्वी। प्रास। गया।
—**चर,** इन्द्रियोंसे जानने

योग्य। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पाचों विषय। सम्मुख, सामने। —तीत, इन्द्रियोंसे परे। जहां इंद्रियां न पहुच सकें।

गोदावरी—बम्बई प्रान्तमें पच्छिमी घाटसे निकली एक नदी जो हैदराबाद (दक्षिण) को पार करती हुई आंध्र प्रदशमेंसे होकर बङ्गालकी खाडीमें गिरती है।

गोपद—गऊका खुर, गायका पैर।

गोप्य—छिपाने योग्य।

गोपर—गोतीत।

गोमती—एक नदी जो हिमालयकी तराईसे निकलती है और संयुक्त प्रान्तमें लखनऊ जौनपुर आदि नगरोंमें होती हुई गाजीपुरमें सैदपुरके समीप गङ्गामें मिल गयी है।

गोमायु—गीदड, सियार।

गोरोचन—गोलोचन, गोमेद।

गोलक—चक्षु, आख, नेत्र।

गोव—(क्रिया) छिपानेके अर्थमें। —**गोई**, छिपायी। —**गोए**, छिपाये। —**गोश्रा**, छिपाया। **गोय**—छिपाकर। —**गोवहु** छिपाओ। **गोइय**—छिपाइये।

गोविंद—वेदलभ्य। गो रक्षक। वाणीरक्षक।

गोसाईं—गोस्वामी। गुरु। प्रभु।

गौतम—एक ऋषिका नाम जो अहल्याके पति थे। —**नारि**, अहल्या। —**साप**, गौतमने इन्द्रको शाप दिया था कि तुम्हें रामचन्द्रजीके व्याहके समय हजार आखें हो जायँगी।

गौन—गमन, गवन, जाना। देरी।

गौर—गोरा, उजला।

गौरव यश, बडाई।

गौरि—पार्वती।

गौरीस—(गौरीश) शिव।

ग्यात—मालूम, ज्ञात।

ग्याता, ज्ञाता—जाननेवाला।

ग्यान—समझ। जानकारी।

ग्यानी—समझदार। जानकार।

ग्रंथ—पोथी। पुस्तक। शास्त्र।

ग्रंथि—गाठ। उलझन।

ग्रस— / **ग्रह**— } (क्रिया) ग्रास करने पकड़ने या खाजानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। —**न**, पकड़ लेना। ले लेना। खा जाना।

ग्राम—गांव, छोटी वस्ती, पूरा, समूह।

ग्राम्य—गांवका । देहाती । ग्रामवासी गवार ।

ग्राह—मकर, मगर ।

ग्राही—ग्रहण करनेवाला । पकड़नेवाला ।

ग्रीवा—गला, कंठ ।

ग्रीषम (ग्रीष्म)—गरमीकी ऋतु ।

घ

घट—घड़ा, कलश । हृदय ।—ज, कुम्भज ऋषि, अगस्त्यमुनि ।

घट—(क्रिया) बनने, बनाये जाने, ठीक होने, और कम होनेके अर्थमें । इसके रूप भी 'चढ़' की तरह होते हैं ।

घटब—कम होना, क्षीण होना ।

घटयोनि—अगस्त्य मुनि ।

घटा—समूह,कम हुआ। काम आया।

घटि—घटी, कमती । घड़ी ।

घन—बादल । घना । भारी हथौड़ा ।

घमोई (घमोय)—बासका एक रोग जिससे बाढ़ बन्द हो जाती है । यह बासकी जड़में बहुतसे पतले और घने अंकुरके रूपमें निकलता है ।

घरनी—घरवाली, गृहिणी। भार्या ।

घरफोरी—घर फोड़नेवाली ।

घ्रान (घ्राण)—नासिका, नाक । सूंघना । गन्ध ।

घरिक—घड़ीएक, घड़ीभर । थोड़ी-देर ।

घवरि—घौर, घौद, गुच्छा । एकत्र होकर ।

घहरा—(क्रिया) टूट पड़नेके अर्थमें —घहरात, टूट पड़ता है । —घहराइहै, टूट पड़ेगा ।

घाअ—(क्रिया) चोट या घाव लगनेके अर्थमें । घाये [चोट लगे] "ओडियहि हाथ असनिहुक घाये ।"

घाउ—घाव ।

घाटारोह—घाट बन्द कर देना । घाटावरोध ।

घात—धोखा, बहाली, दावपेच, घाव, चोट ।—नी, नाश करनेवाली ।

घाम—धूप ।

घाय—घाव ।

घाये—दिये । चोट लगे । घाव खानेपर ।

घाल—(क्रिया) डालनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

घालक—नाशक, डालनेवाला, मिलानेवाला, गड़बड़ करनेवाला ।

घृत—घी ।

घुनाच्छर—घुनके काटे हुए चिह्न ।

घुम्मर—(क्रिया) घौंसेकीसी आवाज करनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

घूर्मि—घूमकर, चक्कर खाकर ।
—त, चक्कर खाये हुए ।

घोर, घोरा—कड़ा, कठिन, घना, कराल । घोड़ा ।

च

चंग—कनकौवा, गुड्डी । एक प्रकारका बाजा । जोम ।

चंचरीक—भौंरा ।

चंड—तेजस्वी । तेज । क्रोध ।

चंद(चंद्र)—चांद ।

चंदिनी—चांदनी ।

चंद्र—चन्द्रमा ।—मा, चांद । एक ऋषिका नाम जो अत्रिके पुत्र थे । —मौलि, महादेवजी जिनके माथेपर चन्द्रमा विराजते हैं । —हास, तलवार, करवाल, रावणकी तलवारका नाम ।

चंद्रिका—चांदनी, कौमुदी ।

चंदोवा—वितान, शामियाना ।

च—और । पुनः । भी ।

चक, चकई—चकवा, पक्षी । कहते हैं कि रातको चकई चकवेका जोड़ा नहीं मिलता । चकई चकवा ।

चकित—अचरजमें । अचम्भेमें । चकराया हुआ ।

चकोर—एक पक्षी जो चन्द्रमामें अति स्नेह रखता है ।

चक्कवइ—चक्रवर्ती ।

चक्र—चक्र जिसका नाम सुदर्शन है, विष्णुका एक हथियार । पहिया । चरखा । चरखी । मंडल । गुट । षड्यन्त्र ।
—वाक—चकवा पक्षी ।

चख—चक्षु, आंख । नेत्र ।

चतुरानन—चार मुखवाला । ब्रह्मा ।

चतुरंग—चार भागमें बटी हुई सेना । (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल) चौसर, शतरंज ।

चपरि—शीघ्र, दबककर, भूमिसे मिलकर ।

चपल—चंचल, अस्थिर ।

चपेट—तमाचा, धक्का, झोंक ।

चमर—चंवर ।

चर—दूत, चलनेवाला । (क्रिया) गमन करनेके या चलनेके अर्थमें । "चढ" धातुके अनुरूप ।

चरनपीठ—खड़ाऊं ।

चरफराहिं—तड़फड़ाते हैं । चंच-

लता दिखाते हैं। "चरफरा" धातु चपल होनेके अर्थमें।

चरम (चर्म)—चाम, चमड़ा। ढाल, अन्तिम।

चराचर—चल-अचल। जड़-चेतन। सब कोई। सारी दुनिया।

चरित—लीला।

चरु—यज्ञभाग, शाकल्य, होम-करनेकी वस्तु। यज्ञका प्रसाद खीर।

चव—(क्रिया) चूने, टपकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

—इ, चुए, टपके। टपकावे।

चह—(क्रिया) चाहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

चाक—क्रिया मुहर लगाने, अंकित करनेके अर्थमें।

चांकी—चक्रांकित कर दिया, मुहर लगायी।

चाऊ—चाव।

चाका—पहिया।

चाख—नीलकंठ पक्षी। (क्रि०) चख-नेके अर्थमें। "चढ" धातुके अनुरूप।

चाड़—सहारा, आश्रय। जरूरत। "चाड नहिं सरई"—जरूरत पूरी नहीं हो जाती। काम पूरा नहीं हो जाता।

चातक—पपीहा।

चाप—धनुष। दाब। कमानी।

चापी—दबायी। (क्रिया) दबानेके अर्थमें "चढ"की तरह। (चापी—दवायी)

चामर—चौंर। चावल।

चामुंडा—एक देवीका नाम, एक योगिनीका नाम।

चार—दूत, जासूस।

चारि—चतुर। लबार, गप्पी। चार।

चारिअवस्था—चारों अवस्था—(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय)।

चारिखानि—अंडज, पिंडज, स्वे-दज, उद्भिज।

चारिपद—चतुष्पद, पशु, चार पैर-वाला। **चारिपद धरमके**—सत्य, शौच, दान, दया।

चारिभांतिभोजन—चार प्रकारके भोजन (लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य)।

चारी—चलनेवाला। दूत। चार।

चारु—सुन्दर, मनोहर, सुहावना।

चाल—(क्रिया) हिलाने चलानेके अर्थमें "चढ" की तरह।

—ति, हिलाती, छिद्रमय करती है।

चाह—(क्रिया) देखने, मुकावला करने, खोजने, इच्छा करनेके अर्थमें। "चह"के अनुरूप।

चाहि—मुकावला करके। अपेक्षाकृत।

चिंतामनि—वह मणि जिससे मनोवांछित मिले।

चिक्कन—चिकना, फिसलनेवाला।

चित—चेतन, ज्ञान, मन।

चितचेता—सावधान हुआ, चौकन्ना हुआ, चित्तकी सावधानता।

चित्र—मूर्ति। तसवीर। आश्चर्य। कई भांतिका।—कूट, एक पर्वतका नाम, श्रीरामचन्द्रका वनविहारस्थल।—केतु एक राजाका नाम (देखो कथाभाग।

चितवन, चितौनि—दृष्टि, अवलोकन, नजर। निगाह।

चितेरा—चित्रकार।

चिद—चैतन्य, सजीव, जीवधारी।

चिदानन्द—चैतन्य और आनन्दस्वरूप।

—चैतन्यमय, चैतन्यरूप परमात्मा।

चिबुक—ठोढ़ी, ठुड्डी, दाढ़ी।

चिर—विलम्ब, देरमें।

बहुत कालतक।—जीवी, बहुतकालतक जीनेवाला। मार्कंडेय मुनि।

चिराना—चिरकालीन, पुराना। पुराना हुआ।

चिह्न—चीन्ह, स्मारक वस्तु, दाग। निशान।

चीखा—चखा, स्वाद लिया।

चीता—चित्त। चुना हुआ।

चीन्ह—(क्रिया) पहिचानने, निशानी बतानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चह" की तरह होते हैं।

चीर—कपड़ा। चीरा। काटकर।

चुनौती—उत्तेजना, ललकार, चैलेंज।

चूडाकरन—मुंडन, मूडन।

चूड़ामनि—सिरमें पहिननेका गहना, चोटीकी मणि।

चोखा—अच्छी वस्तु, जल्दी।

चोंप—उत्साह, उमंग, हौसला।

चोरनारि—खराब स्त्री। चोरकी स्त्री।

चौके—पूजनार्थ पचरंग निर्मित सर्वतोभद्रादि। चौक।

चौतनी— चार बन्दोंकी, चार तनीदार, चौगोशी टोपी।

चौथपन—बुढ़ापा।

चौहट—चौहाटा, चौहट्टा, चौमुहानी।

छ

छंड, छांड—(क्रिया) छोड़नेके अर्थमें, "चढ़" के अनुरूप।

छई—क्षयरोग। छा गयी।

छक—(क्रिया)मस्त हो जाने,शराबोर हो जाने, अभिन्नरूपमें मिल जानेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप।

छज—(क्रिया)शोभा देने,छा जानेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप।

छट—(क्रिया) चुने जानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप।

छत—फोड़ा, घाव। ऊपरका आवरण।

छति—हानि, कमी।

छत्र—छतरी। क्षत्रिय।—बंध सारे राज्यभर।—बंधु, क्षत्रियोंकी संकर जाति। क्षत्रियोंमें नीच।

छत्रक—भुइफोड़, कुकुरमुत्ता।

छद—ढँका।

छवि—सुन्दरता।

छबीले—सुन्दर।

छम—(क्रि०) क्षमा करने, सहनेके अर्थमें 'चढ़'धातुकी तरह।

छमा—पृथ्वी। सहनशीलता। सह लेनेका गुण।

छय—क्षय। हानि। नाश। छई रोग

छयल—जवान, सुन्दर।

छरे—छटे। चुने हुए।

छाके—छके। मस्त। मतवाले।

छाछी—मट्ठा। तक्र।

छाज—(क्रिया)सोहनेके अर्थमें 'चढ' की तरह।

छाड़—(क्रिया) छोड़नेके अर्थमें। "चढ" का तरह।

छार—राख, क्षार।

छाल—चर्म, छाल।

छाह, छाँह—छाया, परछाहीं।

छिति—पृथ्वी।

छिद—छेद।

छीज—(क्रिया) घटने, नष्ट होनेके अर्थमें।

छीन—दुबला, घटा हुआ। (क्रिया) जबर्दस्ती ले लेने या काटनेके अर्थमें। "चढ" कीतरह।

छीर—दूध।

छुद्र—तुच्छ, छोटा।

छुधित—भूखा।

छुद्द—(क्रिया) चित्रित करने वा एकपर एक रखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
छूछ—खाली।
छेक—(क्रिया) घेरने, रोकनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। अनुप्रासका एक भेद।
छेत्र—मैदान, खेत।
छेम—भलाई।—करी, सफेद चील्ह।
छैल—बांके, छबीले, जवान।
छोनिप—राजा।
छोभ—घबराहट।

ज

जंगम—चलनेवाली, चलनेवाली सृष्टि।
जंजाल—बखेड़ा, झमेला।
जंतु—जानवर।
जंत्रित—यन्त्रित, ताला दिया हुआ।
जंत्री—यंत्रका बनानेवाला, यती। ताला, पेंच।
जंबु—जामुन, स्यार।
जंबुक—सियार, गीदड़।
जग, जगत—संसार, दुनिया।
जगजोनी—ब्रह्मा, प्रकृति।
जगतीतल—सारी धरती, पृथ्वी।
—जगन्माता।
जगदाधार—शेष, ईश्वर।
जगदीश—संसारका स्वामी, ईश्वर।
जग्य—यज्ञ, होम।—उपवीत जनेऊ।
जच्छ—यक्ष, किन्नर, गंधर्व, देवताओंकी एक जाति।—पति कुवेर।
जजाति(ययाति)—एक चन्द्रवंशी राजा। देखो कथा।
जटित—जड़ाऊ।
जटिल—जटाधारी, दुर्बोध, वटवृक्ष, ब्रह्मचारी।
जठर—पेट, उदर।
जठरागि—पेटकी अग्नि।
जठेरी—बड़ी, बूढ़ी।
जड—मूर्ख, पर्वतादि निर्जीव पदार्थ।
जड़जन्तु—मूढ़ जीव, पशुपक्षी, आदि।
जत—जो, जितने, जेते, यत्र,
जतन—रक्षा, उपाय।
जती,(यती)—सन्यासी, योगी।
जथा (यथा)—जैसे, जिस तरहसे। —थित, पहले जैसा, यथास्थित।
जथोचित—यथायोग्य, जैसा चाहिये वैसा।
जदपि—(यद्यपि) चाहे, जो।
जन—मनुष्य सेवक, दास। भक्त।

लोग।—यित्री, जननी माता।

जनक—बाप, जन्मदाता, मिथिला-पुरीके राजाका वशनाम।

—सुता, सीताजी।

जनकौरा—जनककी ओरके। राजा जनकके पक्षवाले।

जननि—माता, जन्म देनेवाली।

जनमान्तर—दूसरा जन्म। और जन्म

जनाव—(क्रिया) जनाने या बताने के अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" की तरह होते हैं। इत्तिला, सूचना, समाचार, पैदा करानेकी क्रिया।

जनि—जिन, नहीं, मत।

जनित—जन्मा हुआ। पैदा।

जनु—मानो, जैसे, यथा।

जनेत—बरात, वरयात्रा।

जनेस—राजा, मनुष्योंका स्वामी।

जनेषु—जनोंमें, लोगोंमें।

जपन्ति—जपते हैं। भजते हैं।

जपामि—जपता हू।

जम (यम)—यमराज, कृतान्त, योगका एक अङ्ग। अहिंसादि ५ यम।

जमी—(यमी) संयमी,।

—से, सयमी जैसे।

जमुन, जमुना, यमुना नदी।

जमुहा—(क्रिया) जम्भाई लेनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" धातुकी तरह होते हैं।

जय—जीत, विजय।—जीव, जय हो और जीते रहो।—ति, जीतता है। जयकारका एक शब्द

—माल, विजयकी माला। वह माला जो कन्या स्वयंवरमें वरको पहिनाती है।

—सील, जीतनेके स्वभाव वाला। जो कभी युद्धमें न हारे।

जयन्त—इन्द्रके पुत्रका नाम। कौवा जिसने छलवेशमें जानकीजीको चोंचसे मारा था।

जयंती—एक वृक्षका नाम। उत्सवका दिन। जन्मदिन।

जर—ज्वर, ताप। जल। भस्म हो। जड, मूर्ख। (क्रिया) जलनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चद" का तरह होते हैं।

जरजर—पुराना, वृद्ध। फटे पुराने।

जरठ—वृद्ध, बूढा।

जरा—बुढ़ापा।

जल—पानी।—अलि, जलभौंरा।

—कुक्कुट, जलमुर्गा।—चर जलजन्तु—ज, जात, जलसे उत्पन्न, कमल।—जान

(यान) नाव।—द, जल देने-वाला, मेघ।—धर, जलको धारण करनेवाला। मेघ। —धि, समुद्र।—पक (जल्पक) बक्की, गप्पी। —पत (जल्पत) बकवाद करता।—पना, बकना, बोलना।—पसि तू बकता है —पहिं, बकते हैं। —विहग, जलपक्षी। —मल, जलका मैल, काई। —रासि जलका समूह। —रुह, कमल।

जलाशय—नदी, कुवा, जलक स्थान।

जलन्धर—एक दैत्यका नाम।

जल्प—(क्रिया) व्यर्थ बकवाद करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

जवनिका—पर्दा, चिक, काई।

जवास—एक प्रकारकी काटेदार घास जो जेठ बैसाखमें हरी रहती है।

जस—जैसे, । यश, कीर्ति, बडाई।

जसोमति—नन्दरानी, यशोदा।

जहं, जहां, जाहां—जहा, जिस जगह।

जहि—जेहि, जिसे। छोडकर। जीतले।

—हिया—जब, जिस समय।

ा—जिसका।

जाग—यज्ञ, होम। उठ। होशमें आव।

जागवलिक—याज्ञवल्क्य मुनि।

जाच—(क्रिया) मांगने या परखनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप परीक्षा।

जाचक—याचक, भिक्षुक। नाऊ। वारी, ढाढी।

जाचना—मांग।

जाड—शीत, जाडा। जाड्य। जड़ता

जात—जाति। पैदा।

जातकर्म—बालकके जन्म लेनेके समयका कर्मकांड।

जातना—यातना, पीड़ा। कष्ट।

जातरूप—सोना।

जातुधान—असुर, दैत्य। राक्षस।

जान—(क्रिया) जाननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं। रथ, सवारी।

जानि - ज्ञानी। पति या पत्नी। जानकर।

जानु—घुटना, जानू।

जापक—जपनेवाला।

जाबालि—एक ऋषिका नाम।

जाम—याम, पहर, प्रहर, ३ घंटा।

जामवंत—जाम्बवान, ऋक्षराज।

जामा—जमा, लग गया। पहिननेका सिया हुआ वस्त्र।

जामाता—जमाई, दामाद।

जामिक—यामिक, योगांग, चौकीदार, रक्षक, पहरुआ।

जामिनी—यामिनी, रात।

जाय—व्यर्थ। बेकार। जावे।

जाया—स्त्री।

जाये—उत्पन्न किये, लड़के।

जार—उपपति, भस्म करके।

जारा—जलाया, यार।

जाल—समूह, झरोखा, फंदा। धोखा।

जावक—यावक, महावर।

जासु—जिसका।

जाहि—जिसको।

जिति—जितनी, जीतकर, जिधर।

जितहु—जीतो, जीत लो।

जिनकेरे—जिनके।

जिय—जीव, प्राण,। हृदय।

जिव—जीव, आत्मा, मन।

जिवनमूरि—सजीवनी ओषधि।

जिसु—जिसका।

जीन—चारजामा, खोगीर, काठी, घोड़ेकी पीठपर कसनेका बिछावन।

जीभ—जिह्वा, रसना।

जीय, जीव—जीवन, आत्म, प्राण।

जीह—जीभ। जिह्वा।

जुग—दो, दोनों, जोड़ा, चतुर्युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि)—ल, जोड़ा, दोनों।

जुगुति (युक्ति)—गति, तरकीब। चतुराई।

जुझ, जूझ—क्रिया, लड़ने या लड़ मरनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

जुझाऊ—युद्धके, युद्धवाले, बहादुर।

जुझार—जूझनेवाला, वीर.

जुट, जुड, जुर—(क्रिया) मिलने, जुड़ने या लड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जोड़ा।

जुठार—(क्रिया)जूठा करनेके अर्थमें इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हैं।

जुड़ा—(क्रिय) शीतल होने, शांत होनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" की तरह होते हैं। जोड़ा हुआ।

जुरै—मिलै, प्राप्त हो, मयस्सर हो

जुवती—युवती।

जुवराज—राजका वारिस। राज्यका उत्तराधिकारी।

जुवा—युवा, जवान।—नू, युवा, जवान।

जुहार—दे० जोहार।—प्रणाम।

एक प्रकारकी वंदना। अभिवादन

जू—जी, एक प्रतिष्ठाका पद।

जूथप—सेनापति।

जून—समय। पुराना। जीर्ण। जूर्ण।

जूरी—जोड़कर, समूह, जोड़ा। एक प्रकारका पक्वान्न।

जूह—समूह, सेना। इकट्ठा।

जे—जो, जो लोग।

जेई—जो कोई। खाई। खायगा। भोजन करके।

जेऊ—जो भी। कोई।

जेव—(क्रिया) खानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

जोगव—परखने, यत्न करने, राह ताकने, रास्ता देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

जोजन—योजन, चार कोस, आठ मील।

जोटा(जोडा)—जोड़ी, जुग दोनों।

जोतिष—ज्योतिष, नजूम।

जोती—चमक, उजाला।

जोनी—योनि, कारण, जाति, शरीर।

जोवन—यौवन, जवानी।

जोव—(क्रिया) देखने, निहारने, हेरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते है। स्त्री, नारी, लुगाई।

जोसि,सोसि—तू जो है, सो है।

जोहार—प्रणाम। (क्रिया) प्रणाम करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

जोह—(क्रिया) देखने, ढूढनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप।

झ

झंप—(क्रिया) छिपने, ढकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झख—मछली, —केतु, मछलीका निशानवाला, कामदेव।

झगुलिया,झंगुलिया—बालकोंका कुरता।

झपट—टूटकर, धावा मारकर। धावा, झपेट। (क्रिया) टूट-पड़ने, धावा मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झाँख—(क्रिया) बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झारी—समूह। झाड़ी। टोंटीदार लोटा।

झीनी—हलकी, झझरी, बारीक।

झोटिंग—प्रेत। जोटिंग। शिव। भयंकर तपस्या करने-

पाला। शिव गया।

झोंटी—चोटी, लट, जटा।

ट

टक—लगातार देखना।

टर—(क्रिया) हटने, टलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। मेंढककी बोली। कर्कश शब्द।

टिटिभ (टिड्डी) टिड्डी जो खेतोंमें
टिट्टिभ पटती है। टिटिहरी चिड़िया।

टेई—टेयकर, चोखा करके। सान लगायी।

टेर—क्रिया। बुलाने पुकारनेके अर्थमें, चढ़की तरह।

टेव—बान, हठ, स्वभाव। (क्रिया) चोखा करने, तेज करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

ठ

ठकुरसोहाती—मीठी बात, मुँहदेखी बात। मालिकको सोहानेवाली बात।

ठट्ट, ठट्टा—दल, झुंड।

ठवनि—चाल, अकड़, ऐंठकी चाल।

ठाउँ—ठहर, स्थान, अवसर।

ठठ—समूह।

ठाठ—रचना, ढाँचा।

ठाहर—स्थान, अवसर

ड

डमरुआ—जोड़ोंका रोग, गठिया।

डमरू—एक प्रकारका बाजा जो शिवजीको अति प्रिय है।

डरप—(क्रिया) डरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

डस (क्रिया)—डसनेके, काटनेके डंक मारनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डहक—ठगने ठगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डाकिन—डाइन।

डाढ़—(क्रिया) जलाने, भस्म करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डाबर—नाहिरा, गड़हा।

डार—(क्रिया) डालने या फेंकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डास—(क्रिया) बिछानेके अर्थमें इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डासन—बिछौना, आसन, चटाई।

डिग—(क्रिया) हटने और टलनेके

अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डिंडिमी—डुगडुगी, ढिंढोरा।

डीठा—देखा। डीठ। दृष्टि। देखा।

डीठि—दीठ, नज़ारा दृष्टि।

डोर—रस्सी।

डोल—(क्रिया) डोलने, चलने, चलायमान होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते है। ह्रद, तालाव,। जलाशय। पात्र।

ढ

ढनमन—(क्रिया) ढुलकने, लुढ़कनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

ढंढोर—(क्रिया) ढूढने, खोजनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तहर होते हैं।

ढाबर—गदला। गहरा।

ढोट, ढोटा—लड़का, बेटा। ढोल। ध्वनि। क्रम।

त

तक—(क्रिया) ताकने, देखनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

तग्य—ब्रह्मज्ञानी। उसको जाननेवाला।

तट—किनारा, तीर, समीप।
—जलाशय, तालाव।

स्त्री, नारी, लुगाई।

तड़ित—बिजुली।

ततकाल—उसी समय।

ततपर—लवलीन। तैयार।

तत्त्व—सार वस्तु, मूल। नतीजा।

तत्र—तब, उस दशामें। वहां।

तथा—तैसे, तिस तरहपर। वैसा, उस तरह।
—पि तो भी, तिसपर भी।

तदपि—तो भी, तबभी, तिसपर भी।

तदा—तब, उस समय।

तनक—किंचित, थोड़ासा, कुछ।

तनय—लड़का, आत्मज।

तनु—देह।—जा, लड़की।

तनोरुह—रोए, शरीरसे उत्पन्न।

तप—पूजा, आराधना। गरमी। तपस्या।

तपसील—तपस्वी। तप करनेवाला।

तपोधन—तपसी। जिसके पास तपस्याका धन हो।

तप्त—तपा हुआ, गर्म। क्रोधित। दुःखी।

तम—अंधियारा। अज्ञान। तमोगुण। अत्यन्त, सबसे बढ़कर।

तमक—(क्रिया) क्रोध करने या फुर्ती करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

तमारि—सूर्य। तमोरि। अंधकारके शत्रु।

तमाल—गर्व या नरो जातिका पेड़।

तमी—रात। —चर, निशिचर, राक्षस।

तरंग—लहर।

तरंगिनि, तरंगिनी—नदी।

तरंगी—मौजी। लहरी।

तर—तले। पीछे। अधिक। (क्रिया) तैरने, पार हो जानेके अर्थमें 'चढ़" की तरह।

तरक, तर्क—विचार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

तरकस—तीरदान। तीर रखनेकी थैली। भोथा।

तरज (तर्ज)—तड़प, डपेट। (क्रिया) तड़पनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
डाटकर, दिखाकर।
—त (तर्जत) तड़पता है। दिखाते ही। डपटते ही।—न, तड़प, डपेट।—नी, निषेध करनेवाली अंगुली।

तरन—तारनेवाला, तैर जानेवाला। पार होनेवाला, मुक्त होनेवाला।
—तारन, आप तरने और दूसरोंको तारनेवाला। तरनेवालेको तारनेवाला।

तरनि (तरणि)—सूर्य। धूप।

तरनि—नाव, डोंगी।

तरपन (तर्पण)—तृप्त करना। मन्त्रोंके द्वारा पितरोंको जल देना।

तरल—पतला, चचल, चोखा।

तरवारि—तलवार।

तरहि (तर्हि)—तब, तिस समय। उस कारण। उस हेतु।

तरि, तरी—तरके, तीरपर लगके। नाव।

तरु—वृक्ष।

तरुन—जवान, ताज़ा। खिला हुआ।

तरुनई—जवानी।

तरुनी—युवती।

तरुवर—उत्तम वृक्ष।

तरेर—(क्रिया) घूरने, नेत्रोंसे डाटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

तल—तले, नीचे। गच, छत।

तल्प—शय्या, सेज।

तलफ—(क्रिया) तड़पनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

तलाई—तलैया, छोटा तालाब।

तसि—तैसी, यथोचित।

तहं, तहां, ताहां,—तहा, तिस जगह।—वां, तहा—पर,उस जगह।

तहिआ—तब, तिस समय।

तांती—तांत, तार।

ताक—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं।

ताजी—टटकी, नवीन। अरबी।

ताटंक—कर्णफूल।

ताड़—(क्रिया) मारने डाटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

तात—प्रिय, प्यारा। गरम।

ताते—गरमागरम। उस लिये।

तान—(क्रिया) खींचकर बढ़ने, फैलानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

तानि—तानकर, खींचकर।

ताप—तपन, जलन, ज्वर।

तापस—तपस्वी।

तामरस—कमल।

—क्रोध, क्रोधी।

(या) पार लगाने, उद्धार करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

तारक—तारनेवाला, रामनाम। एक दैत्य जिसे षण्मुखने मार डाला। आंखकी पुतली।

तारन (तारण)—तारनेवाला।

तारय—तारिये।

तारा—तार दिया, पार कर दिया। वालिकी स्त्री, सितारा, आंखकी पुतली।

ताल—ताड़का पेड़। बड़ा तालाब।

तालो—कुंजी, चाभी। थपोड़ी। तालमें रहनेवाली।

तालू—ताल। ताल वृक्ष। जीभके ऊपर मुंहका भीतरी भाग। सिरकी चांदी।

तास—स्वर्णखचित वस्त्र।

तिमि—तिस भांति।

तिमिर—तम, अंधकार।

तिय—स्त्री, पत्नी।

तिरहुति—मिथिला देश।

तिलांजलि—तिलके साथ जलकी अंजुली जो मृतकके नाम दी जाती है।

तिष्ठंतु—रहें, ठहरें, बैठें।

तिहुं—तीनों।—लोक, तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल)

ती—स्त्री।

तीछी—तीखी, चोखी, रूखी।

तीछे—तीखे, चोखे।

तीर—बाण, शर, शिली मुख, नाराच। पास। किनारा।

तीरथपति, तीरथराऊ, तीरथराजू—तीरथोंका राजा। प्रयाग।

तुंग—ऊँचा।

तुरग—घोड़ा।

तुराई—तोशक। जल्द। वेगसे। तुड़ाकर।

तुरीय—चौथी अवस्था, निर्गुण, ब्रह्म।

तुल—(क्रिया) तौलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

तुसार, तुषार, तुहिन—पाला, ओस।

तूंमरि—तुमड़ी, तूंबा, तितलौकी।

तून (तूण)—तूनीर, तरकस, त्रोण, तीर रखनेकी थैली।

तूरी—तुल्य, समान। तुरही। रूई।

तूल—रूई, बराबर होना।

तृजग (त्रिजग)—तिर्यक्, तिर्यंच्। टेढ़ा। तीन लोक। पक्षी सर्प आदि-की योनि।

तृन (तृण)—तिनका, खर।

तृसना (तृस्ना)—लालच, लोभ

तृषा—प्यास, चाह।—षित।

तृषित—लोभी, प्यासा।

तेज—प्रताप, ऐश्वर्य, चमक।

तेति—ते इति, बस वे।

तेते—वे वे, तितने, उतने।

तेपि—वे भी।

तैसो—वैसी, तिसके समान।

तोतरि—तोतली, लडबड़ी बोली

तोमर—एक शस्त्रका नाम।

तोयनिधि—समुद्र।

तोर—(क्रिया) तोड़नेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

तोरन—वन्दनवार। वन्दनवार आदिसे बना मिहराब और फाटक।

तोष—संतोष, तृप्ति, प्रसन्नता।

—क, संतोष देनेवाला।

—य, सतोष दे।

—थे, सतोषके लिये, प्रसन्नतार्थ।

त्रय—तीन, ३।

त्रसित—डरा हुआ।

त्राता—रक्षक, बचानेवाला।

त्रातु—बचावे, रक्षा करे।

त्रास—(क्रिया) डरनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

त्राहि—रक्षा करो, बचा। पाहि।

त्रिजग—तिर्य्यक, टेढ़ी रीतिसे।
त्रिसना—(तृष्णा) लालच, लोभ।
—योनि—पशु, पक्षीकी योनि।
त्रोन—(त्रोण) तरकस।

थ

थक—(क्रिया) थकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
थाती—धरोहर, पूंजी।
थाना—स्थान।
थापन—स्थापन।
थाप—(क्रिया) स्थापन करनेके अर्थमें। "चढ़" का तरह।
थार—(थारा) थाल, बड़ी थाली।
थाह—अटकल। जलकी गहराई।
थिति—स्थिति, रहन, ठहराव।
थिर—स्थिर, ठहरा हुआ, अचल।
थिर, थिरा—(क्रिया) ठहरनेके अर्थमें। इसके रूप क्रमशः "चढ़" और "रिसा" की तरह होते हैं।
थोक—समूह, ढेर।

द

—दण्डकर्त्ता। राजा। दंडा। एक छंदका नाम। एक राजाका नाम एवं वनका नाम जिसे शाप हुआ था।
दिउरा—स्त्री, नारी, लुगाई।
दंपति—जोड़ा, पतिपत्नी।
दंभ—पाखंड। झूठा व्योहार।
दंस—वनमक्खी, डांस।
दइय—दैव, विधाता।
—ई, दैव।
दच्छ—प्रजापतिका नाम। चतुर।
—सुत, प्रचेता, उनके पुत्र।
—सुता, सती।
दत्त—दिया हुआ।
दधि—दही।—मुख, एक राक्षसका नाम।
दधीचि—एक ऋषिका नाम जिनकी हड्डियोंसे इन्द्रका वज्र बनाया गया था।
दनुज—दनुसे उत्पन्न, दानव।
दपट—डपटकर, धमकाकर।
दम—इन्द्रियोंको दबाना, योगकी एक क्रिया। श्वास। प्राण।
—क, चमक। दमन करनेवाला, योगी।—नीय, दमन करनेयोग्य, तोड़नेवाला।
—नू, नाश करनेवाला।
दर—शंख। भय। छिद्र। भाव। दरजा। खिड़की द्वार। दल। थोड़ा।
दरप—दर्प। गर्व। अभिमान।
दरभ—कुश, डाभ।
दरस—दर्शन। देख पड़ी।

दरारा—दरज, दरार।
दर्प—अहंकार, अभिमान। (क्रिया) अभिमान करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
दर्भ—कुश, कुशा।
दल—(क्रिया) दलनेके अर्थमें। इनके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।
दव—वनाग्नि। आँच। जलन।
दवारि—दावानल।
दसकंठ
दसकंध
दसकधर —रावण।
दसगात—दसगात्र कर्म। दस दिनका प्रेतकर्म।
दसन—दांत।
दसरथ—अवधेश, रामजीके पिता।
दससीस—रावण।
दसा—अवस्था, नवग्रहोंके भोग।
दसानन—रावण।
दह—दाह, जलन, नाशक, जलता है। जलाया।
—न, अग्नि। जलन।
—य, जलावै। कुढ़ावै, सतावै। (क्रिया) जलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
[द]ा—दाता, देनेवाला।
[द]ाऊ - दाव, दाव, ठहर, स्थान।
दागि—जला दे। छोड़े। चिन्हित कर। लिखे।
दाडिम—अनार।
दाता—दानी, देनेवाला।
—र, दायक, दाना।
दादि
दादु — दाद। प्रशंसा। न्याय।
दादुर—मेढक।
दानव—दनुकी संतान, दैत्य।
दाप—दर्प, अभिमान।
—क, डाटनेवाला, अहंकारी
दाब—(क्रिया) दबानेके अर्थमें) इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। दाबि, दाबा, इत्यादि।
दाम—रस्सी। माला। धन।
दामिनी—बिजली।
दायक—दाता।
दायनि—देनेवाली।
दाया—दया।
दायिनी—देनेवाली।
दार—स्त्री, औरत।
दार—(क्रिया)
दारन—फाड़ना, चीरना, फाड़नेवाला।—य, नाश करै, फाड़े, चीर डाले
दारा—पत्नी, स्त्री।
दारिका—कन्या।
दारिद—दरिद्रता।

दारु, दारू } लकड़ा, काठ। दवाई (मद्य)।

दारुन—कठिन। भयानक।

दारुनारी—कठपुतली।

दावन—भस्म करनेवाला। दामन, आंचल। दावसे। गवसे।

दावनी—एक भूषण, बेंदी।

दाह—(क्रिया) जलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ' की तरह होते हैं।

दाहा—जलन, जलाया।

दिग—दिशा। —गज, दिशाओं-के हाथी जो पृथ्वीको आठों दिशाओंमें दवाये रहते हैं। —पाल, दिशाओंके रक्षक (इन्द्र, वरुण, यम कुबेर) —म्बर, नगा, शिव।

दितिसुत—दितिके पुत्र दैत्य (हिरण्यकशिपु)।

दिनकर—सूर्य।—दानी, अति उदार।—मनि, सूर्य। —नेश, सूर्य।

दिवस—दिन।

दिव्य—अलौकिक, स्वर्गीय। मनो-हर। सुन्दर, स्वच्छ।

दिसा—दिशा।

दिसिकुंजर—दिग्गज (ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्प-दन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक)।

दिसिप, दिसिपति, दिसिराज } —दिशाओंके स्वामी

दीप्त—प्रकाशमान। उजेला। —प्ति, प्रकाश।

दीपसखा—ज्योति, लौ।

दीस—देख पड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

दुंदुभी—नगाड़ा, डंका, एक राक्षस-का नाम।

दुआर—द्वार।

दुकूल—वस्त्र। उपरना।

दुति—द्युति, चमक। प्रभा।

दुनी—दुनिया। जगत। प्रपंच।

दुविद (द्विविद)—एक वानरका नाम।

दुभाषि—दो भाव जाननेवाला।

दुरत—दुष्ट।

दुर, दुराव—(क्रिया) छिपनेके अर्थमें। इन दोनों धातुओंके रूप क्रमश. 'चढ' और 'चढाव' के अनुरूप हैं।

दुर्ग—गढ। कठिन। अति कठिन-तासे जाननेयोग्य।

जोषिता—स्त्री, नारी, लुगाई।

दुर्गम—अजय, न जीतनेयोग्य।

दुर्गा—एक शक्तिका नाम। गढ़।

दुर्घट—न जीतने योग्य। कठिन-ताले ...योग्य।

दुर्जन—खोटा आत्मा।

दुरतिक्रम—अपार, कठिनतासे पार होनेयोग्य।

दुर्मद—एक राक्षसका नाम। बड़ा घमंडी।

दुर्वासन }
दुर्वासना } बुरी वासना।

दुर्वासा—एक ऋषिका नाम।

दुराधर्ष—जो शत्रुसे न डरे, अति निडर।

दुराराध्य—आराधनाकरनेमें कठिन।

दुराशा—खोटी आशा।

दुरित—पापदोष।

दुस्तर—कठिनतासे तरनेयोग्य।

दुसह—अगम्य।

दुहुँ वा दुहूँ—दोनों।

दु:,दुर—बुरा, कठिनाईसे होनेवाला।

दूजा—दूसरा, अन्य।

दूधमुख—बालक, बच्चा।

दूषन (दूषण)—दोष, चूक।

दृग—आँख।

दृढ़—कठोर, कठिन।—ढ़ाई, कठोरता।

दृष्टि—निगाह।

देअ—(क्रिया) देनेके अर्थमें इसके रूप (१२) दीन्ह, (१३) देह, (१४) देउ, (१५) देहउ, (२१) दीन्हें, दिये, (२२) दीन्हेउ, दियेउ, २३, २४ इसी प्रकार।

देव—देवता। विबुध। ईश्वर।
—क, देवता। -ता, सुर।
—तरु, सुरतरु, कल्पवृक्ष।
—धुनि, गंग, आकाशवाणी
—ऋषि, नारदादि।

देवर—पतिका छोटा भाई।

देवसर—मानसरोवर आदि।

देवहुती—कर्दम ऋषिकी स्त्री।

देहरी—डेहरी। दहलीज।

देहा—देह। शरीर। तन।

दैव—विधना, भाग्य, होनहार।

दैहिक—देहका, शारीरिक।

दोना—द्रोण, वृक्षके पत्तोंका पात्र।

द्रव—(क्रिया) ढलने, पिघलने, नरम होनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप हैं। द्रवहु, द्रवहिं इत्यादि।

द्रव्य—धन। अर्थ। वस्तु।

द्रुम—पादप, वृक्ष।

द्रोह—झगड़ा, विरोध।

द्वापर—तृतीय युग।

द्वार—जरिया।

द्विज—त्रिवर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जिनका यज्ञोपवीत होता है। जो दो बार जन्मे। दांत। —राज, चन्द्रमा। ब्राह्मण। श्रेष्ठ।

द्विविद—एक वानरका नाम।

द्वैत—भेद। द्विविधा।

द्वंद्व—दोनोंका,आपसमें। दो। दोनों।

ध

धंधक } धन्धा करनेवाला।
धंधरक } काम काज, उद्यमी।

धनद—धनका देनेवाला। कुबेर।

धनिक—धनी, धनवान।

धनी—धनवान। प्रभु। पति।

धनेस—धनका मालिक, कुबेर।

धन्य—भाग्यवान, श्रेष्ठ। धनी।

धन्या—एक नदीका नाम।

धर—धड़। कबंध। भूमि। पकड़। धारण करनेवाला। रखदे। —की, धड़की, धकधकाई।

धरनि—पृथ्वी, भूमि।

धरम—पुण्य। न्याय। पवित्र कार्य। —ध्वज, पाषंडी। —धुरन्धर, धर्ममें दृढ़।

धरवि (धर्प)—दवाकर। डराकर।

धरा—पृथ्वी। —सुर, भूदेव,द्विज।

धवल—श्वेत, उजला।

धाता—ब्रह्मा, विधाता।

धाम—स्थान, घर, मकान।

धार—जलका प्रवाह। वाढ। धारा चोखापन। समूह। किनारा। छोर। धारण करके, ऋण करके। —रा,बहाव,प्रवाह। (क्रिया)धारण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चद" की तरह होते है।

धावन—दूत। चर।

धिग (धिक) छी छी, धिक्कार। घृणा।

धीर—धैर्य्यवान। साहसी। धीरज-वाला।

धुनि, धुनी—ध्वनि, शब्द, नाद। धुनकर। पीटकर दुखसे सिर मारकर। नदी।

धुरंधर—पक्का, पोढा, सच्चा, दृढ। धुर धारण करनेवाला, बैल।

धुर—मुख्य, सीमा, मूल, जड़, धुरा अचल। ध्रुव परिणाम।

धुरीन—अचल। दृढ। धुरकी तरह

धूत—ठग। धूर्त्त।

धूम—धूआ। उपद्रव। हलचल।

धूमउ—धूआ भी, कोलाहल भी।

धूमकेतु—एक राक्षसका नाम।

धूसर—धूलसे भरा।
धृति—धीरज।
धेनु—गाय। पृथ्वी।—मति, गोमती नदी। राजा भोजकी स्त्रीका नाम।—धूलि, गो-धूलि, सायंकाल।
धोख—धोखा। अचानक।
धोरी—बैल, जो सबसे आगे फुट जुता रहता है। नेता। नायक। धौरेय।
धौं—क्या, या तो, क्या तो। क्या जाने।
ध्या—(क्रिया) ध्यान करनेके अर्थमें, "चढ़ा" की तरह।
ध्रुव—निश्चय, अवश्य।
ध्वज, ध्वजा—झंडा, पताका, निशान।

न

नंदन—आनन्द देनेवाला। लड़का, पुत्र, संतान।
नंदिग्राम—अयोध्यापुरीमें एक गांव।
नंदिनी—आनन्द देनेवाली,लड़की। कन्या, श्रीगंगाजीका एक नाम। कामधेनुकी पुत्री-का नाम।
नंदीमुख (नांदीमुख)—एक प्रकार-का श्राद्ध जो प्रत्येक उत्सवके आदिमें किया जाता है।
नक्र—नाक नामका एक प्रकारका जलजन्तु।
नकुल—नेवला, नेउर।
नख—नह, नाखून। बटा हुआ महीन रेशम।
नखत—नक्षत्र, तारा।
नगन, (नग्न)—नंगा, वस्त्ररहित।
नट—(क्रिया) नाचने और अस्वी-कार करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनु-रूप होते हैं।
नतरु—नहीं तो, नहीं फिर।
नति—झुकाव। प्रणाम। नम्रता।
नतु—नहीं तो।
नद—बड़ी नदी।
नदीस—समुद्र।
ननिऔरे—ननिहालमें,नानाके घर।
नभ—आकाश।
नभग—पक्षी। पक्षियोंके स्वामी, गरुड़।
—नाथ, नभगेस, गरुड़।
नभचर—आकाशमें घूमनेवाले, देवता, मेघ, पक्षी।
नम—(क्रिया) झुकने, प्रणाम करनेके अर्थमें "चढ़"की तरह।
नमत(नमति)—नमस्कार करता है।
नम्र—नरम, कोमल, दीन।
नमामहे—हमलोग प्रणाम करते हैं।

नमामि,नमामी—मैं प्रणाम करता हूं।

नम्र—झुका हुआ। विनीत। नरम। कोमल। दीन।

नय—नीति, धर्म, न्याय।

नयनपट—पलक।

नयनवंत—आंखवाला।

नयनागर—नीतिमें चतुर।

नर—मनुष्य, नरावतार, भगवान, अर्जुन। पुरुष।

नरकेसरी—नृसिंह भगवान। मनुष्योंमें सिंहसा वीर।

नरतक—नाचनेवाला।

नरतकी—नाचनेवाली।

नरमद—सुखदायक। ठिठोल, मसखरा।

नरहरि—नृसिंह भगवान। मनुष्योंमें विष्णुके समान। तुलसीदासजीके गुरु बाबा नरहरिदास।

नराच—तीर।

नल—एक वानरका नाम। एक राजाका नाम। नाल। जल आदि बहनेका मार्ग।

नलकूबर—कुवेरके एक पुत्रका नाम।

नलिन—कमल।—**नी**, कमलिनी नीलोफर।

नव—नया।—**जल**, वर्षाका पानी, मेह।

नवधा—नव प्रकारसे,नव प्रकारका।—**भक्ति**,देखो-नवभक्ति।

नवनीत—मक्खन।

नवभक्ति—नव प्रकारकी भक्ति, (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन,वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन)। नवीन भक्ति।

नवरस—नव प्रकारके रस(शृङ्गार, वीर, करुणा, अद्भुत,हास्य भयानक, वभित्स, रौद्र, शान्त।)

नवल—जवान, नवीन, टटका।

नवसत—नव और सात अर्थात् १६ शृङ्गार। (अंगशुचि, मज्जन, वस्त्रधारण, जावक, केशसुधार, मांगमें सेंदुर, भालमें खौर, ठोढ़ीमें तिल बनाना, हाथपांवमें मेंहदी, अंगमें अरगजा, नगजटित भूषण, फूलका गहना, पान, मिस्सी, होंठ रंगना, काजल)।

नवीन—नवल, नया।

नस्वर (नश्वर)—विनाशी, नाश हो जानेवाला।

नस—आंत, अँतड़ी।

नसा—(क्रिया) नाश करने या

होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते है।

नहिँ, नही, नाहि, नहीं—न होने या निषेध या अभावके अर्थमें।

नहरुआ—एक रोगका नाम, जिसमें शरीरसे सूतके समान कीड़े निकलते हैं।

नहुष—एक राजाका नाम।

नांघ—(क्रिया) लांघने, डाकने, या फांदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते है।

नांदीमुख—एक श्राद्ध जो सुख वा मंगलके अवसर, विशेषत पुत्रोत्पत्तिपर किया जाता है।

नाऊ—हज्जाम। नाम।

नाउँ—नाम।

नाक—नासिका। एक प्रकारका जलजन्तु। स्वर्ग।

नाकनटी—अप्सरा।

नाग—सर्प, हाथी, पान।
—पाश, सर्पसयुक्त एक फंदा। कुंडल्याकार बंधन।

नागर—चतुर। नगरवासी, पौर।

नागरिपु—सिंह वा गरुड़।

नाठी—नष्ट की। भागी। नष्ट हुई। टल गयी। गयी गुजरी, जिसके कोई न हो।

नात—नातेदार।

नाती—कन्याका पुत्र। दौहित्र वा पौत्र।

नाथ—स्वामी। एक प्रकारके योगी। पशुके नथुनेसे पिरोया हुआ बंधन।

नाद—शब्द, गान।

नाना—अनेक, भांति भांति, अनेक प्रकारसे। कई।—कार, अनेक आकारके।

नाभि—ढोंढी। एक राजाका नाम।

नायक—स्वामी, सरदार, मालाका सुमेरु।

नारकी—नरकवासी।

नारद—ब्रह्माजीके दसों मानसिक पुत्रोंमेंसे एक देवर्षि जो वीणाके आविष्कारक, गानविद्यामें निपुण, देवताओं और मनुष्योंके बीच समाचार पहुंचाने और झगड़ा लगानेवाले समझे जाते हैं। कहते हैं कि यह पहले ब्रह्माके जंघेसे उत्पन्न हुए थे। पूर्वजन्ममें यह ऋषियोंकी दासीके पुत्र थे, उन्हींकी सेवा और जूठनके प्रभाव एवं शिक्षासे भक्ति उत्पन्न

हुई, तपस्या की, वर पाया और शूद्रदेह त्याग देवर्षि हुए। यह कथा उन्होंने स्वयं व्यासजीसे कही।

नारा—कुसुमसे रंगा हुआ सूत। मौंजी। नाला। जल।

नाराच—तीर।

नारायन / **नारायण**—क्षीरसमुद्रशायी भगवान्‌का एक नाम। बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले ऋषि नारायण।

नारि, नारी—स्त्री।

नारे—नाले, बरसाती जलके बहनेके मार्ग।

नाल—नलिका। नल। खातिर, साथ। जूता। घोड़ेके पैरमें लगनेवाला लोहा।

नावरि—छोटी नौका। नाव घुमाना।

नास—नाश, बिगाड़,हानि,सुँघनी।

नासा—नासिका। नष्ट किया।

नासिका—नाक।

नाह—नाथ, पति।

नाहर—शेर। नार, मोटा रस्सा जिससे मोट खींचते है।

नाहरू—शेर। चामका टुकड़ा। एक रोगका नाम।

निकट—समीप, नगीच।

निकर—समूह। (क्रिया) निकलनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

निकस—(क्रिया) निकलनेके अर्थमें इसके रूप "चढ़"की तरह होते हैं।

निकाई—भलाई।

निकाम—कामनारहित। बुरा।

निकाय—झुंड। समूह।

निकृष्ट—खराब, तुच्छ।

निकेत—वास स्थान, धाम, घर।

—**न**, घर।

निकेवल—अकेला। सारांश। मात्र, खालिस।

निकंद—नाश, बरबादी।

—**न**,नाशक, नाश करनेवाला।

निषंग—तरकस, तून।

निषेध—रोक, बाधा।

निगदित—कथित, कहा हुआ।

निगम—पवित्र लेख, वेद।

निग्रह—रोष, क्रोध। दंड। त्याग।

निगूढ़—अति गुप्त, छिपा हुआ।

निघट—(क्रिया)घटनेके, बहुत कम होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

निचोर—निचोड़। रस।

निजतंत्र—स्वतंत्र।

निजानन्द—स्वरूपानन्द, ब्रह्मानन्द।

निठुर—कठोर, कड़ा।

नित (नित्य)—सदा। जो सदा स्थिर रहे।

नितंब—स्त्रीके कटिके नीचे पीछेका मांसल भाग। चूतड़।

निदर(निदरि)—(क्रिया) निरादर करने या निडर होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

निदान—अन्त्य। मूल कारण।

निधन—मौत, मृत्यु।

निधरक—बेधडक। निर्भय।

निधान—खजाना।

निधि—आधार। बहुत धन। खजाना। कोष।

निपट—अति, बहुत।

निपात—नाश। मरण। क्रिया, नाश करने, गिरा देने, मार डालनेके अर्थमें। चढ़की तरहें।

निपुन,(निपुण)—चतुरा, कुशल। दक्ष।

निपुनाई—चतुराई। कुशलता।

निफल—विफल। व्यर्थ।

निबह, (निर्बह)—निबाह (क्रिया) निबाह करने या होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

निबिड—सघन, घना।

निबुक—(क्रिया) छूटने या छोड़नेके अर्थमें।

निबुकि—झुककर। छोड़कर। छूटकर।

निबृत्ति—संसारका त्याग।

निबेर—(क्रिया) चुकानेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।

निबेही—निबाह दी।

निबध—समूह। प्रबंध।

निव—नींव, नेह, जड़, आधार।

निभ—तुल्य। ऐसा।

निमज्जित—नहाया हुआ, डूबा हुआ, निमग्न।

निमज्जन—स्नान। डुबकी।

निमि—एक राजाका नाम जो जनकके पूर्वपुरुष थे और जो आंखोंके पलकके गिरने, खोलने और बन्द करनेके अधिष्ठाता हैं।—ष, पल, पलक।

निमित्त—हेतु। कारण। बहाना।

निमेष—पलकके गिरने भरका समय। निमिष।

नियम—नेम। अटकाव। योगका एक अंग।

नियरा—(क्रिया) निकट आनेके

अर्थमें। "रिसा" की तरह।

नियोग, नियोगा—आज्ञा।

निर—बिना।

निरख—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह।

निरगुन, (निर्गुण)—गुणहीन, मूर्ख। तीनों गुणोंसे परे। ब्रह्म।

निरच्छर—अक्षरना, सोता।

निरत—लगा हुआ, नियुक्त, लीन।

निरदय—दयारहित।

निवस—(क्रिया) रहनेके अर्थमें। "चढ"की तरह।

निवार—(क्रिया) रोकनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप।

निवास—रहनेका स्थान। घर।

निवेदन—अर्पण। बताना। दिखाना।

निवेदित—प्रसाद, अर्पित। देकर। बताकर।

निसंक—निर्भय। निःशंक।

निस—रात। निस्, बिना।

निसगत—रातमें आया हुआ।

निसतार—छुट्टी, फरागत।

निसर—(क्रिया) निकलनेके अर्थमें इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं।

निसाचर—राक्षस।

निसाना—ध्वजा, झण्डा, निशान, डंका।

निसित—तीखा। चोखा।

निसेनी—सीढ़ी।

निसेस, (निःशेष)—शेषरहित, पूरे पूरे। चांद।

निसोत—निराला, केवल। शुद्ध।

निहार—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

निहोर—(क्रिया) इहसान बतानेके अर्थमें, "चढ"की तरह। विनती, सराहना।

निहोरा—विनती।

नींद—निद्रा।

नीड़—घोंसला।

नीत, नीति—न्याय।

नीरज—कमल, जलसे उत्पन्न। रजोगुणरहित।

नीरद—जलद, जलका देनेवाला, मेघ।

नीरधर—जलको धारण करनेवाला, मेघ।

नीरनिधि—समुद्र।

नीलकंठ—महादेवजी, नीले कण्ठवाला। मोर। नीलकंठ नामका पक्षी।

नीलोत्पल—नीला कमल।

नूतन—नया।

नूपुर—घुंघुरु, पैंजनी।
नृत्य—नाच।
नृप—नृपति, राजा।
नृपाल—मनुष्योंका रक्षक, राजा।
नेई—नींव, जड़।
नेऊ—थोड़ासा, कुछ। नींव, जड़।
नेग—बन्धान, दस्तूर, विवाहादिमें नाऊ,भाट और पुरोहितादिको देनेका बन्धान।
नेगी—नेग लेनेवाला।
नेति—न इति,अनन्त,नहीं इतना।
नेपथ्य—नाटकका साजघर, शृङ्गार-घर।
नेम—शौच सन्तोषादि नियम,प्रतिज्ञा, योगका एक अंग। आधा।
नेरे—समीप, नगीच।
नेव—जड़, मूल।
नेवत—निमन्त्रण देनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
नेवाज—(क्रिया) आदर करनेके अर्थमें। आदर करने या कृपा करनेवाला।
नेवाजी—शरणमें ली। कृपा की। कृपा करनेवाला, दयालु। कृपा।
नेवाजू—दयावान। कृपालु।
नेह—प्यार, प्रीति, स्नेह।
नैवेद्य—निवेदन करनेकी वस्तु। भोग लगानेकी वस्तु।
नोइ,नोई—दुहते समय गौके पिछले पैर बाधकर। दुहते समय गायके पिछले पैर बांधनेकी रस्सी।

प

पंक—कीच। कीचड़। जल। —ज, कमल।—निधि, ताल, समुद्र।—रुह,कमल।
पंख—पर, पक्ष, डैना।
पंगु—लुंज, बिना हाथ पैरका।
पंचकवलि—पंचककी शान्तिकी बलि। पांच बलि-वैश्व देव। अन्नकी आहुति। पांच कवर।
पंचदस—पन्द्रह, १५।
पंचम—पांचवां, पंचम स्वर।
पंचानन—पांच मुँहवाला। शिव। सिंह।
पंचसबद—पांच प्रकारके शब्द। पंचोंकी आज्ञा।
पंजर—ठठरी, पिंजरा।
पंडित—विद्वान। पढ़ालिखा।
पंथ—राह, मार्ग। रीति।
पंपासर—एक तीर्थका नाम। एक सरोवरका नाम।
पखवारा—एक पक्ष, पन्द्रह दिन।
पखान—पाषाण, पत्थर।
पखार—(क्रिया) धोनेके अर्थमें।

इसके रूप "चढ़की" तरह होते हैं।

पग }
पगु } पैर।

पगे—लपेटे, मग्न डूबे हुए।

पच—(क्रिया) पचाने और पकानेके अर्थमें,इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

पचासक—पचासएक, पचासके लगभग।

पछ (पक्ष)—पाख, पच्छ, पखवारा, दल। ओर। संग। पक्षपात। पीछे।

पछताकि—पछतावा करने, पीछेसे किसी बातपर दुःख करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

पछार—(क्रिया) पछाड़नेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

पछिताई—पछतावा करके।

पछिले—पिछले, पहिलेके पूर्वके।

पच्छपात—पक्षपात। किसी ओर मिल या झुक जानेकी क्रिया।

पटक—(क्रिया) पटकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप हैं।

पटतर—उपमा, बराबरी, मिसाल।

पटल—परदा, ढकन, किवाड़। पटरा।

पटु—चतुर। सुन्दर।

पटोर—रेशमी कपड़ा। रेशमी डोरा। पटुआ।

पठव, पठाव—(क्रिया) क्रमशः भेजने, भिजवानेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह।

पढ़—(क्रिया) पढ़नेके अर्थमें, "चढ़" धातुकी तरह।

पतग—सूर्य। पतिंगे। गुड्डी। गेंद। लाल रंग देनेवाली एक लकड़ी।

पतन्ति—गिरते हैं, सरकते हैं।

पतति—गिरता है, सरकता है।

पत्र—चिट्ठी। पत्ता, पर्ण, पत्रा।

पताका—छोटी झंडी।

पतिया—(क्रिया) विश्वास करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

पतियान—विश्वास किया, माना।

पति—राजा, स्वामी। प्रतिष्ठा, लाज।

—त, पापी, दोषी, गिरा हुआ।

—देवता, पतिरूपी देवताकी अनन्य भक्ता।

—नी, पत्नी।

—लोक, पतिका निवास-स्थान। अहल्याके

सम्बन्धमें गौतम मुनिका आश्रम।— व्रता पतिका व्रत करनेवाली, पतिको ही सर्वस्व माननेवाली।

पथ—मार्ग, राह।—**थिक**, बटोही, राही।

पथ्य—गुणकारी भोजन। रोगियोंके खानेयोग्य वस्तु।

पद—चरण। श्लोकार्द्ध। अधिकार। गीत, कविताका चरण।—**चर**, प्यादे, पैदल चलनेवाले।—**चारी**, प्यादे।—**ज**, पैरसे उत्पन्न। पैरोंकी उगली।—**त्राण**, पैरोंका रक्षक जूता।—**पीठ**, खड़ाऊ।

पदुम—कमल। १००००००००००००००० की सख्या।

पदुमराग (पद्मराग)—लालमणि, मानिक, पुखराज।

पन—प्रतिज्ञा। अवस्था।

पनच—कमानका चिल्ला।

पन्नग—सर्प, साप।

पन्नगारि—सापका शत्रु। गरुड़। मोर। गिद्ध। नेवला।

पनव(पणव) ढोल, नगारा।

पनस—कटहल।

पनही—जूता।

पनारे—नाले, मोरी। धारा।

पनिघट—पानी भरनेका घाट वा स्थान।

पानि (पाणि)—हाथ।

पनी (प्रणी)—प्रण करनेवाला। दृढ प्रतिज्ञावाला।

पय, पयस्—जल। दूध।

पयोद—जलका या दूधका देनेवाला। बादल। थन, स्तन।

पयादहि—पैरोंसे चलकर ही।

पयोधि, पयोनिधि—समुद्र। क्षीरसागर। दूधका समुद्र।

परंतु—उपरात, लेकिन।

पर—और, परे, उपरात। अवलम्बित। शत्रु।

पर—(क्रिया) पड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं।

परख—(क्रिया) परखनेके बाट जोहनेके अर्थमें "चढ़"की तरह।

परत्र—परलोक।

परतीत, (प्रतीत) विश्वास,निश्चय।

परदछिन—फेरी, भावरी।

परधान, (प्रधान)—मत्री, मुख्य, श्रेष्ठ।

परधाम—गोलोक, वैकुण्ठ इत्यादि।

परन, परना—(पर्ण) पत्ता, पत्र, दल।

परब (पर्व)—गांठ, जोड़ (अष्टमी

अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, सङ्क्रान्ति, ये पांच पर्व हैं।) सूक्ष्म कारण। चरण। उत्सव। प्रस्ताव। अध्याय। सुयोग। पड़ जाना, गिर जाना।

परम—प्रधान, मुख्य। सबसे अधिक।

परमारथ (परमार्थ)—यथार्थ विषय, सार वस्तु, धर्म। परलोककी बात।

परलोक—स्वर्ग, वैकुण्ठ। मरनेके पीछे मिलनेवाली या होने वाली अवस्था।

परस—(क्रिया) छूने, परोसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं। फरसा। कुठार। स्पर्श। छूनेकी क्रिया।—मनि, पारस पत्थर।

परसन—प्रसन्न। प्रश्न। स्पर्श। मत छू।

परसपर (परस्पर)—आपसमें एक दूसरेके साथ।

परसु (परशु)—फरसा। एक शस्त्र-का नाम जो फरसेकी तरह होता है।
—धर, परशुराम।

परहेल—(क्रिया) त्यागने, बेपरवा होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। (परहेले, परिहेला किये, छोड़े हुए।)

परा—(क्रिया) भागनेके अर्थमें। इनके रूप "रिसा" धातुकी तरह होते हैं।

पराई—दूसरेकी। भागी।

पराक्रम—उद्यम, पुरुषार्थ, बल।

पराग, परागा—पुष्परज, फूलों-की धूल।

पराभौ (पराभव)—निरादर, प्रलय। नाश। हार।

परायन (परायण)—तत्पर, लगा हुआ। भागनेकी क्रिया।

परावर—ब्रह्मादि पूर्वज। मनु इत्यादि ब्रह्माके पीछेके पूर्व पुरुष। पहलेके और पीछेके। दोनों लोक। सृष्टि और सृष्टिसे परे।

परास—पलास, ढाक, टेसू।

परिकर—कटि, कमर। कमरबन्द।

परिघ—ब्योंड़ा। बेंड़ा। मुग्दलाकार एक अस्त्र।

परिचरजा }
परिचर्या } सेवा। उपासना। कामधंधा।

परिचारक—सेवक, दास।

परिचारिका—दासी।

परिछन—परिरक्षण, वरकी रक्षाके लिये उसपरसे मांगलिक वस्तुओंका वारना।

परिछिन्न—व्यापक, घेरा हुआ, कटा हुआ। बटा हुआ।

परिछ—(क्रिया) परिछन करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप है।

परिजन—सम्बन्धी, नातेदार।

परित्याग—भलीभाति त्याग। छोड़ देना।

परित्राण—रक्षक, सब प्रकारसे बचानेवाला। सब तरहसे रक्षा।

परिताप—संताप, दुःख, क्लेश।

परितापी—दुःखदायी।

परितोष—संतोष, प्रसन्नता।

परिधान—पहिरावा, पोशाक। ओढ़नेके वस्त्र। धोती।

परिनाम (परिणाम)—अवस्था, नतीजा, फल।

परिपाक—भलीभांति पका हुआ, परिणाम। फल।

परिपाटी—परम्पराकी रीति। क्रम। अभ्यास।

परिपूरन—पूरा पूरा। भरा हुआ।

परिमित—प्रमाणित। नपातुला।

परिहर—(क्रिया) छोड़नेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह है।

परिहास—हँसी,ठट्ठा,खेल, कौतुक।

परुष—कठोर,कड़ा। व्यंग्य। ताना।

परे—परलोकमें, आगे, अलग। पड़े, गिरे।

परेख—(क्रिया) राह देखने, जाँचने, ध्यानसे देखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।

पल—काल। एक घड़ीका साठवां अंश जो ढाई सेकंडोंके बराबर होता है। (क्रिया) पोषण पानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

पलक—नेत्र-पट। आंखका ढकना। एक पल। पल मारनेभर।

पलुह—(क्रिया) बढने, पलनेके अर्थमें। यह भी "चढ़" धातुकी तरह है।

पलोट—(क्रिया) चरणसेवा करने, पाँवके पास लोटनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह है।

पल्लव—पत्ता, पत्र, नया पत्ता।

पल्लवित—रोमांचित। नये पत्तोंसे भरा। अंकुरित पत्तोंसे लदा। हराभरा।

पवन—वायु। हवा।—**सुत**, हनुमान, भीमसेन।

पवार—(क्रिया) फेंकनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।
पवि—वज्र।
पवित्र—शुद्ध।
पश्यामि—मैं देखता हूं।
पषान—पाषाण, पत्थर।
पसाउ, पसाऊ—प्रसाद, प्रसन्नता। कृपा। पसेव।
पसेव—पसीजन, पसीना, स्वेद। प्रस्वेद।
पहार—अचल, भूधर।
पहुनई—आतिथ्य, मेहमानी।
पहँ—पास, निकट।
पांति—पंक्ति। पांती।
पांवड़े—पावके तलेका विछावन।
पांवर—पामर, नीच।
पांवरी—पादुका, खड़ाऊ।
पाइक—प्यादा, दूत। मल्ल, पहलवान।
पाक—रसोई। पका हुआ। एक असुरका नाम जो इन्द्रके हाथों मारा गया।—**रिपु**, शासन, इन्द्र।
पाकरि—पाकर, एक वृक्षका नाम।
पाख—पक्ष। पंख। सहाय। बल। ओर। अंग। दल। शरीरार्द्ध।
पाखरी—पखड़ी, पत्ती, छोटे छोटे दल। जड़ी।
पाग—(क्रिया) मग्न होने, लपटे जाने, सननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।
पाट—रेशम, पटुआ। नदी या समुद्रके वारपारका विस्तार। (क्रिया) पाट देने, भर देनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
पाटमहिषी—पटरानी, विवाहिता स्त्री।
पाटल—वृक्ष विशेष। गुलाबी रंग, हलका लाल रंग। गुलाब।
पाटम्बर—रेशमी कपड़े।
पाठ—सबक, पढ़न, पढ़ाई। सबक।
पाठक—पढ़ानेवाला। पढ़नेवाला।
पाठीन—पढ़िना मछली।
पात—पत्ता, पत्र।
पातक—पाप, अघ। गिरानेवाला।
पात्र—बरतन। योग्य।
पाती—चिट्ठी। प्राप्त करती।
पाथ—जल।
पाथोज—कमल।
पाथोद—मेघ।
पाथोधि—समुद्र।
पाद—चरण, पैर। श्लोकका चतु-

थांश । चौथाई ।

पादप—वृक्ष ।

पान—हाथ । पीना ।

पानि, (पाणि)—हाथ ।

पापवंत—पापी ।

पापिष्ठ—महापापी ।

पामर—नीच ।

पायक—दूत । पैदल । प्यादा ।

पायस—खीर । दूध चावलका पाक ।

पार—(क्रिया) सकने, फेंकने, डालनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं ।

पारथिव (पार्थिव)—मिट्टीका बना । मिट्टीके तत्कालके बने शिवलिंग ।

पारवती, पार्वती—उमा, गिवा, पर्वतकी । पर्वतकी पुत्री ।

पारस—एक पत्थरका नाम जिसके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है । स्पर्शमणि । परसमनि ।

पारावत—कबूतर ।

पारिख—पारखी । परखनेवाला । गुनी । जांच ।

पाल—(क्रिया) पालने पोषनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़"धातुके अनुरूप होते हैं । गरमी पहुँचाकर पालनेकी विधि । गरम स्थान । नावको हवा रोककर प्रेरित करनेके लिये बड़े बड़े परदे ।

पालक—पालनेवाला । पोषक । एक साग ।

पालने—पालनेमें, हिंडोलेमें । हिंडोले । पोषण करने ।

पाव—(क्रिया) पानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं । चौथाई ।

पावक—अग्नि । आग । पवित्र करनेवाला ।

पावन—पवित्र । पवित्र करनेवाला ।

पावनी—पवित्र करनेवाली, मिलनी ।

पावस—बरसात । प्रावृट् ।

पाषंड—छल, कपट । दंभ । धर्मका दिखावा ।

पाषान—पत्थर ।

पास—समीप । फास, फंदा ।

पाहन—पाषाण । पत्थर ।

पाहरू—पहरेदार, रक्षक ।

पाहि—रक्षा करो ।

पाहीं—पास । निकट ।

पाहुन—अतिथि ।

पिंजर—पीठकी हड्डी । मांसरहित शरीरके हाड़ । पिंजरा ।

पिआरा—प्रिय, प्यारा, स्नेही ।

पिक—कोइल, कोकिल, कलकंठ ।

पितर—पितृ। पूर्वज।
पिता, पितु—बाप, जनक। पैदा करनेवाला।
पिनाक—शिवजीका धनुष जिसे श्रीरामचन्द्रजीने तोड़ा।
पिपीलिका—चींटी।
पिय—पति, प्रिय।
पियर—पीत, पीला।
पिआरा—स्नेही।
पियासे—प्यासे।
पिरा—(क्रिया) पीड़ा करने, व्यथा होनेके अर्थमें "रिसा"की तरह।
पिराने—थके, दुखाये।
पिरीते—प्रीतम, प्रियतम। प्यारे।
पिरोजा—जंगाली रंगका एक सामान्य मणि।
पिसाच—प्रेत। भूत।
पिसुन—चुगली करनेवाला। पिस्सूका बहुवचन।
पी—पान करके। पिओ। प्रिय। स्वामी। पति।
पीत—पीला।
पीन—पुष्ट। मोटा, गुदगर, भरा हुआ।
पीपर—एक वृक्ष, अश्वत्थ। पीपल।
पीयूष—अमृत।
पीर—पीड़ा, दुःख। बूढ़ा।
पीवर—पुष्ट। मोटा।
पुंगफल—सुपारी, कसैली।
पुंगव—प्रधान, श्रेष्ठ, बड़ा। बैल।
पुंज—समूह।
पुच्छ—पूँछ, दुम।
पुट—दोना, डिब्बा, उगली।
पुटि (पुटी)—दोनिया, डिबिया।
पुन्य (पुण्य)—पवित्र, शुभ। अच्छे कर्म। पवित्र कर्मोंका परिणाम।
पुनि—फिर।
पुनीत—पवित्र।
पुरंदर—सुरेश, मघवा, इन्द्र।
पुर—नगर, पुरा। पूर्ण। भरा।
पुरइन—कुमुदिनि, नलिनी। पद्मिनी
पुरउब—पूरा करना। पूरा करूंगा।
पुरट—सोना। कंचन।
पुरच—(क्रिया) पूरा करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप हैं।
पुरा—पहलेका।
पुराकृत—पूर्व कृत, पहलेका किया हुआ।
पुरातन—पुराना।
पुरान, (पुराण)—ऐतिहासिक पुस्तक। पुराना। पुराण।
पुराना—प्राचीन। पुराण।
पुरारी—शिव, पुरके शत्रु। त्रिपुरासुरके मारनेवाले।

पुरुष — मनुष्य । परमेश्वर ।

पुरुषार्थ — पराक्रम, साहस । धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।

पुरोडास — यज्ञभाग । यज्ञका हवि ।

पुरोधा — पुरोहित ।

पुलक, पुलकावली — रोमाच, रोआँ खड़ा हो जाना ।

पुलकित — गद्गद । रोमाचित । प्रसन्न ।

पुलस्ति — एक ऋषि, पुलस्त्य मुनि ।

पुष्ट — तैयार, मोटा, बलिष्ट ।

पुष्प — फूल ।

पुष्पक — विमानका नाम जिसपर श्रीरामचन्द्रजी सवार हो लकासे अयोध्या पधारे । यह कुबेरका था । रावण छीन लाया था ।

पुस्तक — पोथी ।

पुहुप — पुष्प, फूल ।

पुहुमि — पृथ्वी, भूमि ।

पूग — सुपारी । पूरा हुआ । समूह ।

पूछ — चाह, दरकार । प्रश्न । पूछकार । क्रिया, पूछनेके अर्थमें । "चढ़"की तरह ।

पूज — (क्रिया) पूजा सत्कार करने और पूरा होनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं ।

पूजनीय, पूज्य — पूजाके योग्य । सेवायोग्य ।

पूत — बेटा । पुत्र । पवित्र । साफ किया हुआ ।

पूतरी — आखकी पुतली । पुतली । मूर्ति ।

पूप — मालपुआ, पुआ ।

पूय — पीप, मवाद ।

पूर — (क्रिया) भरनेके और बटनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह है । पूरा, पूर्ण ।

पूरन (पूर्ण) — पूरा, भरा हुआ ।

पूरब (पूर्व) — प्राचीदिशा । पहला । सूर्य उदय होनेवाली दिशा ।

पूरुष — पुरुषा बड़े लोग । जेठे लोग ।

पूषन — सूर्य, पोषण करनेवाला ।

पृथक् — अलग, भिन्न, जुदा ।

पृथुराज — स्वायभुव मनुकी सतान राजा अगका पुत्र । देखो मानस-कथा-कौमुदी ।

पृथ्वी — भूमी, धरती ।

पृष्ठ — पीठ । पुस्तकके पत्रका एक ओर । सफहा ।

पेख — (क्रिया) देखनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातु की तरह होते हैं ।

पेन्हाव — (क्रिया) गाय लगानेके अर्थमें । इसके रूप भी

"चढाव" धातुकी तरह हैं।

पेल—(क्रिया) त्यागने, टालने और न माननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

पेषन—प्रेक्षण। देखना। तमाशा।

पै—पर,ऊपर। दोष। दूध। पानी। निश्चय। अवश्य।

पैन—तीक्ष्ण, चोखा। नोकीला। तीखा।

पैसार—पैठार। प्रवेश।

पोच—बुरे, नष्ट, अधम, दुःखित।

पोत—समुद्रयान, बड़ीनाव, जहाज। बालक। एक प्रकारकी गुरिया, मनका, दाना। कर। दंड। मालगुजारी।

पोतक—बच्चा। बालक। पुत्रक।

पोषक—पालक, रक्षक, सहायक।

पोष—(क्रिया) पुष्ट करने और पोसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह हैं।

पोह—(क्रिया) पिरोनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

पौढ़, पौढ़ाव—(क्रिया) लेटने और लिटानेके अर्थमें। क्रमश "चढ़" और "चढ़ाव" की तरह।

प्र—बल।,साहस।

प्रकाश—उजेला। रोशनी।—प्र उजेला करनेवाला,फैलाने-वाला।

प्रकाश्य—प्रगट करनेयोग्य, उजेले-योग्य।

प्रकृति—स्वभाव, गुण, ईश्वरकी शक्ति।

प्रकृष्ट—भला, श्रेष्ठ,उत्तम।

प्रगट—प्रत्यक्ष, स्पष्ट। (क्रिया) प्रगट करनेके अर्थमें।"चढ" की तरह।

प्रगल्भ—अहंकारी, शास्त्रविजयी। गंभीर।

प्रघोर—अत्यन्त, अधिक। अत्यन्त घोर।

प्रचार—(क्रिया) फैलाने, चलाने, ललकारनेके अर्थमें, इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। चलन, रीति,फैलाव।

प्रचंड—बहुत बढकर, बड़ा तेज।

प्रजा—सन्तान, रैयत, मनुष्य।

प्रजार—(क्रिया) जलाने, फूक देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

प्रजासन (प्रजाशन)—प्रजाका भोजन। साधारण आहार। प्रजाको ही खा जानेवाला।

प्रजेस (प्रजेश)—प्रजापति, दक्ष-प्रजापति।

प्रताप—तेज।। ऐश्वर्य। शोभा। महिमा।

प्रति—पास, सामने। विरुद्ध। मुकाबलेका (जैसे प्रतिभट) वैसा ही, ज्योंका त्यों। सदृश। हर एक (मंदिर मंदिर प्रति-कर सोधा)। बदला। जैसे प्रति-उपकार।

प्रति उपकार—उपकारका बदला।

—कूला, विरुद्ध, विमुख।

—छांही, परछाहीं, छाया।

—पच्छी, विपक्षी, शत्रु।

—पाद्य, वर्णनके योग्य।

—भट, प्रत्येक वीर, समान वीर।**—मा**, मूर्ति, तसवीर।**—मूरति (प्रतिमूर्ति)** जैसीकी तैसी मूर्ति। परछाहीं। तसवीर।

प्रत्यूह—विघ्न, बाधा, रुकावट।

प्रद—दानी, देनेवाला। विशेषकर देनेवाला।

प्रदेस—परदेश, अन्यदेश। प्रांत। देशका विशेष भाग।

प्रदोष—संध्या, दिनकी समाप्ति।

प्रनत—दीन, नम्र।

प्रनय—प्रेम।

प्रनव—(क्रिया) नमस्कार करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।

प्रनाम—नमस्कार।

प्रपंच—खेल, धोखा, छल। पाचों भूतोंके मेलसे बनी सृष्टि।

प्रबल—बलवान।

प्रबर—अतिश्रेष्ठ।

प्रबाल—मूगा, विद्रुम।

प्रबोध—ज्ञान, उपदेश।

—क, ज्ञानदाता, उपदेशक।

प्रबंध—काव्यरचना। उपाय। बन्दोबस्त।

प्रभा—प्रकाश, उजेला।

प्रभाउ,(प्रभाव)—तेज, प्रताप, बल।

प्रभात—प्रातःकाल, तड़का।

प्रभु—स्वामी, नाथ, पालक, ईश्वर।

—त्व, स्वामित्व, धन, सम्पत्ति।**—ता**, बड़ाई, ईश्वरता।

प्रभंजन—पवन, हवा।

प्रमदा—युवती, स्त्री।

प्रमाद, प्रमादु—असावधानता। भूल। पागलपन।

प्रमादि—पागल। भुलक्कड। बे-होश या पागल करके या होके।

प्रमान—यथार्थ। उदाहरण। सबूत। मात्रा।
प्रमोद—प्रसन्नता, आनन्द।
प्रयान्ति—प्राप्त होते हैं। निश्चय करके जाते हैं।
प्रयास—परिश्रम, थकावट।
प्रलंब—विशाल,बड़ा। बहुत लम्बा।
प्रलय—सृष्टिका नाश। बाढ़।
प्रलाप—बकवाद।
प्रवर्षण—एक पर्वतका नाम। अत्यन्त वर्षा।
प्रवान—प्रमाण (देखो)
प्रवाह—बहाव। धारा।
प्रविस—(क्रिया) पैठने या घुसनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह है।
प्रवीन—चतुर, सयाना।
प्रवेस—पैठ, पहुँच।
प्रश्न—पूछना, सवाल।
प्रसंग—साथ, से। मौका। विषय।
प्रसंसक—प्रशंसा करनेवाला। बड़ाई करनेवाला।
प्रसंसा—यश, कीर्ति। सराहना।
प्रसन्न—सुखी, आनंदित।
प्रसव—जन्म। बच्चा होना।
प्रसाद—दया। जूठन। प्रसन्नता।
प्रसिद्ध—उजागर।
प्रसीद—कृपा करो। प्रसन्न हो।
प्रसूती—जननी, माता। पैदा करनेवाली।
प्रसून—फूल, पुष्प।
प्रहलाद—दैत्यराज हिरण्यकश्यपके पुत्र जो विष्णुभक्त हो गये ह। (देखो मानस-कथा-कौमुदी।)
प्रहर्ष—विशेष आनन्द।
प्रहार—मार, मारना। चोट।
प्राकृत—नीच, पामर। स्वाभाविक। गँवकी बोली।
प्राची—पूरब दिशा।
प्रात—सवेरा, तड़का। —कृत, सध्यावंदनादि। सवेरेके नित्य-कर्म्म।
प्रान—स्वास। आयु। जीव।
प्रायः—अधिक करके, बहुधा।
प्रावृट, प्राविट—बरसात।
प्रियतम—अत्यन्त प्यारा। पति।
प्रियवादिनि—मीठा बोलनेवाली।
प्रेत—भूत।—निवास, प्रेतोंके रहनेका स्थान, स्मशान।
प्रेर—(क्रिया) आज्ञा करने, हुक्म देने, भेजने, काम करानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।
प्रेरक—आज्ञा करनेवाला। चलानेवाला। प्रवृत्त करनेवाला।

प्रेरित—भेजा हुआ। लगाया हुआ। प्रवृत्त किया हुआ।
प्रोक्त—कहा हुआ। भलीभांति वर्णित।
प्रौढ—बड़ा। मोटा। निपुण। यौवन और बुढ़ापेकी मध्यमावस्था।
प्रौढ़ि—पक्की बात। पोढापन। सामर्थ्य, उत्साह।
प्लव—नौका, तरणी।

फ

स्फटिक—पाषाण। बिल्लौर। एक टिकमणि।
फन—फण, नागका मुँह। नागका मस्तक।
फनि, फनी—सर्प, नाग। —क, सर्प, नाग।
फनीस—सर्पराज, नागेश।
फब—(क्रिया) सगत होने, ठीक बैठने, भले लगनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।
फरसा—कुठार। परशु।
फराक—चौड़ा, ढीला।
फाट, फाड़, फार—(क्रिया) फटने और फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुकी तरह होते हे।
फाब—(क्रिया) फबनेके अर्थमें। देखो "फब" ऊपर। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।
फुर—सत्य, यथार्थ।
फुरि, फुरी—सूझकर वा सूझी। स्फुरित हुई। उपजी। ध्यानमें आयी।
फुलवाई—फुलवाड़ी। वाटिका। वारी।
फुलाव—(क्रिया) फुलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।
फूट—(क्रिया) टूटने, टुकड़े होनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते है।
फोर—(क्रिया) फोड़ने, तोड़नेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

ब

बंक, बंका—टेढा, बाका। कपटी।
बंगा—लुचा। शरीर।
बंचक—ठग। —ता, ठगी।
बंच—(क्रिया) ठगनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके रूपोंकी तरह होते है।
बँचाव—(क्रिया) पढ़वानेके अर्थमें।

इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

वंदन—झुकना, प्रणाम।

वंदनीय—प्रणाम करनेयोग्य।

वंदनवार—हरी पत्तियोंकी विशेषत आमके पल्लवोंकी लम्बी माला।

वंद्य—प्रणाम योग्य, सराहनीय।

वंदी—भाट, वंश-प्रशंसक। कैदी।

वंदीखाना, **वंदीगृह**—कारागार। कैदखाना।

वंद—(क्रिया) प्रणाम या वंदना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

बंध—प्रबंध, रोक।—न, रोक, बाँधनेकी वस्तु। रस्सी।

बंध्या—बाँझ स्त्री।

बंधु—भाई, नातेदार।

बंस—वंश, बाँस।

बंसी—बाँसुरी। मछली मारनेकी लग्गी।

बक—(क्रिया) बकने, बोलनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बक—बकुला, बगला। जल्पना।

बकता—बकनेवाला। व्यास। कहनेवाला।

बक्र—टेढ़ा, बाँका। प्रतिकूल।

बकुल—मौलसिरीका पेड़। बगुला।

बखान—(क्रिया) कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बगमेल—पाँती। पाँतीसे कूच। बगुलोंकी नाईं पंक्ति बँधी चाल।

बगर—(क्रिया) फैलने, बिखरनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।

बच—वचन। एक औषधका नाम। (क्रिया) बचनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

बचांसि—बातें। बातोंसे।

बच्छल, बछल—(वत्सल) दयालु हृदय। बच्चोंपर प्रेम करनेवाला। बच्चोंवाला।

बजनियाँ—बाजा बजानेवाला।

बज्र—पवि, कुलिश। हीरा। कठोर।

बट—वट वृक्ष। बड़का पेड़। अक्षयबट।—**पार, मार**, राहबाटमें डाका पड़नेवाला, मारनेवाला।

बटाऊ—बटोही। बाटनेवाला।

बटु, बटुक—बालक, कुँवारा लड़का। ब्राह्मणकुमार।

बटुर—(क्रिया) इकट्ठे होने, सिमिटनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

बटोर—(क्रिया) समेटने, संग्रह करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़"धातुकी तरह होते हैं।

बटोही—पथिक, मार्ग चलनेवाला।

बड़—बड़ा, ज्येष्ठ। बरगदका पेड़।

बड़वानल—समुद्रकी अग्नि।

बढ़ावा—बढ़ाया, अधिक किया। उत्साह। उछाह।

बत—बात, बोली। नाईं, तरह।
—कही, बातचीत, बोल चाल। कहासुनी।

बताव—(क्रिया) समझाने, दिखाने, कहनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।

बतास, बतासा—वायु, हवा। एक प्रकारकी शर्करा निर्मित मिठाई।

बत्स—बच्चा। बछवा। पुत्र। बेटा।

बद—(क्रिया) कहने, बदनेके अर्थमें, "चढ़" धातुकी तरह। बुरा, खोटा।

बदरी—बदली, मेघमाला। बैरका, बैर वृक्षका। बेर।

बदामि—मैं कहता हूं।

इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। मारे जानेकी दशा। मारा जाना। (मेघनाद बध=मेघनादका मारा जाना)।

बधाव—(क्रिया) मरवा डालनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते है।

बधावा—बधाई। मुबारकबादी। बधाईके गीत और बाजे।

बधिक—व्याधा, चिड़ीमार।

बधिर—बहिरा।

बधू—बहू। पुत्रकी स्त्री। ब्याही स्त्री। स्त्री।

बधूटी—युवती। नयी ब्याही स्त्री।

बन—(क्रिया) बननेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बनचर—जंगली, बनवासी। जलजन्तु। बानर। बनमें रहनेवाला। जलमें रहनेवाला।

बनज—जलसे उत्पन्न वस्तुमात्र। कमल जोंक आदि। बनसे उत्पन्न, फल, पुष्प, जीवजन्तु आदि।

बननिधि—समुद्र।

बनमाला—पुष्प और पत्रोंसे बनी

बनाव—(क्रिया) बनानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बनिक—बनिया, व्यापारी।

बनिता—स्त्री, लुगाई।

बनै—सुधरै, सवरै। बन पड़ै, हो सकै। दूलहको, बन्नेको। वेश धारण करै।

बपु, बपुष—देह, तन।

बबूर—बबूलका वृक्ष।

बम—(क्रिया) कय करनेके अर्थमें। उलटी होने, उगल देनेके अर्थमें। रूप "चढ" धातुकी तरह।

बमन—छाट, कय, उलटी।

बव—(क्रिया) बोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बयनी—बचनवाली। वाणी-वाली।

बयर—वैर। विरोध। झगड़ा।

बर—(क्रिया) चुने जाने, वरने, ऐंठने, जलने और नियुक्त किये जानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ"की तरह होते हैं। वरदान। असीस। पति। दुलहा। सुन्दर। श्रेष्ठ। सबसे

बरज—(क्रिया) रोकने, मना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। कर्थ। प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा।

बरजोरा, बरजोरी—बरबस, जबरदस्तीसे। श्रेष्ठ जोड़ी, अच्छा जोड़ा।

बरद—वर देनेवाला, वरदाता, बैल। वरदा।

बरग, बर्ग—जाति, समूह। चौड़ाई लम्बाईमें बराबर आयत। प्रकार। किसी अकका उसी अकसे गुणनफल।

बरदान—उपहार। प्रसाद। आशीर्वाद।

बरन—अक्षर। रंग। जाति। वर्णन करके। बल्कि। प्रत्युत। (क्रिया) वर्णन करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते है।—**संकर**, मिश्रित वर्ण। दो भिन्न जातियोंसे उत्पन्न।

बरनास्रम—वर्ण और आश्रम। जाति और पथ।

बरबरनी—सुन्दर वर्णवाली, गौरांगी। सुन्दरी।

—बरजोरी। बलात्कार।

जबरदस्ती । श्रेष्ठ या अच्छेको चुनाव ।

वरै—जलै । जले । जलता ।

वरष (वर्ष)—बरस, साल । (क्रिया) बरसनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं ।

वरषा—बरसात, पावस । बारिश । बरसनेकी क्रिया ।

वरहि—बर्हि । मोर । मयूर । अग्नि-को । जलते । बरता है । [देखो 'बर']

वराए—छाँटे । छाँटकर । बचाये ।

वराव—(क्रिया) चुनने, बचानेके अर्थमें । इसके सभी रूप "बचाव" धातुके अनुरूप होते हैं ।

वरासन—श्रेष्ठ आसन । दूल्हेके बैठनेका आसन । श्रेष्ठ असन, उत्तम भोजन । बरका भोजन ।

वराह—सुअर, शूकर ।

वरिआर, वरियारा, वरियार—बढ़-कर, जबरदस्त । बलवान ।

वरियाई—जबरदस्ती । बरजोरी । बलात्कार ।

वरियाता—बरयात्रा, बरात ।

वरिया—बेला, समय । बारीमें ।

वरबंड—बलवान, बली ।

वरिस—(क्रिया) बरसनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं ।

वरुन—वरुण देवता । जलके देवता ।

वरु—बल्कि, चाहे । प्रत्युत ।

वरूथ—झुंड, समूह ।

वरैषी—मँगनी, सगाई । वर-रक्षा,

वरोरु—सुन्दर जंघावाली स्त्री ।

वलकल—बकल, वृक्षकी छाल (भोजपत्रादि) ।

वलकाव—(क्रिया) झुकाने, पागल बनानेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते है ।

वलवान, वलवन्त—बलिष्ठ, बली ।

वलाक—बकुला । सारस ।

वलाहक—मेघ, बादल ।

वलि—बखरा, पूजा, निछावर । भाग । एक दैत्य राजाका नाम जो प्रसिद्ध महाभाग-वत दैत्यराज प्रह्लादका पोता और विरोचनका बेटा था । [देखो "मानस-कथा-कौमुदी" ।]

वलित—घेरा हुआ, लिपटा हुआ ।

वलीमुख—वानर, बन्दर ।

वल्लभ—प्यारा, प्रिय । अध्यक्ष ।

वल्ली—लता। बेल। भांभीका डाडा।

वस—(क्रिया) रहनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। वश। कब्जू। अधिकार। शक्ति।

वसन—वस्त्र, कपड़ा।

वसवर्ती—अधीन।

वसह—बैल।

वसाई—वस चलता है। आबादी की।

वसीठी—दूत, चर, हरकारा। वशिष्ठ।

वसुधा—पृथ्वी।

वस्तु—पदार्थ, जिन्स, चीज।

वह—(क्रिया) बहनेके और ढोनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

वहराव—(क्रिया) अनसुना करने, बहलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरुप होते हैं।

वहिनी—भगिनी। बहनेवाली, प्रवाहवाली नदी। ढोनेवाली।

वहु—बहुत।—कालीन, बहुत पुराना।—तक, बहुतेरे, प्राय। बहुत तरहसे। अकसर।

वहुर—(क्रिया) फिरने, लौटनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।

वहोर—फिर। फेरनेवाला। फेरो। क्रिया, लौटानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

वांक—एक शस्त्र। एक टेढ़ी छुरी। एक हाथका भूषण। घुमाव।

वांका—टेढ़ा। कपटी। लड़ाका। छविवाला, सुन्दर।

वांकी—छबीली, टेढ़ी। कुटिला।

वांकुरा—टेढ़ा, कुटिल, वक्र, छवियुक्त।

वांच—(क्रिया) पढ़नेके अर्थमें "चढ़" धातुके अनुरुप।

वांझ—वन्ध्या। ऐसी स्त्री जिसके सन्तान न हो सके।

वांट—(क्रिया) बांटने या भाग करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

वाउ (वाऊ)—वायु, हवा।

वाउर—पागल।

वाक—वाणी। वचन।

वाग—वाणी। लगाम। बगीचा। टहला, फिरा।

वाग—(क्रिया) बकने, घूमने, हवा-

खानेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप।

वागीस—आकाशवाणी। वाणीका अधिष्ठाता। हयग्रीव भगवान। ब्रह्मा।

वागुर—जाल, फंदा।

वाचाल—बक्की, बकवादी। बहुत बोलनेवाला।

बाज—(क्रिया) बजनेके अर्थमें "चढ़" धातुकी तरह। श्येन, बाजपक्षी। घोड़ा। लौटना, फिरना, अलग रहना।

बाजने—बाजे।

बाजि—बजकर। घोड़ा।—**मेध**, अश्वमेध। एक यज्ञ जिसमें घोड़ेका बलिदान होता है।

बाट—बटखरा। मार्ग। राह। —**परइ**, बीच राहके डाकापड़े।

वाटिका—बारी, बगीचा।

बाढ़—(क्रिया) बढ़नेके अर्थमें, इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बढ़नेकी दशा। जलप्रलय। बढ़न्ती, बढ़ती।

बात—पवन, वायु। बाई।

बाती—बातचीत। बटी हुई। वस्तु। बत्ती।

बातुल—पागल। बाई चढ़ा हुआ।

वात्सल्य—पुत्रस्नेह। बेटेका प्रेम।

बादले—स्वर्णखचित। जरी या सोनेके कामके कपड़े।

बाद—(क्रिया) झगड़ने, हुज्जत करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पीछे। झगड़ा। सिद्धान्त।

बादि—व्यर्थ। बोलकर। झगड़ा-कर।—**नी**, बोलने-वाली।

बादी—बोलनेवाला। झगड़ने-वाला। बाई।

बाधक—रोकनेवाला।

बाध—विघ्न, रोक।

बाधी—विघ्नकर्त्ता। बाधा डालने-वाला।

बान—बाणासुर दैत्य। स्वभाव। प्रतिज्ञा। तीर। बाण।

बानर—मर्कट। बन्दर।

बाना—प्रतिज्ञा। विरद। अभ्यास। तीर।

बानि—रपट। अभ्यास। विरुदा-वली। बाणी। बाना।

बानी—वाणी। सरस्वती। बोली। बात।

बानैत—वीर। बाना फेंकनेवाला।

बाना धारण करनेवाला। कट्टर प्रतिज्ञा पालनेवाला।

बापिका (बापी)—बावली। एक प्रकारका जलाशय। बावड़ी।

बापुरी—तुच्छ। निगोड़ी। बेचारी।

बापू—बाप, पिता।

बाम—बाया, विरोधी। उलटा। स्त्री।

बामदेव—शिव। एक मुनिका नाम।

बाम्हन—ब्राह्मण, द्विज।

बाय—पसारकर, फैलाकर। है। वायु।

बायन—बयना। भेट। बयाना। पेशगी। साई।

बायस—काक, कौवा।

बार—(क्रिया) दूर करने, हटाने और मना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बार—दिन। बेर। बोझ। देर। केश। द्वारा। बालकर। —क, एक देर।

बारन—हाथी। रोकना, दूर करना। शीघ्र।

बाराबाट / **बारहबाट** } तहसनहस, बरबाद, नष्ट।

बारहि (बारही), बचपनमें। मना करते हैं। वारा फेरा करते हैं। निछावर करते हैं।

बारि—जल, पानी। निछावर करके। —**चर**, जलके जीव। —**चर केतु**, कामदेव, मीनकेतु। मकरध्वज। —**ज**, कमल। —**द**, मेघ, बादल। —**द-नाद**, मेघनाद। —**धर**, बादल, मेघ। —**धि**, समुद्र।

बारी—जल। फुलवारी। बालिका। निछावर करी। रोकी।

बारीस—समुद्र।

बारुनी—(**बारुणी**), मद्य, शराब। पश्चिमी दिशा। एक योग वा पर्वका नाम। वरौनी। दूब।

बारे—लड़के। वार दिये। किसी प्रकारसे। कुँआरे।

बाल—बच्चा। केश।

बालमीक—बाँबीसे निकले हुए एक तपस्वी ऋषिका नाम। [देखो "मानस कथा-कौमुदी"।]

बाला—स्त्री। युवती। कानमें पहिरनेकी बड़ी बाली।

वालि—एक वानरका नाम जो किष्किन्धाका राजा था।
वावन—भगवानका एक नाम। नाटा। ५२ अंक।
वावरी—पागल स्त्री। पगली।
वास—निवासस्थान। गंध। बू।
वासन—बरतन। निवास।
वासना—इच्छा। चाह।
वासर—दिन।
वासव—इन्द्र।
वासा—घर। सुवासित किया।
वासी—निवासी। एक पहर पहलेकी पकी चीज।
वाहु—वाह।
वाहन—सवारी।
वाहिज—बाहरी। बाहरका।
वाहिनी—सेना। बहनेवाली नदी। ढोनेवाली।
विंदु—बिंदी। बूंद। अनुस्वार।
विंध्या—एक पर्वतका नाम जो मध्य भारतमें पच्छिमसे पूरवतक फैला हुआ है।
विकट—भयानक। टेढ़ा।
विकटासी—भयंकर मुखवाली। विकटास्या।
विक्रम—पराक्रम। प्रभाव।
विकरारा—विकराल। भयंकर। बेकरार। तड़पता हुआ।
विकल—बेकल।
विकस—खिलकर। प्रसन्नता। (क्रिया) खिलने फैलनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।
विकार—दोष।
विख्यात—प्रसिद्ध, उजागर।
विखान, (विषाण)—सींग।
विखंडन—तोड़ना। भंजन करनेवाला।
विगत—रहित, हीन। गया हुआ। अभाव।
विगर—(क्रिया) बिगड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप हैं। बगैर। बिना।
बिगोव—(क्रिया) नाश करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं।
विग्रह—विरोध, झगड़ा। शरीर। हठ।
बिघट—(क्रिया) तोड़ने, [illegible] अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।
बिघन, विघ्न—असगुन, अड़स रोक।
बिच—बीच, मध्य, में।
बिचक्षण—विलक्षण, चतुर।

बिचर—(क्रिया) चलने, फिरने, घूमनेके अर्थमें। रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बिचल—(क्रिया) चलायमान होने, चचल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

बिचार—(क्रिया) सोचने, ध्यान करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते है। खयाल। कल्पना। फैसला।

बिचित्र—अद्भुत, अनोखा।

बिचेतन—अज्ञान। वेसुध।

बिछुर—(क्रिया) जुदा होने, अलग होनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप।

बिछोह—(क्रिया) छोड़ देने या छुड़ा-देनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बिजय—जय, जीत।—यी,

बिजयी—जय करनेवाला। जीतने-वाला।

बिज्ञान—शास्त्रज्ञान, पूरी जानकारी। —**बिहान**, ज्ञानका उदयकाल। ज्ञानका सवेरा। ज्ञानहानि।

बिज्ञानी—ज्ञानवान, सुबोध। पण्डित।

बिटप—वृक्ष, पेड़।

बिडर—(क्रिया) छितराने, फैलने, विरल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते है। विरल। अलग अलग।

बिडंब—ठगी, छल, झूठ वचन। —ना, झूठ झगड़ा, मिथ्यावाद। तग करना। व्यर्थ कर देना। नकल करना। ढोंग करना। रूप बदलना।

बिढ़व—(क्रिया) कमाने और बढ़ानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते है।

बितान—चँदवा, मडप, शामियाना।

बिथक—(क्रिया), चकित होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बिथुर—(क्रिया) फैलने, छितरानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते है।

बिद्—ज्ञाता। जाननेवाला।

बिदर—(क्रिया) फटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते है।

विद्यमान—प्रकट, प्रत्यक्ष।
विद्या—ज्ञान, शिक्षा।
विद्रुम—मूँगा, प्रवाल।
विदा—विसर्जन, रवानगी।
विदार—(क्रिया) फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।
विदित—विख्यात, प्रसिद्ध।
विदिसि,(विदिश)—दिशाके कोण। [देखो, "कोन" "अष्ट कोण"]
विदुष—पंडित, विद्वान्।
विदुषी—पंडिता।
विदूषक—भाँड। मसखरा।
विदेह—वेदान्ती। ब्रह्मज्ञानी।
विधना—देखो "विधि"।
विधवपन—रँडापा।—**वा**, राँड
विधवा—जिसका पति मर गया हो। राँड।
विधात्री—ब्रह्माणी, ब्रह्माकी स्त्री। बनानेवाली। सरस्वती।
विधाता—ब्रह्मा, विधि, सृजनहार।
विधान—विधि, पूरी रीति। कानून।
विधि—ब्रह्मा। कर्म। भाग्य। रीति। चाल। —**ना**, दैव, विधाता।—**वत**, यथाविधि। रीतिके अनुकूल।
विधु—इन्दु, चाँद।—**धुंतुद**,राहु। —**बदनी**, चंद्रमुखी।
विधुन्तुद—राहु। चन्द्रमाको तंग करनेवाला।
विध्वंस—नाश। नष्ट कर, उजाड़-कर।
विन / **विनु**—विना, निषेध।
विनता—गरुडजीकी माताका नाम। दक्षकी कन्या।
विनती—प्रार्थना, विनय।
विनव—(क्रिया) बिनती करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं।
विनस—(क्रिया) नष्ट होने, बिग-ड़नेके अर्थमें, "चढ" धातुके अनुरूप।
विना—छोड़कर, रहित, सिवा।
विनायक—श्रीगणेशजी। गरुड़जी। बुद्धदेव। गुरु। विघ्न। बाधा।
विनिश्चित—अति दृढ। पक्का।
विनिंदक—प्रायः निन्दा करनेवाला। विशेष निंदा करनेवाला।
विनीत—नम्र, झुका हुआ। अति नीतिवान्।
विनोद—खेल।

विप्र—द्विज, ब्राह्मण।
विपरीत—उलटा, प्रतिकूल।
बिपिन— वन, जंगल।
बिपुल—बहुत, अधिक।
बिपुलाई—अधिकता।
बिबर—बिल, छेद, मांद।
बिबर्द्ध—बहुत, बढ़ती।
बिबरन—विवर्ण। पीला। बेरंग। फक। मुरझाया। विस्तृत वर्णन। ब्योरा।
बिबस—विकल, व्याकुल।
बिबाकी—नाश, समाप्ति, वारा-न्यारा।
बिबाद—हुज्जत, झगड़ा, बकवाद।
बिबिध—अनेक भांति।
बिबुध—देवता, पंडित।—बन, नन्दनवन, देवताओंका वन।—बैद, देवताओंके वैद्य, अश्विनीकुमार।
बिबेक—विचार। ज्ञान। भले बुरेकी समझ।
बिबेकी—समझदार।
बिभक्त—भाग किया हुआ, बँटा हुआ।
बिभव—संपदा, धन। पालन। मोक्ष।
बिभंजन,—तोड़नेवाला, नाश करनेवाला।
बिभाग—भाग, टुकड़ा, खंड, अंश।
बिभाती—प्रकाशित होती है। मालूम होती है।
बिभीषन—रावणके सबसे छोटे भाईका नाम। विशेष भयानक।
बिभु—प्रभु, परमेश्वर। व्यापक।
बिभूति—सम्पदा, ऐश्वर्य। भस्म।
बिभूषन—अलंकार, आभूषण।
बिभेद—दुर्भाव, जुदाई। भिन्नता।
बिभो—हे व्यापक।
बिमद—मदरहित, बिना घमंड।
बिमल—निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध।
बिमात्र—सौतेला भाई।
बिमाता—सौतेली मा।
बिमान—आकाश-मार्गमें चलने-वाली सवारी।
बिमुख—विरोधी, प्रतिकूल।
बिमूढ़—महामूर्ख।
बिमोह—मूर्खता।
बिया—(क्रिया) जनने, बियानेके अर्थमें। इसके रूप "पिरा", "सिरा" आदिकी तरह होते हैं।
बियोग—बिछोह, जुदाई।
बियोगी—बिछुड़ा हुआ।
बिरक्त—उदास, त्यागी, वैरागी।
बिरच—(क्रिया) रचने, बनानेके

अर्थमें। इसके रूप चढ़ धातुकी तरह होते हैं।

विरचि—रचकर, बनाकर।

विरची—बनाई, रची।

विरज—सात्त्विकी। निर्मल।

विरत—संसारसे छूटा हुआ। वैरागी। उदासीन।

विरति—त्याग, उदासीनता। वैराग्य। अति प्रीति।

विरथ—बिना रथ। पैदल।

विरद—यश, स्तुति। प्रतिज्ञा। दंतरहित। बूढ़ा।

विरल—छितराया हुआ। अलग अलग।

विरला—कोई, कोई एक, एकाध।

विरव—बिरवा, बीरो, पौधा। सुनसान।

विरस—रसरहित, फीका।

विरहवंत—वियोगी, छूटा हुआ। विरहसे दुःखी।

विरहाकुल—वियोगसे व्याकुल।

विरहागी—वियोगाग्नि, जुदाईकी आग।

विरहित—वियोगप्राप्त, वियोगी। विहीन। बिना।

विरहिन—बिछुड़ी हुई। वियोगिनी।

विरही—वियोगी।

विराग—वैराग्य। त्याग।

विरागी—त्यागी।

विराज—(क्रिया) विराजने, सोहनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

विराट—विश्वरूप, ईश्वरका सर्वसृष्टिमय रूप। अत्यन्त बड़ा।

विराध—एक राक्षसका नाम जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मारकर गाड़ दिया।

विरुज—निरोग।

विरुद्ध—प्रतिकूल। वैरी।

विरुदावली—यशसमूह। बाने। प्रतिज्ञाएं।

विरुदैत—प्रतिज्ञावाला। प्रणधारी।

बिरंचि—ब्रह्मा।

विलंब—देर, अबेर।

विलक्षण—अद्भुत।

बिलख—(क्रिया) दुखसे पीड़ित होने, रोने, उदास होनेकी दशामें कुछ कहने या शिकायत करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बिलग—अलग, भिन्न। दूसरा।

बिलगा—(क्रिया) अलग होने, जुदा होनेके अर्थमें। "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह इसके रूप होते है।

बिलगाव—(क्रिया) "चढ़ाव" की तरह इसके सभी रूप होते हैं। अलग करनेके अर्थमें।

बिलप—(क्रिया) रोकर शिकायत करने या बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बिला—(क्रिया) नष्ट हो जाने, मिट जानेके अर्थमें। इसके रूप "पिरा" "सिरा" की तरह होते हैं।

बिलाप—रोदन। अति दुखको रुलाई।

बिलासिनी—प्रसन्न मनवाली। विलास करनेवाली।

बिलोक—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बिलोचन—दोनों आंखें।

बिलोव—(क्रिया) मथनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं।

बिवेक—ज्ञान, समझ।

बिसद—स्वच्छ। उजला। पवित्र। स्पष्ट। सुन्दर। विशद।

बिसाल—बड़ा, फैला हुआ।

बिसिख—तीर।

बिसुद्ध—निर्मल।

बिसेष—अति। ज्यादा। भेद। खास।

बिसोक—शोकरहित। अत्यन्त शोक।

बिस्तर—विस्तार, फैलाव। सेज। (क्रिया) फैलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

बिस्राम—ठहराव, आराम। थकान-मिटाना।

बिस्व, (विश्व)—जगत।

बिस्वरूप—विश्वरूप, विराट भगवान।

बिस्वामित्र—एक ऋषिका नाम। विश्वके मित्र।

बिस्वास—प्रतीति एतबार। प्रत्यय। यकीन।

बिषम—टेढा। भयकर।—ता, असमानता। टेढापन।

बिषय—सुखकी सामग्री। इन्द्रियका सुख। धन। सम्पत्ति। सभोग। क्रीड़ा।—क सबधी।

बिषयी—विषयोंका भोगनेवाला।

बिषाद—शोक। दु:ख। ताप। रज। संताप।

बिष्टा—मल, गोबर, लीद।

बिष्णु—ईश्वर।

सदैव—सदाही।
सद्य—तुरन्त, उसी दम।
सन—से, साथ।
सनकादि—सनक १, सनन्दन २, सनातन ३, सनत्कुमार ४, ये चारों बालस्वरूप ऋषि।
सनकार—(क्रिया) सनकियाने या इशारा करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
सनबन्ध (सम्बन्ध)—संयोग, नातेदारी।
सनमान—आदर, मान, बड़ाई।
सनमुख—सामने। संमुख। मुकाबलेमें।
सनाथ—स्वामिसहित। कृतार्थ।
सनाला—डांड़ीसहित। नालसमेत।
सनाह—कवच। पतिके साथ।
सनेह (स्नेह)—प्यार, प्रीति, नेह, तेल, घृत, प्रेमसे।
सनेही (स्नेही)—प्रेमी, प्यारा। प्रेमीके साथ।
सन्निपात—एक रोग जिसमें तीनों दोष समान रूपसे बिगड़ जाते हैं।
संन्यासी—त्यागी, भिक्षुक।
स, सपंच्छ—परदार, पर्वा। मददके साथ। दलसहित।
सप्त—सात, ७।
सप्तावरन—सात परत।
सपथ—शपथ, सौगन्द, किरिया। सौंह।
सपदि—जल्दी, झटपट।
सपन (स्वप्न)—सपना।
सपरन—पत्तोंसमेत। प्रणके साथ। हो सकना, सँपड़ना।
सपर्व—गंठीला। पर्वयुक्त।
सपेला—सांपका बच्चा, पोआ।
सफरी—एक प्रकारकी मछली।
सब—सर्व, पूरा।
सबर—वरयुक्त, पतियुक्त। तोष, सन्तोष। भील। एक जंगली जाति।
सबहि—सबको, सभीको।
सब्द (शब्द)—ध्वनि, वाणी।
सभय—डरा हुआ।
सभा—समाज, दरबार।—सद, सभाका अधिकारी। सभापात्र।
सभीत—डरा हुआ, भययुक्त।
सम—समान, बराबर, जैसा। तुल्य।
समझ—(क्रिया) समझनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
समझाव—(क्रिया) समझानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

ध—पंडित। बुधवार। चंद्रमाका पुत्र।

धि—बुद्धि, मति, समझ, विचार।

झ—समझ, ग्यान, समझकर, जानकर, पूछकर। (क्रिया) जानने, पूछने और समझनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

ड़—(क्रिया) डूबने और मग्न होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

ड़—बूढा। बड़ा।

ता—बल, पुरुषार्थ, समाई। हौसला।

द—समूह, दल।

दारक—सुर, देवता। सुन्दर। उत्तम। अधिक। सम्मान्य। अमर।

क—भेड़िया।

त्तान्त—समाचार, हाल।

त्ति—जीविका।

था—व्यर्थ, निष्प्रयोजन।

द्ध—बड़ा, बूढा। बढा हुआ।

द्धि—बढती।

प—बैल। विष्णु। धर्म्म।

पकेतु—बैलकी ध्वजावाला। श्रीमहादेवजी।

बैल, साड़। राड। उत्तम।

वृपली—शूद्रा। दासी।

वृष्टि—वर्षा। मेह।

वेग—झोंक। फुरती। शीघ्रता।

बेचारा—लाचार, गरीब। असमर्थ।

वेदसिरा—एक मुनिका नाम।

वेदिक, वेदि—वेदी। यज्ञादिके लिये एक छोटा सा चबूतरा।

वेध—(क्रिया) छेदनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

वेनु—वेण नामका राजा स्वायंभुव मनुके वंशमें हुआ। यह नास्तिकोंके फेरमें पड़कर बहक गया। यज्ञादि शुभ कर्म्म बन्द कर दिये। प्रजाको पीडा देने लगा। जाति-भेदको मिटानेके प्रयत्नमें इसने समाजको उच्छृंखल कर डाला। अन्ततः ऋषियोंने इसे मार डाला। इनके जघेसे "निषाद" और बाहुसे "राजा पृथु"को उत्पन्न किया। [पद्म०। मनु० ७।४१।।९।६६-६७॥] बांस। बीन। वंमी।

वेनी (वेणी)—त्रिवेणी, प्रयाग तीर्थ, स्त्रियोंके गुथे हुए केश।

बेनु, (बेणु)—बसी, बांस। एक प्रसिद्ध राजाका नाम।

बेर—देर, अबेर। समय। बेर। बेरका वृक्ष।

बेरा(बेला)—समय, काल। नावोंका बेडा।

बेरे—बेडे। नाव।

बेष—रूप स्वरूप, बाना, भेस।

बेसर—खच्चर। नथ।

बेसाह—(क्रिया) खरीदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

बेहाल—बेचैन, व्याकुल।

बेह—छेद। बेध।

बैकुण्ठ—विष्णुका धाम।

बैठार—क्रिया, बैठालनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

बैतरनी—यमलोककी नदी। वैतरणी।

बैताल—भूत, प्रेत।

बैद्य—चिकित्सक, रोगका नाश करनेवाला।

बैदिक—वेदका, वेदपाठी, वेदाभ्यासी। वैद्यविद्या-सम्बन्धी।

बैदेही—विदेहकी कन्या, सीता।

बैन,(वयन)—बात, वचन।

बैनतेय—विनताके पुत्र। गरुड।

बैना—वचन। भाजी, बायन। पेशगी। साई।

बैभव—ऐश्वर्य, धन।

बैर—शत्रुता, विरोध। बेरका फ

बैराग्य—अरुचि, बैराग। विर।

बैरी—शत्रु।

बैखानस वानप्रस्थ। तो आश्रमवाला।

बैस—वयस, अवस्था, आयु।

बैसा—बैठा, विश्राम क्रिया।

बोध—समझ, ज्ञान।

बोर—(क्रिया) डुबोने, बोरने निमग्न करनेके अ इसके रूप "चढ" के अ होते हैं।

बोल—(क्रिया) कहने, बुलाने बुलवानेके अर्थमें, "चढ़ अनुरूप। वचन। व त

बोलि—बुलाकर। बुलव कहकर।

बोव—(क्रिया) लगाने, ज अर्थमें। इसके रूप "च धातुकी तरह होते है

बोहित—जहाज, जलयान।

बौर—चंवर, बाल। आमकी म आकाशबेल।

बौरा—क्रिया, बौर लगने या हो जानेके अर्थमें "च के अनुरूप। पगला।

—ई पागल हो जाय। पाग गयी। पागल हो

बौराह—पागल, सनकी।

बौरी—पगली।

ब्या—क्रि., ब्यानेके अर्थमें 'बियाना' की तरह।

ब्याकुल—घबराया हुआ।

ब्याज—बहाना, छल, हीला। सूद।

ब्याधा—चिड़िया फँसानेवाला। शिकारी। बहेलिया। आखेटिक। आखेटवाला।

ब्याप—क्रि., फैलना सब जगह छा जानेके अर्थमें, व्यापकी तरह—वि., सब जगह फैला या समाया हुआ।

ब्याल—अजगर। एक प्रकारका दानवाकार साँप जो कुण्डल बाँधता है। हाथी।

ब्यास—थोड़ेका विस्तार। वृत्तका [illegible] सबसे लम्बी काट या रेखा। वेदोंको चार भागोंमें बाँटने और पुराणों इतिहासोंका विस्तार करनेवाले महर्षि। पराशर मुनिके पुत्र।

ब्याह—क्रि., विवाह करने या करानेके अर्थमें "ब्याहना" की तरह। विवाह। शादी।

ब्रन—फोड़ा, जखम।

ब्रह्म—ईश्वर, परमात्मा। वेद। ब्राह्मण। ब्रह्मा। तपस्या। ज्ञान। ब्रह्माण्ड।—चर्य, विद्यार्थिदशा। आत्मसंयम आदि नियमोंका पालन करनेवाला।—पद,—त्व, ब्रह्मका स्वरूप। ब्रह्मको निज। ब्रह्मका निज रूप है।—र्षि, ब्रह्मज्ञ ऋषि।—लोक, ब्रह्माका धाम।

ब्रह्माण्ड—ब्रह्मा द्वारा विरचित अण्ड-रूप विश्व।

ब्राह्मण—द्विज। ब्रह्मज्ञानी। ब्राह्मण जाति।

ब्रीड़ा—लज्जा। संकोच। हिचकिचाहट। शर्म।

भ

भंग—नाश। नष्ट। बिगड़ा हुआ। टूटा हुआ। टुकड़ा। टेढ़ाई। कुटिल। भाँग।

भंज—क्रि., नाश करने या तोड़नेके अर्थमें, "भंजना" की तरह।

भंजन—तोड़नेवाला। नाशक। नाशन।

भंडार—कोष, वस्तु रखनेका स्थान।

भई—हुई, होगई। भाई।

भगत, भक्त—भगत। प्रेमी। बँटा हुआ। जिसे बांटा गया हो।

—वछल,वतसल,वत्सल,भक्तों-को ऐसा प्यार करनेवाले जैसे गाय बछड़ेको प्यार करती है।

भगति,भक्ति—आराधना,उपासना। सेवा, प्रेम। श्रद्धा।

भगवान, भगवंत—ईश्वर।

भगिनि—बहिन।

भगीरथ—एक राजाका नाम जो श्री गंगाजीको मृत्यु-लोकमें लाये।

भच्छ—क्रिया, खाने, भक्षणके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

भज—क्रिया, भजन करने या भागनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

भजन—गान। जप। गानेका छन्द। भगदड़, दौड़।

भजामहे—हम लोग भजते हैं।

भजामि—मैं भजता हूं।

भट—वीर, योधा।

भटभेरे—धक्कमधुक्का। कुश्ती। लड़ाई। भटोंका भिड़ना।

भड़िहाई—चोरी, दगाबाजी। हांडी उठा ले भागना।

भनित—वर्णित, कहा हुआ।

भद्र—कल्याण, भला।

भदेस—भद्दा, कुरूप।

भन—क्रिया, कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

भभर—क्रिया, घबराने, रोमांचित होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

भय—डर।

भयाकुल—डरसे घबराया हुआ।

भयानक—भयंकर, डरावना।

भयंकर—डरावना। भयानक।

भर—क्रिया, पूर्ण करने, पालन-पोषण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

भरता—प्रभु, स्वामी। पालने-वाला। पूरा करनेवाला। पति। भुर्ता, चटनी।

भरद्वाज—एक ऋषिका नाम।

भरन—पालन, पोषण। धारण।

भरनी—पालन-पोषण करनेवाली, पूर्ण करनेवाली। एक नक्षत्र जिसमें वृष्टि होनेसे सर्प मरते हैं।

भरिता—भरनेवाली, पूर्ण करने-वाली। पालन करने-वाली।

भरोस—सहारा, आशा, विश्वास।

भल—अच्छा, उत्तम।

भला—अच्छा, प्यारा, उत्तम।
भलाई—भलमनसी, नेकी।
भव—संसार। कल्याण। जन्म। महादेवजी।
भवतब्यता—होनहार, भावी।
भवदु—तुम्हारा, आपका।
भवदंघ्रि—आपके चरण।
भवन—घर।
भवमोचन—संसारसे छुड़ानेवाला। जन्म-मरणसे, छुड़ानेवाला।
भवानी—पार्वती।
भवाम्बुनाथ—भवसागर। संसार-सागर। संसार-समुद्र।
भवितब्यता—देखो 'भवतब्यता'।
भांड़—नकल करनेवाला। विदूषक। बरतन। मटका।
भांड़े—कूंड़ेमें। बरतनमें।
भांति—तरह, रीति। जाति।
भांवरी—फेरी। घुमरी।
भा—हुआ। चमक।
भाउ—भाव, प्रेम। जन्म।
भाग (भाग्य)—प्रारब्ध। क्रिया, भागने, चले जानेके अर्थमें। "चड" की तरह।
भाज—क्रिया, भागने, दौड़ने, बांटने और तोड़नेके अर्थमें, "चड" की तरह।
भाजन—पात्र, बरतन।
भाट—प्रशंसा करनेवाला। कवि। पंडित। भट्ट।
भात—उबला हुआ चावल।
भाति—मालूम होता है। झलकता है।
भाती—चमकती है, प्रतीत होती है। प्रिय। कमनीय, प्रिय-लगनी।
भाथा—तरकस, तीर रखनेका चोंगा।
भाथी—धौंकनी।
भानु—सूर्य।
भामा—स्त्री। तरुणी।
भामिनी—स्त्री। लुगाई।
भाय—भाई। भाव। प्रीति।
भायप—भाईचारा।
भाये—अच्छे लगे।
भायें—अनुमानसे। जाननेमें। भावमें।
भार—बोझ। भाड़।
भारती—शारदा, वाणी। भरत-खंडकी वस्तु।
भाल—माथा, मस्तक।
भालु—रीछ।
भाव—जीकी बात। हृदयका आशय। कवितके भाव। कुण्डलीके १२ घर। क्रिया, अच्छा लगने, मनमें

प्रिय लगनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

भावती—रूपवती, सुन्दरी। प्रिय। प्यारी।

भावना—सोहावन, अच्छा। श्रद्धा। रुचि।

भावनो—प्यारा। भानेवाला।

भावी—होनहार।

भाष—क्रिया, कहनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

भास—क्रिया, मालूम होने, जान पडनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

भिंदिपाल—युद्ध करनेका एक शस्त्र।

भिन्न—अलग, जुदा। विभक्त।

भिनुसार—सवेरा, भोर।

भिर—क्रिया, लडने भिडनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

भिल्ल—वनचरोंकी एक जाति, भील।

भिखारि—भिक्षुक, मंगन, कंगाल।

भीख—भिक्षा, याचना।

भीत—दीवार। डरा हुआ।

भीतर—अन्दर, बीचमें।

भीती—भीत। डर, भय।

भीम—बहुत बडा। भयकर।

भीर, भीरा, भीरि—बोझ। भीड। समीप, भिड़ा हुआ। डरपोक।

भीरु—डरपोक, डरा हुआ।

भुआल—भूपाल, राजा, पृथ्वीपति।

भुअंग—भुजग, व्याल।

भुज—बाहु, बाह।

भुजग, भुजंग—सर्प साप।

भुजदंड—भुजा, बाहु। बाँह।

भुजा—बाँह बाहु।

भुअ—भूमि, पृथ्वी। हुआ।

भुवन—लोक। चौदह या तीन लोक। देखो "लोक"।

भुवनेस्वर—भगवान, परमेश्वर।

भुवपाल—राजा, भूपति।

भुवि—भूमि, पृथ्वी।

भुला—क्रिया, भूलनेके अर्थमें, सिरा, मिरा आदिकी तरह।

भुलाऊ—भुलाव। भुलानेवाला।

भुसुंडि—एक प्रकारका शस्त्र। तोपका मुख। एक भक्तका नाम जिनको कौआ हो जानेका शाप मिला और कौआ हो गये।

भूज—क्रिया, भूनने और भोगनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

भूत—जीव। प्रेत। प्राणी। हुआ, बीता। जड़ पदार्थ। पाचोंमेंसे कोई एक तत्त्व।

भूतल—धरती, धरातल ।

भूति—ऐश्वर्य । सम्पत्ति । भस्म ।

भूधर—पर्वत, अचल ।

भूप, भूपति, भूपाल—राजा ।

भूमि—धरा । धरती ।

भूमिनाग—दिग्गज । शेषनाग । पृथ्वी भरके हाथी वा सर्प जाति ।

भूरजतरु—भोजपत्र, एक पेड़का छिलका ।

भूरि—बहुत, ढेर ।

भूल—भूलचूक । चूक, गलती । क्रिया, "चढ" की तरह चूकनेके अर्थमें ।

भूष—क्रिया, भूषित करने या सजानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

भूषन—अलंकार, गहना ।

भूषित—अलंकृत ।

भूसुर—भूदेव । ब्राह्मण ।

भृङ्ग—भौंरा ।

भृंगी—महादेवजीके एक गणका नाम । बिलनी या भौंरा ।

भृकुटि—भौंह ।

भृगु—एक महर्षिका नाम ।

भृगुनाथ—भृगुकुलमें श्रेष्ठ । परशुराम ।

भेदी—भेदी, भेदका जाननेवाला । भिगोयी ।

भेऊ—भेव, भेद, मन्त्र । फूट, फुटमत ।

भेक—मेंडक ।

भेद—छिपी बात । फुटमत, फूट ।

भेरी—नगाड़ा । नरसिंहा । तुरुही ।

भेव—भेद, मर्म । जुदाई । फूट ।

भेष—रूप । वेष ।

भेषज—औषध, दवा ।

भैया—भाई ।

भोग—विलास । सुख । देवताका नैवेद्य । जो भुगतना पड़े ।

भोगावती (भोगवती)—सर्पोंकी नगरी । गंगाकी उस धाराका नाम जो पातालमें है ।

भोजनखानी—रसोईका घर । जहाँ सब प्रकारके भोजन प्राप्त हों ।

भोर—प्रातःकाल, बिहान । भूल । सन्देह ।

भोरा—भोला, सीधा सादा । मूर्ख । धोखेसे, भूलसे ।

भोरी—भोली । सीधी ।

भौतिक—शारीरिक, जीवों करके । भूतोंके द्वारा । सांसारिक जड़ पदार्थ-सम्बन्धी ।

भौम—मङ्गल । भूमिका पुत्र । नवग्रहोंमेंसे एक ग्रह ।

भौंह—भौं, भृकुटि।
भ्रम—धोखा। सन्देह। भूल। चूक।
भ्राज—शोभा, चमकने सुहावना लगनेके अर्थमें, "चन्द्र" की तरह।
भ्राजा—सुहाया, शोभित हुआ।
भ्रात भाई। वीर।
भ्रू—भौं, भृकुटि।

म

मंगना (मंगन)—मांगनेवाला। भिखारी।
मंगल—शुभ, भला।—**द्रव्य**, मंगलसूचक वस्तु (पुष्प अक्षत, दूब, नारियल,हल्दी, सुपारी आदि)।—**मय**—आनन्दमय।
मच—मचान, माची, ऊँची बैठनेकी ठहर।
मंजन (मज्जन)—स्नान, नहान धोवन। दांतमें मलनेके लिये चूर्ण।
मंजीर—पायजेब। शब्द करनेवाला पैरका आभूषण। मजीरा।
मंजु—सुन्दर, मनोहर।
मंजुल—सुन्दर। प्रिय।
मंजूषा—सदूक।
मंडन—भूषण, शृंगार।
मंडल—घेरा। गोल चौतरा। समूह।
मंडली—समूह, दल, टोली।
मडलीक—राजा, मडलीका सरदार।
मडित—शोभित। सजाया हुआ।
मन्त्र—गुरुका उपदेश। सलाह। भेदकी बात।
मन्त्रराज—राम-नाम-मन्त्र। मन्त्रोंका राजा।
मन्त्री—मन्त्र जाननेवाला। सलाहकार। सचिव।
मंद, मंदा—नीच। अभागा। शनि। अधम। घटा हुआ। धीमा। सुस्त मूर्ख।
मदर—मन्दराचल। एक पर्वतका नाम।
मंदाकिनी—श्री गंगाजीकी उस धाराका नाम जो स्वर्गमें बहती है। चि... बहनेवाली नदी।
मंदिर—घर। देवालय।
मंदोदरि—रावणकी स्त्री।
मइके—माताके घर, नैहर।
मइत्री—मित्रता। प्यार।
मकर—दसवीं राशिका नाम

मगर। माघ महीना। फरेब।

मकरी—मगरी। जाल लगानेवाली मकड़ी। एक रोगका नाम। मचली।

मकरंद—पुष्प रस। फूलोंका रस।

मकु—बल्कि, किन्तु।

मख—यज्ञ।

मग—मग्गह, मागह। मार्ग। राह। शाकद्वीपीय या पारसी ब्राह्मणोंकी एक जाति जिसे साम्ब भारतमें लाये थे।

मगन—मग्न। डूबा हुआ। बेसुध।

मगह—एक देशका नाम, मगध देश।

मगु—मार्ग। राह।

मघवा—देवराज, इन्द्र।

मचला—क्रिया, छलाने मचल पड़नेके अर्थमें, सिरा, पिरा आदिकी तरह।

मज्ज—क्रिया, नहाने धोनेके और डूबनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मज्जन—नहान, स्नान।

मज्जा—चर्बी, मेद।

मझारि } **मझारी** } मध्य, बीच, भीतर, में।

मत—सम्मति, राय, सलाह।

मत्त—उन्मत्त, मतवाला। अहंकारी।

मतवारे—नशेमें चूर। दीवाने। पागल।

मतसर—ईर्षा, डाह, कुढ़न।

मति—बुद्धि, समझ।

मते—हिसाबसे, लेखे। रायमें।

मथ—क्रिया, मथन करने या फेंटनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मथानी—बिलोयनी।

मद—अहंकार, अभिमान।

मदन—कामदेव।

मध्य—बीच, भीतर।

मध्यगति—बिचला, मेल, प्रवेश।

मध्यदिवस—दोपहर।

मध्यम—बिचला। उदासीन।

मधु—चैत्रमास। वसन्त ऋतु। शहद। जल। मीठा। एक दैत्यका नाम।

मधुकर—भौंरा।

मधुप—भौंरा।

मधुपर्क—कांस्यपात्रमें दधि।

मधुर—मीठा, प्रिय।

मन—हृदय। आत्मा। दिल। तबीयत।

मनजात—मनसे उत्पन्न, कामदेव। चिन्ता।

मनमथ—मनका मथन करनेवाला। कामदेव।

मनमारे—उदास। उदासीके साथ।

मनसहिं—मनमें, मनसे। इच्छाको।

मनसा—इच्छा, मनोरथ, सम्मति। मनके द्वारा।

मनसि—मनसे, हृदयसे। मानसिक।

मनसिज—कामदेव, मनसे उत्पन्न।

मनाक, **मनाग**, **मनागपि**—जरा भी, तनिक भी। थोड़ासा, कुछ भी।

मनि (मणि) जवाहिर। मालाके दाने। सर्पका मणि।

मनिश्रारा—मणिवाला, जौहरी।

मनु—मानो। ब्रह्माके पुत्र, मनुष्योंके आदि पुरुष, धर्म शास्त्रके प्रणेता। जैसे।

मनुज—मनुष्य, मनुसे उत्पन्न।

मनुजाद—मनुष्योंको खानेवाले राक्षस।

मनुसाई—भलमनसी। पराक्रम।

मनोगत—मनमें प्रविष्ट।

मनोज, **मनोभव**—मनमें उत्पन्न। कामदेव।

मनोमल—मनका विकार, भीतरका खोटापन।

मनोरथ—इच्छा, कामना, चाह।

मनोरम—सुन्दर, दिलचस्प। जिसमें मन रम जाय।

मनोहर—मनहरन, प्यारा।

मम—मेरा, अपना। ममता।

ममता—अपनायत। मोह। प्यार।

मयंक—चन्द्रमा।

मय—एक मायावी दैत्यका नाम। जब यह किसी शब्दके पीछे आता है तब इसके अर्थ, पूर्वसे मिला हुआ, बना हुआ, तदाकार, तद्रूप, रत इत्यादि होते हैं।

मयन—कामदेव। मदन।

मयना—हिमालयकी स्त्रीका नाम पार्वतीकी माता। सारो या सिरोही चिड़िया।

मयूष—सुधा, अमृत। किरण।

मयन्द—एक वानरका नाम।

मर—क्रिया, मरनेके अर्थमें, "चद की तरह।

मरकत—नीलम, नीलमणिसा नीला

मरजाद—मर्यादा। हद। रीति।

मरन—मरण। मौत।

मरनसील—मरनेके स्वभाववाला, मरनेयोग्य।

मरम—मर्म, भेद।

मरद—क्रिया, मलने, मसलने

अर्थमें, "चढ" धातुकी तरह। मर्द। पुरुष।

मरदन—नाश करनेवाला। मसल डालनेवाला। मरदनेकी क्रिया।

मरम—मर्म। भेद। शरीरके वह भाग जिनपर चोट लगनेसे तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

मरमी—भेदी, भेदिया। गुप्त बातोंका जाननेवाला।

मरायल—जनखोर। जो सदा मार खाता रहे।

मराल—हंस।

मरु—एक देशका नाम, निर्जल देश, मारवाड़। रेगिस्तान।

मरुत—वायु। हवा।

मरोर—क्रिया, मरोड़ने या उमेठनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

मल—मैल, तलछट। मैला। पाप।

मलय—सफेद चदन। सुगंधित। चन्दनगन्ध।

मल्ल—पहलवान, योधा।

मलाकर—मलकी खानि, मैलका ढेर।

मलान—मैल, उदासी। मैला। घृणा। अरुचि।

मलिन
मलीन } मैला, अशुद्ध, बुरा।

मष्ट—मौन, चुप। बस।

मसक—मच्छर। पानी भरनेका चमड़ेका थैला। —**दंस,** मच्छरोंके डंक। मच्छर और डांस।

मसखरी—हंसी, दिल्लगी। मसखरापन।

मसान—श्मशान, मरघट।

मसि—स्याही, कालख।

महत—बड़ा, महान।

महतारी—माता, जननी।

महति—बड़ी, श्रेष्ठ।

महा—बडा, श्रेष्ठ।

महागद महारोग। असाध्य रोग।

महाजन—बड़े लोग, अच्छे लोग, धनी।

महातम—बड़ाई, प्रशंसा।

महान—बडा, श्रेष्ठ।

महामोह—अज्ञान। भारी मूर्खता।

महि—पृथ्वी, धरती। —**देव,** महीसुर, विप्र, ब्राह्मण, —**पाल,** भूपाल, राजा।

महिमा—माहात्म्य, बड़ाई।

महिष—भैंस, भैंसा। —**पेस,** भैंसेके स्वामी, यमराज।

महिषी—महारानी, विवाहिता स्त्री। पत्नी। भैंस।

मही—पृथ्वी।

महीप—राजा। जमींदार।

महीपति, महीश्वर } नृप, राजा।

महीसुर—भूसुर, ब्राह्मण।

महेस—महादेवजी।

महोत्सव—बड़ा भारी उत्साह।

महोप—एक प्रकारका पक्षी।

माई—माता। एक ओषधिका नाम।

माख—माष। उरदी। बड़ी जातिकी मक्खिका। रोष। क्रोध।

माखी—मक्खी, माछी। रुष्ट हुई।

मागध—वंश-प्रशंसक, भाट। मगध देशका रहनेवाला।

माघ—एक महीनेका नाम। एक काव्यके ग्रन्थका नाम।

मच,माच—क्रिया, होने, आरंभ होने, जारी होने, मचनेके अर्थ में, "चद" की तरह।

मांगने—भिखारी। भिक्षार्थ।

मांजा—वर्षाके नये जलका फेन।

मांझ—मध्य, बीच, अन्दर।

मांडवी—श्रीलक्ष्मणजीकी स्त्रीका नाम।

मांस—सालन। गोश्त।

मांहीं—भीतर, में।

माजा—मांजा। वर्षाके नये जलका फेन मला। साफ किया

माझ—मध्य, बीच।

मात—मा, माता।

मात्र—केवल, सिर्फ, इतना ही। परिमाण।

मातलि—इन्द्रका सारथी।

माती—मतवाली, पगली।

मातु—माता।

माते—मतवाले, उन्मत्त।

माथ, माथा } मस्तक, भाल।

माधव—लक्ष्मीके पति, नारायण। वसंत ऋतु।

माधुरी—मिठाई, मिठास।

मान—सम्मान, प्रतिष्ठा। अहंकार। रूठन।

मान्य—माननेयोग्य।

मान्यता—पूजा, सत्कार, मान।

मानस—तालाब। मन। मन करके। मानसरोवर।

मानसमूल—मानसरोवरसे निकली हुई सरयू नदी।

मानसिक—मन करके; मनसे। मनसम्बन्धी।

मान—क्रिया, मान लेने, स्वीकार करने, अंगीकार करने या कबूल करनेके अर्थमें "चद" की तरह।

मानिक—माणिक्य, लाल मणि।

मानुष—मनुष्य ।

माप—क्रिया, नापने, सीमा-बद्ध करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह ।

माम्—मुझको ।

माय—माता । समाय ।

माया—ईश्वरकी शक्ति । भुलावा । छल । नखरा । कपट । इन्द्रजाल ।

मायापति—ईश्वर ।

मायावी—कपटी, जालिया ।

मायिक—मायाका बना । झूठ, छल, कपट ।

मायी—मायाका स्वामी । माता ।

मार—कामदेव । मारकर । मार दे । एक प्रकारकी मूली ।

मार—क्रिया, मारनेके अर्थमें "चढ" की तरह ।

मारग—(मार्ग) मग, पथ ।

मारव—मत बजा शब्द न कर । मालवा देश । मरुस्थलके बीच सजल देश ।

मारीच—ताड़काका छोटा लड़का, सुकेतुका नाती और रावण-का बन्धु और मन्त्री जिसे विश्वामित्रकी यज्ञरक्षामें श्रीरामचन्द्रजीने बिना फल-के बाण मारकर दूर गिरा दिया था, और जो रावण-की सलाह मान, हिरन बन रामचन्द्रजीको छलपूर्वक आश्रमसे अत्यन्त दूर ले गया और उन्हींके हाथों मारा गया ।

मारुत—हवा ।

मारुति—हनुमानजी । मरुतके पुत्र ।

माल—माला, दाम, पाँती । धन-दौलत, जमा ।

माल्यवंत—रावणके मंत्री और नानाका नाम ।

मालव—एक देशका नाम । मालवा देश । मालवा देशका रहनेवाला ।

माला—माला । हार । समूह ।

माली—बागका रक्षक । बागवान । माला बनानेवाला । माला पहननेवाला । समूहका नायक ।

माषी—रुष्ट हुई । माखी ।

मास—मांस, गोश्त । महीना ।

मासा—महीना । मास । माषा । एक तोलेका बारहवा भाग । एक टंकका दसवा भाग । छटंक या छटांकका साठवां भाग ।

माहुर—विष ।

मिट—क्रिया, मिटाने, अभाव कर देने, नष्ट कर देने, साफ कर देनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मित—मर्यादित। बँधा। नपा तुला थोड़ासा। प्रमाणयुक्त।

मित्र—मान, साथी, दोस्त। सूर्य।

मिताई—मित्रता। साथ। दोस्ती।

मिति—मर्यादा। अन्त। नतीजा। नाप तोल। वधेज। तिथि।

मिथ्या—झूठ, असत्य।

मिथिला—जनकपुर। —लेस, राजा जनक।

मिल—क्रिया, मिलनके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मिलाप—मेल। संग।

मिस, मिसि, मिसु—व्याज, बहाना, सबब।

मीच (मीचु)—मौत, मृत्यु, घातक।

मींज—क्रिया, मलने, मसलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

मीन—मछली। मत्स्य।

मीला—मेल। मिल गया। मिलकर।

मूंड—मूड़, सिर।

मुंडित—मूटा हुआ।

मुक्त—छूटा हुआ। जन्म-मरण-रहित।

मुक्ति—मोक्ष, गति, परमपद।

मुकुट—किरीट। राजा वा देवताओंके सिरकी टोपी।

मुकुत—मुक्त। खुला हुआ, छूटा हुआ।

मुकुता, मुकुताहल—मुक्ता, मोती। मोतियोंका ढेर।

मुकुर—दर्पण, आरसी।

मुकुंद—मुक्तिदाता, भगवान।

मुख्य—श्रेष्ठ। अगुआ। नामी।

मुखर—शब्द। झनकार। वाचाल, बकवादी।

मुखागर—मुखाग्र, जबानी, कण्ठाग्र। याद।

मुठभेर—समीपकी भेंट। अति निकटसे मिलाप। मुट्ठीका मुट्ठीसे भिड़ जाना। मुकाबिला।

मुठिका—मुष्टिका, मुक्का। हलका घूसा।

मुड—क्रिया, कतरा जाने, झुक जाने, हट जाने, धोखेमें आने, सिरके बाल कट जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मुडाव—क्रिया, सिरके बाल कटवाने और धोखा खा जाने, लुट जाने, ठग जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मुद—आनंद, हर्ष, सुख।
मुद्गर—मुगदर। एक अस्त्र। मूँगकी बनी मिठाई।
मुद्रिका—मुँदरी, अँगूठी।
मुदित—प्रसन्न, हर्षित।
मुदिता—प्रसन्न स्त्री। प्रसन्नता।
मुधा—झूठ। मिथ्या। व्यर्थ।
मुनिपट—मुनियोंके वस्त्र। छालके वस्त्र। छालटी। वल्कल वसन।
मुनिराज—मुनि-श्रेष्ठ। मुनियोंके राजा। मुनियोंमें सबसे अधिक सम्मानित।
मुनिवर—मुनि प्रधान। मुनियोंमें श्रेष्ठ।
मुनिंदा—मुनिराज। मुनीन्द्र।
मुर—क्रिया, मुडने, फिरने, लौटने, घूमने और पलटनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। एक दैत्यका नाम जिसे विष्णु भगवानने मारा जिससे उनका नाम मुरारि पड़ा।
मुरारि—मुरके वैरी। विष्णु भगवानका एक नाम।
मुरछा (मुरुछा)—मूर्च्छा, वेसुधी। बेहोशी।
मुरछ—क्रिया, वेसुध होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
मुष्टि—मुट्ठी, मुष्टिका।
मुसुका—क्रिया, मद हास्य या मुसकानेके अर्थमें, फिरा, सिग, आदिके अनुरूप।
मूक—गूगा।
मूढ़—मूर्ख, उजड्ड।
मूर (मूरि)—जड़ी बूटी, मूल, जड़।
मूरख—निर्बुद्धि। मूर्ख। बेवकूफ। जड। मूढ।
मूरति—प्रतिमा, पुतली। —**वंत**, प्रतिमावाला। ज्योंका त्यों। देहधारी।
मूर्च्छा—अचेतनता। बेसुधी।
मूल—जड़। असल। जमा, पूंजी। एक नक्षत्र।
मूलक—मूलका, जडका। शाखा। मृणाल।
मूषक—मूस। चूहा।
मृषा—झूठमूठ।
मृग—हिरन। चतुष्पद पशुमात्र। जगली चौपाया—**जल**, मरीचिका, मृगतृष्णाका जल। —**पति**, सिंह, बाघ। पशुओंका राजा। —**मद**, मृगनाभि। कस्तूरी। —**या**, आखेट, अहेर। शिकार। —**राज**, सिंह।
मृगाधीश—सिंह।

मृगी—हिरनी। रोगका नाम।

मृणाल—कमलनाल, कमलकी जड़।

मृतक—मुर्दा। मरा हुआ।

मृत्यु—मौत, काल।

मृदु / **मृदुल**—कोमल, नरस। कोमलतासे।

मृदुलाई—कोमलता, नरमी।

मृषा—झूठ, मिथ्या।

मेकल—एक पर्वतका नाम जिससे नर्मदा निकली है।—**सुता** नर्मदा नदी।

मेखल / **मेखला**—करधनी, कमरबंद।

मेघ—बादल।

मेघडम्बर—बड़ा भारी छाता। डेरा। तम्बू।

मेघनाद—रावणका ज्येष्ठ पुत्र। बादलके समान गर्जनेवाला।

मेचक—काला। श्याम।

मेट—क्रिया मिटाने, नष्ट करने, बरबाद करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मेदिनी—पृथ्वी, भूमि।

मेधा—बुद्धि।

मेरु—सुमेरु पर्वत।

मेल—क्रिया, मिलाने, डालने और फेंकनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मेष—मेढा, भेड़। ज्यौतिषमें प्रथम तारा राशिका नाम।

मैथिली—मिथिला देशकी कन्या जानकी।

मैना—हिमाचलकी स्त्री, पार्वतीकी मा।

मैनाक—एक पर्वतका नाम।

मो—मेरा, मुझ।

मोई—मोही, मोहको प्राप्त। बेसुध। मरी हुई। मोयकर।

मोक्ष—मुक्ति, गति। छुट्टी।

मोच—क्रिया, छोड़ने, गिराने, बहाने के अर्थमें "चढ़" की तरह।

मोचन—छुड़ानेवाला।

मोट—मोटा, स्थूल। खेतमे सींचनेकी पखाल।

मोद—हर्ष, प्रसन्नता।

मोदक—लड्डू। प्रसन्न करनेवाला।

मोर (मोरा)—मेरा, अपना। मयूर।

मोरपच्छ—मोरपच्छ, मोरके पख।

मोरहुति—मेरी तरफसे। मेरे वाली। मेरी पारी, मेरी बेर। मेरी सी।

मोल—मूल्य, दाम।

मोह—अज्ञान, माया। मूर्च्छा। प्यार। —**मय** झूठा महा मूर्खतासे भरा।

मोह—क्रिया, मोहित करने, ठगने

भुलवाने, छलने और बेसुध करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

मौलि— माथा, मस्तक।

य

यं—जिसको।

यक्षराज—कुबेर

यग्य—होम, हवन, जाग।—**पुरुष** श्रीमन्नारायण।

यत्—जितना, जो, जिसका। जीता हुआ, मुक्त।

यत्र—जहां।

यथा—जिस तरह, जैसे। —**तथा**, उसी तरह, जैसे चाहिये वैसे। जिस-तिस तरह।

यदा—जब, जिस समय।

यदि—अगर, चाहे, जो।

यदु—एक चन्द्रवंशी प्रसिद्ध राजाका नाम।

यम—यमराज, कृतान्त। योगका एक अंग, संयम।

यमदग्नि—एकऋषिका नाम, परशुरामके पिता।

यवन—म्लेच्छ। यवनदेशवासी मुसलमान।

याग—यज्ञ, हवन।

यामिनी—रात।

यावत—जबतक, जहांतक साथ, सहित।

" की तरह।

यूथप—सेनापति, सरदार।

योगी—ऋषि, मुनि, योग करनेवाला।

योधा—युद्ध करनेवाला, लड़ाका।

र

रंक—कंगाल, दीन।

रंगभूमि—धनुषयज्ञकी भूमि, उत्सवका स्थान, युद्ध-क्षेत्र।

रंच—किंचित, अल्प।

रंजन—हर्षदायक, मनोहर। माया। रंगनेवाला।

रंतिदेव—एक राजाका नाम।

रंध्र—छिद्र, छेद, सूराख।

रंभा—केला। एक अप्सराका नाम।

रउरे—आपका। "रउरे अंग जोग जग को है।"

रघु—सूर्यवंशके एक प्रसिद्ध राजाका नाम जिनके वंशमें श्रीरामावतार हुआ। —**नाथ** या **नायक**, रघुकुलके स्वामी। श्रीरामचन्द्र। —**पति**, श्रीरामचन्द्र। —**बर** या **राज**, श्रीरामचन्द्र।

रच्छ—क्रिया, रक्षा करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

रच्छक—रक्षक, रखवार। चौकीदार।

रच्छा—रक्षा, निगहबानी।

मृगाधीश—सिंह।

रच—क्रिया, बनाने या रचनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

रचना—बनाव, बनावट।

रज—रेत, धूल। रजोगुण।

रजक—धोबी।

रजत—रूपा, चांदी।

रजधानी—राजधानी। राजनगर।

रजनी—रात। —**चर**, निशाचर। असुर।

रजनीमुख—सायकाल।

रजाई—आज्ञा।

रजायसु—राजाकी आज्ञा, राज्यादेश।

रजु—रस्सी, लेजुर। रज्जु। धूल।

रट—क्रिया, रटने, घोखने, जपने और धुन बांधनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

रटन। धुन। —न। जप। रट। धुन।

रण—युद्ध, लड़ाई।

रत—तत्पर, मगन, मग्न, डूबा हुआ, लगा हुआ।

रतन—रत्न, बहुमूल्य, जवाहिर।

रतनारे—लाल लाल, लाल रंगके।

रति—प्रीति, स्नेह। कामदेवकी स्त्रीका नाम। क्रीड़ा।

रथक्रान्त—अफ्रीका, देश। रथ चला हुआ स्थान।

रथांग—पहिया, गाड़ीका चक्का। चक्र, एक शस्त्र। चकवा-चकई पक्षी।

रथी—रथका स्वामी, रथपर चढ़नेवाला। रथपर सवार।

रद—दांत। निकम्मा। उद्गार। छांट। उगाल। —**पट**, दांतोंका परदा, दांतोंकी आड़ अर्थात् ओठ। होंठ।

रनिवास—रानियोंके रहनेका स्थान। अन्तःपुर।

रवि—सूर्य। —**तनुजा** या **नंदिनि**, सूर्यकी कन्या, कालिंदी, यमुना।

रमेस—रमापति, नारायण।

रमन—विहार करनेवाला। व्यापक। खेल। मनबहलाव।

रमनी—रमण करनेवाली। स्त्री।

रमा—मा, लक्ष्मी। —**विलास**, धन, धनका सुख, ऐश आराम।

रम्य—सुन्दर, रमणीक।

रय—वेग, जलदी।

रअ, रंच—क्रिया, रँगने, रमने, मथने, बिलोनेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह।

रये—रंगे, रमे, मथे, बिलोये।

रव—बोल, शब्द, गुंजार।

रवि—सूर्य, सूरज।

रविकर—सूर्यकी किरणें। सूर्यका।

रस—विषय, सार, बल, प्रेम, साहित्यके नव रस (शांत, वीर, करुणा, शृंगार, रौद्र, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, हास्य), भोजनके छः रस (मीठा, खट्टा, तीता, नमकीन, कड़वा, कसैला)

रसना—वाणी, जिह्वा, जीभ, रस्सी।

रसा—भूमि, धरती, पृथ्वी।

रसातल—पृथ्वीतल, धरातल।

रसाल—मीठा। आमका पेड़ या फल। रसभरा।

रसिक—रसज्ञाता, शौकीन, प्रेमी।

रह—क्रिया, रहने और ठहरनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। मार्ग। रास्ता। एकान्त।

रहस—एकान्त। अकेलापन। रति। समुद्र। स्वर्ग। (क्रिया), अकेलेमें या एकान्तमें हो जाने या अलग होकर बात करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। (रहसी रानि राम रुख पाई।)

रहसि—एकान्तमें। अकेले। गुप्त बात। प्रसन्न होकर।

रहस्य—गुप्ततत्त्व, भेद, मर्म। भेद की बात।

रहित—हीन, शून्य, छोड़कर, वर्जित, भिन्न।

रांच—(क्रिया) लगने, रमने, तत्पर होने, लवलीन होने, लिप्त होने, लट्टू होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

रांध—(क्रिया) उबालने, पकाने, या रसोई बनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

राई—राय, राव, राजा। पति, मालिक। एक प्रकारके सरसों की जातिके परन्तु सरसोंसे छोटे दाने।

राउ
राऊ } राव, राजा, प्रधान।

राउत—सरदार, नायक, स्वामी, अफसर, राजाका घर।

राउर—आपका। राजाका। महल। राजपुर।

राका—रात।

राकेस (राकेश)—पूर्ण चन्द्र।

राख—(क्रिया) रखने, बचाने, रक्षा करने और सभालनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। क्षार। छाई।

राखी—छाई। रक्षाके लिये आशीर्वादरूप सूत। रख ली। रक्षा की।

राग—प्रेम। गान। गानके अधिष्ठाता। रंग। लेप। लगावट।

राच्छस—राक्षस, दैत्य।

राच—(क्रिया) रचने, रचाने, मन-सूबे करने और रचना करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

राज—(क्रिया) विराजने, सोहने, और बैठनेके अर्थमें, "चढ" की तरह। रियासत। मिलकियत। सम्पत्ति। स्वामित्व। राजाके अधिकारगत देश। थवई, राजगीर, पेशराज। भेद, रहस्य। स्वाधीनता। स्वाधीन देश या बस्ती। राज्य। **—धानी**, राजाका नगर। राजकी प्रधान बस्ती। **—धर्म, नय, नीति**, राज्यके सिद्धान्त। राजाके आचरणकी विधि। राजाका न्याय। **—मराल**, राजहंस।

राजा—राज करनेवाला। स्वामी। धनी। विराजा, शोभित हुआ। शासक।

राजित—विराजित, बैठा हुआ। शोभित।

राजी—पंक्ति, पाँती, श्रेणी। प्रस्तुत तय्यार। प्रसन्न। कुशल।

राजीव—कमल। [देखो]

राजेन्द्र—प्रधान राजा। राजाओंमें इन्द्र।

राता—लाल रंगवाला। रंगा हुआ। रत। मिलता हुआ। लगा हुआ।

राति / **राती** } लाल रंगकी। रम गई। लग गई। रात। रात्रिकाल।

रामा—सुन्दरी, मोहिनी, सुख देनेवाली। **—नुज**, रामके छोटे भाई। **—यन**, रामकथा, विशेषकर वाल्मीकिकी कही। **—युध**, रामके शस्त्र। धनुर्बाण।

रामेश्वर—रामद्वारा स्थापित ईश्वर वा शिवलिंग।

राय—श्रेष्ठ, राना। सलाह।

रार / **रारि** } झंझट, टंटा, द्वेष, लाग। झगड़ा।

रावन—लंकाका राजा रावण। रोनेवाला। रुलानेवाला। चिल्लानेवाला।

रावरो—आपका। राउर।

रासभ—गर्दभ, गधा।

रासि (राशि)—समूह, ढेर।

राहु—नवग्रहमें अष्टम ग्रह।

रिच्छेस(ऋक्षेश)—रीछोंका स्वामी।

रिझाव—(क्रिया) प्रसन्न करने और राजी करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। प्रसन्न करनेका काम।

रिन (ऋण)—कर्ज, उधार, देना।

रितु (ऋतु)—मौसिम। —राज वसन्त, माधव।

रिपु—शत्रु, वैरी।

रिपुदमन, रिपुसूदन—शत्रुओंको मारने या नाश करनेवाला, शत्रुघ्न, श्रीरामचन्द्रजीके सबसे छोटे भाई।

रिष्ट—हृष्ट, प्रसन्न।

रिषि (ऋषि)—सूक्ष्मदर्शी मुनि।

रिषिनायक (ऋषिनायक)—मुनि-प्रधान, अत्रि ऋषि।

रिस—क्रोध, खीझ।

रिसा—(क्रिया) क्रोध करनेके अर्थमें। "पिरा" आदिके अनुरूप। देखो भूमिका, पहला खण्ड।

रिसौंहैं—क्रोधयुक्त, गुस्सेसे भरा।

रीखमूक (ऋष्यमूक)—एक पर्वतका नाम।

रीझ—(क्रिया) प्रसन्न होने और राजी होनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। प्रसन्नता। प्रसन्न होकर।

रीता—खाली। सूना। रिक्त। निरर्थक; तत्त्वरहित।

रीति—चाल; प्रचार, प्रकार। ढंग।

रीती—चाल, खाली, सूनी।

रुख—सम्मुख। दृष्टि। इच्छा, भाव।

रुचि—इच्छा। रुझान। प्रवृत्ति। चाह।

रुचिर—सुन्दर, मनोहर।

रुचिराई—सौन्दर्य। मनोहरता।

रुज—रोग, व्याधि।

रुदन—रोना। रुलाई।

रुद्र—शिवजीका एक नाम। रोता हुआ। भयानक। रोनेपर पिघलनेवाला।

रुधिर—लोहू, खून।

रुह—उत्पन्न, जनित। उगा हुआ।

रूख—वृक्ष, पेड़।

रूप—आकार, स्वरूप।

रूपी—समान, रूपवाला।

रूरी—सुन्दरी, मनोहारिणी।

रूखे—खुरखुरे, तेज़ मिजाज। खड़तल, कोरे।

रेंगाव—(क्रिया), धीरे धीरे चलाने, सरकानेके अर्थमें। "चढ़ाव" के अनुरूप।

रे—अरे, ओ, (निरादर-सूचक सम्बोधन)। ("रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही")

रेख—रेखा, लकीर।

रेत—बालू, रेता। वीर्य। वीर्यवान।

रेनु (रेणु)—रेत, धूल, गरदा।

रेसू—रीस, डाह, कुढ़न।

रोक—(क्रिया) रोकने, बाधा करने, मना करने और अटकानेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

रोग—व्याधि। दुःख।

रोचन—गोरोचन। हरदी। रुचिकर। मनोहर।

रोद—(क्रिया)(सं०) रोनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

रोप—(क्रिया) बोने, जमाने, लगाने, ग्रहण करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

रोम—रोआँ, लोम। —**पाट**, ऊनका कपड़ा।

रोमावलि—रोमराजी, रोओंकी पाँती।

रोव—(क्रिया) रोनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह।

रोष—क्रोध, कोप।

रोहिनि—रोहिणी। एक नक्षत्रका नाम। छकड़ा। ठेला।

रोहु—रोक, रुकाव। रोध।

रौताई—सरदारी।

रौरव—यमपुरीके एक घोर नरकका नाम जिसमें रुरु नामके कीड़े काटते हैं

ल

लंकिनी—एक राक्षसीका नाम।

लंकेस—रावण।

लंगूर—लांगूल, एक काले मुखों और लम्बी पूछवाले वानरकी जाति।

लंपट—लिप्त, तन्मय, अंध।

लकुट—लाठी, डण्डा।

लख—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

लखाव—(क्रिया) देखनेके और दिखानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह।

लग—हेतु, वास्ते, लिये। तक। (क्रिया) लगने और छूनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

लगन—लाग, लग्न, तन्मयता।

लगाव—(क्रिया) लगाने मिलाने, और संग देनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह।

लघु—छोटा, थोड़ा, नीच। सुन्दर। —**ता**, छोटाई। —**तापस**, छोटे तपस्वी। श्रीलक्ष्मणजी।

लछ्छ, लछ्छा—लक्ष्य, निशान। उपलक्षण। लड़ियोंका समूह।

लच्छ (लक्ष्य)—निशान, ताक। जो देख पड़े, देखने-योग्य। लाख, १००००० ।

लछ्छन—चालचलन। भवँरी। निशान।

लच्छि—लक्ष्मी, धन, संपत्ति ।

लछिमन—लषन, श्रीरामचन्द्रके छोटे भाई ।

लजा—(क्रिया) लजाने और सकुचानेके अर्थमें । सिरा, पिरा आदिकी तरह ।

लजाव—(क्रिया) लजवाने, लज्जित करानेके अर्थमें, "चढ़ाव" तरह ।

लटकनि—झुकन, अदा ।

लट—(क्रिया) लटने, लटकने, मुरझाने, दुर्बल होने, झुकने, घटने, अशक्त होने और झूमनेके अर्थमें । "चढ़" के अनुरूप ।

लड़—(क्रिया) लड़ाई, झगड़ा, विरोध करनेके अर्थमें ।"चढ़" की तरह ।

लता—वल्ली, बेल ।

लपट—गमक, गन्ध । लपेट । लपक । ज्वाला ।

लपटाव—(क्रिया) लिपटाने, चिपकानेके अर्थमें ।"चढ़ाव" की तरह ।

लपेट—(क्रिया) लपेटनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

—झूठा, गप्पी ।

लय—लौ । तन्मय । एक जी । नाश । संगीतमें स्वर-प्रवाह ।

ले—(क्रिया) लेनेके अर्थमें । [इनके रूपोंके लिये ले, दे. आदि "ए" कारान्त धातुओंके रूप भूमिकाके पहले खंडमें देखिये ।]

लयलीन—लौलीन, एकाग्रमन । व्यस्त ।

लरकाई—लड़कोंके । लड़कपनमें । लड़कपन ।

लरिकिनी—लड़कियाँ, बालिकायें ।

लर—(क्रिया) लड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

लरिका—लड़का, बालक । —ई, लड़कपन ।

ललकि—हुमचके, उत्साहपूर्वक ।

ललना—स्त्री, सुन्दरी ।

ललाट—माथा, मस्तक ।

ललाम—श्रेष्ठ, सुन्दर । शोभा ।

ललित—सुंदर, दर्शनीय । सवेरे गानेकी एक रागिनीका नाम ।

लव—अंश, अल्पकाल । गोपुच्छके रोम । श्रीरामचन्द्रके छोटे पुत्र का नाम ।

लव—(क्रिया) लवने या काटनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

लवन—नमक, खार, नौन । —सिंधु, खारी समुद्र ।

लवलेस—अंशका भी अंश । अत्यन्त थोडेका थोडा भाग ।

लवा—एक छोटी सी चिडिया । काटा ।

लवाई—नयी ब्यायी गौ । कटाइ ।

लषन—श्रीलक्ष्मणजी ।

लस—(क्रिया) शोभा देने और शोभा पानके अर्थमें । "चढ" की तरह । चिपकाहट ।

लह—(क्रिया) पाने और लेनेके अर्थ मे, "चढ" की तरह ।

लहकौर—ललकारकर । उमगसे । सिठनी । ब्याहकी गाली । कोहवरके खेल ।

लहलहाव—(क्रिया) चमचमाने, झलझलाने, लपलपाने और लहगनेके अर्थमे, "चढाव" की तरह ।

लांघ—(क्रिया) पार होन, लप जाने, फादनेके अर्थमें । "चढ" के अनुरूप ।

लाव—(क्रिया) लाने और लगानेके अर्थमे । "चढाव"की तरह ।

लाख—लाह । सौ हजार, लक्ष १००००० ।

लाग—लगाव, सबन्ध । बैर । लिये । वास्ते । (क्रिया) लगनेके अर्थमे, "चढ" की तरह ।

लाघव—शीघ्रता । आसानी । सहजमे । छुटाई, हलकापन । तुच्छता ।

लाज—लज्जा, सकोच । —**वंत**, लज्जावान । सकोची ।

लाज—(क्रिया) लजाने, और लजवानेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

लाजा—लज्जा, सकोच । लावा । खीलें ।

लाटी—प्याससे या सूख जानेसे ओठोंपर जमी हुई लस और मुँहके अदरकी चिपकाहट या लस । देखो, "लट" ।

लात—पाव । पैर ।

लाध—(क्रिया) पानेके अर्थमें, "चढ" की तरह ।

लाभ—फायदा, प्राप्ति ।

लायक—योग्य, उचित ।

लाल—रक्त वर्ण । बेटा । जवाहिर । लड़का । क्रिया, लाड करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

लालसा—इच्छा । चाह ।

लाला—लाल । लड़का । लालमणि । मुँहकी राल ।

लाली—ललाई । लड़की । दुलारी । लाड़से पाली हुई ।

लावक—लवा। एक पक्षी।

लावन्य—सुंदरता। नमकीनी। शोभा। बनाव।

लाव—(क्रिया) लगाने, जमाने और बोनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

लाह
लाहु } लाभ।

लिख—(क्रिया) लिखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

लिलार—माथा, मस्तक।

लीक
लीका } लकीर, रेखा। मर्यादा। परिपाटी, रीति।

लीन—लिया, प्राप्त किया। तत्पर। मग्न, डूबा हुआ।

लीला—क्रीडा, खेल।

लुका—(क्रिया) छिपनेके अर्थमें। "पिरा" "सिरा" की तरह।

लुकाव—छिपानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

लुठत—(क्रिया) लोटने, लुढकने, छटपटानेके अर्थमें। "चढ़" तरह।

लुनाई—लावण्य, सुंदरता।

लुन—(क्रिया) अनाज काटने, निकालने, प्राप्त करने और पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

लुप्त—अदृष्ट, छिपा हुआ।

लुब्ध—मिला हुआ, हुआ। लोभी, लालची।

लुब्धक—लोभी, लालची। ठग, धोखा देनेवाला।

लूक—आकाशके टूटे हुए तारे। ज्वाला, लपट।

लेखनी—कलम

लेखा—लिखा हुआ। हिसाब-किताब। माना, समझा, अनुमान किया।

लेखे—हिसाबमें, समझमें, जानमें,

लेस—थोड़ासा नामको, अंश। (क्रिया) लगाने, मिलाने, जोड़ने, चिपकानेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

लोई—लोग, जनसमुदाय, ऊनवस्त्र। रोटी बनानेके लिये आटेका पेड़ा।

लोक—लोग, मनुष्य। भुवन।

लोकप
लोकपति } लोकपाल, (इन्द्र, वरुणादि)।

लोग—मनुष्य, जनसमुदाय।

लोगाई—स्त्री।

लोचन—नयन, आंख।

लोन—नून।

लोना—सुन्दर, प्यारा। —ई, नमकीनी।

" की तरह। मृगाधीश—सिंह।

लोप—(क्रिया) छिपने और छिपाने के अर्थमें। "चढ" की तरह।

लोभ—(क्रिया) लोभाने, ललचानेके अर्थमें, "चढ" की तरह। लालच।

लोभाव—(क्रिया) लोभाने ललचानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

लोभी—लोभ करनेवाला। लालची।

लोमस—एक महर्षिका नाम।

लोल—चचल, चपल,

लोलुप—अति लालची, लम्पट।

लोयन—आंख। नेनद्वारा।

लोवा—लवा पक्षी। लोमड़ी।

लोह—लोहा।

लौकिक—सांसारिक।

लौन—नमक।

श

श्री—शोभा। लक्ष्मी। विष्णु-पत्नी। सम्पदा। सुन्दरता। प्रताप। बड़ाई।

ष

षट—छः ६।

षष्ठ—छठा। [देखो "ख"]

स

सं (शं)—कल्याण, भला, अच्छा।

संकट—कष्ट, अंडस, विपत।

संकन—डरसे। निर्भय।

संकल्प—प्रण, प्रतिज्ञा, विचार।

संकर—मिश्रित, मिला हुआ। कल्याणकर्त्ता।

संका (शंका)—सदेह, भ्रम, डर।

संकास (संकाश)—तुल्य, समान। पास।

संकुल—पूर्ण, पूरा भरा।

संकोच—लाज। कमी।

संख (शंख)—कम्बु। एक जल। जन्तु जिसका बाहरी खाल फूककर बजाया जाता है। मूर्ख।

संग—साथ। मेलजोल।—त, मेल। सिक्खोंकी गुरुद्वारा या धर्मशाला।—म, मिलन। नदियोंके मिलनका स्थान। मिलनकी क्रिया या जगह।

संग्रह—स्वीकार। जमा करना।

संग्राम—रण, युद्ध।

संगिन, संगिनि—सहेली, सखी।

संघ—समूह। ढेर।

संघट—मेल, संयोग।

संघरषन (संघर्षण) —घस्सा रगड़ा।

संघात—समूह। पूर्णतया नाश।

संहार—नाश, प्रलय। एक नरकका नाम। एक भैरवका नाम।
संछेप (संक्षेप)—सारांश।
संजम (संयम)—दमन। ध्यान, व्रत, नियम।
संजात—पैदा, निकला।
संड़सिन—चीमटोंने। सँड़सियोंसे।
संत—साधु, सज्जन।
संतत—सब दिन, सदा।
संतति—सन्तान।
संतान—लड़केवाले।
संताप—दाह, दुःख, क्लेश।
संतोष—सब्र।
संदेस (संदेश)—समाचार।
संदेह—भ्रम, खुटका।
संदोह—समूह, ढेर।
संध—जोड। मेल। दरज।
संध्या—दिन और रातकी संधि। साझ।—वन्दन, द्विजातियोंका नित्यका कर्तव्य-कर्म। पूजा।
संधान—(क्रिया) जोडने, चढ़ाने, निशानेपर लगानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
संधि—मेल, जोड़, मध्य।
संपति, संपदा—धन, दौलत, विभव।
—संयुक्त। धनी।
संपाती—जटायु गीधका बड़ा भाई।
संपादन—निर्माण, बनाना। कथन।
संपुट—कली। डिबिया। दोना, दोनिया। ढकना बन्द।
संबल—राहखर्च, कलेवा। पूर्व बल। मार्ग-व्यय। मार्गका भोजन।
संवाद—परस्परकी वार्ता।
संबुक—घोंघा।
संभल—एक ग्रामका नाम। चैतन्य, चैतन्य हो।
संभव—जन्मा हुआ। होनेयोग्य।
सँभार—बोझ। सँभाल। स्मरण। (क्रिया) चेतने, बचा लेने और सँभालनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।
संभावित—होनेयोग्य।
संभु (शंभु)—शिव, महादेव।
संभूत—जन्मा हुआ, पैदा।
संमत—एकमत, एकराय।
संमति—राय। मत।
संयुग—मेल। सामना। लड़ाई।
संयोग—मेलमिलाप।
सँवारी—सजी हुई, बनायी।
संसय (संशय)—संदेह, भ्रम।
संसर्ग—संगत, साथ, मेल, लगाव।

मृगाधीश—सिंह।

संसार—जगत।

संसृति—ससार, जयत। आवागमन।

संहर्ता—छीन लेनेवाला।

संहार—नाश, विनाश, प्रलय।

स—सहित। साथ।

सई—एक नदीका नाम।

सक (शक)—संदेह। सामर्थ्य। (क्रिया) सकनेके अर्थमें "चढ" की तरह।

सका—(क्रिया) सकुचाने, डरान, सदेह करने और लजानेके अर्थमें "हिरा" "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह।

सकरुन—दयायुक्त।

सकल—सब। कलासहित। समस्त। रूप।

सकिल—(क्रिया) बटुरने, दबकने, दबने, अड़सने, फँसने, एकत्र होने और सिमटनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

सकुच—सकोच, लाज, डर। (क्रिया) लजाने और डरनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

सकुनाधम—असगुन, अति बुरे सगुन।

सकुनि—एक कुरुवशके चत्रीक नाम। पत्ती।

सकृत—एक वेर। एक केवल, कोई।

सकेल—(क्रिया) समेटने, बटोरने, एकत्र करने,कसने, दबानेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

सकोच—संकोच, लाज, डर,दबाव।

सकोची—डरी, दबी, लजाई। समेटकर। सकोच करनेवाला।

सक्ति (शक्ति)—भगवती, देवी, वल। स्त्री। बरछी।

सक्र (शक्र)—सुरपति, इन्द्र।

सक्रारि—इन्द्रजीत, मेघनाद।

सखर—खराई सहित, खरके वर्णन सहित। कठोर, कडा। चोखाई या खराई सहित।

सखा—साथी, मित्र।

सगर—विषयुक्त। एक प्रसिद्ध राजाका नाम। सब जगह।

सगर्भ—साभिप्राय। मानयक्त। अभिमानी। गर्भधारण करनेवाली स्त्री।

सगरे—सब।

सगलानि—ग्लानिके साथ, घिनसे, अनादरसे।

सगाई—नाता, अपनायत। विवाह सबध।

सगुन—शकुन, शुभ लक्षण।
सगुनि—सगुनिया। ज्योतिषी।
सघन—घना।
सच्चिदानन्द—ब्रह्म, परमात्मा।
सचान—एक शिकारी पक्षी। बाज।
सचिव—प्रधान, मन्त्री।
सची—इन्द्राणी, इन्द्रकी स्त्रीका नाम।
सचु—सुख, आनन्द।
सचुपाई—चुपचाप। सतुष्ट।
सचेत—सावधान, चैतन्य।
सजग—चौकन्ना।
सज्जन—साधुजन, भले लोग।
सजन—प्रीतम, पति। जनसहित। हितू। सखा।
सजनी—सखी, सहेली।
सजाई—सजा, दंड। सजकर। बनाकर।
सजीव—जीवसहित, जीवित।
सजीवन—जिलानेवाला, जीवनप्रद। प्राणद।
सठ (शठ)—मूर्ख, उजड्ड, ठग।
सड़स—क्रिया, फँसने दबनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।
सड़सी—फँसी, दब गई, कस गई। अड़स गई। गरम चीजोंके पकड़नेका चीमटा।
—सच्चा, अच्छा। बल। हीर। सत्त्वगुण।
सत (शत)—सौ [देखो "सत्"]
सतत—सन्तत, सदा, नित्य। निरंतर।
सतपंच—सात पाच। बारह। पाचसौ। ५००,५१००, १००५, १०५। मचे, पच, पच लोग। आगा-पीछा। भ्रम।
सत्य—सच।—**लोक**, ब्रह्मलोक। —**संध**, अत्यत सच्चा।
सतरूपा—मनुकी स्त्रीका नाम।
सतानन्द—जनकके पुरोहित। अहल्याके पुत्र।
सताव—क्रिया, कष्ट देनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह।
सतावन—सतानेवाला। सत्तावन।
सतिभायें—अच्छे भावसे।
सती—सतवाली। पतिव्रता। दक्षकी कन्या शिवा।
सत्रु (शत्रु)—वैरी।
सत्रुसूदन—शत्रुघ्न।
सत्व—सत्ता, सामर्थ्य।
सद—श्रेष्ठ। मीठा। बैठनेवाला।
सदन—घर, जगह।
सदय—दयालु। दयाके साथ।
सदा—नित्य, सर्वदा।
सदाचार—सुलक्षण। सुचाल। अच्छा आचरण।

" की तरह। मृगाधीश—सिंह।

सचेत—[illegible]।

सच—[illegible]।

सजन—[illegible]।

सनकादि—सनक १, सनन्दन २, सनातन ३, सनत्कुमार ४, ये चारों बाल-[illegible] ऋषि।

सनकार—(क्रिया) सनकियाने या [illegible] अर्थमें। [illegible] की तरह।

सनबन्ध (सम्बन्ध)—[illegible], ना-तेदार।

सनमान—आदर, मान, [illegible]।

सनमुख—सामने। सम्मुख। मुका-[illegible]।

सनाथ—[illegible]। कृतार्थ।

सनाला—[illegible]। नालसमेत।

सनाह—कवच। पतिके साथ।

सनेह (स्नेह)—प्यार, प्रीति, नेह, तेल, घृत, प्रेमसे।

सनेही (स्नेही)—प्रेमी, प्यारा। प्रेमीके साथ।

सन्निपात—एक रोग जिसमें तीनों दोष समान रूपसे बिगड़ जाते हैं।

संन्यासी—त्यागी, भिक्षुक।

स / सपंच्छ—परवार, पक्षी। मददके साथ। दलसहित।

सत—सात, ७।

सतावरन—सात परत।

सपथ—शपथ, सौगन्ध, किरिया। सौंह।

सपदि—जल्दी, झटपट।

सपन (स्वप्न)—सपना।

सपरन—पत्तोंसमेत। प्रणोंके साथ। हो सकना, निपटना।

सपर्व—गठीला। पर्वयुक्त।

सपेला—सांपका बच्चा, पोआ।

सफरी—एक प्रकारकी मछली।

सब—सर्व, पूरा।

सबर—बलयुक्त, पतियुक्त। तोष, सन्तोष। भाला। एक जंगली जाति।

सबहि—सबको, सभीको।

सब्द (शब्द)—ध्वनि, वाणी।

सभय—डरा हुआ।

सभा—समाज, दरबार। —सद, सभाका अधिकारी। सभा-पाल।

सभीत—डरा हुआ, भययुक्त।

सम—समान, बराबर, जैसा। तुल्य।

समझ—(क्रिया) समझनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

समझाव—(क्रिया) समझानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

समता—समानता, बराबरी ।

समदरसी—बराबर देखनेवाला । रागद्वेषरहित ।

समदि—पूजा करके ।

समधी—समान बुद्धिवाला । नातेदार । बरातरका सम्बन्धी । ब्याहमें वर कन्याके पिता ।

समन(शमन)—शान्त करनेवाला, ठंडा करनेवाला, यमराज ।

समय—काल । साइत ।

समर—रण, युद्ध ।

समरथ (समर्थ)—योग्य, शक्तिमान ।

समर्प—(क्रिया) सौंपनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

समररस—वीररस, लड़ाईका सुख ।

समस्त—सब, कुल ।

समा—समय, काल ।

(क्रिया) समाने, घुसने, और प्रवेश करनेके अर्थमें । रिसा पिरा, सिराकी तरह ।

समागत—जन समाज, सभा । आया हुआ । इकट्ठा ।

समागम—मेल, भेंट । इकट्ठा होना । मिलना । सत्सग ।

समाचार—हाल ।

समाज—मंडली ।

समाधान—छुटकारा ।

समाधि—सुख, स्थिरता ।

समान—बराबर, तुल्य ।

समाप—क्रोधयुक्त ।

समास—संक्षेप, छोटा ।

समिध—ईन्धन, लकड़ी ।

समिति—सभा, कमेटी । सेनाका एक गिना हुआ टुकड़ा ।

समीप—पास, निकट ।

समीर—हवा ।

समीहा—इच्छा, पूर्ण इच्छा ।

समुझ—(क्रिया) समझने और जाननेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । बुद्धि । समझ । बूझ । सम्बुद्धि ।

समुझाव—(क्रिया) समझाने और जनानेके अर्थमें । "चढाव" की तरह ।

समुदाई—ढेर, समूह ।

समुद्र—सिन्धु ।

समुहा—(क्रिया) सम्मुख होने, सामने आने और मिलनेके अर्थमें । रिसा, पिरा आदिके अनुरूप ।

समूल—मूलसे, जड़से ।

समूह—ढेर ।

समेट—बटोर, जमाकर । क्रिया, बटोरनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

की तरह । **मृगाधीश**—सिंह ।

समेत—सहित, साथ।
सम्प्रति—अब।
सम्मत—एक मत। राजी।
सम्मुख—सामने। मुकाबलेमें।
सम्यक—भलीभांति। भरपूर। सब तरहसे।
सय—सौ, १००।
सयन—सोना। सोनेवाला। शय्या, भाव, कटाक्ष।
सयाने—बड़े। चालाक। बुद्धिमान।
सर—सरोवर, तालाब। बाण, तीर। सरकना। (क्रिया) बराबर करने पूरा करने या हो सकनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
सरग (स्वर्ग)—देवलोक, इन्द्रपुरी।
सरजू (सरयू)—एक नदी जो हिमालयकी तराईसे निकलकर अयोध्यामें बहती हुई बिहार और संयुक्त प्रान्तकी सीमापर गंगामें मिल जाती है। इसे घाघरा भी कहते हैं।
सरन (शरण)—रक्षा, पनाह। रक्षक।
सरनागत—शरणमें आया हुआ। रक्षा चाहनेवाला।
ऋतु। सरदीका मौसिम।
सर देनेवाला। दातवाला।
सरद्धा (श्रद्धा)—भक्ति, इच्छा, चाह। प्रतीति।
सरप (सर्प)—सांप। चलो, खसको।
सरपि (सर्पि)—घृत। घी। चलकर, खसककर, बढ़कर।
सरबरि—बराबरी, समता। ढिठाई।
सरबरी (शर्वरी)—रात।
सरभंग (शरभंग)—एक ऋषिका नाम।
सरल—सीधा, सच्चा, स्वच्छ।
सरबस—सब कुछ।
सरस—रसीला, रसवाला।
सरस—(क्रिया) बढ़ने, गाढ़े होने, और घना होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। रसीला। रसभरा।
सरसा—सरस करनेके अर्थमें, "रिसा" की तरह। सरकी नाईं [देखो "सर"].
सरसाव—सरस करानेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह।
सरसइ—सरस्वती नदी। भिन जाय। पक जावे। स्वादयुक्त होवे।
सरसिज } कमल।

सरब,सर्ब—सब। शिव। विष्णु। —गत, सबमें व्यापक।—ग्य, सब कुछ जाननेवाला।—त्र, सभी जगह।—दा, सदा। —स, सर्वस्व, सब कुछ।

सराप—गाली। शाप। बुरा मनानेकी क्रिया। (क्रिया) बुरा मनानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

सरासन (शरासन)—कमान। धनुष।

सरासुर (शरासुर)—बाणासुर नामका दैत्य।

सराह—(क्रिया) बड़ाई करने, स्तुति करने, प्रशंसा करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

सरि—नदी। बराबरी। जैसा।

सरित } **सरिता** } नदी।

सरिवारी—नदीका जल।

सरिस—समान, जैसा।

सरीखा—समान, बरोबर।

सरीर (शरीर)—देह। तन।

सरुज—रोगी।

सरुष—क्रोधी।

सरोज—कमल।

[illegible]—कमल।

—लज्जित।

[illegible]" की तरह।

सलिल—पानी।

सलोक—लोकसहित। यश। श्लोक।

सलोने—सुन्दर, मनोहर, प्रिय।

सव (शव)—लोथ, मुर्दा।

सवति—सौत। सौतिन।

सबद (शब्द)—बोली, वाणी।

सबरी (शबरी)-भीलनी, एक रामानुरागिनी भीलनी जिसने श्रीरामको बेर खिलाये थे।

सस (शश)—खरहा।

ससि (शशि)—चन्द्रमा।

ससिरस (शशिरस)—सुधा, अमृत।

ससुर—पति या पत्नीका पिता।

ससंक—डरके साथ। चन्द्रमा।

सस्त्र (शस्त्र)—हथियार।

सस्य (शस्य)—तिनका, घास।

स,सह—समेत। सहन करके। सहित, साथ साथ।

सह—(क्रिया) सहने, भोगनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

सहगामिनी—सती। साथ जानेवाली। पतिके संग जलनेवाली।

सहज—साधारण, सुगम।

सहत—सहता है। मधु।

सहनाई—एक प्रकारका मुँहसे बजानेका बाजा।

मृगाधीश—सिंह।

सहम—डर, भयसे। अहङ्कारयुक्त।

सहरोष—क्रोधके साथ।

सहवासिनि (पु० सहवासी)—साथ रहनेवाली भार्या, पत्नी।

सहस (सहस्र)—हजार, दस सौ, १०००।

सहसबाहु (सहस्रबाहु)—हजार भुजावाला। एक राजाका नाम जिसने परशुरामजीके पिताको मार डाला था।

सहसमुख (सहस्रमुख)—हजार मुखवाला। शेषनाग।

सहसा—बिना विचारे, झटपट। हठ। मूर्खता।

सहस्राक्षी—हजार आंखवाला, इन्द्र। सहस्र नयन। साचीसहित।

सहसानन—हजार मुखवाला, शेषनाग।

सहसनयन—इन्द्र, सहस्रनेत्र। विष्णु।

सहससीस—विष्णु, शेषनाग।

सहानुज—छोटे भाइके साथ।

सहाय—साथ। सहायक, रक्षक।

सहाव—(क्रिया) सहन कराने भोगानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

सहित—संमत। मित्रके साथ।

सहिदानी—साखी। गवाही। चिह्न। सहकर (सहिदायी=सोढ्वा)।

सही—निश्चय, ठीक ठीक। हस्ताक्षर।

सहेली—सखी।

सहोदर—एक ही उदरसे जन्मे भाई या बहिन।

सांग—बर्छी, भाला, शूल।

सांच—सच्चा, सत्य। ठीक ठीक।

साझ—सन्ध्यासमय।

सात—स्थिर। सतुष्ट।

साति (शान्ति)—स्थिरता, सतोष।

सांधा—मिलाया, साना, घोला।

सावर—सावला, श्यामवर्ण।

सासति—दड, पीड़ा।

साईं—स्वामी, ईश्वर।

साउज—हरिन। वनजन्तु। शिकार।

साक (शाक)—साग, तरकारी।

साकवनिक—कुजड़ा, खटिक। भाजी या फल बेचनेवाला।

साका—सवत। स्मारक। यश। मारकेकी बात।

साखा (शाखा)—डाली। शाखा। —मृग, वानर।

साखि (साक्षि)—देखनेवाला। गवाह। मित्र।

साखोच्चार—वेदकी शाखा-युक्त वंशावली वर्णन ।

सागर—समुद्र ।

साज —सामग्री । सजाकर ।

साढ़सातो—शनिकी साढे सात वर्षकी दशा ।

सातव —सातवां । सातों ।

साता—सात, ७ ।

सात्विक —रोमाञ्च, गद्गद्भाव ।

साथ —संग, सहित ।

साथरी—चटाई, आसन ।

सादर—आदर-सहित, मानयुक्त ।

साध —कामना । लालसा । भला । भले मानस । भिक्षुक । (क्रिया) साधन, अपने ढगपर लाने, मिलानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

—क, अभ्यास करनेवाला । तपस्वी ।

—न, उपाय, यत्न ।

साधु—बहुत ठीक । भला । भले-मानस । भिक्षुक । सन्त ।

—मत, अच्छा व्योहार, भले लोगोंके विचार ।

साध्य—यत्न करनेयोग्य । मिलाने-लायक । काबूमें आने-लायक ।

—अहङ्कार, धार लगानेका यंत्र ।

(क्रिया) मिलाने, लपेटनेके अर्थमें, "चढ" के अनुरूप ।

सानुकूल—अनुकूल, मनोनुसार ।

साप—शाप, बद दुआ । (क्रिया) शाप देने, कोसनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

साम—बराबरीसे उपाय । सन्धि । तीसरा वेद । लकड़ीके सिरे-पर लगा लोहा ।

सामद—शान्तिदाता, समझानेवाला ।

सामुझि —समझ, बुद्धि ।

सामुह—सनमुख, मुँहके सामने । संमुख

सायक—तीर ।

सायुज (सायुज्य)—मोक्ष, तन्मय, ब्रह्ममय ।

सार—तत्त्व, हीर, मूल । लोहा । साला । पत्नीका भ्राता । क्रिया. बनाने, सँवारनेके अर्थमें, "चढ" की तरह ।

सारथि—सारथी, रथवान । गाड़ी-वान ।

सारद (शारद)—सरस्वती, वाणी । शरदऋतु सम्बन्धी ।

सारदी (शारदी)—सरस्वती-सबधी । शरदऋतु सम्बन्धी ।

सारस—एक प्रकारका लम्बी टांगों गर्दन और चोंचवाला पक्षी ।

सारा—तत्त्व, मूल। साला। स्त्रीका भाई। पूरा किया। बनाया। समस्त।

सारिका—सिरोही, एक चिड़िया। मैना।

सारिखे—समान, बराबर, तुल्य।

सारी—सिरोही, मैना। स्त्रीकी बहिन। बनाई, पूरी की। चौसर।

सारु—सार, तत्त्व।

सारे—सब। बनाये। पूर्ण किये।

सारंग—विष्णुका धनुष। भौंरा। मोर। सर्प। घट।

साल—दुःख। शोभा। घर। वृक्ष। (क्रिया) चुभनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। —क, दुःखदाई, चुभनेवाला।

साला—स्थान, घर। चुभाया। पत्नीका भाई।

सालि (शालि)—धान। शोभा-युक्त। संयुक्त।

साली—संयुक्त। धान। शालासे सम्बद्ध। पत्नीकी बहिन। जुलाहा।

सावक (शावक)—बालक, बच्चा।

सावकरन (श्यामकर्ण)—काले कानवाले सफेद घोड़े। अश्वमेध यज्ञके घोड़े।

सावकास (सावकाश)—कामसे छुट्टी।

सावन (श्रावण)—वर्षा ऋतुके एक महीनेका नाम।

साबर (शाबर)—किरातका। किरातके वंशमें।

सास्वतं (शाश्वतं)—अमर, देवता। निरन्तर। नित्य। शिव। सूर्य। व्यास। आकाश। पृथ्वी।

सासु—पति या पत्नीकी माता।

सासुर—ससुराल।

साहस—हिम्मत, हौसला।

साहिनी—सेनापति, कप्तान।

सिंगरौर—शृंगवेरपुर,।

सिंगार—सजावट, रचना।

सिंघल—एक उपद्वीपका नाम जिसे आजकल लंका भी कहते हैं। [द्रविड़में द्वीपमात्रको लंका कहते हैं।]

सिंच—(क्रिया) सींचने, तर करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

सिंचाव—(क्रिया) छिड़कने और तर करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" के अनुरूप।

सिंधु—समुद्र। पंजाबकी एक सरहदी नदी जो सिंधुदेशमें होकर गिरती है। सिंधुदेश।

सिंधुर—हस्ती, गज।
सिंसिपा—शीशेका वृक्ष, सीसोंका वृक्ष।
सिंह—बाघ। श्रेष्ठ।
सिंहासन—राजाओंके बैठनेकी चौकी। गद्दा। उच्चासन।
सिअ, सिय—(क्रिया) सीनेके अर्थमें, "चढ" की तरह। सीताजी।
सिअन—सिलाई।
सिआर, सियार—सीनेवाला, गीदड़। शृगाल।
सिकता—बालू। रेत।
सिख—शिक्षा। चोटी। नोक। चेला।
सिखा (शिखा)—चोटी। टेम।
सिखावन—शिक्षा, उपदेश।
सिखि (शिखि)—केकी, मोर। चोटीदार।
सित—श्वेत, उजला। उजेला।
सिथिल (शिथिल) ढीला, सुस्त। अपाहिज, निकम्मा। निर्बल।
सिद्ध—योगी, त्रिकालदर्शी। ज्ञानी तपस्वी, पूरा, समाप्त, तैयार, सफल। ज्योतिषके एक योगका नाम।
सिद्धि—मनोरथकी पूर्णता। रसका ठीक बन जाना। अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, यही आठ सिद्धिया कहलाती हैं। **अणिमा**=सबसे छोटा बन सकना। **महिमा**=सबसे बड़ा बन सकना। **लघिमा**=सबसे हलका बन सकना। **गरिमा**=सबसे भारी बन सकना। **प्राप्ति**=इच्छानुसार वस्तुए पा लेना। **प्राकाम्य**=जो चाहे कर सकना। **ईशित्व**=जिसका चाहे उसका मालिक हो सकना। **वशित्व**=जिसे चाहे अपने वशमें कर सकना।
सिद्धांत—निश्चित, ठहराया हुआ। पक्की पोढ़ी बात।
सिधार—(क्रिया) चले जानेके अर्थमें, "चढ" की तरह।
सिधाव—(क्रिया) चले जानेके अर्थमें, "चढाव" की तरह।
सिमिट—(क्रिया) इकट्ठा होने, बटुरने या एकत्र होनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
सिय—सीताजी।
सियर—शीतल। ठढा।
सिर—मस्तक, माथा। शीर्ष। मुड। मूँड़।

सिरज,सृज—(क्रिया) बनाने, रचने और उत्पन्न करनेके अर्थमें "चद"की तरह।
सिरा—(क्रिया) बन पड़ने,निबहने और समाप्त होनेके अर्थमें "रिसा"की तरह।
सिरिस—एक वृक्षका नाम जिसके फूलकी पखड़िया अत्यन्त कोमल होती हैं।
सिरोमनि—सर्वश्रेष्ठ, सबके ऊपर सिरमें पहने जानेवाला मणि।
सिला (शिला)—पत्थर, चट्टान।
सिलीमुख (शिलीमुख)—भौरा। तीर।
सिलप (शिल्प)—कारीगरी, दस्तकारी।
सिव(शिव)—कल्याण,महादेवजी। स्यार।
सिवसैल (शिवशैल)—कैलास पर्वत।
सिवा (शिवा)—पार्वती। स्यार।
सिवार—जलमें होनेवाली एक घास।
सिवि(शिवि)—एक राजाका नाम देखो "कथा"।
सिविका—पालकी, डोली।
सिस्न (शिश्न)—पुरुषकी जननेन्द्रिय।
सिसिर (शिशिर)—पतझड़,माघ-फागुन।
सिसु (शिशु)—लड़का, बच्चा।
सिहा—(क्रिया) सन्तुष्ट होने, भिलाषा करने और ईर्षा करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।
सींक—तिनका, तृण,खरिका।
सींच—(क्रिया) देखो "सिंच"।
सींव—सीमा। हद। छोर। नोक। याँदा।
सीकर—कण, छींटा, बूंद।
सीख—उपदेश, शिक्षा।
सीत (शीत)—जाड़ा पाला, सर्दी। —ल, ठंढा।
सीता—जानकी।
सीद—(क्रिया) दुःखी करने, दुःखी होने, नाश कर देने,नाश हो जानेके अर्थमें, "चद" की तरह।
सीध—सरलता सामना।
सीप—सिप्पी, सितुही।
सीम—छोर, अन्त।
सीय—सीता
सील (शील)—स्वभाव, प्रकृति।
सीव—सीम, छोर, अन्त।
सीसा—सिर, मस्तक। दर्पण। एक नरम धातु।

सुंदर—खूबसूरत, रूपवान। प्रिय, अच्छा।—ता, ताई,—छवि, शोभा।

सु—सुन्दर, अच्छा, प्रिय। अच्छी तरह।

सुअर—शूकर, कोल। सूअर।

सुआर—सूपकार, रसोइया। दाल पकानेवाला।

सुआसिनि—सुहागिनि, सधवा।

सुअञ्जन—अच्छा अजन।

सुक(शुक)—तोता। शुकदेवमुनि। रावणके एक दूतका नाम।

सुकर्कस—कठोर, लड़ाका, चिड़चिड़ा।

सुकुमार—निर्बल, कोमल।

सुकृत—पुण्य, भली करनी। पुण्यवान।

सुकृती—पुण्यशील। अच्छा काम करनेवाला। पुण्यवान।

सुक्र—दैत्यगुरु। शुक्राचार्य। कवि। एक ग्रह। वीर्य। उजला।

सुक्ल (शुक्ल)—श्वेत, उजला।

सुकेतु } एक यक्षका नाम।
सुकेत } सुन्दर ध्वजावाला।

सुकण्ठ—सुग्रीव। अच्छी गर्दनवाला। मधुरभाषी। आनन्द।—कारी, आनन्द-

सुखा—(क्रिया)सूखने और सुखानेके अर्थमें "रिसा"की तरह।

सुखागर—सुखद। सुखका घर।

सुखासन—सुखपाल, सुखसे बैठा हुआ।

सुखी—प्रसन्न।

सुखेन (सुषेण)—सुखसे। रावणके वैद्यका नाम।

सुगम—सहज।

सुगाई—कामधेनु। अच्छी तरह गायी।

सुग्रीव—बालिके छोटे भाईका नाम। अच्छे कंठवाला।

सुगन्ध—गमक, महक। सुवास।

सुघट्ट—सुरचित, सुघर।

सुघटित—अच्छा बना हुआ।

सुचि (शुचि)—पवित्र, शुद्ध।

सुचिन्तन—भली भांतिका विचार।

सुछन्द(स्वच्छन्द)—निर्भय, अपने मनका।

सुजन—साधु, भले आदमी।

सुजस—सुन्दरयश। सुकीर्ति।

सुजान—ज्ञानी, चतुर।

सुटुकि—कोड़ा मारकर, चाबुक चलाकर।

सुठि—बहुत, भलीभांति। अच्छा। अच्छाई से।

सुत—पुत्र, बेटा।

सुतीछन (सुतीक्ष्ण) —एक ऋषि-का नाम।
सुतीछी—बड़ी चोखी, धारदार।
सुतन्त्र (स्वतन्त्र)—स्वाधीन। अपने मनका।
सुद्ध (शुद्ध)—निर्मल, श्वेत। विना भूलका।
सुदेस —सुन्दर, अच्छा देश।
सुधर—क्रिया सुधरनेके अर्थमें, चढ़की तरह।
सुधा—अमृत।
सुधाकर—चन्द्रमा।
सुधार—(क्रिया) ठीक करनेके अर्थ में "चढ" की तरह। ठीक करनेका काम। अच्छी अवस्थाका लाना।
सुधि—समाचार, हाल।
सुन—(क्रिया) सुननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
सुनयना—सुन्दर नेत्रोंवाली। जानकीजीकी माताका नाम।
सुनाजू—सुन्दर अनाज।
सुनासीर—इन्द्र।
सुपास—सुख, सुबीता।
सुपेती—निर्मलता, सफाई। तकिया।
सुफल—अच्छा फल। सुपरिणाम।
सुबस—स्वाधीन।
सुबाहु—एक राक्षसका नाम। अच्छी बाहु।
सुबेल—लंकाके एक पर्वत-शिखर-का नाम।
सुभ (शुभ)—अच्छा, भला।
सुभग—सुन्दर।
सुभगुन—सुचलन। अच्छे गुण।
सुभट—वीर, लड़ाके। योद्धा।
सुभ्र (शुभ्र)—उज्ज्वल, सुथरा।
सुभाऊ—स्वभाव। सहजमें।
सुभाय—साधारण। अच्छे भावसे
सुभाव—स्वभाव। सहजही।
सुभुज—सुन्दर बाहुवाला। सुबाहु नामक राक्षस।
सुमति—अच्छी बुद्धि। भला, बुद्धिमान।
सुमन—फूल। सुन्दर मन।
सुमित्रा—लक्ष्मण शत्रुघ्नकी माता।
सुमिर—(क्रिया) याद करनेके अर्थ-में। "चढ़" की तरह। —न, स्मरण। याद।
सुमुखि—सुन्दर मुखवाली।
सुमृति—धर्मशास्त्र। मीमांसा।
सुमन्त—राजा दशरथके मन्त्रीका नाम।
सुमंत्र—भली राय।
सुर—अमर, देवता।
सुरगुरु—देवताओंके गुरु। बृहस्पति।
सुरतरु—कल्पवृक्ष।
सुरवीथी—देवमार्ग। आकाशगंगा।

सुरभि—कामधेनु । सुगंधित । वसन्त ।

सुरसर—मानसरोवर ।

सुरसरि—गंगा नदी ।

सुरसा—सर्पोंकी माताका नाम ।

सुरसेनप—देवताओंके सेनापति । सुब्रह्मण्यम् । स्वामि-कार्त्तिकेय ।

सुरा—मदिरा ।

सुराई—वीरता, बहादुरी ।

सुराती—अच्छी रात ।

सुरानीक—देवतोंकी सेना । अच्छी मदिरा ।

सुरारी—राक्षस ।

सुरासुर—देवता और राक्षस । देव-दानव ।

सुरुचि—भली चाह ।

सुरंगा—लाल । अच्छा रंग । सुचाल ।

सुलगे—धधके, बले ।

सुलच्छन—सुचलन ।

सुलभ—सहज ।

सुबस—अपने वशका ।

सुवास—सुगंधि, यश ।

सुवासिनि—सावित्री, सधवा ।

सुहा—(क्रिया) शोभित होनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

सुहाग—सौभाग्य, सोहाग ।

सुहावनी—सुन्दरी, प्रिय लगने-वाली ।

सुहृद—सुजन, भले लोग ।

सूकर (शूकर)—सूअर ।

सूकरखेत—वाराह चेत्र । सोरों ।

सूख—(क्रिया) सूखनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सूच—(क्रिया) जानने, सूझनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सूचक—बतानेवाला, स्मारक ।

सूझ—(क्रिया) दिखाई देने, समझ-में आने, बुद्धिके दौड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । बुद्धिकी पहुँच । बूझ । ख्याल ।

सूत—रथवान । पौराणिक । डोरा ।

सूत्र—सूत, डोरा । सीध, लक्ष्य । —धार, नाटक करनेवालों-का नेता ।

सूद्र (शूद्र)—चौथी जाति । सेवा वृत्तिवाले ।

सूध—सरल, सादा ।

सून—सूना, अकेला ।

सूनु—पुत्र, बेटा ।

सूप—दाल । पाक । छाज । —कारक, रसोइया, रसोई-दार ।—शास्त्र, पाकशास्त्र ।

सूपोदन—दालभात ।

सूपनखा (शूर्पणखा)—रावणकी बहिन ।

सूल (शूल)—बरछी । पीड़ा । काँटा । भाला ।

सृंग—सींग । शाखा । चोटी । —बेरपुर, निषादोंका एक गाँव जो गंगाजीपर बसा था ।

सृगाल (शृगाल)—सियार ।

सृज—(क्रिया) बनाने और रचनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

से—समान । जैसे । द्वार । सेवनकर ।

सेज—पलंग, बिछौना । शय्या ।

सेत—निर्मल, उजला । पुल ।

सेतु—पुल । सीमा, मर्यादा ।

सेन, सेना—फौज,दल ।—प, सेनापति ।

सेर—शेर । १६ छटाक तोलनेका बाट । भरपेट खाये हुए । तृप्त ।

सेल—बरछी ।

सेव—(क्रिया) सेवा करनेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह । एक फल ।—क, टहलुआ । नौकर । सेवा करनेवाला । —काई, नौकरी । टहल । सेवा ।

सेवा—परिचर्य्या । औरोंका काम । खिदमत । टहल ।

सेवरी—भीलनी । एक रामकी भक्ता भीलनीका नाम ।

सैव्य—सेवाके योग्य ।

सेष (शेष)—बचा हुआ । शेषनाग ।

सैन—कटाक्ष । सेना ।

सैल (शैल)—पहाड़ ।

सैलजा (शैलजा)—गिरिजा,शिवा ।

सैलराज (शैलराज)—हिमालय पर्वत ।

सो—यह, वे ही ।—इ,वही,वे ही ।

सोई—सो गई । वही ।

सोऊ—वह भी ।

सोक (शोक)—खेद, दुःख ।

सोख—(क्रिया) सोखनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह । ढीठ ।

सोग—शोक, खेद ।

सोच (शोच)—चिन्ता ।

सोचनीय—चिन्ताके योग्य ।

सोध—सुध, पता, खोज । (क्रिया) शुद्ध करने या ठीक करने और पता लगाने या खोजनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सोन (शोण)—सोनभद्रा नदी । लाल रंग । सोना । सो नहीं ।

सोना—कञ्चन, सुवर्ण । लाल, सुर्ख । (सं० शोण=लाल) ।

सोनित (शोणित)—लोहू, खून ।

सोनिप (छोनिप)—भूपति, राजा ।

सोपान—सीढ़ी ।

सोपि—सो भी, वह भी, तो भी ।

सोभा (शोभा)—सुन्दरता ।

सोम—चन्द्रमा, सोमवार ।

सोर—हौरा । गुल । हल्ला ।

सोरह—सोलह ।

सोव—(क्रिया) सोनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

सोषक (शोषक)—सोखनेवाला ।

सोसि—जो हो, सो तू है ।

सोसु—उसका, उसीका ।

सोह—(क्रिया) प्रिय लगने, शोभा पाने और भला लगनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

सोहमस्मि—वह मैं हूं । मैं वह हूं ।

सौंदर्य—रूप, सुंदरता ।

सौंप—(क्रिया) सौंपने और अधिकारमें देनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

सौंह—किरिया, सौगन्द । सामने ।

सौंहें—अनेक सौगन्दें । सामनेने । नामुहें (देखो) ।

सौ—१०० ।

सौच (शौच)—शुद्धता । मल-शुद्धिकी क्रिया ।

सौध—घर, मन्दिर । चूनेसे पुता महल ।

...सधवा, सोहागिन ।

सौमित्रि—लक्ष्मण शत्रुघ्न ।

सौरज (शौर्य्य)—वीरता, शूरता ।

सौरभ—सुगंध । सुवास । केशर ।

स्मरामहे—हम स्मरण करते हैं ।

स्याम—काला ।

स्यामकरन—काले कानवाले घोड़े । यज्ञके घोड़े ।

स्यामल—काला, सांवला ।

स्यामा—युवती, १६ वर्षा स्त्री । एक पक्षी । सांवली ।

स्यामता—कालिमा, स्याही ।

स्यन्दन—रथ । सवारी ।

स्रग—फूलोंकी माला ।

स्रम—परिश्रम । थकावट । क्लेश । —बिन्दु, पसीनेकी बूंदें ।

स्रमित—थका । हारा ।

स्रव—(क्रिया) चूने, टपकने, पसीजने, गिरनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

स्राद्ध—श्राद्ध । पितृकर्म्म ।

स्री—लक्ष्मी । श्रेष्ठ । धन । वैभव । विभूति । —खंड, श्वेत चन्दन । —पति, विष्णु । —फल, नारियल । बेल । शरीफा ।—मुख, सुन्दर मुख । मुखारविन्द ।—मान, मन्त, श्रीमान् । धनी । —रंग, भगवान् शेषशायी नारायण । —वत्स, विष्णुकी बायीं छातीका चिह्न ।

स्रुति—वेद। कान। गानविद्याका अङ्ग। सुनना।—कीरति, कीर्त्ति, शत्रुघ्नकी स्त्रीका नाम। वेदोंमें जिसका यश गाया गया हो।

स्रुवा—हवनके लिये काठका चमचा।

स्रेनी—श्रेणी। पाता। लड़ी। कतार। समूह। वर्ग।

स्रेय—बड़ाई। कल्याण। भलाई। यश।

स्रोता—सुननेवाला।

स्व—अपना। आपा। खुद। आत्मीय।

स्वच्छ—साफ। स्पष्ट। निर्म्मल।—ता, सफाई।

स्वच्छन्द—स्वतन्त्र। स्वाधीन।

स्वतंत्र—स्वाधीन।

स्वपच—चाण्डाल। डोम। कुत्ता पचानेवाला।

स्ववस—अपने वसमें।

स्ववास—अपना घर।

स्वयं—आप ही।—वर, अपना वर आप चुननेके लिये कन्यापत्तका उत्सव। अपने आप चुना हुआ।

स्वल्प—थोडासा, बहुत कम।

स्वसेब्य—अपना स्वामी।

स्वागत—शुभागमन। आगे होकर लेना। भले आये।

स्वाती—एक नक्षत्रका नाम।

स्वाद—रस। जायका।

स्वान (श्वान)—कुत्ता। कुक्कुर।

स्वामिधर्म—प्रभुधर्म पतिका धर्म।

स्वामी—प्रभु। पति।

स्वायंभूमनु—ब्रह्माके पुत्र। पहले प्रजापतिका नाम।

स्वारथ—स्वार्थ। अपना मतलब।

स्वारथी—मतलबी।

स्वास (श्वास)—सास, दम।

सबीज—बीयासमेत।

स्वेद—पसीना।

ह

हंस—एक पत्ती। एक प्रकारके साधु। श्रेष्ठ। सूर्य।

हँसाई—हँसी, परिहास, निन्दा।

हाक—शब्द, गोहार, बुलानेका शब्द। चलाव, बढाव।

हांक—(क्रिया) चलाने या बढाने या भगानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हांत—(क्रिया) मारनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हांसी—हँसी, ठिठोली, प्रसन्नता।

हिंडोरा—पलना, डोल, झूला।

हिंस—हांस, हैंस, एक जगली वृक्ष। (क्रिया) दु ख देने, नाश

करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हिंसक—मार डालनेवाला, दुःख देनेवाला ।

हिंहिंना—(क्रिया) घोड़ेके हिनहिनानेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

हींच—(क्रिया) दबोचने, खींचने, निकोड़ने, बटोरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह ।

हुअ—(क्रिया) मारनेके अर्थमें । इसके हुए, हुई (मारा मारी) आदि कुछ ही रूप प्रचलित हैं, जो "चढाव" क्रियाके अनुरूप हैं। परन्तु इस क्रियाका मूल रूप "हत" है—देखिये ।

हकराव—(क्रिया) बुलवानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह।

हटक—रोक, डाट, मनाही ।(क्रिया) रोकने, डाटनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

हट्ट—दूकान, हाट, रास्ता ।

हठ—जबरई, जिद ।

हठि—जिद करके, जबरईसे । हठपूर्वक ।

हत—(क्रिया) मारने, नष्ट करने या नाश करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हथवासहु—मिलके पकड़ो, हाथमें लो। वह बाँस भी जिससे नाव खेते हैं ।

हन—(क्रिया) मारने,मार डालने या प्राण हरण करनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।

हनुमत, हनुमान—महावीर, वानरश्रेष्ठ । ठुड्डीवाला ।

हनु—ठोढ़ी, ठुड्डी, चिबुक ।

हनुमंत, हनुमत, हनुमान—हनुमान । केशरी-किशोर महावीर। ठोढ़ीवाला ।

हम—मैंका बहुवचन, हमलोग । अहंकार ।

हय—तुरग, बाजी, घोड़ा ।—गृह, शाला, घुड़साल । अस्तबल।

हये, हयो—मारे। हने ।

हर—शिव,शङ्कर । चुरा ले,छीन ले । खेत जोतनेका हल ।—गिरि, कैलास पर्वत । (क्रिया) लेने, छीनने और चुरानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हरद—हलदी । हद। गहरा ताल। झील । जलकुंड । किरण ।

हरनी—हरनेवाली,नाश करनेवाली, मृगी, हिरनी।

हरष (हर्ष)—आनन्द,सुख,प्रसन्नता,

खुशी। (क्रिया) प्रसन्न होने, सुखी होनेके अर्थमें। "चद" की तरह।

हरषा—(क्रिया) आनन्दित होने और करनेके अर्थमें "रिसा" की तरह।

हरासू—दुःख, शोक। हताशा। ह्रास, क्षय।

हरि—राम, कृष्ण, विष्णु। वानर, घोड़ा, सिंह, मोर, कोकिल, हंस सूर्य।

हरिचन्द, हरिश्चन्द्र—सत्ययुगके एक सूर्य-वंशी राजाका नाम। देखो "कथाकौमुदी"

हरिजाना, हरियान—विष्णुकी सवारी गरुड़।

हरित—हरे रंगका, हरा। चुराया हुआ, छीना हुआ।

हरी—हरे रंगकी। हरि (देखो)

हरीस—कपिराज। सुग्रीव।

हरु, हरुअ—हलका, सुबुक।—आई, हलकापन, सूक्ष्मता।

हलधर—हलको धारण करनेवाले। किसान। बलदेवजी।

हलराव—(क्रिया) उछालने, झूलेकी तरह हाथमें लेकर झुलाने, झोंका देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

हलोरे—लहरें, जलके हलकोरे, बटोरे, समेटे।

हवाल—हाल, समाचार।

हवि—हव्य, यज्ञकी खीर, प्रसाद।

हस्त—कर, हाथ।

हहर—घबराने, उकताने, रंजसे घुल जानेके अर्थमें। "चद" की तरह।

हहिं—हैं।

हा—खेद, और दुःख-प्रकाशक अव्यय। हाय।

हाटक—कंचन, कनक, सोना।

हाटकलोचन—हिरण्याक्ष दैत्य। प्रह्लादका चचा।

हाड—हड्डी, अस्थि।

हानि—हर्जा, नाश, घटी।

हाय—दुःख, क्लेश, ठंडी सांस। हा।

हार—पुष्पमाला, चन्द्रहार। माला। पराजय। थकावट। (क्रिया) हारने, आशा छोड़ने, थकनेके अर्थमें। "चद" की तरह।

हारी—हार दी, थक गयी। हारने-वाला। चोर, ठग, डाकू।

हास—हँसी, प्रसन्नता, ठिठोली।

हाहाकार—शोक, त्राहि त्राहि, शोक वा कष्टका कोलाहल।

हि—निश्चय, दृढ़।

हिकर—(क्रिया) पीड़ासे कराहनेके अर्थमें, "चद" की तरह।

हित—प्यार, मित्रता, प्रेम, उपकार, भलाई। नातेदार, मित्र। लिये। वास्ते। अर्थ। कल्याण, भला। **—कारी**, कल्याण करनेवाला। भलाई करनेवाला। हितू, प्रेमी।

हिम—पाला, शीत। अगहन पूसकी ऋतु। **—उपल**, वनौरी, ओला। वर्षाके पत्थर। **—कर**, चन्द्रमा। **—वंत**, हिमाचल, हिमालय।

हिय, **हिया**— हृदय, हिरदा, हिया, मन।

हिलिया—बराबरी, मुकाबला, चढ़ा-उपरी।

ही—हृदय, मन, अन्तःकरण। **—के**, हृदयके, मनके।

हीन—रहित। विना।

हीरा—एक रत्न, पवि, वज्र।

हुति—आहुति। रही। थी। पारी। तरफसे, सती। बदलेमें, एवजमें।

हुन—होम करने, भस्म करने, बलि करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

हुमग—उमगसे कूदने, उछलनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

हुलस हुलास,—(क्रिया) उत्साहित वा प्रसन्न होने और करने उछलने, उमगके प्राप्त होनेके अर्थमें "चढ" की तरह।

उत्साह, उमग, अभिलाष मनका उछाल, हर्ष, उद्वेग। **—सी**, उत्साहित की। उमगाई।

हूहा—प्रसन्नताका शब्द। वानरोंके आनन्दका शब्द।

हृदय—हिय। अन्तःकरण। मन। दिल।

हृदयेस—दिलका मालिक। पति।

हेति—हा इति। हाय यह। हाय इतना। एक राक्षसका नाम।

हेतु, हेत—कारण, अर्थ, लिये, अर्थसे।

हेम—सुवर्ण, कंचन, सोना।

हेर—(क्रिया) देखने, खोजनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

हेरा—(क्रिया) खोनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

हेराव—(क्रिया) खोज करानेके अर्थमें, "चढाव" की तरह।

हेला—खेल, क्रीडा, दिल्लगी, गोहार।

हे, हो—(आदरसूचक सम्बोधन) हे। ओ।

हो—(क्रिया) होनेके अर्थमें, इसके सभी रूप उदाहरणकी भाँति भूमिकाके पहले खडमें दिये गये हैं।

होते—उत्पन्न हुए। रहते हुए।

होनी—होनहार, भावी, भव्य।

होम—यज्ञ, हवन।

ह्रद—गहरा झील। गहरा जलकुंड। किरण।

मानस-धातु-कोष



अ

अंकुर—अखुआ निकलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। अंकुरत, अंकुरेउ। आदि। उ० "उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।"

अंगव—सहनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। अगवत, अँगवइ, अँगइहि। इत्यादि।

अंचव—पीने और कुल्ली करने, खाकर मुँह साफ करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। अँचयेउ, अँचइ। इत्यादि।

अंज, आंज—अंजन लगानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। अंजत, अंजेउ, आंजिहि। आदि। उ० यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं सैलबन भूतल भूरि निधान।

अकन—[आकर्ण्य] कान लगाकर सुननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। अकनि, अकनेउ, अकनत। इत्यादि। उ० भूपति अकनि राम पगुधारे।

अट—भ्रमण करने, घूमनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते है। अटन, अटत, अटहिं। इ०। उ० चले राम बन अटन पयादे।

अथव—अस्त होनेके अर्थमें। चढ़ावकी तरह। अथवइ, अथवत, अथवा, अथयेउ। इत्यादि। उ० अथयेउ आजु भानुकुल भानू।

अनुसर—अनुसार या पीछे चलनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। अनुसरइ, अनुसरत, अनुसरा, अनुसरि, अनुसरेउ। इ०।

अनुहर—तद्रूप होने, वैसा ही होने, अनुकूल होनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप, ठीक, "अनुसर" की तरह। अनुहरत, अनुहरइ। इ०। उ० तनु अनुहरत सुचन्दन खोरी।

अन्हा—नहानेके अर्थमें। "रिसा"की तरह। अन्हात, अन्हाहु। इत्यादि। उ० "तात जाउ बलि बेगि अन्हाहू।"

अन्हवाव—नहलानेके अर्थमें । "चढाव"की तरह । अन्हवावा, अन्हवाये । इत्यादि । उ० "उबटि अन्हवाये" ।

अपहर—छीननेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । अपहरत, अपहरेउ । इ० । उ० अवलोकत अपहरत विषादू ।

अवडेर—त्यागने, धोखा देने, छोड़नेके अर्थमें । रूप "चढ़" धातुकी तरह । अवडेरत, अवडेरि । इ० । उ० पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही ।

अवतर—नीचे उतरने, उतारने, लेने, अवतार लेनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप । अवतरत, अवतरेउ । इ० । उ० प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।

अवराध—सेवा, पूजा करनेके अर्थमें । "चढ" धातुके अनुरूप । अवराधहु, अवराधत, अवराधा, अवराधि, अवराधेउ । इत्यादि । उ० केहू अवराधहु का तुम चहहू ।

अवरेख—लिखने, निशान करनेके अर्थमें । "चढ़" धातुकी तरह । अवरेखइ, अवरेखत, अवरेखा । इत्यादि । उ० रहि जनु लिखित चित्र अवरेखी ।

अवलोक—देखनेके अर्थमें । अवलोकइ, अवलोकत, "चढ़"की तरह । अवलोका । इत्यादि । उ० अवलोकत अपहरत विषादू ।

असीस—आशीर्वाद देनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते है । असीसत, असीसाहिं । इ० । उ० मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदय समाइ ।

अह—प्रस्तुत रहने या विद्यमान रहनेके अर्थमें । १—हो [अस=अह] धातु । २-होइ [अहइ=है] । ३-होउ । ४-होत । ५-होतिउ । ६-होनहार । ७-होब । ८-होबउ । ९-होसि [अहसि=तू है] १०-होहिं । [अहहि, हहिं] ११-होहु [अहहु=हो] । उ० भयउ न अहइ न होनिहारा, भूप भरत जस पिता तुम्हारा ।

। करनेके अर्थमें । "चढ" मृगी हिरनी ।

हरष (हष)—आनन्द, सुख, प्रसन्नता,

आ

आचर—चलने या आचरण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़"के रूपोंकी तरह होते हैं। आचरइ, आचरत। इ०। उ० जो आचरत मोर भल सोई।

आन—लानेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। आनहु, आना, आनइ। इ०। उ० आनहु सकल सुतीरथ पानी।

आराध—सेवा, पूजा करनेके अर्थमें। देखो, "अवराध"। "चढ़"की तरह। आराधत, आराधे। इ०। उ० इच्छित फल बिनु सिव आराधे।

इ

इच्छ—इच्छा करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। इच्छहु इच्छत, इच्छिहहिं। इत्यादि।

इतरा—अभिमान करनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा"के अनुरूप होते हैं। इतराइ, इतरात, इतराहिं। इ०।

उ

उअउव—उदय होने, निकलनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। उअइ, उअत, उआ, उइ, उयेउ। इत्यादि। उ० उयेउ अरुन अवलोकहु ताता।

उकस—ऊंचे होने, उठनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। उकसइ, उकसत, उकसहिं। इ०। उ० पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।

उजर, उजार—उजड़ने, उजाड़नेके अर्थमें। "चढ"की तरह। उजरत, उजरेउ, उजरहिं, उजारहिं, उजारउ। इ०। उ० उजरे हरष विपाद बसेरे।

उतर, उतार—उतरने, उतारनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। उतरत, उतारत। आदि।

उतरा—तैरने, फैल चलने, ऊपर बहनेके अर्थमें। "सिरा"की तरह। उतरात, उतराइ। इ०। उ० छुद्र नदी बहि चलि उतराई।

उपज, उपजाव—क्रमश पैदा होने और करनेके अर्थमें। "चढ" व "चढाव"के अनुरूप । उपजइ, उपजत उपजहिं, उपजावत, उपजावहिं । इ० । उ० उपजहिं एक संग जग माहीं ।

उपराज—पैदा करनेके अर्थमें । "चढ"के अनुरूप । उपराजइ, उपराजत, उपराजहिं । इ० ।

उपाअ, य, व—उत्पन्न करने, रचनेके अर्थमे । "चढाव"की तरह । उपाए, उपायेउ । इत्यादि । उ० जो विरचि निरलेप उपाए। पदमपत्र जिमि जग जल जाए ।

उखार—उखाड़नेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप । उखारहिं, उखारत, उखारि। इत्यादि । उ० वेगि सो मै डारिहउँ उखारी ।

उबट—लेपनद्वारा मैल छड़ानेके अर्थमें । "चढ"की तरह । उबटत,उबटेउ, उबटि । इ० । उ० "उबटि अन्हवाये ।"

उबर—बचने, उठनेके अर्थमें ।"चढ़"की तरह । उबरत, उबरहिं, उबरेउ, उबरे । इत्यादि । उ० जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महँ ।

उबार—बचाने, उभारने,बाहर करनेके अर्थमें । "चढ़"की तरह । उबारत, उबारा, उबारेउ । इत्यादि। उ० यहि अवसरको हमहिं उबारी ।

उमग—उमड़ने, जोशमें आने, खुश होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह । उमगेउ, उमगत । इत्यादि । उ० उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू ।

उमगाव—उमड़ाने, जोशमें लाने, प्रसन्न करनेके अर्थमें। "चढ़ाव"के अनुरूप। उमगावउ, उमगावत, उमगाउव । इत्यादि ।

उव—उगने,निकलनेके अर्थमें । "चढ़"के अनुरूप । उवत, उवेउ । इ० । उ० "उयेउ अरुन अवलोकहु ताता ।"

ओ

ओड़—ओट करने, ढकने, रोकनेके अर्थमें । "चढ"के अनुरूप । ओड़हु, ओड़त, ओडिये । इ० । उ० ओड़िय हाथ असनिहुक घाये ।

क

कटकट—किचकिचानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। कटकटहिं। इत्यादि। उ० मारहु धरहु जनि जाइ। कट-कटाहिं पूछ उठाइ।

कटकटा—किचकिचानेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। कटकटाइ, कटकटान। इ०। उ० कटकटान कपि कुंजर भारी।

कट्ट—काटनेके अर्थमें। इसकेरूप "चढ़"के अनुरूप होते हैं। कट्टइ, कट्टहिं, इत्यादि। उ० जम्बुक निकर कटक्कट कट्टहिं।

कर—करनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। करइ, करउ, करत, करहिं। इत्यादि। उ० "बिनु जर जारि करइ सोइ छारा।"

करष—खींचनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। करषइ, करषहिं, करषा, करषि। इत्यादि। उ० निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

कलप, कल्प—रो रोकर बातें करनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। कलपत, कलपेउ, कलपहिं। इत्यादि।

कलमल—कुलबुलाने, रेंगनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। कलमलइ, कल-मलहिं, कलमले। इत्यादि। उ० चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।

कस—कसौटीपर घिसने या दबानेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। कसा, कसत, कसहिं, कसि। इ०। उ० कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।

कसमसा—घबराने, दम घुटने, कस जाने, व्याकुल होनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। कसमसाइ, कसमसाउ, कसमसात। इत्यादि। उ० कसमसात आई अति घनी।

कांध—कंधेपर रखनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप है। काधइ, कांधत, काधहु, कांधी। इ०। उ० उठि सुत पितु अनुसासन कांधी।

काछ—धोती या कपड़े पहननेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। काछइ, काछउ, काछिअ। इ०। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा।

कूज—गुंजार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी चढ़की तरह होते हैं। कूजइ, कूजब, कूजसि, कूजहिं। इ०। उ० गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा।

ख

खचाव—लकीर खींचनेके अर्थमें। "चढ़ाव"की तरह। खचाइ, खचाव, खचावा। इत्यादि। उ० रेख खचाइ कहउँ बलु भाषी।

खटा—स्थिर रहने, खर्च होने, निपटने और पूरे पड़नेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। खटाइ, खटाउ, खटात, खटाहिं। इ०। उ० सहज एका- किन्हके भवन, कबहु कि नारि खटाहिं।

खन—खनन या खोदनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। खनइ, खनउ, खनत, खनि। इ०। उ० महि खनि कुस साथरी सँवारी।

खस—गिरने और सरकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। खसइ, खसउ, खसत, खसे। इ०। उ०—डोलत धरनि सभासद खसे। खसी माल मूरति मुसुकानी।

खाँग, खँग—कम होने और घट जानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते है। खाँगइ, खँगइ, खागत, खागे। इ०। उ० राखौं देह नाथ केहि खागे।

खचा—खिंचाने खींचनेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। खचाइ, खचाउ, खचात। इ०। उ० रेष खचाइ कहउँ बलु भाषी।

खोज—तलाश करने, ढूढ़नेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। खोजइ, खोजत, खोजब। इ०। उ० एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी।

खोव—गुम करनेके अर्थमें। "चढ़ाव"के अनुरूप। खोवइ, खोवउ, खोवत। इत्यादि।

गन, गण—गिननेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गनइ, गनउ, गनब, गनसि, गनि, स्त्री० गनी। इ०। उ० गनी जनकके गनकन्ह जोई।

गर—गलने, लाज्जित होने और नम्र होनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। गरइ, गरउ, गरत, गरसि। इ०। उ० गरइ गलानि कुटिल कइकेई।

गवन—जानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गवनइ, गवनउ, गवनत, गवनब। इ०। उ० कहाँहि गँवाइअ छिनकु स्रम, गवनब अबहिं कि प्रात।

गह—पकड़ने, धरने, ग्रहण करने और स्वीकार करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गहइ, गहत, गहब, गहि। इत्यादि। उ० "गहत चरन कह बालि कुमारा।"

गरज या गाज—गरजनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गरजइ, गरजब, गरजेउ। इ०। उ० तिन्हहिं देखि गरजेउ हनुमाना।

गाथ—गूथने, बाधने, पिरोनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गाथइ, गाथउ, गाथत, गाथे। इ०। उ० गाथे महामनि मौर मजुल अग सब चित चोरहीं।

गिल—निगलनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गिलइ, गिलत, गिलब। इ०। उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई।

गुंज—गूजनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गुंजइ, गुंजत, गुंजब, गुंजहिं। इ०। उ० मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।

गुदर—हटने या छोड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। गुदरइ, गुदरत, गुदरेहु, गुदरन। इ०। उ० मिलिन जाइ नहिं गुदरत बनई।

गुन—समझने, गिननेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गुनइ, गुनत, गुनहु, गुनि। इ०। उ० गुनहु लषन कर हमपर रोषू।

गुहराव—पुकारनेके अर्थमें। "चढ़ाव" क्रियाकी तरह। गुहराव, गुहरावत, गुहरावहिं। इ०।

गोय—छिपानेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गोवइ, गोवत, गोवा, गोइय, गोई। इ०। उ० ऐसिउ पीर बिहँसि उर गोई।

ग्रस, ग्रह—ग्रास करने, पकड़ने या खा जानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

असइ, असत, असब, असहि। इ० । उ० असहि न मोहि कहेउ हनुमाना।

घ

घट—बनने, बनाये जाने, ठीक होने और कम होनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। घटइ, घटउ, घटत, घटि, घटे। इ०। उ० घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई।

घहरा—टूट पड़नेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। घहराइ, घहराउ, घहरात। इ०। उ० घहरात जिमि पवि पात गरजत जनु प्रलयके बादले।

घाअ—चोट या घाव लगनेके अर्थमें। रामचरितमानसमें केवल यही उदाहरण मिलता है "ओड़िय हाथ असनिहुके घाये" इसके और रूप नहीं मिलते।

घाल—डालनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। घालइ, घालउ, घालत घालब। इ०। उ० घालइ लिए सहित समुदाई।

घुम्मर—धौंसेकीसी आवाज करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। घुम्मरइ घुम्मरउ, घुम्मरत, घुम्मरब, घुम्मरसि, घुम्मरहिं। इ०। उ० निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना।

च

चर—भक्षण करने या चलनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। चरइ चरउ, चरत, चरतिउ, चरसि, चरहिं। इ०। उ० जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं बिस्व प्रतिकूल।

चरफरा—चपल होनेके अर्थमें। "रिसा"की तरह। चरफराइ, चरफराउ, चरफरात, चरफराहिं। इ०। उ०—चरफराहिं मग चलहिं न घोरे।

चव—चूने, टपकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। चवइ, चवउ, चवत, चवसि, चवहिं। इ०। उ० चंद चवइ बरु अनलकन, सुधा होइ विष तूल।

चह—चाहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ"की तरह होते हैं। चहइ,चहउ, चहत, चहब, चाहु। इ०। उ० केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।

चांक-मुहर लगाने, अंकित करनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। चाकइ, चाकउ,चाकत,चांकब,चांकी। इ०। उ० तिलक-रेख-सोभा जनु चाँकी।

चाख—चखनेके अर्थमें। "चढ" धातुके अनुरूप। चाखइ, चाखउ,चाखत, चाखहिं,चाखा,चाखि। इ०। उ० जो जस करहि तो तस फल चाखा।

चांप, चाप—दबानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। चापइ, चापउ,चापत, चांपा। इ०। उ० कुबरी दसन जीभ तब चांपी।

चल, चाल—हिलाने, चलानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। चलइ, चलउ, चलत, चलब, चले। इ०। उ० "आगे चले बहुरि रघुराया।"

चह, चाह—देखने, मुकाबला करने, खोजने, इच्छा करनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। चाहइ, चहत, चाहउ, चाहा, चाहि। इ०। उ० "हरि-पद-बिमुख परम गति चाहा।" "सीय चकित चित रामहिं चाहा।"

चीन्ह—पहिचानने,निशानी बतानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ"की तरह होते हैं। चीन्हइ, चीन्हउ, चीन्हत चीन्हा चीन्हि। इ०। उ० तव रिपु निज नाथहि जिय चीन्हीं।

छ

छँड़, छड छंड, छांड—छोड़नेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। छाडइ,छाड़उ, छाड़त, छांडसि, छाडि। इ०। उ० लेइ लेइ दंड छाडि सब दीन्हे।

छक, छाक—मस्त हो जाने, शराबोर हो जाने, अभिन्न रूपमें मिल जानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। छकइ, छकब, छके। इ०। उ० "प्रेमरस छाके"।

छज, छाज—शोभा देने, छा जानेके अर्थमें, "चढ़"के अनुरूप। छजइ छाजत, छजब, छजहिं। इ०। उ० "जो कछु करहि उन्हहि सब छाजा"।

छट, छर—चुने जानेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। छटत, छटेउ, छटहिं, इत्यादि। उ० "छरे छबीले छयल सब"।

छम—क्षमा करने, सहनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह। छमइ, छमउ, छमव, छमिहहिं। इ०। उ० छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।

छाज—सोहनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। छाजइ, छाजत, छाजहिं। इ०। देखो "छज"।

छाड़—छोड़नेके अर्थमें। "चढ" की तरह। (देखो "छाड")।

छीज—घटने, नष्ट होनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। छीजइ, छीजउ, छीजत, छीजहिं। इ०। उ० छीजहिं निसिचर दिन अरु राती।

छीन—जबर्दस्ती ले लेने या काटनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। छीनइ, छीनउ, छीनत, छीनि। इ०। उ० एक तें छीनि एक लेइ खाहीं। "छीनि लेइ जनि जानि जड, तिमि सुरपतिहि न लाज।"

छुह—चित्रित करने वा एकपर एक रखनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। छुहइ, छुहउ, छुहसि, छुहे। इ०। उ० "छुहे पुरट घट।"

छेक—घेरने, रोकनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। छेकइ, छेकउ, छेकत, छेकव, छेका। इ०। उ० मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।

ज

जनाव—जताने या बतानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" की तरह होते हैं। जनावइ, जनावउ, जनावत, जनावहिं। इ०। "भीतर करहु जनाव।"

जमुहा—जम्भाई लेनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" धातुकी तरह होते हैं। जमुहाइ, जमुहाउ, जमुहात, जमुहाव, जमुहाईं। इ०। उ० राम राम कहि जे जमुहाहीं।

जर—जलनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ"की तरह होते है। जरइ, जरउ, जरत, जरहिं। इ०। उ० सूखहिं अधर जरहिं सब अगू।

जलप—व्यर्थ बकवाद करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जलपइ, जलपउ, जलपत, जलपसि। इ०। उ० कटु जलपसि जड कपि बल जाके।

जांच—मागने या परखनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। जाचइ, जाचउ,

जाचत, जाचव, जाचा। इ०। उ० मुनि कह मैं बर कबहु न जाचा।

जान—जाननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जानइ, जानउ, जानत, जानव, जानसि, जानहु, जानहिं। इ०। उ० जे जानहि ते जानहु स्वामी।

जुझ, जूझ—लड़ने या लड़ मरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जुझइ, जुझउ, जूझत, जूझा, जुझे। इ०। उ० बदि हित हानि जानि बिनु जुझे।

जुट, जुड़, जुर—मिलने, जुड़ने या लड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जुटइ, जुरहि, जुरे, जुटे। इत्यादि। उ० टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।

जुठार—जूठा करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जुठारइ, जुठारउ, जुठारत, जुठारव, जुठारी। इ०। उ० सब उपमा कवि रहे जुठारी।

जुड़ा—शीतल होने, शान्त होनेके अर्थमें, इसके रूप "रिसा" की तरह होते हैं। जुड़ाइ, जुड़ाउ, जुड़ात, जुड़ाव, जुड़ावउँ। इ०। उ० आजु निपाति जुड़ावउँ छाती।

जेंव—खानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जेवइ, जेवउ, जेवत, जेवहिं। इ०। उ० जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी।

जोगव—रक्षा करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" के अनुरूप। जोगवइ, जोगवउ, जोगवत, जोगवहिं। इ०। उ० जोगवहि जिन्हहिं प्रानकी नाईं।

जोव, जोह—देखने, निहारने, हरने, ढूँढ़ने, प्रतीक्षा करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जोवइ,जोवउ,जोवत, जोवनहार, जोवसि जोहइ, जोहा, जोहसि। इ०। उ० सब हमार प्रभु पग पग जोहा।

जोहार—प्रणाम करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जोहारइ, जोहारउ, जोहारत, जोहारव, जोहारि। इ०। उ० चले निषाद जोहारि जोहारी।

झ

झंप—छिपने, ढकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। झपइ, झंपउ, झपत, झपहि, झपेउ। इ०। उ० झपेउ भानु कहहिं कुविचारी।

झपट—टूट पड़ने, धावा मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। झपटइ, झपटउ, झपटत, झपटहिं। इ०। उ० झपटहिं करि बल विपुल उपाई।

ट

टर—हटने, टलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। टरइ, टरउ, टरत, टरब, टरहिं। इ०। उ० पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई।

टेर—बुलाने, पुकारनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। टेरइ, टेरउ, टेरत, टेरब, टेरै। इ०। उ० सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।

टेव—चोखा करने, तेज करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। टेवइ, टेवउ, टेवत, टेवा, टेईं। इ०। उ० कपट छुरी उर पाहन टेईं।

ड

डरप—डरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। डरपइ, डरपउ डरपत, डरपहिं। इ०। उ० डरपहिं धीर गहन सुधि आये।

डस—डसने, काटने, डंक मारनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डसइ, डसउ, डसत, डसब, डसहि। इ०। उ० संसय सर्प डसेउ उर ताता।

डहक, डहँक—ठगने, ठगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते है। डहकइ, डहकउ, डहकत, डहँकि। इ०। उ० डहँकि डहँकि परिचेउ सब काहू।

डाट—डाटने, फटकारनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। डाटइ, डाटउ, डाटत, डाटहिं। इ०। उ० कपि जय सील मारि पुनि डाटहिं।

डाढ़—जलानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते है। डाढ़इ, डाढ़उ, डाढ़त, डाढब, डाढहि। इ०।

डार—डालने या फेंकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। डारइ, डारउ, डारत, डारहिं। इ०। उ० धरि कुधर-खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़पर डारहीं।

डास—बिछानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डासइ डासउ, डासत, डासन, डासहि, डासि। इ०। उ० निज कर डासि नागरिपु छाला।

डग—हटने और दहलनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डगइ, डगउ, डगहि। इ०। उ० डगइ न संभु सरासन कैसे।

डोल—डोलने, चलने, चलायमान होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। डोलइ, डोलउ, डोलत, डोलहिं। इ०। उ० डोलत धरनि सभासद खसे।

ढ

ढनमन—ढलकने, लुढ़कनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। ढनमनइ, ढनमनउ, ढनमनत, ढनमनी। इ०। उ० रुधिर वमत धरनी ढनमनी।

ढँढोर—ढूढ़ने खोजनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। ढँढोरइ, ढँढोरउ, ढँढोरत, ढँढोरि, ढँढोरहि। इ०। उ० सारद उपमा सकल ढँढोरी।

त

तक—ताकने, देखनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। तकइ, तकउ, तकत, तकब, तकि। इ०। उ० तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं।

तमक—क्रोध करने या फुर्ती करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। तमकइ, तमकउ, तमकत, तमकि। इ०। उ० तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं।

तर—तैरने, पार हो जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। तरइ, तरउ, तरत, तरहिं, तरिहहिं। इ०। उ० तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।

दुर, दुराव—छिपानके अर्थमें। इन दोनों धातुओंके रूप क्रमशः "चढ़" और "चढाव"की तरह होते हैं। दुरइ, दुरउ, दुरत, दुरहिं, दुरावइ, दुरावहिं। इ०। उ० वैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये।

दे, देअ—देनेके अर्थमे। इसके रूप (१२) दीन्ह (१३) देइ (१४) देइय (१५) देइहइ (२१) दीन्हे, दिये, (२२) दीन्हेउ, दियेउ, (२४) दीन्हेहु, दियेहु उ० जो सपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिये दस माथ।

द्रव—ढलने, पिघलने, नर्म होनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप हैं। द्रवइ, द्रवहु, द्रवत, द्रवहिं। इ०। उ० जासु कृपा सो दयालु द्रवहु सकल कलिमल दहन।

ध

र धर—रखनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। धरइ, धरउ, धरव, धरहि। इ०। धरनि धरहि मन धीर, कह विरंचि हरि पद सुमिरु।

धार—धारण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। धारइ, धारउ, धारत, धारहिं, धारे। इ०।

ध्याव—ध्यान करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। ध्याव, ध्यावइ, ध्यावउ, ध्यावत, ध्यावहिं। इ०। उ० कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव।

न

—नाचने और अस्वीकार करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ"धातुके अनुरूप होते हैं। नटइ, नटउ, नटत, नटव, नटहिं, नटे। इ०।

नम, नव—झुकने, प्रणाम करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। नमइ, नमउ, नमत, नमहिं, नमिहहिं, नवइ, नवहिं। इ०। उ० सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। जे न नमत हरि गुरु पद मूला।

नस, नसा—नाश होने और करनेके अर्थमें। रूप क्रमशः 'चढ' और "रिसा"की तरह होते है। नसइ नसाइ, नसउ नसाउ, नसत नसात, नसव नसाव, नसहिं नसाहिं। इ०। उ० काज नसाइहिं होत प्रभाता।

नाँघ—लाँघने, डाँकने या फाँदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते

है। नाँघइ, नाँघउ, नाँघत, नाँघिय। इ०। उ० नाँघि सिंधु एहि पारहि आवा।

निकर—निकलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निकरइ, निकरउ, निकरत, निकरब। इ०।

निकस निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निकसइ, निकसउ, निकसत, निकसहिं, निकासि। इ०। उ० निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े।

निघट—घटने, बहुत कम होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निघटइ, निघटउ, निघटत, निघटहिं, निघटि। इ०। उ० जिमि जल निघटत सरद प्रकासे।

निदर—निरादर करने या निडर होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निदरइ, निदरउ, निदरत, निदरहिं, निदरि। इ०। उ० निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने।

निपात—नाश करने, गिरा देने, मार डालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निपातइ, निपातउ, निपातत, निपातब, निपाति। इ०। उ० ताहि निपाति महा धुनि गर्जा।

निबह, निरबह—निबाह करने या होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। निबहइ, निबहहिं निबहत, निबहत। इ०। उ० जो निर्बिघ्न पथ निरबहई।

निबुक—छूटने या छोड़नेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निबुकइ, निबुकउ, निबुकत, निबुकहिं, निबुकि। इ०। उ० निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी।

निबेर—चुकानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निबेरइ, निबेरउ, निबेरत, निबेरहिं, निबेरि। इ०। उ० संसय सकल सकोच निबेरी।

नियरा—निकट आनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। नियराइ, नियराउ, नियरात, नियराब, नियरान,। इ०। उ० बरसहि जलद भूमि नियराये।

निरख—देखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। निरखइ, निरखउ, निरखत, निरखहि, निरखि। इ०। उ० निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे।

निवस—रहनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निवसइ, निवसउ, निवसत, निवसहिं, निवसे। इ०।

निवार—दूर करने, हटानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। निवारइ, निवारउ, निवारत, निवारहिं, निवारे, निवारा। इ०। उ० जब हरि माया दूरि निवारी।

निसर—निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निसरइ, निसरउ, निसरत, निसरब, निसरि। इ०। उ० तन महँ प्रविसि निसरि सर जाहीं।

निहार—देखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निहारइ, निहारउ, निहारत, निहारब, निहारि, निहारे। इ०। उ० सुनत वचन तव अनत निहारे।

निहोर—इहसान बतानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निहोरइ, निहोरत, निहोरे, निहोरिहइ, निहोरिहउ। इ०।

नेवत—निमन्त्रण देनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। नेवतइ, नेवतउ, नेवतत, नेवतहिं, नेवते, नेवतेउ। इ०। उ० नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग।

नेवाज—आदर करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। नेवाजइ, नेवाजउ, नेवाजत, नेवाजहिं, नेवाजे। इ०। उ० नाम गरीब अनेक नेवाजे।

प

[illegible]ार—धोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। पखारइ, पखारउ, पखारत, पखारे, पखारि। इ०। उ० पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार।

पच—पचाने और पकानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पचइ, पचउ, पचत, पचे, पचहिं, पचि। इ०। उ० चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।

पछता, पछिता—पछतावा करने, पीछेसे किसी बातपर दुःख करनेके अर्थमें। "गिरा"की तरह। पछिताइ, पछिताउ, पछितात, पछिताने,

पछितइहहि । इ० । उ० सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ।

पछार—पछाड़नेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । पछारइ, पछारउ, पछारत, पछारा, पछारे । इ० । उ० गहेउ चरन धरि धरनि पछारा ।

पटक—पटकनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं । पटकइ, पटकउ, पटकत, पटकहिं, पटक, पटकेउ, पटका । इ० । उ० भागत भट पटकहिं धरि धरनी ।

पठव, पठाव—क्रमश भेजने ।भिजवानेके अर्थमें । "चढ़ाव"की तरह । पठवइ, पठवत, पठवा, पठाइहि, पठावा, पठयेसि, पठये । इ० । उ० पठयेसि मेघनाद बलवाना ।. . . .राम बालि निज धाम पठावा ।

पढ़—पढनेके अर्थमें । "चढ़" धातुकी तरह । पढइ, पढ़उ, पढत, पढ़हिं, पढे । इ० । बेद पढहिं जनु बटु समुदाई ।

पतिया—विश्वास करनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह । पतियाइ, पतियाउ, पतियात, पतियाहु । इ० । उ० काज सँवारेउ सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ।

पर—पड़नेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं । परइ, परउ, परब, परत, परे, परउँ । उ० परउँ कूप तव बचन लगि सकउ पूत पति त्यागि ।

परख, परिख, परेख—परखने, वाट जोहने, ध्यानसे देखनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । परखइ, परखउ, परखत, परखहिं, परखे, परखेसु । इ० । उ० परिखेसु मोहिं एक पखवारा ।......तब लगि मोहिं परेखेहु भाई ।

परस—छूने, परोसनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं । परसइ, परसत, परसि, परसे । इ० । उ० परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुज सही ।

परहेल —त्यागने, बेपरवा होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। परहेलइ, परहेलउ, परहेलत, परहेलव, परहेले। इ०। उ० सुन्दर जुवा जीव परहेले।

परा —भागनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" धातुकी तरह होते हैं। पराइ, पराउ, परात, पराव, परासि, पराहि, पराने, पराई। इ०। उ० कबहु निकट पुनि दूरि पराई।

परिछ —परिछन करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। परिछइ, परिछत, परिछहिं, परिछे, परिछन। इ०। उ० चलीं मुदित परिछन करन गजगामिनि वर नारि।

परिहर —छोड़नेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। परिहरइ, परिहरत, परिहरहिं, परिहरेहि, परिहरिय। इ०। उ० अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।

पल —पोषण पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। पलइ, पलत, पलहिं, पलव, पले। इ०।

पलुह —पल्लवित होने, पनपनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। पलुहत, पलुहइ, पलुहहिं। इ०। उ० पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।

पलोट —चरणसेवा करने, पाँवके पास लोटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं। पलोटइ, पलोटत, पलोटब, पलोटा, पलोटहिं, पलोटे। इ०। उ० गुरु-पद-कमल पलोटत प्रीते।

पवार —फेंकनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। पवारइ, पवारत, पवारे, पवारहिं, पवारा। इ०। उ० रज होइ जाइ पषान पवारे।

पाग —पगे होने, लपेटे जाने, सननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पागइ, पागत, पागहिं, पागे, पागा, पागि। इ०। उ० "बचन प्रेमरस पागे।"

पाट —पाट देने, भर देनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। पाटइ, पाटत, पाटहिं, पाटे, पाटउ। इ०।

पार —सकने, फेंकने, डालनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके

अनुरूप होते हैं। पारइ, पारत, पारब, पारहिं, पारे, पारा। इ०। उ० "को बरनै पारा"

पाल—पालने पोसनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। पालइ, पालत, पालहिं, पाले, पालहु, पालिय। इ०। उ० पालहु प्रजा सोक परिहरहू।

पाव—पानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं। पावइ, पावत, पाउब, पावहिं, पाइ, पाइय, पाए। इ०। उ० महा-महा-मुखिया जे पावहिं।

पिरा—पीड़ा करने व्यथा होनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। पिराइ, पिरात, पिराब, पिरान, पिराइय, पिराने। इ०। उ० वैठिय होइहहिं पाय पिराने।

पुरव—पूरा करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप। पुरव, पुरवइ पुरवत, पुरवहिं, पुरउब। इ०। उ० जो विधि पुरव मनोरथ काली।

पूछ—पूछनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। पूछइ, पूछउ, पूछत, पूछब, पूछहिं, पूछेसि। इ०। उ० पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू।

पूजि—पूजा सत्कार करने और पूरा होनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह है। पूजइ, पूजित, पूजिहिं, पूजब, पूजे। इ० उ० पूजिहि सब मनकामना सुजस रहिहि जग छाइ।

पूर—भरनेके और बटनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह है। पूरइ, पूरत, पूरहिं, पूरे, पूरेसि। इ०।

पेख—देखनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पेखइ, पेखत, पेखब, पेखहिं, पेखे, पेखनहार। इ०।

पेन्हाव—गाय लगनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुकी तरह हैं। पेन्हाव, पेन्हावइ, पेन्हावत, पेन्हाउब, पेन्हावसि, पेन्हाई। इ०। उ० भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।

पेल—त्यागने, टालने, और न माननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। पेलइ, पेलत, पेलब, पेलि, पेलिहहिं। इ०।

उ० आयहु तात वचन मम पेली। ...भूलेहु भरत न पेलिहहिं।

पोष—पुष्ट करने और पोसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। पोषइ. पोषत, पोषब, पोषहिं। इ०। उ० भानु कमल-कुल-पोषनि-हारा।

पोह—पिरोनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। पोहइ, पोहत, पोहब, पोहहिं, पोहे। इ०।

पौढ़, पौढ़ाव—लेटने और, लिटानेके अर्थमें। क्रमश· "चढ" और "चढाव" की तरह। पौढन. पौढे, पौढाये, पौढाइय। इ०। उ० करि सिंगार पलना पौढाये।

प्रगट—प्रगट करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। प्रगटइ, प्रगटउ, प्रगटत, प्रगटब, प्रगटे, प्रगटहिं। इ०। उ० यह प्रगटे अथवा द्विज सापा।

प्रचार—ललकारने, चलाने, ललकारनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। प्रचारइ, प्रचारउ, प्रचारत, प्रचारे, प्रचारि, प्रचारहिं, प्रचारे। इ०। उ० देइ देवतन्ह गारि प्रचारी।

प्रजार, पजार—जलाने, फूक देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। प्रजारइ, प्रजारत, प्रजारहिं, प्रजारे, पजारी, पजारा। इ०। उ० नगर फेरि पुनि पूछ पजारी।

प्रनव—नमस्कार करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं। प्रनवइ, प्रनवउ, प्रनवत, प्रनवहिं, प्रनवउँ। इ०। उ० प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना।

प्रविस—पैठने या घुसनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। प्रविसइ, प्रविसत, प्रविसि, प्रविसहिं, प्रविसे, प्रविसेउ। इ०। उ० प्रविसि नगर कीजे सब काजा।

प्रेर—आज्ञा करने, हुकम देने, भेजने, काम करानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। प्रेरइ, प्रेरउ, प्रेरत, प्रेरे, प्रेरहिं। इ०। उ० आवत बालितनयके प्रेरे।

फ

फब, फाब—सगत होने, ठीक बैठने, भले लगनेके अर्थमें। "चढ" की

तरह। फवइ, फवत, फवहि, फबे, फबी, फावी। इ०। उ० कुमतिहि कसि कुरूपता फावी।

फाड़, फार—फटने और फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुकी तरह होते हैं। फारइ, फारव, फारहिं, फारे। इ०। उ० धरि गाल फारहि उर विदारहिं गल अतावरि मेलहीं।

फुलाव—फुलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। फुलावइ, फुलावउ, फुलावत, फुलाउव, फुलावसि। इ०। उ० हँसव ठठाइ फुलाउव गालू।

फूट—टूटने, टुकड़े होनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। फूटइ, फूटत, फूटव, फूटहिं, फूटे। इ०। उ० रावन आगे परहि ते, जनु फूटहिं दधिकुंड।

फोर—फोड़ने, तोड़नेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। फोरइ, फोरउ, फोरत, फोरव, फोरे, फोरा। इ०। उ० फोरइ जोग कपारु अभागा।

ब

बंच—ठगनेके अर्थमे। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके रूपोंकी तरह होते हैं। बंचइ, बंचउ, बंचत, बंचहि, बंचेउ। इ०। उ० बंचेउ मोहि अवनि धरि देहा।

बँचाव—पढ़वानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बँचावइ, बँचावत, बँचावसि, बँचावा, बँचाइ, बँचाइय। उ० नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती।

बंद—प्रणाम या वंदन करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बंदइ, बंदउ, बंदत, बंदे, बंदहि, बंदि। इ०। उ० बंदि चरन उर धरि प्रभुताई।

बक—बकने, बोलनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते है। बकइ, बकत, बकहिं, बके, बकिहहिं। इ०। उ० भृगुपति बकहिं कुठार उठाये।

बखान—कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बखानइ, बखानउ, बखानत, बखानब, बखाने। इ०। उ० कपि सब चरित समास बखाने।

बगर—फैलने, बिखरनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बगरइ बगरत, बगरब, बगरहि, बगरे। इ०।

बच, बँच, बाँच—बचने, बचानेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। बचउँ, बचइ, बचत, बचहिं, बचब, बाचा, बचे। इ०। उ०
(१) बचउँ बिचारि बधु लघु तोरा।
(२) सत्यकेतु कुल कोउ न बाचा।

बटुर—इकट्ठे होने, सिमिटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। बटुरइ, बटुरत, बटुरहि, बटुरे, बटुरेउ। इ०।

बटोर—समेटने,संग्रह करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बटोरइ, बटोरत, बटोरहि, बटोरे, बटोरी। इ०। उ० सब कर ममता ताग बटोरी।

बताव—समझाने, दिखाने, कहनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बतावइ, बतावउ, बतावत, बतावा, बताइ, बताइ। इ०।

बद—कहने, बदनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। बद, बदइ, बदत, बदहिं, बदे। इ०। उ० मो सन भिरिहि कौन जोधा बद।

बध—मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बधइ, बधत, बधब, बधे, बधहिं। इ०। उ० जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ।

बधाव—मरवा डालनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बधावइ, बधावत, बधावा, बधावहिं, बधाए। इ०।

बन—बननेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बनइ, बनउ, बनत, बनिहि, बने, बनेउँ। इ०। उ० बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।

बनाव—बनानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते

हैं। बनावइ, बनावत, बनाये, बनावा। इ०। उ० बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।

बम—कै करनेके अर्थमें। उलटी होने, उगल देनेके अर्थमें। रूप "चढ" की तरह। बमइ, बमत, बमहिं, बमे, बमन। इ०। उ० रुधिर बमत धरनी ढनमनी।

बय—बोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बयइ, बयहिं, बयत, बये, बवा, बयउ। इ०। उ० बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।

बर—चुने जाने, बरने, ऐंठने, जलने और नियुक्त किये जानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" की तरह होते हैं। बरइ, बरत, बरहिं, बरउ, बर, बरा। इ०। उ० बरइ सीलनिधि कन्या जाही।

बरज—रोकने, मना करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। बरजइ, बरजत, बरजव, बरजहिं, बरजि, बरजे। इ०। उ० बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।

बरन—वर्णन करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। बरनइ, बरनव, बरनत, बरने, बरना, बरनी, बरनहिं। इ०। उ० बरनत बरन प्रीति बिलगाती।

बरष, बर्ष, बरिस, बरस—बरसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बरषइ, बरषत, बरषे, बरषहिं। इ०। उ० (१) ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। (२) जनु तह बरिस कमल सितस्रेनी।

बराव—चुनने, बचानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बरावइ, बरावत, बराये, बरावहिं। इ०। उ० सीय-राम-पद-अंक बराये।

बलकाव—झुकाने, पागल बनानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं। बलकावइ, बलकावत, बलकावसि, बलकावा। इ०। उ० जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा।

बस—रहनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बसइ, बसउ, बसत, बसब, बसहिं, बसे, बसेहु । इ० । उ० बसेउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ ।

बह—बहने और ढोनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । बहइ, बहत, बहब, बहहिं, बहे । इ० । उ० बहे जात कर भइसि अधारा ।

बहराव—अनसुना करने, बहलानेके अर्थमें । इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं । बहरावइ, बहरावत, बहराइ, बहरावा । इ० । उ० सुनि कपि वचन बिहँसि बहरावा ।

बहुर—फिरने, लौटनेके अर्थमें । "चढ" धातुकी तरह । बहुरइ, बहुरउ, बहुरत, बहुरहिं, बहुरिहहिं । इ० । उ० बहुरहिं लषन भरत बन जाहीं ।

बहोर—लौटानेके अर्थमें । "चढ" की तरह । बहोरइ, बहोरत, बहोरि । इ० । उ० गई बहोर गरीब निवाजू ।

बाँच—पढनेके अर्थमें । "चढ" धातुके अनुरूप । बाँचइ, बाँचत, बाँचब, बाँचे, बाँचि, बाँची । इ० । उ० जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ।

बाँट—बाँटने या भाग करनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । बाँटइ, बाँटत, बाँटहिं, बाँटे, बाँटि । इ० । उ० यह हबि बाँटि देहु नृप जाई ।

बाग—बकने और घूमनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । बागइ, बागत, बागहिं, बागहीं, बागे । इ० । उ० "एक एकहिं करत न बागहीं ।"

बाज—बजनेके अर्थमें । "चढ" धातुकी तरह । बाजइ, बाजत, बाजहिं, बाजे । इ० । उ० बाजहिं बहु बाजने सुहाये ।

बाढ़—बढनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । बाढइ, बाढत, बाढे, बाढहिं, बाढ़ि । इ० । उ० द्विजदेवता घरहिके बाढे ।

बाद—झगडने, हुज्जत करनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । बादइ, बादत, बादहिं, बादे, बादेउ । इ० । उ० बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि ।

बार—दूर करने, हटाने और मना करनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं । बारइ, बारत, बारब, बारे, बारिहहिं । इ० ।

बिगर—बिगड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप हैं। बिगरइ, बिगरत, बिगरे, बिगरहिं। इ०।

बिगोव—नाश करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बिगोवइ, बिगोवउ, बिगोवत, बिगोए, बिगोवा। इ०। उ० प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा।

बिघट—तोड़ने, धनवानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिघटइ, बिघटउ, बिघटत, बिघटे, बिघटहिं, बिघटन। इ०।

बिचर—चलने, फिरने, घूमनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बिचरइ, बिचरउ, बिचरत, बिचरहिं, बिचरे। इ०। उ० ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना।

बिचल—चलायमान होने, चचल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बिचलइ, बिचलत, बिचलहिं, बिचले। इ०। उ० बिचलत सेन कीन्हि तिन्ह माया।

बिचार—सोचने, ध्यान करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिचारइ, बिचारत, बिचारे, बिचारहिं। इ०। उ० इहा बिचारहिं कपि मन माहीं।

बिछुर—जुदा होने, अलग होनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। बिछुरइ, बिछुरत, बिछुरब, बिछुरे, बिछुरहिं। इ०। उ० बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

बिछोह—छोड़ देने या छुड़ा देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिछोहइ, बिछोहत, बिछोहब, बिछोहहिं, बिछोहा, बिछोही। इ०। उ० जेहि हौ हरि-पद-कमल बिछोही।

बिडर—छितराने, फैलने, बिलग होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। बिडरइ, बिडरत, बिडरहिं, बिडर, बिडरि। इ०। उ० बिडरि चले बाहन सब भागे।

बिढ़व—कमाने और बढ़ानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बिढवइ, बिढवत, बिढ़वासि, बिढ़वा, बिढइ। इ०। उ० बिढइ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू।

विथक—चकित होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। विथकइ, विथकत, विथके, विथाकि, बिथकहिं। इ०। उ० सब रनिवास विथकि लखि रहेऊ।

विदर, बिदार—फटने और फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। विदरइ, बिदरत, बिदरहिं, बिदरेउ, बिदारि। बिदारइ, बिदारत, बिदारे, बिदारहिं। इ०। उ० "हृदय न बिदरेउ पक जिमि"। "फौज बिदारी" "नखन बिदारि"।

विनव—विनती करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। विनवइ, बिनवत, बिनवउ, बिनवासि, बिनवहिं, बिनइ। इ०।

विनस—नष्ट होने, बिगड़नेके अर्थमें। "चढ" धातुके अनुरूप। बिनसइ, बिनसत, बिनसब, बिनासि, बिनसहिं, बिनसे।

बिया, बिआ—जनने, बियानेके अर्थमें। इसके रूप "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह होते हैं। बियाइ, बियात, बियाव, बियासि, बियाहिं, बियान, बियानेहु। इ०। उ० न तरु बाँझ भलि बादि बिआनी।

विरच—रचने, बनानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। विरचइ, बिरचत, बिरचे, बिरचहिं, बिरचि। इ०। उ० बिरचे कनक कदलिके खमा।

[illegible]—विराजने, सोहनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। विराजइ, बिराजहिं, बिराजे, बिराजि। इ०। उ० जेहि तुरगपर रामु बिराजे।

बिलख, बिलखा—दुखसे पीडित होने, रोने, उदास होनेकी दशामें, कुछ कहने या शिकायत करनेके अर्थमें। इसके रूप क्रमशः "चढ" और "रिसा" धातुकी तरह होते हैं। बिलखइ, बिलखत, बिलखहिं, बिलखाहिं, बिलखे, बिलखि। इ०। उ० "जड़ दुख बिलखाहीं"। बिलखि कहेहु मुनि नाथ"।

बिलगा—अलग होने, जुदा होनेके अर्थमें। "पिरा" "सिरा" आदकी तरह होते हैं। बिलगाइ, बिलगाउ, बिलगात, बिलगाहिं, बिलगान, बिलगाने। इ०। उ० सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।

बिलगाव--अलग करनेके अर्थमें। चढ़ावकी तरह इसके सभी रूप होते हैं। बिलगाउब, बिलगावत, बिलगावहिं, बिलगावसि, बिलगाइय, बिलगाए। इ०। उ० गनिगुन दोप वेद बिलगाए।

बिलप—रोकर शिकायत करने या बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिलपइ, बिलपत, बिलपहिं, बिलपि। इ०। उ० बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाइ।

बिला—नष्ट हो जाने, मिट जानके अर्थमें। इसके रूप "पिरा" "सिरा" की तरह होते हैं। बिलाइ, बिलाउ, बिलाहिं, बिलान, बिलाने। इ०। उ० कबहु प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

बिलोक—देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिलोकइ, बिलोकत, बिलोकहिं, बिलोके, बिलोकि। इ०। उ० सती बिलोके व्योम बिमाना।

बिलोव—मथनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बिलोवइ, बिलोवत, बिलोउब, बिलोवसि, बिलोइ। इ०।

बिस्तर, बिस्तार—फैलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं। बिस्तरइ, बिस्तारत, बिस्तारहिं, बिस्तरे, बिस्तरेहु। इ०। उ० जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जनमकर हेतु।

बिसर—भूलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिसरइ, बिसरत, बिसरहिं, बिसरे, बिसरि, बिसरु। इ०। उ० बिसरी देह तपहि मन लागा।

बिसूर—चिन्ता करने, मन ही मन रोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिसूरइ, बिसूरत, बिसूरहिं, बिसूरे, बिसूरि। इ०। उ० जानि कठिन सिवचाप बिसूरति।

बिहँस—हँसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिहँसइ, बिहँसत, बिहँसहिं, बिहँसे, बिहँसि। इ०। उ० सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।

बिहर—खेलने, क्रीड़ा करने और फटनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिहरइ, बिहरत, बिहरहिं, बिहरे, बिहरि। इ०।

बीत—बीतने या गुजरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बीतइ, बीतत, बीतहिं, बीते, बीति। इ०। उ० बीते सवत सहस सतासी।

बीन—चुनने, साफ करने और अलग करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बीनइ, बीनत, बीनव, बीनहिं, बीने, बीनि। इ०।

बुझाव—शान्त करने, समझाने, जतानेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बुझावइ, बुझावत, बुझावसि, बुझावहिं, बुझाइ, बुझाइय। इ०। उ० पूंछ बुझाइ खोइ स्रम धरि लघुरूप बहोरि।

बुताव—बुझाने या शान्त करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बुतावइ, बुतावत, बुतावसि, बुताइहिं, बुताइ, बुताइय।

बूझ—जानने, पूछने और समझनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। बूझइ, बूझत, बूझव, बूझहिं, बूझे, बूझि। इ०। उ० भरत-सुभाव-सील बिनु बूझे।

बूड़—डूबने, मग्न होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बूड़इ, बूड़त, बूड़हिं, बूड़ि। इ०। उ० बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।

बेध—छेदनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बेधइ, बेधत, बेधहिं, बेधे, बेधि, बेधिय। इ०। उ० सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा।

बेसाह—खरीदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बेसाहइ, बेसाहत, बेसाहव, बेसाहहिं, बेसाहि, बेसाहे। उ० आनेहुँ मोल बेसाहि कि मोही।

बैठार—बैठालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। बैठारइ, बैठारत, बैठारहिं, बैठारे, बैठारि। इ०। उ० उतरु देव मैं सबहिं तब, हृदय बज्र बैठारि।

बोर—डुबोने, बोरने, और निमग्न करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" के अनुरूप

होने हैं। बोरइ, बोरत, बोरहिं, बोरे, बोरि। इ०। उ० बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई।

बोल—कहने, बुलाने या बुलवानेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। बोलइ, बोलत, बोलहि, बोलव, बोले, बोलि। इ०। उ० (१) बोलत बचन झरत जनु फूला। (२) बोलि किरात छमातक लीन्हें।

बोव—लगाने, जमानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बोवइ, बोवत, बोउब, बोइय, बोइ। इ०।

ब्याप—फैलने, जाहिर होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" के अनुरूप हैं। ब्यापइ, ब्यापत, ब्यापहि, ब्यापे, ब्यापि। इ०। उ० ब्यापि रहेउ संसार महँ माया कटक प्रचंड।

भ

भंज—नास करने या तोड़नेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भंजइ, भंजत, भंजनहार, भंजउ, भंजु, भंजे। इ०। उ० नाथ संभु-धनु-भंजनि-हारा।

भच्छ—खाने, भच्छण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। भच्छइ, भच्छत, भच्छब भच्छहि, भच्छि। इ०। उ० कहु महिष मानुष धेनु खर अज खग निसाचर भच्छहीं।

भज—भजन करने या भागनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। भजइ, भजत, भजहिं, भजे, भाजि, भजिय। इ०। उ० जे परिहरि हरि-हर चरन भजहिं भूतगन घोर।

भन — कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भनइ, भनत, भनहिं, भने, भनि, भनिय। इ०। उ० "निगमागम भने।"

भभर—घबराने, रोमांचित होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। भभरइ, भभरत, भभरहिं, भभरि। इ०। उ०। सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान।

भर—पूर्ण करने, पालन पोषण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। भरइ, भरत, भरहिं, भरे, भरि, भरिय। इ०। उ० भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।

भाग—भागने, चले जानेके अर्थमें । "चढ"की तरह । भागइ, भागत, भागहिं, भागे, भागि, भागा । इ० । उ० धावा बालि देखि सो भागा ।

भाज—भागने, दौड़ने, बाटने, और तोड़नेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भाजइ, भाजत, भाजहिं, भाजि, भाजे । इ० । उ० भाजि चले। किलकात मुख दधि ओदन लपटाइ ।

भाव—अच्छा लगने, भाने या प्रिय लगनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भावइ, भावत, भावहिं, भावे, भावा, । इ० । उ० भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई ।

भाष—कहनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भाषइ, भाषत, भाषहिं, भाषे, भाषि, भाषा । इ० । उ० कामचरित नारद सब भाषे ।

भास—मालूम होने, जान पड़नेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भासइ, भासत, भासहिं, भास, भासि । इ० । उ० "रजत सीप महँ भास जिमि ।"

भिर—लड़ने, भिड़नेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भिरइ, भिरत, भिरहिं, भिरे, भिरि । इ० । उ० भिरे सकल जोरिहि सन जोरी ।

भुला—भूलनेके अर्थमें । भिरा, पिरा, आदिकी तरह । भुलाइ, भुलाउ, भुलात, भुलाव, भुलाहि, भुलान । इ० । उ० फिरेउ महावन परेउ भुलाई ।

भूज—भूनने और भोगनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भूजइ, भूजत, भूजव, भूजे, भूजहि, भूजि । इ० । उ० राजु कि भूजब भरतपुर नृपु कि जियहि बिनु राम ।

भूल—भूल चूक करने या बिसर जानेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भूलइ, भूलत, भूलव, भूलहिं, भूले, भूलेहु । इ० । उ० भल भूलिहु ठगके बौराये ।

भूष—भूषित करने या सजानेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भूषइ, भूषत, भूषहिं, भूषे, भूषि । इ० । उ० ससिहि भूष अहि लोभ अमीके ।

भ्राज—चमकने, सुहावना लगनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । भ्राजइ,

भ्राजत, भ्राजहि, भ्राजे, भ्राजि। इ०। उ० मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।

म

मज्ज—नहाने, धोने और डूबनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मज्जइ, मज्जत, मज्जहिं, मज्जे, मज्जि, मज्जिय। इ०। उ० मकर मज्जि गवनहिं मुनि वृंदा।

मर—मरनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मरइ, मरत, मरब, मरहिं, मरे, मरि, मरेउ। इ०। उ० जनमत मरत दुसह दुख होई।

मरद—मरने, मसलनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह। मरदइ, मरदत, मरदहिं, मरदे, मरदि। इ०। उ० एक एक सो मरदहिं तोरि चलावहिं मुंड।

मरोर—मरोड़ने या उमेठनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मरोरइ, मरोरत, मरोरहिं, मरोरे, मरोरि। इ०। उ० महि पटकत भजे भुजा मरोरी।

मच,माच—होने, प्रारंभ होने, जारी होने, मचनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मचइ, मची, माचि, माचहिं, माचे, मचे। इ०। उ० मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा।

मान—मान लेने, स्वीकार करने, अंगीकार करने या कबूल करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मानइ, मानउ, मानत, मानहिं, माने, मानि, मानहु। इ०। उ० अजहू मानहु कहा हमारा।

माप—नापने, सीमाबद्ध करने, व्याकुल होने, बेसुध होनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मापा, मापइ, मापत, मापहिं, मापे, मापि। इ०। उ० माजहिं खार मीन जनु मापी।

मार—मारनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मारइ, मारउ, मारत, मारहिं, मारे मारि। इ०। उ० हनूमान अंगदके मारे।

मिट—मिटाने, अभाव कर देने, नष्ट कर देने, साफ कर देनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। मिटइ, मिटत, मिटब, मिटहिं, मिटे, मिटि, मिटिहि। इ०। उ० तुम्ह सन मिटिहि कि बिधिके अंका।

मीज—मलने, मसलने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मीजइ, मीजत, मीजिहि, मीजहिं, मीजि। इ०। उ० अबला बालक वृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहिं।

मुड़—कतरा जाने, झुक जाने, हट जाने, धोखेमें आने, सिरके बाल कट जानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। मुड़इ, मुड़व, मुड़त, मुड़हिं मुड़े, मुड़ि। इ०। उ० (देखो 'मुर')

मुड़ाव—सिरके बाल कटवाने और धोखा खा जाने, लुट जाने, ठग जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुड़ावइ, मुड़ावत, मुड़ावहिं, मुड़ाइ, मुड़ावा। इ०। उ० मूड़ मुड़ाइ भये सन्यासी।

मुर—मुड़ने, फिरने, लौटने, घूमने और पलटने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुरइ, मुरत, मुरहिं. मुरा, मुरिय, मुरे, मुरेउ। इ०। उ० मुरेउ न मन तन टरेउ न टारे।

मुरछ—बेसुध होने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुरछइ, मुरछत, मुरछहिं, मुरछि। इ०। उ० परेउ मुरछि महि लागत सायक।

मुसुका—मंद हास्य या मुसुकानेके अर्थमें। पिरा, सिरा आदि के अनुरूप। मुसुकाइ, मुसुकात, मुसुकाहिं, मुसुकान, मुसुकाने। इ०। उ० समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।

मेट—मिटाने, नष्ट करने, बरबाद करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मेटइ, मेटउ, मेटत, मेटहिं, मेटे, मेटि, मेटनहार, मेटिय। इ०। उ० तासु बचन मेटत मन सोचू।

मेल—मिलाने, टालने और फेकने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मेलइ, मेलत, मेलहिं, मेलि। इ०। उ० मानि मुख मेलि डारि कपि देहीं।

मोच—छोड़ने, गिराने, बहानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मोचइ, मोचत, मोचहिं, मोचि,। इ०। उ० मंजु बिलोचन मोचति वारी।

मोह—मोहित करन, ठगने, भुलवाने, छलने और बेसुध करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मोहइ, मोहत, मोहहिं, मोहे, मोहि, मोहेहु। इ०। उ० देखि रूप मोहे नर नारी।

रच्छ—रच्छा करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। रच्छइ, रच्छत, रच्छहिं,

रच्छि, रच्छे । इ० । उ० करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं ।

रच—बनाने या रचने के अर्थमें । "चढ़" की तरह । रचइ, रचत, रचहिं, रचें, रचहु, रचासि, रचि । इ० । उ० रचे रुचिर वर वंदनवारे ।

रट—रटने, घोखने, जपने और धुन बांधनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रटइ, रटत, रटहिं, रटि, रटे, रटसि । इ० । उ० रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ।

रअ, रय—रंगने, रमने, मथने, बिलोनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह । रयइ, रयउ, रए, रएउ, रइ । इ० । उ० "हरि रंग रये" ।

रह—रहने और ठहरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रहइ, रहत, रहहिं, रहे, रहि, रहु, रहेसि । इ० । उ० रहहु तात अस नीति विचारी ।

रहस—अकेले या एकान्तमें हो जाने या अलग होकर बात करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रहसइ, रहसत, रहसहिं, रहसि, रहसे । इ० । उ० रहसी रानि राम रुख पाई ।

रांच—लगने, रमने, तत्पर होने, लवलीन होनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रांचइ, रांचत, रांचहिं, रांचे, रांचा । इ० । उ० सो बर मिलिहि जाहि मन रांचा ।

रांध—उबालने, पकाने, या रसोई बनानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रांधइ, रांधत, रांधहि, रांधि, रांधे, रांधा । इ० । उ० विविध मृगन्हकर आमिष रांधा ।

राख—रखने, बचाने, रक्षा करने और संभालनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । राखइ, राखउ, राखत, राखहिं, राखे, राखि, राखउँ । इ० । उ० राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू ।

राच—रचने, रचाने, मनसूबे करने और रचना करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । राचइ, राचत, राचहिं, राचेउ, राचि । इ० । उ० मन जाहि राचेउ मिलिहि सो बर सहज सुंदर सांवरो ।

राज—विराजने, सोहने और बैठनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । राजइ, राजत, राजे, राजहिं राजिहहिं । इ० । उ० राजत बाजत विपुल निसाना ।

रिझाव—प्रसन्न करने और राजी करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। रिझावइ, रिझावउ, रिझाउव, रिझाए, रिझाउ, रिझाइ। इ०। उ० बातन्ह मनहिं रिझाइ सठ जानि घालेसि कुल खीस।

रिसा—क्रोध करनेके अर्थमें। पिरा आदिके अनुरूप। रिसाइ, रिसात, रिसाव, रिसाहिं, रिसान, रिसाइय, रिसाने। इ०। उ० टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।

रीझ—प्रसन्न होने और राजी होनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। रीझइ, रीझत, रीझहिं, रीझि, रीझे, रीझिहि। इ०। उ० रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी।

रेंगाव—धीरे धीरे चलाने, सरकानेके अर्थमें। "चढाव" के अनुरूप। रेंगावइ, रेंगावत, रेंगाइ, रेंगाइय, रेंगाए, रेंगाउ। इ०। उ० अस कहि सनमुख फौज रेंगाई।

रोव—रोनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। रोवइ, रोवत, रोवहिं, रोए, रोइ, रोइय, रोएउँ। इ०। उ० सोक बिकल सब रोवहिं रानी।

रोक—रोकने, बाधा करने, मना करने और अटकानेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। रोकइ, रोकत, रोकहिं, रोकहु। इ०। उ० होहु सँजोइल रोकहु घाटा।

रोद—रोनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। रोदइ, रोदत, रोदहिं, रोदि, रोदे। इ०। उ० करि बिलाप रोदति बदति सुता सनेह सँभारि।

रोप—बोने, जमाने, लगाने, ग्रहण करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। रोपइ, रोपत, रोपहिं, रोपें, रोपि, रोपहु। इ०। उ० रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।

ल

लख—देखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लखइ, लखत, लखब, लखहिं, लखे, लखि। इ०। उ० लखब सनेहु सुभाय सुहाये।

लखाव—देखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लखावइ, लखावत, लखाउव, लखावहिं, लखाए। इ०। उ० लता ओट तब सखिन्ह

लगाव—लगाने, मिलाने और सग देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लगावइ, लगावत, लगावहिं, लगाउ, लगाइ, लगाए। इ०। उ० पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।

लग—लगने ओर छूनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लगइ, लगत, लगहिं, लगे, लागे, लगव। इ०। उ० लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा।

लजा—लजाने और सकुचानेके अर्थमें। सिरा, पिरा आदिकी तरह। लजाइ, लजात, लजाब, लजाहिं, लजाने, लजाहु। इ०। उ० तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।

लजाव—लजवाने, लज्जित करानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लजावइ, लजावत, लजावहिं, लजाए, लजाइय। इ०। उ० ठवनि जुवा मृगराज लजाये।

लट—लटने, लटकने, मुरझाने, दुर्बल होने, झुकने, घटन, अशक्त होने और झूमनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। लटइ, लटत, लटहिं, लटव, लटे, लटि। इ०।

लड़—लड़ाई, झगड़ा, विरोध करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। [देखो "लर"] लड़इ, लडत, लड़हिं, लड़व, लडे, लड़ि। इ०। उ० प्रमुदित महा मुनिवृन्द वन्दे पूजि प्रेम लड़ाइकै।

लपटाव—लिपटने, चिपकनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लपटावइ, लपटावत, लपटावहिं, लपटावा, लपटाइ। इ०। उ० सबरी परी चरन लपटाई।

लपेट—लपेटनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लपेटइ, लपेटत, लपेटहिं, लपेटे, लपेटि। इ०। उ० लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।

ले—लेनेके अर्थमें। 'दे' के अनुरूप। लेइ, लेउ, लेत, लेव, लेहु। इ०। उ० देहु कि लेहु अजस करि नाहीं।

लर—लडनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लरइ, लरत, लरहिं, लरव, लरे लरि। इ०। उ० लरहिं सुखेन न मानहिं हारी।

लव, लुन—लवने या काटनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। और 'लुन'

"चढ़" की तरहसे। लवइ, लवउ, लए, लुनिय, लुनइ, लुनत, लुना। इ०। उ० बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।

लस—शोभा देने और शोभा पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लसइ, लसउ, लसव, लसहिं, लसे, लसि, लसा। इ०। उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि।

लह—पाने और लेनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लहइ, लहत, लहहिं, लहे, लहि। इ०। उ० लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाजु प्रयाग।

लहलहाव—चमचमाने, झलझलाने, लपलपाने, और लहरानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। लहलहाइ, लहलहावत, लहलहावहिं, लहलहाए, लहलहावा। इ०।

लाँघ—पार होने, लप जाने, फाँदनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। लाघइ, लाघत, लाघहिं, लाघे, लाघि। इ०। उ० नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। (देखो नाँघ)

लाव—लाने और लगानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। लावइ, लावत, लाउव, लावसि, लाए, लावहु। इ०। उ० भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहिं।

लाग—लगनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लागइ, लागत, लागव, लागहिं लागे, लागिहि। इ०। उ० नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे।

लाज—लजाने और लजवानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लाजइ, लाजत, लाजहिं, लाजे, लाजि। इ०। उ० कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।

लाध—पानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लाधइ, लाधत, लाधहिं, लाधि, लाधा, लाधे। इ०। उ० काहु न इन्ह समान फल लाधे।

लाव—लगाने, जमाने और बोनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लावहु, लाये, लावा, इ०। उ० भाइहु लावहु धोख जनि आजु काजु बड़ मोहु।

लिख—लिखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लिखइ, लिखत, लिखहिं,

लिखे, लिखि । इ० । उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू ।

लुका—छिपनेके अर्थमें । "पिरा" "सिरा" की तरह । लुकाइ, लुकात, लुकाहिं, लुकान, लुकाने । इ० । उ० बाज झपट जनु लवा लुकाने ।

लुकाव—छिपानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह । लुकावइ, लुकावत, लुकाउब, लुकावा, लुकाइ, लुकाए । इ० । उ० तरु पल्लव महुँ रहा लुकाइ ।

लुठत—लोटने, लुढ़कने, छटपटानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लुठइ, लुठत, लुठहिं, लुठब, लुठे, लुठा । इ० । उ० जनु महि लुठत मनोज समेटे ।

लुन—अनाज काटने, निकालने, प्राप्त करने, और पानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लुनइ, लुनत, लुनहिं, लुने, लुनि, लुना, लुनिय । इ० । उ० बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ।

लेस—लगाने, मिलाने, जोड़ने, चिपकानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लेसइ, लेसत, लेसहिं, लेसा, लेसि । इ० । उ० एहि बिधि लेसइ दीप, तेज रासि बिज्ञानमय ।

लोप—छिपने और छिपानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लोपइ, लोपत, लोपहिं, लोपेउ, लोपि । इ० ।

लोभ, लोभाव—लोभाने, ललचानेके अर्थमें । "चढ़" और "चढ़ाव" की तरह । लोभइ, लोभत, लोभहिं, लोभि, लोभे । इ० । उ० जहँ बसन्त रितु रही लुभाई ।

साध—जोड़ने, चढ़ाने, निशानेपर लगानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । साधइ, साधत, साधहिं, साधे, साधि । इ० । उ० करतल चाप रुचिर सर साधा ।

सँभार—स्मरण करने, चेतने, बचा लेने और सँभालनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सभारइ, सँभारत, सँभारहिं, सँभारे, सँभारि । इ० । उ० बार बार रघुबीर सँभारी ।

सक, शक—सकनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सकइ, सकत, सकहिं, सके, सकि, सकिय । इ० । उ० प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिवाई ।

सका—सकुचाने, डरने, सन्देह करने और लजानेके अर्थमें। "हिरा" "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह। सकाइ, सकात, सकाहिं, सकाने, सकाउ, सकान। इ०। उ० छविथ तनु धरि समर सकाना।

सकिल—बटुरने, दबकने, दबने, अड़सने, फँसने, एकत्र होने, और सिमटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सकिलइ, सकिलत, सकिलहिं, सकिले, सकिलि। इ०। उ० सकिलि सवन मग चलेउ सुहावन।

सकुच, सकुचा—लजाने, और डरनेके अर्थमें। "चढ़" और "रिसा" के अनुरूप। सकुचइ, सकुचत, सकुचहिं, सकुचे, सकुचि। सकुचाइ, सकुचात, सकुचाने, सकुचाहि। इ०। सुनत गिरा मन अति सकुचाई।

सँकेल—समेटने, बटोरने, एकत्र करने, कसने, दबानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सकेलइ, सकेलत, सकेलहिं, सकेलि, सकेला, सकेले। इ०। उ० प्रथम कुमति करि कपट सँकेला।

सताव—कष्ट देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। सतावइ, सतावत, सतावहिं, सतावहु, सतावा। इ०। उ० निसिचर निकर सतावहिं मोहीं।

सनकार—सनकियाने या इशारा करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सनकारइ, सनकारत, सनकारहिं, सनकारि, सनकारे। इ०। उ० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।

समर्प—सौंपनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। समर्पइ, समर्पत, समर्पहिं, समर्पि, समर्पे। इ०। उ० आयध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।

—समाने, घुसने और प्रवेश करनेके अर्थमें। "रिसा" "पिरा" "सिरा" की तरह। समाइ, समात, समाहिं, समान, समाने, समानेउ। इ०। उ० मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।

समुझाव—समझाने और जनानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। उ० गहि कर चरन नारि समुझावा।

समुझ—समझने और जाननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। उ० मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे।

समुहा—सम्मुख होने, सामने आने और मिलनेके अर्थमें। रिसा, पिरा आदिके अनुरूप। समुहाइ, समुहात, समुहाहिं, समुहान, समुहाने। इ०। उ० आति भय त्रसित न कोउ समुहाई।

समेट—बटोरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। समेटइ, समेटत, समेटहिं, समेटि, समेटे। इ०। उ० जनु महि लुठत सनेह समेटे।

सर—बराबर करने, पूरा करने, हो सकनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सरइ, सरत, सरहिं, सरे, सरिहहि, । इ०। उ० तोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई।

सरस—बढ़ने, गाढे होने और घना होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सरसउ, सरसत, सरसहिं, सरसि, सरसे। इ०।

सरसा—सरस करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सरसाइ, सरसात, सरसाने, सरसाहिं, सरसाए। इ०।

सरसाव—सरस कराने के अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। सरसावइ, सरसावत, सरसावहिं, सरसाए। इ०।

साप—बुरा मनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सापइ, सापत, सापहिं, सापे, सापि। इ०। उ० सापत ताड़त परुष कहंता।

सराह—बड़ाई करने, स्तुति करने, प्रशंसा करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। सराहइ, सराहत, सराहय, सराहहिं, सराहसि, सराहे, सराहि। इ०। उ० तुहूँ सराहसि करसि सनेहू।

सह—सहने, भोगनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सहइ, सहत, सहहिं, सहहुँ, सहउँ, सहे, सहि।; इ०। उ० खल तव कठिन बचन सब सहऊँ।

सहाव—सहन कराने, भोगनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। सहावइ, सहावत, सहावा, सहाइ, सहाए। इ०। उ० जेहि बिधि मोहि दुख दुसह सहावा।

सांध—मिलानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। साधइ, सांधउ, साधत, सांधा। इ०। उ० तेहि महँ बिप्र मास खल साधा।

साध—साधने, अपने ढगपर लाने, मिलानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

साधइ, साधत, साधहिं, साधे, साधि, साधा, साधेउँ । इ० । उ० अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा ।

सान—मिलाने, लपेटनेके अर्थमें । "चढ" के अनुरूप । सानइ, सानउ, सानत, सानहिं, सानि, साने, साना । इ० । उ० सील सनेह सरल रस सानी ।

साप—शाप देनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । (देखो 'साप')

सार—बनाने सँवारनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सारइ, सारत, सारहिं, सारे, सारि । इ० । उ० जातहि रामतिलक तेहि सारा ।

साल—चुभनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सालइ, सालत, सालहिं, साले, सालि, सालु । इ० ।

सिंच—सींचने, तर करनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सिंचइ, सिंचउ, सिंचत, सिंचहिं, सिंचि । इ० ।

सिंचाव—छिड़कने और तर करनेके अर्थमें । "चढ़ाव" के अनुरूप । सिंचावइ, सिंचावत, सिंचावहु, सिंचावा, सिंचाइ । इ० । उ० बीथी सकल सुगंध सिंचाई ।

सिअ, सिआव, सिय, सियाव—सीने सिलानेके अर्थमें क्रमश. "चढ" "चढाव" की तरह । सियइ, सियत, सियव, सियावा, सियाए, सियावइ । इ० ।

सिधार—चले जानेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सिधारइ, सिधारत, सिधारा, सिधारहिं, सिधारि, सिधारे, । इ० । उ० एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ।

सिमिट—इकट्ठा होने, बटुरने या एकत्र होनेके अर्थमें "चढ" की तरह । सिमिटइ, सिमिटत, सिमिटहिं, सिमिटि, सिमिटे । इ० । उ० सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा ।

सिरज, सृज—बनाने, रचने, और उत्पन्न करनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सिरजइ, सिरजत, सिरजा, सिरजनहार, सिरजहिं, सिरजे । इ० । उ० ताकर दूत अनल जेहि सिरजा ।

सिरा—बन पड़ने, निबहने और समाप्त होनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

सिराइ, सिरात, सिराहिं, सिरान, सिराने, सिरानेहु। इ०। उ० जुग सम भई न राति सिराती।

सिहा—संतुष्ट होने, अभिलाषा करने और ईर्षा करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सिहाइ, सिहात, सिहाहिं, सिहान, सिहानेउ। इ०। उ० देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं।

सींच—पानी देने, तर करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सींचत, सींचेउ, सींचा, इ०[देखो "सिंच"] उ० पेड़ काटि तें पालउ सींचा।

सीद—दुःखी करने, दुःखी होने। नाश कर देने, नाश हो जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सीदइ, सीदत, सीदहिं, सीदि, सीदे। इ०। उ० सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।

सुखा—सूखने और सुखानेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सुखाइ, सुखात, सुखाहिं, सुखाहु, सुखाने,। इ०। उ० सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। "सुखानेउ परना।"

सुधार—ठीक करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सुधारइ, सुधारत, सुधारहिं, सुधारे, सुधारि, सुधारा। इ०। उ० सुनि कटु बचन कुठार सुधारा।

सुन—सुननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सुनइ, सुनत, सुनहिं, सुने, सुनि, सुना। इ०। उ० सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपतिके।

सुमिर—याद करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सुमिरइ, सुमिरत, सुमिरहिं, सुमिरि, सुमिरे, सुमिरा। इ०। उ० सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाह।

सुहा—अच्छा लगने, भाने, और शोभित होनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सुहाइ, सुहात, सुहाहिं, सुहान, सुहाने। इ०। उ० तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। "नहिं नारदहिं सुहान"।

सूख—सूखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सूखइ, सूखत, सूखहिं, सूखेउ, सूखा, सूखिय। इ०। उ० सूखत धान परा जनु पानी। "सूखेउ अधर"। "सूख हाड़ ले भाग सठ"।

सूझ—जानने, सूझनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सूझइ, सूझत, सूझहिं,

सूचि, सूचे, । इ० । उ० सूचत किरन मनोहर हासा । "सूच जनु भावी ।"

सूझ—दिखाई देने, समझमें आने, बुद्धिके दौड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सूझइ, सूझत, सूझहिं, सूझे, सूझि, सूझा । इ० । उ० सूझहिं रामचरित मनि मानिक ।

सृज—बनाने और रचनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सृजइ, सृजत, सृजहिं, सृजा, सृजि, सृजे । इ० । उ० जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधानकी । "सृजेउ विधाता" ।

सेव—सेवा करनेके अर्थमें । "चढाव" की तरह । सेवइ, सेवत, सेवउ, सेवहिं, सेउअ, सेइय, सेए । इ० । उ० सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं ।

सोख—सोखनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सोखइ, सोखत, सोखहिं, सोखि, सोखा । इ० । उ० सायक एक नाभि सर सोखा ।

सोध—शुद्ध करने, ठीक करने और पता लगाने या खोजनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सोधइ, सोधउ, सोधत, सोधहिं, सोधि । इ० । उ० लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ।

सोव—सोनेके अर्थमें । "चढाव" की तरह । सोवइ, सोवत, सोउब, सोवसि, सोवहिं । इ० । उ० अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भल खाहिं ।

सौंप—सौंपने और अधिकारमें देनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सौंपइ, सौंपत, सौंपहिं, सौंपे, सौंपेउ, सौंपि । इ० । उ० "सौंपि नगर सुचि सेवकन" । "सौंपेहु मोहि तुम्हहि गहि पानी" ।

स्रव—चूने, टपकने, पसीजने, गिरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । स्रवइ, स्रवत, स्रवहिं, स्रवे, स्रवि । इ० । उ० सोनित स्रवत सोइ तन कारे । " गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी । "

हांक—चलाने या बढ़ाने या भगानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । हांकइ, हांकउ, हांकत, हांके, हांकि, हांकहु, हांका । इ० । उ० खोज मारि रथ हांकहु ताता ।

हांत—मारनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हातइ, हातत, हांतहिं, हाति, हांते। इ०। उ० भीरु प्रतीति प्रीति करि हाती।

हिंस—दुःख देने, नाश करने और हिनहिनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हिंसइ, हिंसत, हिंसहिं, हिंसेउ, हिंसि। इ०। उ० "रथ रथ वाजि हिंस चहुँ ओरा।"

हिहिंना—घोड़ेके हिनहिनानेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। हिहिंनाइ, हिहिंनात, हिहिंनाहिं, हिहिंनाव। इ०। उ० देखि दाखिन दिसि हय हिहिनाहीं।

हींच—दबोचने, खींचने, सिकोड़ने, बटोरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हींचइ, हींचत, हींचहिं, हींचि, हींचे, हींचा। इ०।

हुअ, हुव—मारनेके अर्थमें। इनके हये, हई, (मारा, मारी) आदि कुछ ही रूप प्रचलित हैं। जो "चढ़ाव" क्रियाके अनुरूप हैं। परन्तु क्रियाका मूल रूप "हत" है—देखिये। उ० संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरान्ह हये।

हुकराव—बुलवानेके अर्थमें। "चढ़ाव की तरह। हकरावइ, हकरावत, हकरावउ, हकरावसि, हकराने। इ०। उ० मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा।

हटक, हट्क—रोकने, डांटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हटकइ, हटकत, हटकहु, हटकहिं हटकि, हटका। इ०। उ० तुम हटकहु जो चहहु उबारा।

हत—मारने, नष्ट करने या नाश करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हतइ, हतत, हतहिं, हते, हता, हतहु, हति। इ०। उ० प्रभु तातें उर हतइ न तेही।

हन—मारने या मार डालने या प्राण हरण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हनइ, हनउ, हनत, हनहिं, हने, हनि। इ०। उ० हने निसान पनव बर बाजे।

हर—लेने, छीनने, और चुरानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हरइ, हरत, हरहिं, हरे, हरि, हरी, हरेउ। इ०। उ० इहां हरी निसिचर बैदेही।

हरष, (हर्ष)—प्रसन्न होने, खुश होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हरषइ, हरषउ, हरषत, हरषहिं, हरषे। इ०। उ० हरषे सब बिलोकि हनुमाना।

हरषा—आनन्दित होने और करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। हरषाइ, हरषात, हरषाने, हरषाहु। इ०। उ० निरखि राम छबि बिधि हरषाने।

हलराव—उछालने, झूलेकी तरह हाथमें लेकर झुलाने, झोंका देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। हलरावइ, हलरावत, हलरावहिं, हलराइ, हलराए। इ०। उ० लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ।

हहर—घबराने, उकताने, रजसे घुल जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हहरइ, हहरत, हहरहिं, हहरि, हहरे, हहरेउ। इ०। उ० सुर स्वारथी हहरि हिय हारे। "हहरि मरत सब लोगा।"

हार—हारने, आशा छोड़ने, थकनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हारइ, हारत, हारहिं, हारे, हारि, हारहु। इ०। उ० हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।

हिंकर—पीड़ासे कराहनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हिंकरइ, हिंकरत, हिंकरहिं, हिंकरे, हिंकरि। इ०। उ० हिंकरि हिंकरि हय हेरहिं तेही।

हुन—होम करने, भस्म करने, बलि करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुनइ, हुनत, हुनहिं, हुना, हुनि, हुने। इ०। उ० हुने अनल महँ बार बहु हरषि साखि गौरीस।

हुमग—उमगसे कूदने, उछलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुमगइ, हुमगत, हुमगहिं, हुमगि, हुमगा। इ०। उ० हुमगि लात तकि कूबर मारा।

हुलस—उत्साहित होने, प्रसन्न होने, उछलने, उमगके प्राप्त होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुलसइ, हुलसत, हुलसहिं, हुलसे, हुलसा, हुलसि। इ०। उ० समुप्रसाद सुमति हिय हुलसी।

हेर—देखने, खोजनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हेरइ, हेरत, हेरहिं, हेरे, हेरि। इ०। उ० अढ़कि परहिं फिरि हेरहिं पीछे।

हेरा, हेराव, हिरा, हिराव—खोज करनेके अर्थमें। "रिसा" और "चढाव" की तरह। दोनों रूप होते हैं। हेरावइ, हेरावत, हेरावहिं, हेराइ, हेराए। हेराने, हेरात। इ०। उ० जेहि जाने जग जाइ हेराई।

हो—होनेके अर्थमें। इसके रूप होइ, होत, होनहार, होहिं, होव, होसि, होहु, भा, भइ। इ०। उ० होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी।

इति



श्रीरामचरितमानसकी भूमिका

पाँचवाँ खंड

तुलसी-चरित-चन्द्रिका



तुलसी-चरित-चन्द्रिका



१–प्रस्तावना



कविन प्रथम हरि कीरति गाई
तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई

जीवनीमें जन्मकाल जन्मदेश और कुलका ठीक ठीक विवरण, जीवनकी महत्वकी घटनाओंका विस्तार साधारणतया आवश्यक सामग्री समझी जाती है। गोस्वामीजी जैसे महात्मा और महाकविकी जीवनीमें इन बातोंको, जिनकी खोजमें बहुत परिश्रम करके भी सफलताकी आशा नहीं हो सकती, हम विशेष महत्व नही देते। महापुरुषोंकी कृतिमें ही उनके विचारों और आदर्शोंका चित्र होता है और वस्तुतः उनके कुलके इतिहासके विस्तारसे पाठकोंका उतना लाभ नहीं हो सकता जितना उनके विचारोंसे और उनके आदर्शसे सभव है। महापुरुषोंकी कृति आगे आनेवाली सन्तानोंके लिये मार्गोपदेशिका होती है। इस दृष्टिसे उनकी कृतिका परिशीलन ही सबसे अधिक फलदायक और महत्वका काम है।

गोस्वामीजीका जीवनचरित अनेक विद्वानोंने बड़ी खोजसे लिखा। मतभेदपर बडे ऊहापोहसे विचार किया। कृतियोंका बडा सुन्दर अनुशीलन किया। उनकी खोज, परिश्रम और गभीर विद्वत्ताको देखते हुए यहां कुछ लिखनेकी न तो आवश्यकता प्रतीत होती थी और न साहस होता था। यह

भूमिका मानसके स्वाध्यायियोकी सहायताके लिये प्रस्तुत हुई, अतः इसमे कुछ उन विद्वानोकी रचनाओंके अध्ययनका फल और कुछ मानसके स्वाध्यायका निष्कर्ष अपने सरीखे मानसके अध्येताओंके लिये दे देना आवश्यक समझकर मैंने इस खंडको प्रस्तुत करनेका साहस किया है।

२—परिस्थिति

"भये लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म्म"

गोस्वामी तुलसीदासजीके जन्मकालमे जौनपुरकी बादशाहतका अन्त हो चुका था, दिल्ली मे हुमायूंके राज्यका आरंभ हो चुका था, परन्तु बेचारे हुमायूंको शातिसे राज्योपभोग बदा नही था। उसे बंगालके अफगानोंसे लड़ते दस बरस बीते। अन्तमें पठानोके नेता शेरखाने उसे खदेड़ा और आप दिल्लीके सिंहासनपर जा बैठा। इस प्रकार आजकलका संयुक्त प्रान्त उस समय मुगलों और पठानोकी परस्पर लड़ाइयोंका रगभूमि बना हुआ था। देशकी साधारण अवस्था अच्छी न थी। मुसल्मानोंका प्रभाव बढ़ रहा था। नये धर्म्मके अनुयायी अवश्य अत्याचारमे तत्पर थे। गोस्वामीजीने रावणके अत्याचारोंके चित्रमें अवश्य ही मुसल्मानोंके अत्याचारकी झलक दिखायी हे।

जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा
आपुन उठि धावै रहै न पावै करि सब घालै खीसा
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धरम सुनिअ नाहिं काना
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना।

देशमें मुसलमानोंके आये लगभग तीन सौ बरस हो चुके थे। अकबर जैसा उदार विचारका शासक पैदा नहीं हुआ था।

मुसलिम धर्मके प्रचारके साथ ही साथ उसकी संस्कृतिका औ फारसी अरबी तुरकी भाषाओंका संमिश्रण भी हो रहा था। शब्द और मुहाविरेतक हिल मिल गये थे। एक ओर आर्य्य धर्मी मुसलिम बनाये जाते थे तो दूसरी ओर अरबी फा तुर्की शब्दोंकी शुद्धि होती जाती थी और आर्य्यवेष धारण कर बलवती भारतीय प्राकृत भाषाओंमे सहज ही समा रहे थे उस समय मुसलमान विधर्मी तो थे ही, विदेशी भी थे औ उनका शासन भी हिंसापूर्ण था। वह गो-ब्राह्मणोंके ह थे। हिन्दुओंद्वारा उनका बहिष्कार होना भी स्वाभाविक था। वह अस्पृश्य थे। उनसे संसर्ग रखनेवाला घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। यही बात थी कि बादको फैजी जैसे विद्या-प्रेमी मुसलिमको हिन्दू बनकर ही संस्कृत पढना संभव हुआ। इतनेपर भी मुसलमानोंका विद्याप्रेम हिन्दुओंसे किसी न किसी प्रकार मिलनेको लाचार करता था। विदेशी मुसलिम भी जब भारतवासी हो जाते थे, तब थोडा बहुत आर्य्य संस्कृतिको स्वीकार करनेको लाचार हो जाते थे। अमीर खुसरो इसका अच्छा उदाहरण बहुत पहले हो गया था और मलिक मु जायसी तो निश्चय ही दोनों संस्कृतियोंको मिलानेवाला भाषा-का ऐसा बडा कवि शेरशाहके ही समय हो गया जिसपर हमें सर्वथा गर्व है। पीछेसे अब्दुर्रहीम खानखाना और रसखान तो मुसलिम होते हुए भी कवितामें शुद्ध हिन्दूभाव रखते थे। मुसलिम संस्कृतिसे उनकी कविता "पद्मपत्रमिवाम्भसा" असपृक्त है।

जहा मुसलमान अपने धर्मके प्रचारमें साम दान दड भेद चारों विधियोंसे काम लेता था, वहा हिन्दू भी, यह देखकर कि जिसी किसी रीतिसे मुसलमान हो जानेमें और फिर हिन्दू धर्ममे न लौटनेमें हानि है, उस समयके किसी न किसी रूपसे शुद्धिद्वारा पतितोद्धारके लिये तैयार हो गया था। आचार-

ार्गके परम प्रसिद्ध आचार्य्य श्रीरामानुज स्वामी दक्षिणमें स्पृश्य चांडालोंको अपनी शरणमें ले चुके थे। बंगालमें गौराग महाप्रभु मुसलमानोंको वैष्णव बना चुके थे। अयोध्यामें वामी रामानन्दजी पीपा भक्त, कबीर आदि अस्पृश्यों और मुसलमानोंको शरणागत कर चुके थे। गुरु नानक भी इसी दारताके पक्षपाती थे। कबीरदास और कमालने तो मुसलमानोंके हिन्दू महात्मा बन जानेमें कमाल दिखा दिया था। नेदान, जहाँ विधर्म्मके प्रचारसे आर्य्यधर्म्मी पतित होते जाते थे, वहां साधु महात्माओंकी कृपासे पतितोद्धारके उपाय भी खड़े होते जाते थे। यद्यपि कट्टर धर्म्मप्राण विद्वान सानातनिक इन संत महात्माओंके चलाये पंथोंको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते थे तथापि इनकी लोकप्रियता जनताके बीच पतितोंके वास्तविक उद्धारमें बडी सहायक होती थी।

साम्प्रदायिक भेद बड़े तीव्र थे। वैष्णव और शैव आपसमें लड़े मरते थे। एक दूसरेके इष्ट देवताओंको बुरा भला कहना एक साधारण सी बात थी। रामचरितमानसमें भुशुंडिकी कट्टर शिवभक्ति एक नमूना है। सम्प्रदायभेदोंने, जातिभेदोंने एवं आपसके भेदप्रभेदजनित कलहोंने सारी आर्य्य जातिको जर्ज्जर कर डाला था। यह भीतरी दुर्बलता भी उन कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण थी जिनके बलपर विदेशी और विधर्म्मी इस देशमें घुस आये, और आर्य्य जातिपर शासन करने लगे।

शासक वर्ग सदासे फूटके बलपर शासन करते आये हैं। उस समयके चतुर शासकोंने अवश्य ही इस नीतिसे काम लिया होगा, क्योंकि उस समय ब्राह्मण अब्राह्मणके झगड़े भी जोर पकड़े हुए थे। ब्राह्मणोंमें स्वार्थबुद्धि बढ़ी हुई थी और अब्राह्मणोंमें श्रद्धा घट गयी थी, स्वयं ब्राह्मणोंका काम करनेको तय्यार थे। वर्णाश्रमकी जो गिरी दशा आज है, वही तब भी

थी। भेद इतना था कि आज सारे पेशे लुप्त हो गये हैं, तब ऐसी बात न थी। यह सच है कि हिन्दुओंके अनेक मुसलमान छीननेमे लगे थे, परन्तु वह इसी देशमें रहते थे। अतः यद्यपि हिन्दुओंकी सामाजिक हानि थोडीसी थी तथापि देशकी आर्थिक हानि कुछ भी न थी। तो भी वर्णधर्म्म और आश्रम धर्म्ममे अत्यन्त शिथिलता थी। इतना और भी इस कह देना उचित होगा कि यह शैथिल्य कई सहस्र वर्षका है, केवल चार सौ बरसोका नहीं है।

३—जन्म और बाल्यकाल

"होनहार बिरवानके होत चीकने पात"

भारतके साहित्याकाशके उज्ज्वल चन्द्रमा भक्तो और साहित्य-रसिकोंका हृदय अपनी निर्मल सुशीतल करनेवाले और हिन्दीवाङ्मयके विस्तीर्ण सुधा बरसानेवाले प्रातःस्मरणीय गोसाईं तुलसीदासजी ऐसी ही परिस्थितिमें प्रकट हुए। हुमायूंका अशान्त था। किसी किसीके मतसे संवत् १५८६ का समय था। इस बातका न तो निश्चित प्रमाण है, न आवश्यकता है। गोसाईंजी स्वयं युग पैदा करनेवाले महात्मा हुए। उनके जन्म जैसी महत्ताकी घटना किसी सन् संवत्की मुहताज नहीं है। हमें उससे विशेष प्रयोजन भी नहीं। उनके जन्मस्थानके सम्बन्धमे भी झगडे हैं, और झगडा होना स्वाभाविक ही है। होमरका जन्मस्थान बननेको यूनानके सात नगरोंका पारस्पर झगड़ा प्रसिद्ध है। कालिदासको अपनानेके लिये काशमीर, पंजाब, बंगाल, मालवा, आन्ध्र, गुजरात कौन नही तैयार है? फिर यदि गोसाईंजीके लिये ऐसे झगडे हों तो आश्चर्य्य ही क्या? माता पिताके नामके सम्बन्धमे बहुत मतभेद है। यह भी निश्चय नहीं कि वह कौन थे, किस जातिके थे। संभवतः ब्राह्मण थे

या अच्छे कुलके थे। इन दोनों बातोंसे भी हमें विशेष प्रयोजन नहीं है। जान पड़ता है कि माता पिता दरिद्र ब्राह्मण थे जैसा कि उनके "दियो सुकुल जनम" और "जायो कुल मंगन" आदि कथनोंसे स्पष्ट है। बाल्यावस्थामें इनका लाड़ प्यार नहीं हुआ। कारण चाहे जो हो गोस्वामीजीका लेख स्पष्ट है कि उनके जन्मसे माता पिताको खुशी नहीं हुई, उन्होंने उन्हें तुरन्त ही त्याग दिया था। हमारा तो अनुमान है कि माता पिताने किसी सच्चरित रामभक्त साधु ब्राह्मणको सौंपा जिसने पाला पोसा और इन्हें बड़े होनेपर इनके जन्मका वृत्त बताया होगा। वही देवता गोसाईंजीके गुरु हुए। गुरुजी स्वयं धनवान् न थे। कविने सिवाय "गुरु पितु मातु महेस भवानी"के वन्दनातकमें अपने मातापिताको स्मरण वा प्रणाम नहीं किया है। सारे जगत्को प्रणाम करनेवाला माता पिताको भूल जाय इसमें आश्चर्य्य है। शायद माता पिताका पता न था, इसीलिये। परन्तु गुरुको जगह जगह अनेक बार याद किया है। गुरुने ही रामभक्ति बतायी और रामकी कथा समझायी। बाल्यावस्थामें गुरुने पूरा साथ दिया। सदाचार भक्ति ज्ञान वैराग्य गुरुकी कृपासे बालक तुलसीदासमें बहुत छोटी अवस्थासे अंकुरित हुए। गुरुने काव्य, व्याकरण, ज्यौतिष, धर्मशास्त्र, और वेदान्तकी शिक्षा दी। "होनहार बिरवानके होत चीकने पात"। आदिसे काव्य-रचनासे इस बालकको प्रेम था। गुरुजी यद्यपि कोई प्रसिद्ध कवि न थे तथापि उनकी प्रगाढ़ विद्वत्तामें और अगाध ज्ञानमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। फलसे ही वृक्षका अनुमान किया जाता है। गोस्वामीजी सरीखे कवि और मनीषी जिसकी वन्दनामें "कृपा सिन्धु नररूप हरि, महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर" श्रद्धापूर्वक कहें वह कोई साधारण पंडित नहीं हो सकता। इन्हीं गुरु महाराजकी

युवावस्थामें विद्याध्ययनके उपरान्त नवयुवक

तुलसीदासने विवाह किया होगा। हमारा अनुमान है कि हनुमान चालीसा सरीखी कविता बाल्यकालकी ही रचना थी। गुरुजीके यहां हनुमानजीकी पूजा और स्तुतिमें यह शिष्य अवश्य ही निरत रहा होगा। वाल्मीकिके सिवा और उपाख्यानों और रामायणोंसे भी गुरुजी रामकथा कहा करते थे। गुरुजी रामायणके विशेष प्रेमी और पक्के सदाचारी रामभक्त थे। वाराहक्षेत्रमें उनका स्थान था। गुरुजीके आश्रयमें प्रायः जन्मसे पालन-पोषण होनेके कारण शिशु तुलसीदासने माता पिताके बदले गुरुके ही वात्सल्य प्रेमका अनुभव कर पाया। गुरुके वात्सल्य-भाजन रहकर जबसे होश सँभाला तबसे समावर्त्तनतक रामभक्तिका अत्यन्त गहरा संस्कार इनके रगरगमें प्रवेश करता गया।

"मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत
समुझी नाहिं तासि बालपन तब अति रहेउँ अचेत

× × × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।"

गुरुने रामकथा इन्हें बार बार सुनायी थी। कथा अनेक प्रकारसे अनेक पुराणों रामायणो और उपाख्यानोंसे इन्हें पढ़ायी गयी। जब इन्होंने गार्हस्थ्यमें प्रवेश किया, इनके मनमें रामकथा अत्यन्त दृढ़तासे बैठ चुकी थी।

साधुके चेलेपनकी अवस्थामें इन्हें भिक्षाटन अवश्य ही करना पड़ा था। कवित्त रामायणमें कविने अपनी उस दशाकी भी झलक दिखायी है। संभव है कि गृहस्थाश्रमसे वैरागी हो जानेपर भी भिक्षाकी वह दशा आरंभमें आयी हो, परन्तु वर्णनसे अधिकांश बाल्यावस्था ही चित्रित होती है। प्रौढ़ावस्थामें पढ़े लिखे ब्राह्मणके लिये उतनी लाचारीकी अवस्थाका होना अधिक सुसंगत और संभाव्य नहीं जान पड़ता।

४—गार्हस्थ्य और वैराग्य

"अस्थि चरममय देह मम तामें जैसी प्रीति
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति
प्राण प्राणके जीवके जिय सुखके सुख राम
तुम तजि तात सोहात गृह जिनहिं तिनहिं विधि वाम"

हमारा अनुमान है कि गुरुकी अधीनतासे गोस्वामीजी उनकी मृत्युके कारण युवावस्थामें ही मुक्त हो गये और अव-स्थाके आवश्यकतानुसार ही उन्होंने विवाह भी किया। गोस्वामीजीकी युवावस्था और अपनी नवयुवती धर्मपत्नीमें अत्यन्त आसक्तिकी कई कथाएं कही जाती हैं। प्रसिद्ध है कि एक बार उनकी स्त्री उन्हें बिना बताये अपने मायके चली गयी। ज्योंही उन्हें पता चला तुरन्त अपनी ससुराल पहुँचे। स्त्री इनकी अधीरतापर और संभवतः अपने दोषपर अत्यन्त लज्जित हुई। कुछ व्यंग वचन इस भावके कहे कि इस हाड़-मासकी देहमें आपको जितना अनुराग है यदि उतना अनुराग परमात्मामे होता तो संसारके भयसे मुक्त हो जाते। कहने-वालेका लक्ष्य वैराग्यको उभारना न था। बात वे सोचे समझे निकल गयी। इस वाग्बाणने उसी मर्मस्थलपर चोट की जो गुरुके सदुपदेशोंसे अत्यन्त भावुक और ग्रहणशील हो गया था। सुषुप्तोंका सोता वैराग्य जग पड़ा। काम क्रोध लोभके मायाजालको तुरन्त तोड़कर निकल पड़ा। योगीको अपनी पूर्वावस्थाकी सुधि आ गयी। अन्तरात्माकी ओरसे भयंकर भर्त्सना हुई। अवस्थाके अनुकूल कामने मनपर अधिकार कर लिया था, एकाएकी मोह दूर हो गया। रचनाओंमे बार बार मनोभवकी प्रबलता दिखायी है और उसके फन्देसे बचनेके लिये भाँति भाँतिकी प्रार्थनाएं की हैं। पत्नीके उपदेशसे खोये हुए

वैराग्यको पाकर गोस्वामीजी ससुरालसे ही तुरन्त चल दिये। वहा जलपानतक न किया। काशीको राह ली। अब तीर्थाटन और भगवद्भजनमें समय कटने लगा। विद्वान् थे, कवि थे, कुछ न कुछ लिखने पढनेका काम जारी रहता था। हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजीने लगभग तीस वर्षकी अवस्थामें गृहस्थी छोड़ी होगी। यदि १५८९ में जन्म माना जाय तो घर छोडनेका समय लगभग १६१९ विक्रमीके होगा। श्रीकाशी नरेशके पुस्तकालयमे विंध्येश्वरी पटल गोस्वामीजीकी कृति मौजूद हैं। यह १६१५ की रचना है। इसमें ज्योतिष और तान्त्रीक विषय भी हैं। ग्रहशांति आदिकी चर्चा है, जिससे रामकी वह अनन्य भक्ति नही प्रदर्शित होती जो पीछेकी रचनाओंमे स्पष्ट है। यह ग्रंथ सुनिश्चित रूपसे गृहस्थकी रचना जान पडती है। इसमें काव्यकी प्रौढता और शैलीकी प्रगल्भताका अभाव युवावस्थाकी अनुभवहीनताका साक्ष्य देता है। अट-कलसे वैराग्यके दस बारह बरस पीछे श्रीरामचरितमानसकी रचनाका आरंभ हुआ जब गोस्वामीजी अयोध्याजीमें थे।

वैराग्य लेते समय गोस्वामीजीने किसी और सन्त महात्माकी शरण नही ली। जिन विद्यागुरुसे सबकुछ सीखा था जान पडता है कि उन्ही महात्माकी दीक्षा पर्य्याप्त थी। इस घटनासे भी जान पड़ता है कि जहा गोस्वामीजीकी अपने गुरुमें अपार श्रद्धा थी वहा उनके गुरुदेव भी वस्तुतः आदर्श गुरु थे। किसी घटनासे यह नहीं प्रतीत होता कि उनके वैराग्य ग्रहण करते समय उनके गुरुदेव जीवित थे। यदि जीवित होते तो गोस्वामीजीके तीर्थाटनमें उनके दर्शन आदिकी चर्चा कही न कहीं अवश्य आती। गुरुके सम्बन्धमें केवल वन्दना और भूत कथाकी चर्चा यह अनुमान करनेको हमें अवसर देती है कि संभवतः जब गोस्वामीजीने गृहस्थी ग्रहण की तभी गुरु महाराज संसार छोड चुके थे।

गोस्वामीकी उपाधि कुछ सन्देह उत्पन्न करती है। शायद "गोस्वामी" पदसे और नन्ददासके भाई किसी तुलसीदासके होनेसे, सहज ही यह अनुमान होता है कि यह वल्लभ संप्रदाय-के वैष्णव होंगे। परन्तु गोस्वामीजीकी सारी रचनाएं यही सिद्ध करती हैं कि वह किसी सम्प्रदायके न थे। कट्टर रामो-पासक थे अतः वल्लभकुली होना सम्भव न था। नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे, पर गोसाईंजीके लिये अनेक गवाहियां सरयूपारीण होनेके पक्षमें हैं। ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थजी भी अपनेको गोस्वामी तुलसीदासजीका वंशज बताते थे। परन्तु हमारे गोस्वामी तुलसीदासजीके कोई सन्तान न था तो उनके वंशज कैसे? स्वामी रामतीर्थका पूर्वनाम गोस्वामी तीरथ राम था और हमारा अनुमान है कि वह अवश्य ही गोस्वामी तुलसीदासजीके वंशज थे, परन्तु उनके वह पूर्वपुरुष मानसकार तुलसीदास न थे, नन्ददासजीके भाई सनाढ्य तुलसीदासजी थे।

गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंमे रामोपासना मात्रका प्रति-पादन किया है, परन्तु एक भी सम्प्रदायका नाम नहीं लिया है। जान पड़ता है कि उनके गुरुदेव भी किसी सम्प्रदायके न थे। लोग कहते हैं कि उनका नाम नरहरिदास था जिसको एक अद्भुत सकेतसे गोस्वामीजी वन्दनामें प्रकट करते हैं। यह असंभव नहीं है। यदि वह गोस्वामी नरहरिदासजी थे तो गोस्वामी पद था तो उन्होंने स्वामी शंकराचार्य्यके शिष्योंकी परम्परासे ग्रहण किया होगा अथवा विद्वान् साधु थे गोस्वामी-पद उनके लिये रूढ़िसे प्रयुक्त होने लगा होगा, गोस्वामी नर-हरिदासजी स्वयं पंथ और साम्प्रदायिकताके विरोधी रहे होंगे। गोस्वामीजी तो साम्प्रदायिकताके कट्टर विरोधी थे। "जलपहि पंथ अनेका।"

"साखी सब्दी दोहरा कहि कहनी उपखान,
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहि वेदपुरान ॥५५४॥
स्रुति सम्मति हरि भगतिपथ सजुत विरति विवेक,
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कलपहिं पंथ अनेक ॥५५५॥

फिर उनका स्वयं किसी संप्रदायका होना असंभव है। जो लोग किसी सम्प्रदायके नहीं होते वह साधारणतया स्मार्त्त कहलाते हैं। इन स्मार्त्तोंमें भी जो जिस भावसे भगवान्की उपासना करता है अपने इष्टदेवके अनुकूल नाम पाता है। इसी नियमसे गोस्वामीजीको स्मार्त्त वैष्णव कहते हैं। गोस्वामी शब्द उस साधुके लिये उपयुक्त हो सकता है जो इन्द्रियोंको वशमें रखनेका साधन करे। यदि सम्प्रदायवालोंको केवल विशेष सम्प्रदायकी दीक्षा लेनेके कारण स्वामी या गोस्वामी-की उपाधि धारण करनेका अधिकार है तो तुलसीदासजी जैसे अपूर्व साधुको जो सच्चे वैरागी और इन्द्रियोंको वशमें रखने-वाले महात्मा हो गये हैं बिना सम्प्रदायके गोस्वामी कहलानेमें रत्तीभर भी अनौचित्य नहीं हो सकता।

नरहरिदासके नामके अनुमानमात्रपर डा० ग्रियर्सन आदिने गोस्वामीजीको रामानन्दी ठहराया है और गुरुवंशावलीतक प्रस्तुत की है। परन्तु तुलसीचरित्रसे कमसे कम यह निश्चित होता है कि वह श्रीरामानन्दजीके शिष्य नरहरिदासजीके शिष्य न थे।

५—वैराग्यका आरंभिक जीवन

बिनु सतसग विवेक न होई
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई

गोसाईंजी ससुरालसे निकले तो घर न गये। सीधे राम-नामके सतत उपदेश करनेवाले भगवान् शंकरकी नगरी काशीमें

आये। पहले यहां अपना स्थिर निवास नहीं रखा। यहांसे अयोध्या गये और अयोध्यासे चित्रकूट। पहले बारह चौदह बरस अधिकांश चित्रकूट और अयोध्यामें बिताये। उन दिनों जब कभी काशी आते तो प्रहलाद घाटमें पं० गगाराम जोशीके यहां ठहरा करते थे।

पहली बार काशीमें गोसाईंजी जब प्रहलाद घाटमें ठहरे तो इनका नियम था कि गंगापार शौचको जाते और लौटती वेर शौचका बचा जल राहके एक आमके वृक्षकी जड़में छोड़ दिया करते थे। उस वृक्षपर एक प्रेत रहता था। जलसे उसकी तृप्ति होती थी। एक दिन प्रसन्न हो प्रकट हुआ और बोला "मैं तेरी सेवासे प्रसन्न हूं, बोल क्या चाहता है?"

गोस्वामीजीको विस्मय अवश्य हुआ, पर इनकी इच्छा क्या हो सकती थी! इन्होंने तो इच्छाओंका परित्याग कर दिया था। बोले "मैं तो भगवान् रामचन्द्रके दर्शन चाहता हूं, वन पड़े तो करा दे।"

प्रेत हैरान हुआ, बोला "यह तो मेरे बसकी बात नहीं है। यह जिसके द्वारा हो सकता है, उसका पता बताता हूं।" काशीजीमें अमुक स्थानपर रामायणकी कथामें कोढ़ीका भेप-धर हनुमानजी आया करते हैं। उनको पकड़। वह अवश्य दर्शन करा सकेंगे।"

गोस्वामीजी वहां पहुँचे। कथा समाप्त होनेपर सबके अंतमें एक कोढ़ी उठा। गोसाईंजी उसके चरणोंपर गिर पड़े। उसने बहुतेरा चाहा कि इससे बचकर निकल जाऊं पर गोसाईंजीने न छोड़ा। कोढ़ी बोला "भाई, मुझे क्यों तंग करते हो, जाने दो।" गोसाईंजीने अपना मनोरथ कहा और हठपर अड़े रहे। अन्तमें हनुमानजी बोले, "अच्छा, जाओ, चित्रकूटमें दर्शन हो जायँगे।"

तब गोसाईंजी अपने मित्रसे तुरन्त विदा हो चित्रकूट चले। ...या उतावली थी!

"बहु विधि करत मनोरथ जात न लागी बार"

किसी न किसी तरह चित्रकूट जा पहुँचे। वहां भगवान्के मंदिरके ही पास रहने लगे और नित्य-दर्शनमें लग गये। परन्तु कुछ कालतक साक्षात्कार न हुआ। एक दिन वनमें अटन करते समय दो घोड़ोंपर सवार दो राजकुमार देखे जो धनुषवाण लिये शिकारको जा रहे थे। एक तो साँवला था दूसरा गोरा। दोनों बड़े सुन्दर थे। देखकर मोहित हो गये परन्तु यह न समझमें आया कि यही भगवान् हैं। उस रात सपनेमें हनुमानजीने ब्राह्मणरूपसे दर्शन दिये और पूछा "कहो महाराज! दर्शन हुए न ?" यह बोले "कहाँ हुए ? अभी भाग्य नहीं जगे।" हनुमानजीने पूछा "क्या दो धनुर्धरोंको नहीं देखा ?" बोले "हां, देखा, एक मृगके पीछे दो सुन्दर राजकुमार सवार घोड़ा फेंकते चले जाते थे।" ब्राह्मण बोला "अजी, वह तो भगवान् राम और लक्ष्मण स्वयं थे!" गोस्वामीजी यह जानकर बहुत पछताये। बोले "क्या फिर ऐसे दर्शन इस अभागीको हो सकेंगे ?" हनुमानजी बोले "हे भाग्यवान्, कलियुगमें इतना दर्शन भी किसके भाग्यमें है ?" गोसाईंजीने उस झलकको ही हृदयमें अंकित कर लिया। चित्रकूटकी प्रदक्षिणा की और वहां रहने लगे। कुछ दिनों रहकर फिर अयोध्या गये और अयोध्यासे फिर काशी आये। यहां जोशी गंगारामके यहां रहने लगे।

जब गोसाईंजी प्रह्लाद घाटपर रहते थे, एक रात उनके घरमें चोर पैठे तो एकाएकी कठिन पहरा देख उन्हें लौट जाना पड़ा। दूसरी रात फिर वही दृश्य देखा कि एक सुन्दर सांवला बालक धनुषबाण धारण किये पहरा दे रहा है। चोर लौट गये। प्रातः गोसाईंजीसे चोरोंमेंसे एकने जाकर यह अद्भुत लीला सुनायी तो गोसाईंजीको बड़ा पछतावा हुआ कि प्रभुको मेरे कारण इतना कष्ट करना पड़ता है। बस जो कुछ पास था

लुटा दिया। चोर भी गोसाईंजीके शिष्य हो गये। इसके बाद गोसाईंजी पर्य्यटनको निकले।

जब गोस्वामीजी भृगुआश्रम* गये, तो हंसनगर और परसिया होते हुए राजा गभीरदेवके भी अतिथि हुए थे। वहांसे गंगापार उतरकर ब्रह्मपुरमें† ब्रह्मेश्वर महादेवके दर्शन करके कान्त* नामके गावँमे आये। वहां उन्हें भोजनका कोई पदार्थ न मिला, उस गावके लोग भी बड़ी क्रूर प्रकृतिके देख पड़े। गावके बाहर निकलते निकलते वहाँका रहनेवाला एक अहीर मिला जिसके एक अच्छी गोशाला थी और जो साधु-ब्राह्मणोंका सत्कार किया करता था। इस अहीरने गोसाईंजी-को देखकर दंडवत की और अपने घर बड़ी विनय और आग्रह-से ले गया। इस अहीरका नाम मॅंगरू था। इसके सत्कारसे प्रसन्न हो गोस्वामीजीने उसे उपदेश दिये, और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा वंश बढ़े, सुखी और समृद्ध रहे और भगवान्‌के चरणारविन्दमें विश्वास रहे। कहते हैं कि इस वंशके अहीर अबतक विद्यमान हैं, भक्त हैं, साधुसेवी हैं और उनका अतिथि-सत्कार कान्त ब्रह्मपुरके आसपास प्रसिद्ध है।

वहांसे चलकर गोस्वामीजी बेलापतौतमें आये। वहां गोविन्दमिश्र शाकद्वीपीय और रघुनाथसिंह क्षत्रियसे भेंट हुई। उन्होंने बड़े आदरसे गोसाईंजीको ठहराया, बहुत सत्कार किया। गोसाईंजी कुछ दिनो यहां ठहरे थे। इस गावँका नाम उन्होंने बदलकर रघुनाथपुर कर दिया। यह गावँ ब्रह्म-पुरसे कोसभरपर है। इसके बहाने भगवान्‌का नाम भी लेते हैं और रघुनाथसिंहका स्मारक भी चलता है। इस गावँसे चलकर गोस्वामीजी कैथीमें भी रहे। वहांके प्रधान जोरावर-

---

* जिला बलिया।

† जिला शाहाबाद।

सिंहने भी उनका बहुत सत्कार किया था । वहांसे घूमते घामते गोसाईंजी पुरुषोत्तमपुरी गये और दर्शनोंके उपरान्त काशी लौटे ।

६—श्रीरामचरितमानसका अवतार

संवत सोरह से एकतीसा,
करउ कथा हरिपद धरि सीसा।
नवमी भौमवार मधुमासा,
अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

कुछ दिनों काशीमें रहकर गोस्वामीजी अयोध्याजी चले गये। वहीं बराबर रहने लगे। संवत् १६३१ की रामनवमीको वहीं श्रीरामचरितमानसका अवतार हुआ। इस समय गोस्वामीजीकी अवस्था मानसमयंकके अनुसार तो ७७ वर्षकी थी, परन्तु जन्मकाल १५८९ माननेपर गोस्वामीजीकी अवस्था इस समय ४२ वर्षकी होगी। कविताकी प्रौढता साक्षी है कि रचना अवश्य ही चालीस बरसके ऊपरकी होगी। आरण्य-काण्डतककी रचना अयोध्याजीमें ही रहकर हुई होगी।

अयोध्याजीमें कुछ बरस रहनेके बाद गोसाईंजी काशीजी-में आकर पहले प्रहलाद घाटमें स्थिर रीतिसे रहने लगे। वहीं किष्किन्धाकाण्डसे आगेकी रचनाएं हुईं।

श्रीरामचरितमानसकी रचना यद्यपि संवत् १६३१में गोस्वामीजीने आरम्भ की तथापि रचनासम्बन्धी विचार छात्रा-वस्थासे ही इनके मनमें था। हनुमानचालीसा तो अवश्य ही युवावस्थाकी रचना है। यह बहुत संभव है कि रामचरितके अनेक अंश पहले ही रचे जा चुके हों और नियमपूर्वक ग्रंथ-प्रणयनके पुष्ट विचारसे संवत् १६३१की रामनवमीको ही आरंभसे रचना हुई हो।

जान पड़ता है कि बीजापुरके आदिलशाह बादशाहके दाना-ध्यक्ष श्रीदत्तात्रेयजी रामोपासक थे। यह गुजराती वा महाराष्ट्र सज्जन रहे होंगे। गोस्वामीजीकी इनकी मैत्री होगी। गोस्वामीजीने वाल्मीकीय रामायणकी एक प्रति लिखकर दी। यह बात संवत् १६४१में समाप्त किये हुए वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड) से स्पष्ट होती है जो काशीके सरकारी सरस्वती-भवनमें मौजूद है। यह भी स्पष्ट है कि गोसाईंजीका अधिक समय इधर ग्रन्थ लिखनेमे गया होगा। संवत् १६४२में जानकी-मंगल और पार्वतीमङ्गल लिखे गये। सम्भवतः १६३१ से १६४२ तक १०-११ वर्षका समय अयोध्या और काशीमें बीता।

यह संभव नही कि गोस्वामीजी जैसे प्रतिभाशाली कवि, चरित्रवान् साधु और भगवान्के सच्चे अनन्यभक्त इतने दिनों-तक काशीजीमें रहें और विख्यात न हो जायँ। रामचरित-मानसने तो इनकी प्रसिद्धि इतने कालमे बड़ी दूर दूर फैला दी थी। काशीजी शैवों और वैष्णवोंके परस्परके झगड़ोंका प्रसिद्ध अखाड़ा था। उन दिनों विशेष रूपसे साम्प्रदायिक झगड़े हिन्दूसमाजको जर्जर कर रहे थे। कबीरपंथ, नानक-पंथ, दादूपंथ आदि अपनी अपनी ढाई चावलकी खिचड़ी अलग पकाते थे। ब्राह्मण और अब्राह्मणके भी झगड़े जोर शोरसे थे। ब्राह्मण अपनी विद्याका तुच्छ "भाषा" मे प्रचार नही चाहता था और अपना महत्व अन्य वर्णों और जातियों-पर बनाये रखना चाहता था। ऐसी स्थितिमें गोसाईंजी ठंढे हृदयसे सबमें मेल करानेके लिये उत्सुक थे। उनकी समस्त रचनाएं इस प्रयत्नका प्रमाण हैं। वह देखते थे कि आपसकी फूटसे हिन्दूमात्र बाहरी विधर्म्मियोंके चंगुलमें बेतरह फँसे हुए हैं। उन्होंने सब सम्प्रदायोंकी एकताके प्रयत्नमे अपनी लोक-। काशीमें खोयी। जब जब वह असफलतासे घबराते थे ४। छोड़कर पर्य्यटनको चले जाते थे। काशीजीमें कुछ

थोड़ेसे ही सच्चे भक्त विद्वान् और प्रेमी थे जिनसे गोस्वामी जीसे बड़ा स्नेह था। गंगारामके तो गोस्वामीजीने प्राण ही बचाये थे। टोडरमल काशीजीमे एक भारी जमींदार थे। वह गोस्वामीजीके बड़े भक्त थे। उन्हें गोसाइयोंने मार डाला। उनकी मृत्युके पीछे उनके पौत्र कँधई और पुत्र अनन्दराममें झगड़ा हुआ। उसका निबटारा गोसाईंजीने किया। पंचनामा १६६६का है। गोस्वामीजीने नरकाव्य कभी नहीं किया था। इन मित्रकी मृत्युपर ही कुछ दोहे रचे थे। शायद इसलिये कि टोडर रामभक्त और रामोपासक थे।

७—बारह बरसकी जीवनयात्रा

सन्त असन्तनकी असि करनी, जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय जिमि भाई, निज गुन देइ सुगंध बसाई।
ताते सुर सीसन चढ़त, जगवल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहि परसु बदन यह दंड।

कहते हैं कि उस समय काशीमें एक बड़े प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी श्रीमधुसूदन सरस्वती शंकर-मतानुयायी थे। उनसे गोस्वामीजीसे शास्त्रार्थ हुआ था। श्रीमधुसूदनजी श्री-गोस्वामीजीके वादसे ऐसे प्रसन्न हुए कि आपसमें शास्त्रार्थके कारण किसी तरहके विरोध-भावके उत्पन्न होनेके बदले बड़ा स्नेह हो गया, और उन्होंने गोसाईंजीकी प्रशंसामें यह श्लोक रचा।

"आनंद काननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसी तरुः
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता

इस शास्त्रार्थका कारण गोपालदासजीने रामायण-माहात्म्यमें यह लिखा है कि भाषामें होनेके कारण 'रामचरितमानस' का आदर पंडित-समुदायमे न था। पण्डितोंका कहना था कि

यदि मधुसूदन सरस्वतीजी इसे मान लें तो हम भी मानेंगे। मधुसूदन सरस्वतीके शास्त्रार्थके उपरान्त मानसका आदर पंडित-समुदायमें भी होने लगा।

पंडित घनश्याम शुक्ल संस्कृतके अच्छे कवि थे। पर भाषा-काव्य-रचना भी करते थे। इसमें उन्हें अधिक रुचि थी। इसलिये उन्होंने धर्म्मशास्त्रके कुछ ग्रन्थ भाषामें लिखे। इसपर किसी पंडितने आपत्ति की कि देववाणीमें न लिखनेसे ईश्वर अप्रसन्न होता है। आप संस्कृतमें ही लिखा कीजिये। वह गोस्वामीजीके मिलनेवालोंमें थे, उनसे सलाह ली, तो बोले—

"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिये साच।
काम तो आवै कामरी का लै करै कुमाच॥"

घनश्यामजीने अपनी भाषाकविता जारी रखी।

गोसाईंजी अभी प्रह्लाद घाटमें ही रहते थे कि चोरोंका एक बार फिर आक्रमण हुआ। गोसाईंजी कहींसे लौट रहे थे। बहुत रात हो गयी थी। अँधेरेमें चोरोंने घेरा। उन्होंने हनुमानजीका स्मरण कर ज्योंही यह दोहा पढ़ा

बासर ढासनिके ढका रजनी चहुँ दिसि चोर
दलत दयानिधि देखिये कपि केसरी किसोर

त्योंही हनुमानजीके भीमरूपसे चोर डर गये और अपने प्राण लेकर भागे।

एक बार कोई ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री शृंगार किये सती होनेको जा रही थी। राहमें उस स्त्रीने गोस्वामी-जीको देखकर प्रणाम किया। गोस्वामीजीने असीस दी "सौभाग्यवती हो।"

स्त्री रोकर बोली "भगवन्, मैं तो अभागिन हूं। अपनी [illegible] सफल करो कि पति मिले। सती हो जाने रही हूं। नाथ तो चले गये।" गोस्वामीजी रुक गये। सारा

समाचार सुना। उस दीन विधवाको रोका कहा रामकी मरजी थी सो हुई। असीस अनजानतेमें निकल गयी। तुम रामका भजन करके शेष जीवन काटो। सतीत्वसे स्वर्ग ही मिलेगा। स्वर्गका लालच न करो। स्वर्गसे फिर इसी मर्त्यलोकमें लौटना होता है।" पतिव्रता बोली "भगवन्, स्वर्ग नहीं चाहिये, मुझे पतिदेव चाहियें। सती होनेसे मैं उन्हींके पास जाऊंगी।" गोस्वामीजी बोले "तो, रामनाम जपनेसे स्वामी भी मिलेंगे और सब स्वामियोंके स्वामी राम मिलेंगे। तू राम राम जपती शेष जीवन काट दे, सती मत हो। राम भला करेंगे।" स्त्री और साथी राम राम कहते गंगा किनारे पहुंचे। लाश ले जाने-वालोंने घाटतक पहुँचा दिया था। यहां वह ब्राह्मण जी उठा था। लोग बंधन खोल रहे थे। उस घटनासे सबको रामनाम-पर विश्वास हो गया। शायद तभीसे मुर्देके साथ 'रामनाम सत्य है' कहनेकी प्रथा चल पडी है। वह सब गोस्वामीजीके शिष्य हो गये।

इनके चमत्कारोंसे भक्तिसे, और सत्सङ्गके लिये भी लोग इन्हें बहुत घेरने लगे। इसलिये इन्होंने प्रह्लाद घाट छोड दिया। कुछ दिनोंके लिये फिर चित्रकूट और अयोध्याकी यात्रा की। यात्राओंसे लौटनेपर हनुमानफाटकपर आकर रहने लगे।

गोस्वामीजी भगवान्को केवल पतितपावन कहकर प्रार्थना ही नहीं करते थे। उनका भगवान्की पतितपावनतामें इतना दृढ़ विश्वास था कि वह अपने आचरणमें भी विश्वासको वर्त्तते थे। काशीमें एक भंगी था जो अयोध्याजीसे आकर बसा था। वह बडे प्रेमसे अवध-सरयू जपता था। इससे गोस्वामीजी बहुत प्रसन्न रहते थे और आदर सत्कार करते थे। एक दिन एक हत्यारेने आवाज लगायी "है कोई रामका प्यारा, रामके नामपर इस हत्यारेको भी कुछ भोजन दे।" गोस्वामीजीके कानोंमें यह शब्द पहुँचे। उन्होने उसे बड़े प्रेमसे बुलाया गले

लगाया और अपने पास बैठाकर प्रसाद भोजन कराया। उनका मत था कि रामनाम लेनेसे कैसा ही पतित हो परम पावन हो जाता है। इसपर काशीके ब्राह्मण बहुत बिगड़े। गोसाईंजीको भ्रष्ट प्रसिद्ध किया। कुछ ब्राह्मण इनके यहां शास्त्रार्थके लिये आये। गोस्वामीजीने बहुतेरा समझाया बहुत प्रमाण दिये, जब उनके मनमें बात न बैठी, तब गोस्वामीजीने कहा कि "अच्छा बतलाइये, यह हत्यारा शुद्ध हो गया इस बातका कैसा प्रमाण मिले कि आप लोगोंको संतोष हो।" उन्होंने निश्चय किया कि "विश्वनाथजीका पत्थरका नान्दी हत्यारेके हाथका भोजन करे तो हम मानेंगे।" कहते हैं कि ऐसा ही हुआ और ब्राह्मण कायल हो गये। परन्तु जो हो गोसाईंजीके लेखोंसे स्पष्ट है कि उनके विरोधी अनेक हो गये थे। लोग इन्हें भ्रष्ट, चाण्डाल, कुजाति, नीच आदि कहते थे और इन्हें गालियां देते थे। सबको एक करनेवालेको बहुधा ऐसी दशा होती ही है। इतने-पर भी गोसाईंजी कभी ऊबे नहीं। रामनामकी पतितपावन-तामे उनका विश्वास अटल रहा। जिस दिन पहले पहल वह भंगी राम राम कहता और अवधसरयू जपता सुन पड़ा था और गोसाईंजीको मालूम हुआ था कि अयोध्याजीका भंगी है उसे बुलाकर उन्होंने गले लगाया था। बहुत सत्कारसे प्रसाद खिलाया था। गोस्वामीजीके ऐसे आचरणोंसे भला ब्राह्मण-समुदाय कब प्रसन्न रह सकता था! ऐसे प्रसंगोंपर विरोधकी उपेक्षा करते हुए ही जान पड़ता है कि गोस्वामीजीने यह कवित्त कहे हैं—

मेरे जाति पांति न चहौं काहूकी जाति पांति मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको। लोक परलोक रघुनाथहीके हाथ सब भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको॥ अतिहीं अयाने उपखानो नहिं बूझै लोग ,,हबको गोत गोत होत है गुलामको। साधुकै असाधुकै भलेकै पोच कहा काहूके हौं द्वार परयौ जो हौं सो हौं रामको॥

"कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै रामको गुलाम परो पूव है। साधु जानै महा साधु खल जानै महा खल बानी झूठी सांची कोटि उठत हबूब है। चहत न काहुसों कहत ना काहुको कछु सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है। तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथहीके रामकी भगति भूमि मेरी मति दूब ॥"

जब विरोधियोंके कारण अधिक अशान्ति होती थी, पर्य्यटनको निकल पडते थे। संवत् १६४३ से संवत् १६५३ तकके दशकमें अनुमानतः अधिक समय इन्होंने यात्रामें बिताया। चित्रकूट अयोध्या नेमिषारण्य और व्रजमण्डल घूमे।

चित्रकूटकी यात्रामें एक बार चुनार या विंध्यके राजाने गोस्वामीजीको बडे आदरसे अपनी राजधानीमें बुलाया कि कुछ सत्सङ्ग हो। गोस्वामीजी बडे सत्कारसे ठहराये गये। इतनेमे उसी समय सम्राटकी आज्ञासे किसी कारणसे वह राजा पकड़कर दिल्ली भेज दिया गया। गोस्वामीजी बराबर उसके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते रहे। राजाको दंड देनेके बदले सम्राटने बहुत सम्मान दिया और उनके अधिकार बढाकर लौटाया। लौटनेपर गोस्वामीजीको राजाने आग्रहपूर्वक कुछ दिनो रोक रखा और इनके सत्संगका अप्रमेय लाभ उठाता रहा।

कहते हैं कि विंध्यकी तराईमें दो और राजा रहते थे। उन दोनोंमें आपसकी प्रतिज्ञा हुई थी कि हमारे लडके लडकीसे परस्पर विवाह होगा। संयोगसे दोनोंके लडकियां हुईं। उनमेंसे एकने लोभवश अपनी कन्याको पुत्र मशहूर किया और जब दोनों बडे हुए तब विवाह हो गया। गौनेके पीछे जब यह बात खुली तो ठगे हुए राजाने क्रोधमें आकर धोखा देनेवाले राजापर चढ़ाई की। अन्तमें कपटी राजा हारकर भागा और गोसाईंजीकी शरण हुआ। गोसाईंजीने पुरुषरूपधारी राजकन्याको भगवान्का चरणामृत पिलाया और सीत प्रसाद खिलाया। वह कन्या पुरुष हो गयी। इतनेमें सेनासहित लडकी-

वाला राजा भी वहां पहुँचा। इस चमत्कारसे उनका झगड़ा निपट गया। परस्पर सन्धि हो गयी। इसीपर गोस्वामीजीने कहा है।

कवहुँक दरसन सन्तके पारस मनी अतीत,
नारि पलटि सो नर भयो लेत प्रसादी सीत।
तुलसी रघुवर सेवतहिं मिटिगो कालोकाल,
नारि-पलट सो नर भयो ऐसो दीन दयाल।

विंध्यकी तराईमें कुछ दिनों रहकर गोस्वामीजी प्रयाग गये वहां प्रसिद्ध गुरुभक्त मुरारिदेवसे (रसिक मुरारीजीसे) भेट हुई। उनसे बड़ी मैत्री हो गयी। वहीं मलूकदासजीसे भी भेट हुई थी। कहते हैं कि स्वामी दरियानन्दसे भी यहां समागम हुआ था।

चित्रकूट जाकर कुछ काल वहां निवास किया। कहते हैं कि एक दरिद्र ब्राह्मण मंदाकिनीके किनारे प्राण देनेपर उतारू था। गोस्वामीजीने पहले उसे विषयकी निःसारतापर बहुत समझाया बुझाया। जब बात उसके मनमें न पैठी तब उसे आत्महत्याके पापसे बचानेको भगवान्की स्तुति की। उस समय मंदाकिनीमेंसे एक शिला निकल आयी। वह अबतक दरिद्रमोचन शिलाके नामसे विख्यात है और उसके सम्बन्धमें यही कथा कही जाती है।

चित्रकूटमें भगवान्के दो बार और दर्शनकी कथा कही जाती है। परन्तु इसमें बहुत कुछ सत्यता नहीं प्रतीत होती। यदि उन्हें चित्रकूटमें दर्शनोंका ऐसा सुभीता था तो चित्रकूट जैसे रमणीक और भगवद्दर्शनप्रदायक स्थानको छोड़ काशीमें क्यों रहते! चित्रकूटमें गोस्वामीजी उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक रहते थे, जिस प्रकार अयोध्याजीमें।

चित्रकूटमें गोस्वामीजी जिन दिनों वहां थे, संडीलेके स्वामी

नन्दलालजी भी अयोध्याजीके दर्शन करते चित्रकूट आये थे। यह गोस्वामीजीसे मिले। गोस्वामीजीने उन्हें अपने हाथसे लिखकर रामकवच भेट किया। स्वामी नन्दलालजीको अयोध्याजीके महात्मा मुक्तामणिदाससे बडा प्रेम था और गोस्वामी जीसे और मुक्तामणिदाससे अवधके पूर्व निवासमें बहुत गाढ़ी मैत्री थी। स्वामी नन्दलालजीने मुक्तामणिदासजीसे ही गोस्वामीजीकी प्रशंसा सुनी थी। इसीलिये इस अवसरपर मिले।

गोस्वामीजी यहासे अयोध्या गये और मुक्तामणिदासजीसे भेट की। यह महात्मा गोसाईंजीके मित्र और बड़े अच्छे कवि थे। आपके पद गोसाईंजीको बहुत पसंद थे।

अवधसे गोस्वामोजी नैमिषारण्य आये। यहां ही गोस्वामी जीका कभी गुरुस्थान था। इसी 'सूकर खेत" मे उन्होंने गुरुदेवसे रामकथा सुनी थी। शूकरक्षेत्रका दर्शन करके कुछ दिन पसकामे रहे। सिवार गावँमें सीताकूपके समीप भी कुछ दिन रहे। फिर कुछ दिन लक्ष्मणपुर (लखनऊ) मे निवास हुआ। वहाके एक निरक्षर निर्धन भाटको अच्छा कवि बना दिया और उसकी जीविकाका सहारा करा दिया।

वहासे थोड़ी दूरपर मड़ियाहू गावेंमें भीष्म नामक एक भक्त रहते थे। उनके बनाये नखसिखको सुनकर गोस्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए। मड़ियाहूमे उनसे बहुत प्रेमसे मिले।

वहासे गोस्वामीजी मलीहाबाद आये। वहा एक भाट उनका बड़ा भक्त था। उसे अपनी लिखी रामचरितमानसकी एक पोथी दी। सुनते हैं कि यह पोथी उसके वशमें आज भी मौजूद है और पूजो जाती है। वहासे प्रभाती स्नान करते वाल्मीकिके आश्रममें आये। यहा श्री अनन्यमाधवसे मिले। यह भी बडे भक्त और ऊंची कोटिके कवि थे। यहा गोसाईंजीने "मैं हरि पतितपावन सुने" वाला पद रचा। अनन्यमाधवजीने उत्तरमे यह पद बनाया—

"तबतें कहाँ पतित नर रह्यो।
जबतें गुरु उपदेस दीन्हों नाम नौका गह्यो॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कंचन लह्यो।
कस न कासि कासि लेहु स्वामी अजन चाहन चह्यो॥
उभरि आयो विरहवानी मोल महँगे कह्यो।
खीर नीरते भयो न्यारो नरक ते निर्बह्यो॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि तरवर नह्यो।
अनन्य माधव दास तुलसी भवजलधि निर्बह्यो॥"

वहां कुछ दिन रहकर वे ब्रह्मावर्त्त विठूरमे गंगातटपर आ रहे। वहांसे वाल्मीकिजीके स्थानसे होते संडीलेमे आये। यहा स्वामी नन्दलालजीके यहां कुछ कालनक सत्संग हुआ। एक ब्राह्मण देवता संडीलेमे रहते थे जो गोस्वामीजोके बड़े भक्त थे। गोस्वामीजीने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक कृष्णभक्त पुत्र होगा। उनके पुत्र मिश्र वंशीधरजी प्रसिद्ध कृष्णभक्त और कवि हुए। मिसरिखके पास एक गावँ जयरामपुर है वहा बड़की एक सूखी डाल गाड़ दी वह हरी हो गयी। उसका नाम वंशीवट रखा और आज्ञा की कि श्रीरामविवाहोत्सवके दिन अगहन सुदी ५ को यहां रासलीला कराया करो। अबतक वहां रासलीला होती है।

रामपुरमें खैरातके नामपर इनकी नाव रोक दी गयी थी। गोस्वामीजोको जब रोकनेका उद्देश्य जान पड़ा तो उन्होंने अपना सब कुछ वहीं लुटा दिया। जमींदारने जब सुना तो उनके पैरोंपर गिरा, बड़े आग्रहसे इन्हें अपने घर लाया और सब तरहका सत्कार किया। प्रसन्न होकर उसे भी अपनी रामायणकी एक प्रति दी।

घूमते घामते नैमिषारण्य आदि होते गोस्वामीजी फिर अवध-

पुरीको लौटे और कुछ काल यहा बिताकर फिर काशी आये।

काशीमे आकर कुछ दिन शान्तिसे कटे परन्तु जब लोगोंको पता लगा कि गोस्वामीजी लौट आये तो दर्शनोंके लिये पुराने श्रद्धालु और भक्त इकट्ठे होने लगे। विरोधियो और ईर्षालुओंको भी शिरोवेदना होने लगी। स्वार्थ साधनेवाले भी फिर जुटने लगे।

एक ब्राह्मण देवता जीविकाविहीन थे, बहुत दु:खी रहते थे। गोस्वामीजीके पास आया करते थे। गंगापार कछारमे उनकी खेती थी। गोस्वामीजीने उनके लिये श्रीगगाजीसे विनती की। गंगाजीने बहुत सी भूमि उनके लिये छोड़ दी।

गंगाराम ज्यौतिषीके एक लाख रुपये पारितोषिकवाली कथामें दो एक ऐतिहासिक प्रमादोंके कारण कई लेखकोने सारी बात असत्य ठहरा दी है। गोस्वामीजीने हनुमानजीके अनेक मंदिर बनवाये, यह तो वास्तविक तथ्य अवश्य है। मंदिर मौजूद हैं। रही यह बात कि गोस्वामीजीको इतना धन कहांसे मिला। किसी धनाढ्यने दिया अवश्य। परन्तु देनेवालोंमें एक गगारामका ही नाम लिया जाता है। और किसी धनी दाताकी चर्चाके अभावमें यह प्रश्न रह जाता है कि ज्यौतिषी गंगाराम-को इतना धन कहासे मिला। राजघाटके गहमार क्षत्रिय राजा वाली बात अप्रामाणिक सिद्ध होनेके सिवा शेष सारी कथा स्वाभाविक है। काशोजीमें सदासे देश देशके राजाओंका निवास चला आया है। संभव है किसी ऐसे ही प्रवासी राजाके [राजघाट न सही गायघाट सही] सम्बन्धमें यह कथा हो। बनारसमें राजाओंकी न तो कमी रहा है और न शिकार खेलने-का व्यसन किसी कालमे राजाओंके लिये अनोखा था। हा, जो सगुन विचारना, फलित ज्यौतिष वा प्रेतका अस्तित्व ढोग मानते हों, वह चाहे गोस्वामीजीपर हँस लें, पर गोस्वामीजी इन बातोंको मानते थे, यह बात उनके लेखोंसे स्पष्ट है और

आज भी सभ्य संसारमें इनके माननेवालोंकी संख्या थोड़ी नही है।

संवत् १६५१के ज्येष्ठ शुक्ल दशमी रविवारको पं० गंगाराम जोशीको उनके आश्रयदाता राजाने बुला भेजा। राजकुमार शिकार खेलने गये थे। उनके नौकरको शेरने फाड़ डाला था। राजा-साहबको खबर मिली थी कि राजकुमारको शेरने फाड़ डाला है। राजापर तो वज्रपात हो गया। ज्यौतिषी गंगारामको बुलाकर आज्ञा की कि राजकुमारका सच्चा हाल बताओगे तो पारितो-षिक मिलेगा, नही तो मृत्युदंड। राजकुमार जीते लौटे तो एक लाख इनाम। ज्यौतिषीजी घबराये और अपने मित्र गोस्वामी जीके पास आये। सारा समाचार सुनाया। गोसाईंजीने तुरन्त कलम दवात और कागज मांगा। स्याही न मिलनेपर कत्थेसे रामशलाका खींची और प्रश्नका उत्तर बताया कि राज-कुमार कुशलपूर्वक कल लौट आवेंगे। गंगाराम जब उत्तर लेकर गये तो कैद कर लिये गये। शामको राजकुमार घर आया। बात सच्ची ठहरी। राजाके आनन्दका वारपार न रहा। एक लाख रुपये गंगारामजीको इनाम मिले। बहुत आग्रह करके उसमेसे बारह हजार गोस्वामीजीको गंगारामने दिये जिससे गोस्वामीजीने काशीजीमे हनुमानजीके बारह मंदिर बनवाये। सकटमोचन और अस्सीपरके हनुमानजीके मंदिर इस प्रकार बने हुए मंदिरोमें प्रसिद्ध हैं। इस रामशलाका-का अब पता नही है। जो प्रचलित हैं वह मनगढ़ंत हैं।

रामचरितमानस लिखनेसे गोस्वामीजीकी प्रशंसा बड़ी दूर दूरतक पहुँच चुकी थी। रेल तार छापा अखबारका जमाना न था परन्तु काव्यरसिकता आजकलसे कम न थी। स्वयं गोस्वामीजी अच्छे तीर्थाटन करनेवाले महात्मा थे। अकबरका प्रभावशाली शासन था। गोसाईंजी उत्तर भारतमें दिल्लीतक घूमे होंगे। परन्तु इस कथाके लिये कोई ऐतिहासिक

आधार नहीं मिलता कि अकबर या जहांगीरने गोसाईंजीको दिल्ली बुलवा भेजा और चमत्कार दिखानेको कहा और इनकार करनेपर किलेमें कैद कर दिया। फिर बन्दरोंके उपद्रवसे लाचार हो गोसाईंजीसे क्षमा मांगी और उनकी आज्ञासे इस किलेको छोड दूसरा बनवाया। संभव है कि किसी छोटे मोटे अविश्वासी शासकसे पर्य्यटनमे काम पड गया हो। कवितासे पता लगता है कि गोस्वामीजी स्वयं कहीं बन्दी हुए होंगे, कहीं घोर सकटमे पडे होंगे जब हनुमानजीसे भांति भातिसे कष्ट निवारणार्थ प्रार्थना करनी पडी।

गोस्वामीजी कोई काम चमत्कारप्रदर्शनके लिये कभी नहीं करते थे। जहा ऐसी संभावना होती वहासे उनका सरल चित्त उन्हें विरत कर देता था। पतिको जिलानेवाली कथापर कई लेखक कहते हैं कि उन्होंने सौभाग्यवती शब्दको सत्य करके छोडा। कविकी रचनासे भी उसके स्वभावका पता लगता है। मानसके रचयिताकी सी सरलता और शालीनता किस लेखकमें पायी गयी है? "आरति विनय दीनता मोरी" का गंभीर चरित्रवान् लिखनेवाला गर्वपूर्वक अपने शब्द "सौभाग्यवती"की सत्यता प्रतिपादन करनेके लिये प्रतिज्ञा कर बैठे कि मैं मुर्देको जिलाकर छोडूंगा, कितना असंगत है, यह बात मानवचरित्रके समझनेवाले विचार सकते हैं।

गोसाईंजी दार्शनिक न थे। सीधे सरलचित्त दृढ़विश्वासी सच्चे भक्त थे। उनके उपदेश अत्यन्त सीधे और मार्मिक होते थे। श्रोताके हृदयमें तुरन्त स्थान कर लेते थे।

एक दिन एक अलखिये फकीरने आकर "अलख, अलख" जगाना आरम्भ किया। गोसाईंजीने उसे डांटा

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमारके बीच।
तुलसी अलखहि का लखै राम नाम जपु नीच॥

अलखिया उसी दिनसे उपदेश पा रामनामी वैष्णव हो गया।

एक वेश्या गोसाईंजीकी बड़ी भक्ता हो गयी। उसे गोस्वामीजीने उपदेश किया। वह अपना पेशा छोड़ भगवत् भजनमें लग गयी।

बनखंडीमे एक प्रेत रहता था। गोस्वामीजीके दर्शन और रामनामके उपदेशसे वह प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया।

८—व्रज-परिव्रजन

"वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाई रूप
मन अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है।"

—*प्रियादास*।

हनुमान फाटकके आसपासके मुहल्लोंमे अबकी तरह पहले भी मुसलमान अधिक रहते थे। गोस्वामीजीके यहां भक्तोंकी भीड़ और रामनामपर विश्वास करनेवालोंकी बढ़ती हुई संख्या वहांके कट्टर नौमुसलिम सह नहीं सके। उन्होंने आये दिन कोई न कोई उपद्रव खड़े करने आरंभ किये। गोसाईंजीने देखा कि यहांका रहना ही अब उचित नहीं। वहांसे उठकर वह चुपकेसे गोपालमंदिरके हातेमें आये। यहां श्री मुकुन्दराय जीके बागके पश्चिमदक्षिणके कोनेमे एक कोठरी आज भी मौजूद है जो गोस्वामीजीकी बैठक कहलाती है और प्रत्येक श्रावण शुक्ला सप्तमीको खोली जाती है। लोग पूजा करते हैं। यहां गोस्वामीजीकी गुफा थी। वैष्णवोंका सान्निध्य था। आसपास हिन्दुओंकी ही बस्ती थी। एकान्त था। यहां भीड़से बचाव था। इसी एकान्तमें विनयपत्रिकाका आरंभ हुआ। विंदुमाधवजीका मंदिर पास ही था। उस समय विंदुमाधव जीकी असली मूर्त्ति [जो अब एक गृहस्थके पास है] मंदिरमें विराजमान थी। उसीका ध्यान और स्तुति गोस्वामीजीने की है। पंचगंगा और कृष्ण भगवानकी भी स्तुति है। राम और [illegible] एकता दिखायी है।

इसी समयके लगभग वृन्दावनसे नाभादासजी भी पधारे थे। जिस दिन वृन्दावनको लौटने वाले थे, मिलने आये। गोस्वामीजी विनयमें ऐसे मग्न थे कि नाभाजीकी बडी प्रतीक्षापर भी गुफासे न निकले। जब नाभाजी चले गये तब गोस्वामी जीको पता लगा कि एक महात्मा निरास चले गये। नाभाजी वृन्दावनके लिये चल चुके थे। मिलना असंभव था। गोस्वामी जीने निश्चय कर लिया कि व्रजमडलकी परिक्रमा भी करनी चाहिये और श्रीनाभाजीके भी दर्शन करने चाहियें। इस विचारसे गोस्वामीजी गोपालमन्दिरसे उठे और गोपालकी क्रीडा-भूमिकी ओर चल पडे।

गोस्वामीजी जिस दिन वृन्दावन पहुँचे, नाभादासजीके यहां साधुओंका भंडारा था। पगतें बैठ चुकी थीं। प्रसाद पत्तलों-पर रखे जा रहे थे। सबसे अंतकी पांतोंके अन्तमें थोड़ी जगह जूतों और खड़ाउओंके पास थी। गोस्वामीजी पहुँचे और वहीं बैठ गये। किसी महात्माने उस पत्तलको जिसपर पैर रखकर स्वयं बैठे थे गोस्वामीजीके लिये बढा दिया कि उसपर बैठें, परन्तु इसी समय प्रसाद आ गया था उसे रखनेको पत्तल न था। उसी पत्तलको झाडकर प्रसाद लेनेको फैलाया। परसने वालेने कहा, और पत्तल आता है ठहरिये। गोस्वामीजी बोले "किसी साधुके चरणोंसे यह पवित्र हो चुका है, इससे अधिक पवित्र पात्र क्या होगा ?" श्रीनाभादासजी दूरसे यह चरित्र देख सुन रहे थे। तुरन्त दौडकर पास आये। गोस्वामीजीको पह-चानकर उन्हें गलेसे लगा लिया। बोले "गोस्वामीजी, भक्त-मालाका सुमेरु आज मेरे बडे सौभाग्यसे यहीं मिल गया। मैं तो ढूढने काशी गया था, पर न पा सका।"

गोस्वामीजीने व्रजमंडलमें घूम घूमकर खूब दर्शन किये। एक जगह कुछ कट्टर अनन्य कृष्णोपासक जमा थे। भगवानके दर्शनोंका समय हो रहा था। पट खुलनेवाले थे। गोस्वामीजी

पर कोई व्यंग प्रहार कर रहा था कि अनन्य उपासक अपने इष्टदेवके ही रूपकी उपासना करते हैं और गोस्वामीजी कह रहे थे कि हमारे भगवान्‌के तो सभी रूप हैं, हां, मैं तो उनके रामरूप पर ही रीझा हूं। मैं तो मदनगोपालमें भी रामरूप ही देखता हूं। इतनेमें पट खुले तो यह विशेष चमत्कार देख पड़ा कि कृष्ण भगवानके हाथमें धनुषवाण थे और खासा रामरूपका शृंगार था। इसपर जोरोंसे जयध्वनि हुई।

व्रजमंडलमें रहकर गोस्वामीजी अनेक महात्माओंसे मिले। उस समय सूरदासजी गोलोकवासी हो चुके थे। बहुत काल बीत चुका था।

एक दिन एक कृष्णभक्तने कहा महाराज, आप नन्दनन्दन आनन्दकन्दके चरणारविन्दको छोड़ दशरथनन्दनके चरणोंकी उपासना क्यों करते हैं। गोस्वामीजी बोले "महाराज, दशरथ-नन्दनकी श्यामसुन्दर मूर्त्तिपर मैं सदासे लुभाया हूं। वह अनूप छवि मेरे हृदयमें बस गयी है, आंखोंमें समा गयी है, और रूपोंके लिये जगह कहां है। राजकुमार रामचन्द्रजीके चरणारविन्द मकरंदका मेरा मन सदासे अलिन्द रहा है।"

कृष्णभक्त बोला "केवल बारह कलाके अवतार रामचन्द्रजीमें आप इतनी भक्ति करते हैं, सोलहों कलाके अवतार भगवान् कृष्णचन्द्रमें उतनी ही भक्ति क्यों नहीं करते?" गोस्वामीजी गद्गद कंठसे बोले "ओहो! मैं तो अबतक राजकुमारोंके रूप, गुण, शौर्य्य, औदार्य्य और चारित्र्यपर ही मुग्ध था। बारह कलाके अवतार हैं तब तो मेरी श्रद्धा और भक्ति करोड़गुनी बढ़ गयी! अब तो मुझे केवल उनके चरण चाहियें. गोलोक और साकेत लोक भी व्यर्थ हैं।"

कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीकी एक मूर्त्ति दक्षिण देशमें किसी सौभाग्यवान् रामभक्तके यहां विराजमान् थी। भगवान्‌ने स्वप्न दिया कि मुझे अवध ले चलो। वह भक्त स्वामीके

आज्ञानुसार बड़े आदरसे पालकीमें मूर्त्तिको पधराकर अपने स्थानसे ले चला। राहमें श्रीवृन्दावनमें विश्राम हुआ। यहां एक भगवज्जन दरिद्र ब्राह्मणने भगवान्से बड़ी उत्कट अभिलाषा प्रकट की कि भगवान् व्रजमें ही विराजें। भक्तभावन अपने सरल निष्कपट दासकी अभिलाषाको पूरा किये बिना कैसे मानते! स्वप्न हुआ कि "मुझे यहीं रहने दो, अब यही रहूंगा।" श्रीरामघाटपर उसी विग्रहकी गोसाईंजीकी अनुमतिसे स्थापना हुई और गोस्वामीजीने ही उस भव्य मूर्त्तिका नाम "कौसल्या-नन्दन' रखा। वह मूर्त्ति अबतक परम भक्त गोस्वामीजीके वृन्दा-वननिवासका स्मारक है।

गोस्वामीजीके विचार ऐक्यविधायक थे। अपने वृन्दावन-निवासमें उन्होंने भगवान्के कृष्णावतारके बड़े ही अनुपम पद रचे। यही कृष्णगीतावली है।

६—मित्र टोडरमल जमींदार

तुलसी उरथाला विमल टोडरगुनगन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥

गोसाईंजी व्रजमंडलसे लौटे तो फिर काशी आये। इसी समय उनके परम मित्र रामभक्त जमींदार टोडरमलको द्वेषवश गोसाइयोंने मार डाला। गोस्वामीजीको इसका बड़ा रंज हुआ। टोडर अवश्य ही कोई विलक्षण रामभक्त और मानस-कारका अनुरागी सेवक और मित्र था, तभी तो जो गोस्वामीजी नरकाव्य कभी नहीं करते थे उन कट्टर व्रतीके मुखसे भी इस रामानुरागी मित्रके मरनेपर हृदयके सच्चे उद्गारके रूपमें नीचे लिखे चार दोहे निकल पड़े —

चार गाँवको ठाकुरो मनको महा महीप।
तुलसी या कलिकालमें अथए टोडर दीप॥

तुलसी रामसनेहको सिरपर भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो सब कहि रहे उतार ॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नयनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग ॥
रामधाम टोडर गए तुलसी भए असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि सकोच ॥

धन्य टोडर! तुमको संसारके सम्राटोंसे अधिक सम्मान मिला। तुम्हारा भाग्य असाधारण था।

टोडरके दो लड़के थे आनंदराम और रामभद्र। संवत् १६६९-मे जब रामभद्र मर चुके थे, आनंदराम और रामभद्रके पुत्र कंधई-मे झगड़ा हुआ। टोडरकी जमीदारीमे पांच गांव थे—भदैनी, नदेसर, शिवपुर, छीतूपुर, और लहरतारा। यह सब काशीके ही अंतर्गत बस्तिया और मुहल्ले है। जब बांटका झगड़ा पड़ा तब गोस्वामीजीको ही दोनोंने पंच माना। यह पंचनामा संवत् १६६९ कुंआर सुदी तेरसको काजीके समक्ष लिखा गया। इसमे कोई संदेहका कारण नही कि आरंभके नागराक्षरमें लिखे श्लोक और दोहा गोस्वामीजीके ही करकमलोंके लिखे हैं। यह पंचनामा ११ पीढ़ी तक टोडरके वंशमें रहा। ११ वीं पीढ़ीमे पृथ्वीपालसिंहने महाराज काशीनरेशको सौंप दिया। यह अबतक काशिराजके यहां सुरक्षित है। *

वल्लभकुली गोसाइयोंसे विरोध हो जानेसे गोस्वामीजी गोपालमंदिर छोड़कर अस्सीपर जाकर रहने लगे और अंततक वहीं रहे।

* उसकी फोटो उनके प्रधान अमात्य श्रीकर्नल विंध्येश्वरीप्रसाद सिंहकी कृपासे प्राप्त हुई। उसका ब्लाक हम यहा पाठकोंके अवलोकनार्थ देते हैं। लेखक।

१०—अन्त

संवत सोरह से असी असी गंगके तीर।
सावन सुक्ला सतमी तुलसी तजे सरीर॥

संवत् १६६२ में अकबर बादशाहकी मृत्यु हुई। जहांगीर तख्तपर बैठा। जहांगीरका राज्य वस्तुतः उसकी चहेती बेगम नूरजहांका राज्य था। उसके समयमें एक बार काशीजीमें हिन्दुओंपर मुसलमानोंके घोर अत्याचार होने लगे। कंठी और जनेऊ और तिलकपर विपत्ति आयी। गोस्वामीजीतक अत्याचारी पहुंचे। परन्तु महात्माका तेज और तपश्चर्या प्रबल हुई, गोत्र गालिब आया। म्लेच्छोंका हाथ रुक गया बल्कि उनके सत्याग्रह और सदुपदेशसे सारे नगरकी यह विपत्ति थम गयी। शान्ति हो गयी।

मेघाभगत नामक एक अच्छे लीलानुकरणी भक्त काशीजीमें हो गये हैं। गोस्वामीजीके समकालीन थे और उनके बड़े प्रेमी थे। उनके समयसे काशीजीमे रामलीलाका प्रचार हुआ। चित्रकूटकी रामलीला काशीजीमें उनकी ही रामलीला समझी जाती है। उनकी लीलामे वाल्मीकीय रामायण पढ़ी जाती थी। अस्सीपर गोस्वामीजीने रामचरितमानसके आधारपर रामलीलाकी नेंव डाली। रामचरितमानसका गाया जाना इसका मुख्य रूप था। इसका प्रचार इतना हुआ कि अब जहां कहीं दसहरेपर रामलीला होती है, रामचरितमानस ही गाते हैं। आज भी अस्सीपर गोसाईंजीकी स्थापित की हुई रामलीला जारी है। उनके नियुक्त किये हुए स्थान भी मौजूद हैं। लंका अबतक प्रसिद्ध है। सीतारामके मंदिरके पास तुलसीघाटपर उनका स्थान बताया जाता है।

जहांगीरके राजत्वकालमें उत्तर भारतमें प्लेगका भी प्रकोप हुआ था। काशीजीमें भी प्लेग फैला था। उसका वर्णन

हनुमानबाहुकके कवित्तोंमें मिलता है। यह भी पता चलता है कि काशीजीमें प्लेग फैला जोरसे, परन्तु हनुमानजीकी कृपासे शीघ्र ही उसका निवारण हो गया।

गोस्वामीजीके रोगग्रस्त होनेका पता जीवनभरमें केवल हनुमानबाहुकके कवित्तोंसे लगता है। जान पड़ता है कि एक समय बरसातमे उनके शरीर भरमें फोड़े हो गये थे। उस अवसरकी वर्षा ऋतुका संकेत करती हुई रचना भी है। सावनमें मृत्यु भी हुई थी। इससे कुछ लोगोंका अनुमान है कि फोड़ोंसे ही उनकी मृत्यु हुई। परंतु इस कथनका आधार अनुमान ही अनुमान है। अन्त समयकी जो कविता बतायी जाती है वह किसी शारीरिक वेदनाका कोई लक्षण नहीं प्रकट करती। उसमे शान्ति है, भक्ति है, दृढ़ता है, जो वेदनाव्यथित प्राणीमें होनी असंगत है। गोस्वामीजी अपने शरीरान्तके समय निश्चय ही नब्बे बरसके लगभग या अधिक अवस्थाके थे। ऐसे अत्यंत वृद्ध सदाचारी तपस्वी और साधुके लिये मृत्युका कोई कारण-विशेष दिखानेको किसी उग्र रोगकी आवश्यकता नहीं होती। हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजी बड़ी शान्तिसे राम राम कहते साकेतलोकवासी हुए। कहते हैं कि अंत समयमें उन्होंने क्षेमकरीको देखकर यह कवित्त—

"कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचन्दसों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेपु सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥"

और प्रयाणक्षणके पहले यह दोहा कहा था—

"रामनाम जस बरनि कै भयउ चहत अब मौन"
तुलसीके मुख दीजिए अब ही तुलसी सोन"॥

कविताका सौंदर्य, विचारकी सुसंगति, प्रयाणकालमे भविष्यकी चिन्तासे मुक्ति, अन्त समय तुलसी और सोना मुखमे देनेकी आज्ञा स्पष्ट बताती है कि व्यथाकी विह्वलता नही है, पीडाका कष्ट नही है, रोगके छूटनेसे जो साधारण सुख मिलता है उसपर भी ध्यान नहीं है। रोगी और दुःखी प्राणी घबराकर मृत्युको बुलाता है। यहा तो चलनेकी घडीपर शुभ शकुन उसी प्रकार देखा जा रहा है जैसे कोई शान्तिपूवक यात्राके लिये निकल रहा हो। शिष्य सेवक और भक्त लोग घेरे हुए हैं। अस्सीघाटके पास गगानटपर काशीकी पवित्र धरतीकी सुखशय्यापर लेटे हुए महाभागवत अत्यन्त वृद्ध साधुके मुखारविन्दसे अन्तमे क्या शब्द निकलते हैं, इसकी कितनी वडी उत्सुकता होगी। यह कवित्त यह दोहे तुरन्त लिखे गये होंगे। ऊपर लिखा सवैया तो मृत्युकी प्रतीक्षामे पडे पडे क्षेमकरीको देखकर कवि कह रहा है।

गोस्वामीजीके शिष्य विद्वान और कवि अवश्य थे, इसका प्रमाण मानसमयंकसे मिलता है। गोस्वामीजीकी मृत्युतिथि वाला दोहा उनके किसी शिष्यका ही कहाहुआ जान पडता है।

११—गोस्वामीजीका पारिवारिक जीवन

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥

गोस्वामीजी जन्मके त्यागी थे। यह तो बारंबार कहा है कि मेरे पिताने मुझे जन्म देकर त्याग दिया। उन्हें मेरे जन्म लेनेपर वह आनन्द नही हुआ जो दम्पतिको पुत्रजन्मपर होता है। यदि मातापिताका किंचित्मात्र सुख उन्हें हुआ होता तो अवश्य ही वह किसी न किसी रूपमें व्यक्त करते। और कुछ नहीं तो जहा वन्दना करते समय "सीयराममय सब जग" जानकर किसीको न छोड़ा वहा पूज्य मातापिताको क्यों छोड़ देते! उन्होंने शायद अपनी यादमें मातापिताको देखा ही

नहीं। "अति अचेत" अवस्थामें अत्यन्त छुटपनमे उनको यदि कुछ याद है तो अपने गुरुकी ही याद है। वह तो "गुरु पितु-मातु महेस भवानी" को ही मानकर प्रणाम करते हैं। यहा "गुरु" शब्द या तो पितुमातुका विशेषण है या भाव यह है कि मेरे बड़े, मेरे गुरुजन, तथा मातापिता उमामहेश्वर हैं। इन्हींको प्रणाम करता हू। प्रियादासजीने विवाहकी बात पता नही किस आधारपर कही है, परन्तु यह स्पष्ट है कि उनके बादके सभी लेखकोंने प्रियादासजीके ही आधारपर विवाहकी और स्त्रीकी और बातें भी कही हैं। "खरिया खरी कपूर"वाले दोहेको लेकर भी लोग कहते हैं कि बुढ़ापेमें गोस्वामीजी घूमते घामते बेजाने ससुरालमें उतर पड़े और उनकी बूढी पत्नीने बे पहचाने उनका सत्कार किया। कपूर लायी तो बोले "खरियामें है।" सेतखरी तक झोलीमें थी। तब पत्नीने पहचाना और बोली

"खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग
कै खरिया मोहिं मेलिकै बिमल बिवेक बिराग"

गोस्वामीजीने इसपर झोलीकी सारी चीजें फेंक दीं और चलते हुए।

माना कि गोस्वामीजी पचास बरस बाद ससुराल गये होगे। इतनेमे शायद घर बदलकर नया उठ चुका हो और स्त्री अत्यन्त बूढी होनेके कारण अंधी हो पहचान न सकी हो। रूप भी भिन्न हो गया होगा। शायद केश बढ़े हो। स्वयं गोस्वामी-जीने उसे न पहचाना न सही। पर ससुरालके गांवपर भूल-कर पहुच जाना स्वाभाविक नही जान पडता। पचास बरस बाद भी गाव उसी स्थानपर होगा। त्यागी हुई जगहपर जान-बूझकर जानेमे स्त्रीसे मिलनेकी बड़ी संभावना थी। गये भी तो न पहचानना अथवा एकदम चेतना-शून्य अज्ञान गोस्वामीजी ऐसे विलक्षण बुद्धिके व्युत्पन्न कविके लिये नितान्त अस्वाभा-

विक है। यह दोहा अवश्य दोहावलीमें है। भाव स्पष्ट यही है कि कोई परित्यक्ता पत्नी अपने वैरागी पतिसे कहती है कि झोलीमें सांसारिक पदार्थोंका संग्रह करतेही हो तो स्त्रीने क्या किया है? उसे भी क्यो नही साथ रखते? यदि सचमुच गोस्वामीजीकी पत्नीके ही वचन हैं तो अत्यन्त बुढापेमें कहलाने की क्या आवश्यकता है। गोस्वामीजी जैसे महात्मा पतिको खोजकर उसकी चरणधूलि लेना तो उसके लिये परम सौभाग्य-की बात थी। वह चित्रकूट काशी वा अयोध्यामें आकर अथवा तीर्थाटनमे दर्शन करके भी झोलीवाला प्रसंग उपस्थित होनेपर ऐसी ही बात कह सकती है। परन्तु कवि तो साधा-रणतया अनेक बातें कल्पित व्यक्तियोंके मुखसे कहलाता है। वह यदि किसी कच्चे वैरागीको जिसने स्त्री और घर तो छोडा पर गिरस्तीका जंजाल सेतखरी और कपूर तक झोलीमें लिये फिरता है, उसकी परित्यक्ता पत्नीसे इस तरह उपालंभ दिलावे तो इसमें तो वस्तुतः उसके कवित्वका परिचय मिलता है। यदि इस दोहेको हम कवितामात्र मान लें तो गोस्वामीजीकी रचनाओंका एक भी आभ्यन्तरिक प्रमाण उनके विवाहके पक्षमें नही मिलता। उनकी जीवनघटनाओंमें अनेक बार अपना सर्वस्व लुटा देनेकी बात आयी है। आरंभमें वैराग्यकी चेतावनी स्त्रीने दी भी हो तो बुढ़ापेमे तो अवश्य पक्के पोढे व्युत्पन्न अनुभवी और सच्चे त्यागी साधुको जिसे

"मांगके खैबो मसीतको सोयबो लैवेको एक न देवेको दोऊ"

है, ऐसे उपदेशके बारबार दिलाये जानेकी कोई आवश्यकता नही दीखती।

यद्यपि गोस्वामीजीके पारिवारिक जीवनकी बहुत संभा-वना नहीं दीखती तथापि उनका सांसारिक अनुभव अत्यन्त विशाल है। सुकविके लिये शक्ति व्युत्पत्ति और अनुभव तीनों अनिवार्य गुण हैं। गोस्वामीजीमें शक्ति और व्युत्पत्तिके साथ

ही साथ पारिवारिक अनुभव विलक्षण हैं। भाई भाई, स्त्रीपुरुष, मातापिता और सन्तान, बंधु और कुटुम्बोंके बीच परस्पर सम्बन्ध, स्नेह, भावोंकी बारीकी, पारस्परिक विनय, क्रोध, भय, उदारता, वात्सल्य, सम्मान आदि किसी बातमें गोस्वामीजीके अनुभवकी कमी नहीं प्रदर्शित होती। जहां कहीं मानवस्वभाव-चित्रण है वहां उन्होंने जिस अनुभवशीलतासे काम लिया है वह और रामायणकारोंसे बहुत बढ़ी हुई है। राजा दशरथसे कैकेयी जब दोनों वर मागती है तो अध्यात्मरामायण तो उन्हें तुरंत "निपपात महीतले" कर देता है। वाल्मीकिजी सोचते सोचते मूर्च्छित कर देते हैं और इतने बड़े गंभीर और नीतिज्ञ राजाको आपेसे बाहर कराके अत्यन्त क्रोधसे दुर्वाद कहलाते हैं। गोस्वामीजी बड़े स्वाभाविक ढङ्गसे पहले तो राजाको चिन्तामें डुबो देते हैं, शोकमें मग्न कर देते हैं—

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लागु जनु सोचन ॥

फिर उसी दशामें कैकयीसे कटुवाद कराते हैं, जलेपर नमक छिड़कवाते हैं। इतनेपर भी राजामें कितना जब्त है, कितना धैर्य है, कितना आत्मसंयम है कि उसासें लेते हैं,रंजकी हद है, पर फिर भी

"बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सुहाती।"

राजा नीति नहीं भूले। अबतक निराश नहीं हुए। अब भी कैकेयी राजी की जा सकती है। भरत राजा भलेही हों, पर शायद रामको रखनेपर राजी हो जाय। अभी तो यही निश्चय नहीं है कि "रिस, परिहास, कि सांचहु सावा" है। ऐसी परिस्थितिमें एकदम आशा छोड बैठना स्वाभाविक नहीं है। इसी लिये उसको प्रसन्न करनेवाली विनययुक्त वाणी बोलते हैं। राजाके लिये यह अधिक स्वाभाविक है। मनुष्यस्वभावसे गोस्वामीजीका अधिक परिचय होनेका यह प्रमाण है। ऐसे उदाहरण हैं।

उनके अनुभवपर विचार करके हम यही कह सकते हैं कि गोस्वामीजी केवल कल्पनासे काम नहीं लेते। उनका अनुभव मर्मभेदी है। उनका निसर्गनिरीक्षण जबर्दस्त है। उनकी रचनाओंमें स्त्रीपुरुषके पारस्परिक मनोभावोंके संघर्षकी और सूक्ष्मगतियोंकी केवल कल्पना नहीं सूचित होती, प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभवकी गवाही मिलती है। उनकी कविता व्युत्पत्तिमात्र नहीं है। वास्तविक जीवन है। इसलिये यह संभव नहीं कि युवावस्थामें पारिवारिक जीवनका इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव न किया हो। जैसा कहते हैं, बहुत संभव है कि सन्तान हुई हो और नष्ट हो गयी हो। पत्नी-परित्यागके अनन्तर पतिवियोगमें वा साधारण रोगसे ही पीड़ित हो पत्नी मर गयी हो। कोई वैरागी या संन्यासी अपनी पूर्वावस्थाका वर्णन पूछनेपर तो करता नहीं, छिपाना अपना कर्त्तव्य समझता है, तो गोस्वामी-जीसे कौन आशा कर सकता है कि जो नर काव्यके इतने विरोधी होते हुए भी अपने पूर्वेतिहासकी कहीं चर्चा करेंगे।

१२—गोस्वामीजीका शील और स्वभाव

आरति बिनय दीनता मोरी, लघुता ललित सुबारि न थोरी।

गोस्वामीजी स्वभावके अत्यन्त सरल थे। दीनता भाव तो घुट्टीमें पड़ा था। बाल्यावस्थाका सत्संग साधुसेवा भिक्षावृत्ति आदिने स्वभावतः उन्हें सहनशील, विनम्र, दीन और दयनीय बना रखा था। उग्रता, क्रूरता और गर्व तो छू भी नहीं गया था। गृहस्थोंके स्वार्थका उनपर कम प्रभाव पड़ा था। वैराग्यने उन्हें काम, क्रोध, लोभ उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे अवश्य दूर रखा था, परन्तु मनुष्योचित दौर्बल्यका वह अपनेमें बराबर अनु-भव करते थे और इन विकारोंसे बचे रहनेकी बराबर चेष्टा करते थे। पहलेके निरादर फटकारकी उस समय वह याद करते हैं जब राजा महाराजा भी हाथ जोड़े उनकी सेवामें उप-

स्थित होते हैं। इसपर वह गर्वसे फूलते नहीं, वह जानते हैं कि अब रामने अपनाया है तो सब ही खुशामदें करेंगे। कहते हैं कि महाराजा मानसिंह और अब्दुर्रहीम खानखाना सरीखे उनके मित्र थे, या यों कहिये कि भक्त थे। किसीने पूछा तो आपने कहा

लहै न फूटी कौड़िहू को चाहै केहि काज
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज
घर घर मागे टूक पुनि भूपति पूजे पाय
ते तुलसी तब राम बिनु ये अब राम सहाय

अपने बड़प्पनका गर्व तो छू भी नहीं गया था। रामनाम लेनेवाले भंगी और हत्यारेको गले लगाते हैं। और लगाएं क्यों न? प्रभुने तो निषाद शबरी वानर भालु गीध सबको अपनाया था। वसिष्ठने निषादको गले लगाया था। रामनामपर गोस्वामीजीका असाधारण विश्वास जहां छूत अछूतका भेद उडा देता है वहां वर्णाश्रम धर्म्मका शास्त्रीय विचार हृदयमें ऐसा पक्का पोढ़ा है कि वह यह नहीं चाहते कि लोग अपने अपने धर्म्म और कर्त्तव्य छोड़कर औरोंके करने लग जायँ। गोस्वामीजी विद्वानों और ब्राह्मणोंके बड़े पक्षपाती हैं—

"सापत ताड़त परुष कहंता। विप्रपूज्य अस गावहिं संता"

विप्रोंका शाप, दंड, कटुवाद सब कुछ सहकर उनका आदर ही करेंगे। भगवान् स्वयं "गोद्विज हितकारी हैं।" "प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना" फिर भगवान्‌के दासानुदास गोस्वामीजी क्या प्रभुगुणानुवर्त्ती न होंगे? मतभेदके कारण उनसे काशीके ब्राह्मण घोर विरोध रखते थे। वह स्वयं अपने लिये कहते हैं "विप्र द्रोह जनु बांट पर्यो" ब्राह्मणोंसे द्रोह मानो मेरे हिस्सेमें पडा हुआ है। वह ब्राह्मण

जातिके अन्धपक्षपाती नहीं थे, नहीं तो उनसे वारबार विरोध क्यों होता ? यदि होता भी तो उनके सहज पक्षपातसे मिट जानेकी अधिक संभावना थी। एक बात और है। जहां ब्राह्मणोंके दूषणकी भी उपेक्षा करके उनका पक्षपात किया है वहां अनिवार्य्य रीतिसे "विप्र" अर्थात् विद्वान् शब्दका प्रयोग है। गोस्वामीजीका लक्ष्य है कि सब लोग स्वधर्मका ही अनुसरण करें। क्योंकि रामराज्यका यही आदर्श है। जहां परशुरामकी तरह ब्राह्मणने वर्णांतरके धर्म्मको अपनाया है वहां लक्ष्मणजी जैसे प्रतिभाशाली वर्णांतर बालकसे उन्हें नीचा दिखलवाया है। श्रीरामचन्द्रजी द्वारा व्याजसे ब्राह्मणधर्म्मका उन्हें उपदेश कराया है।

पातिव्रतपर पूरा जोर देते हुए भी रामभक्तिका अधिकारी स्त्रीपुरुष दोनोंको समान रूपसे समझते थे। यद्यपि मीराबाईको इतिहाससे उनका उपदेश देना नितान्त असंगत सिद्ध होता है, तथापि उनकी रचनासे ही यह बात सिद्ध होती है कि भक्तिके लिये वह किसी प्राणीको अनधिकारी नहीं मानते थे वरन् यदि प्यारेसे प्यारे बाधक हों तो उनका त्याग उचित समझते थे। कहते हैं—

जरउ सो सम्पति सदन सुख सुहृद मातुपितु भाइ
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ।

उनमें प्रेम हद दरजेको पहुंचा हुआ था। उनके प्रेमके पाशमें बँधकर उनके दर्शनोंको स्वयं दर्शनार्थ लोग दूर दूरसे आते थे। उनका कहना था—

"रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा"

प्रेम रामभक्तिका बीजमंत्र था। उनसे जिन जिन लोगोंसे मैत्री थी सभी प्रायः रामोपासक अथवा भक्त थे। आगरेके बनारसी दास जैनी तक उनसे मैत्रीका सम्बन्ध रखते थे। सूरदाससे

पूर्व समागम बहुत संभव है। परन्तु सूरदासजीका गोलोक-वास रामचरितमानसकी रचनाके कुछ ही बरसों पीछे हो गया होगा। गंगाराम टोडरमल आदि भी रामोपासक थे। रामाज्ञा-प्रश्न तो रामशलाकाकी रचना और उनके ज्यौतिषकी सफलताके पीछे शायद् गंगारामजीके आग्रहपर गोस्वामीजीने जल्दी जल्दी संग्रह कर दिया होगा।

गोस्वामीजी भूत प्रेत पिशाचको सिद्ध करनेके विरोधी थे, परन्तु इनके अस्तित्वका केवल विश्वास ही नहीं था, अनुभव भी था। यंत्रमंत्र टोटका और फलित ज्यौतिषको भी ठीक मानते थे। गणित ज्यौतिष और तंत्रके ज्ञानका पता विंध्येश्वरीपटलसे लगता है। उसी पुस्तकसे यह भी अनुमान करनेमें हमें संकोच नहीं होता कि तुलसीसतसई गोस्वामीजीके ही दोहोंका संग्रह है। उसमें गणित और ज्यौतिषकी जानकारी जो प्रकट होती है वह किसी अन्य तुलसीकविकी नहीं है। जोशी गंगारामके लिये रामाज्ञा प्रश्नकी रचनासे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि गोस्वामीजी प्रश्नोंकी जगह और ज्यौतिषकी उन विधियोंकी जगह जिनमे रामचर्चा न थी, रामचरितवाला रामाज्ञा प्रश्न रखकर सांसारिक धंधोंमें फँसे प्राणियोंको भी रामभक्तिकी ओर प्रवृत्त करते हैं।

गोस्वामीजीमें सब लोगोंको एक करनेकी बड़ी दृढ़ प्रवृत्ति है। इसके प्रयत्नमे उनके ही अनेक विरोधी पैदा हो जाने स्वाभाविक है। गोस्वामीजीके विरोधियोंकी संख्या काशीजीमें ही अधिक है और वहीं यह अपना जीवन बिताते हैं। काशीजी मतैक्य प्रतिपादनका सदासे अनुपम क्षेत्र चला आया है क्योंकि यहां भारतभरके प्रतिनिधिरूप सभी देश और सम्प्रदायके लोग सदासे रहते चले आये हैं। इसीलिये यह गोस्वामीजीके जीवन-के कार्य्यका क्षेत्र है। यहां इन्हें एकसे बढ़कर एक खलसे वास्ता पड़ता है और यह ज्यों त्यों निबाहते हैं। खलोंके साथ

व्यवहार तो यह रखते ही नहीं, परन्तु जहां प्रसंगवश कोई संबन्ध हुआ भी तो यह दबे नहीं, झुके नहीं, अपने स्वभाव और कर्त्तव्यपर स्थिर रहे।

खलोंको सुधारनेके सम्बन्धमें एक कथा हमने अपनी बाल्यावस्थामें सुनी थी*। एक बार गोस्वामीजी जाड़ोंमें आधी रातको कहींसे लौटे आ रहे थे। राहमें चोरोंका एक दल मिल गया। अँधेरेमें इनका आहट पाकर एकने पूछा "तू कौन है?" यह बोले "भाई, जो तुम सो मैं।" कहा "अकेला ही है?" बोले, "हां"। पूछा "तो नये नये निकले जान पड़ते हो। अच्छा! चाहो तो हमारे साथ हो लो।" गोस्वामीजी साथ हो लिये। इन्हें पहरेपर रख सेंध लगायी। जब चोरी करने अन्दर गये तब इन्होंने झोलीमेंसे शंख निकाला और बजाया। चोर भाग खड़े हुए तो यह भी उनके साथ हो भागे। दूसरी जगह वह घरमें पैठे और पहलेकी तरह इन्हें पहरेपर रखा। फिर शंख बजा और जाग और भगदड़ हुई। इसबार किसी चोरने गोस्वामीजीको शंख बजाते देख लिया था। जब एकान्तमें सब एकत्र हुए तो उसने नये चोरपर अपना सन्देह प्रकट किया। गोस्वामीजीने स्वीकार कर लिया कि "शंख मैंने ही बजाया था। तुमने मुझे पहरेपर रखा था कि कोई जोखिम देखना तो तुरन्त बताना। मैंने बहुत जोखिम देखकर ही दोनोंबार शंख बजाया। मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र तुमको चोरी करते देख रहे हैं दंड अवश्य मिलेगा। सो मैंने अपनी झोलीसे तुमको चेतावनी देनेको शंख निकालकर बजा दिया।" गोस्वामीजीकी बातें सुनकर चोर उन्हें पहचान गये और उनके चरणोंपर गिरे चोरी छोड़ दी और उनके शिष्य हो गये।

---

* यह कथा स्वर्गीय पितृचरणोंसे प्राप्त हुई थी। उन्होंने शायद पं० मन्दन पाठकसे सुना था। मैंने कहीं किसी जीवनीमें इसका उल्लेख नहीं देखा। ले०

खलोंकी वन्दना जो रामचरितमानसमें है उससे अच्छी व्याजनिन्दा क्या होगी। साहित्यदर्पणके अनुसार महाकाव्यमे आरम्भमें खलोंकी निन्दा भी होती है। रामचरितमानसमें महाकाव्यकी प्रायः सभी शर्तें पूरी की गयी हैं। उनमें खलोंकी व्याजनिन्दा अपूर्व है। अपनेको अत्यन्त अयोग्य ठहराते हुए भी गोस्वामीजी खलोंको कौआ और बगला और मेंढक ठहराते हैं और अपनेको उनके मुकाबले कोयल और हंस ही बताते हैं। नम्रताकी भी एक हद होनी है। विनयका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य नीचोंके मुकाबलेमें भी अपनेको झूठमूठ नीच बना दे और सराहनासे भी यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य झूठी प्रशंसा करके अपने प्रशंसाके पात्रको इतने ऊंचे उठा दे जितने ऊंचे उठना उसकी शक्तिके नितान्त बाहर हो। गोस्वामीजी ऐसी झूठी प्रशंसा या झूठे विनयके आदी नहीं हैं।

नाभाजीके यहांके भण्डारेमें उन्होंने विनयकी हद कर दी और अपनी नम्रता और शीलकी बदौलत सचमुच भक्तमालके सुमेरु हो गये। परन्तु जहां अत्याचारी कण्ठी जनेऊपर हाथ लगाने आता है, वहां डांटते हैं और अपने तेज और तपोबलका, अपनी शक्ति और प्रभावका पूरा प्रयोग करते हैं। गोस्वामीजीको मारुतिका बड़ा भरोसा है। उनके और भगवानके बलपर वह सदा अभय विचरते हैं, किसीकी शत्रुताकी परवाह नहीं करते।

"जो पै कृपा रघुपति कृपालुकी बैर औरके कहा सरै।"
होय न बांको बार भगतको जो कोउ कोटि उपाय करै
तकै नीचु जो मीचु साधुकी सो पामर तेहि मीचु मरै
वेद बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगतिपथ पॉउ धरै

धैर्य्यवान् गोस्वामीजीका धैर्य्य भी अत्यन्त पीड़ामें छूट जाता है, वह सब देवताओंकी भी दोहाई देते हैं, सबको मनाते हैं, पर काम आते हैं हनुमान्‌जी ही। उनकी ही कृपासे पीड़ा मिटती है। मनोविकार जब कभी सताते हैं,, कलियुग जब कभी आंखें दिखाता है मारुतिकी दोहाई दी जाती है और हनुमानजी तुरन्त सहायक होते हैं। काम क्रोध लोभ मद मत्सर सभी विनय और प्रार्थनाके बलसे नीचा देखते हैं। सच्चे साधकका, आदर्श साधुका, यह अनुपम जीवन है। गोस्वामीजीने संतोंके लक्षण अनेक स्थलोंमें कहे हैं। विचार करनेसे उनका आरोप पूर्णरूपसे नहीं तो मनुष्योचित अनिवार्य्य दुर्बलताओंके साथ साथ स्वयं गोस्वामीजीमे होता है। गोस्वामीजी आदर्श महात्मा हैं, व्युत्पन्न अनुभवी और प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि हैं और "सीय राम मय" सारे विश्वको मानने-वाले रामके अनन्य भक्त हैं और अपने समयके युगान्तर उत्पन्न करनेवाले सुधारक और एकताप्रवर्त्तक हैं।

१३-गोस्वामीजीकी रचनाएं

कीरति भनित भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कहँ हित होई

अपने नब्बे बरससे अधिकके दीर्घ जीवनमें यदि गोस्वामी-जीने केवल रामचरितमानस और विनयपत्रिका लिखी होती तो भी उनका यश हिन्दी और हिन्दूके जीवनभर अजर और अमर होता। अपने प्रभु चराचरस्वामीके गुणगानको छोड़ उन्होंने अपनी वाणीका अन्यत्र कहीं दुरुपयोग नहीं किया।

भगत हेतु निज भवन बिहाई
सुमिरत सारद आवत धाई
रामचरितसर बिनु अन्हवाये
सो स्रम जाइ न कोटि उपाये

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना
हृदय सिंधु मति सीप समाना
स्वाती सारद कहहिं सुजाना
जो बरषइ बर बारि बिचारू
होहिं कबित मुकुता मनि चारू
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग

कविकी प्रतिभा बहुधा बाल्यावस्थासे ही चमकती है। साधुके सत्संगमें, रामकी चर्चामें, सत्‌शास्त्रोंके अध्ययनमें बाल्यकाल बितानेवाला बालक गुरुकी सेवामें रहते ही रहते कविताका प्रेमी हुए विना नहीं रह सकता। गोस्वामीजीने बाल्यावस्थामें ही हनुमानचालीसा जैसी छोटी स्तुतिकी कविता अवश्य लिखी होगी। **हनुमानचालीसामें** होनहार कविकी रचना की मधुरता, शब्दयोजना और अलंकार सराहनीय है। रामचरितमानसकी अनमोल चौपाइयोंका पूर्वरूप यहां झलकता है। संभव है कि **संकटमोचनका** मूल रूप भी [जिसके कई रूप देखे गये हैं] इसी कालमें रचा गया हो। **विंध्येश्वरी** पटलसे जवानीका पता लगता है। गुरुने अवश्य ही कुछ ज्यौतिषकी भी शिक्षा दी थी। मानसमें भी अनेक स्थलोंमें ज्यौतिषकी उपमा साक्षी है।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी रचनाके पहले किसी काव्यग्रंथकी रचनामें हाथ नहीं लगाया था। पहलेकी कविताएँ प्रायः फुटकर होंगी। इन्हीं फुटकर चीजोंके नाम दे देकर, संभव कि स्वयं कविने या उनके शिष्योंने एकाधके नाम ग्रंथ स्थिर करके दे दिये हों। रामचरितमानसकी रचनाके पीछे भी फुटकर

कविताकी रचना होती रही है और इसी प्रकार प्रायः नामकरण भी होते रहे हैं। ग्रंथके रूपमें स्वयं ग्रन्थकारने मेरी रायमें रामचरितमानस, रामगीतावली, विनयपत्रिका, जानकीमंगल, पार्वतीमगल और रामलला नहछू, यही छः ग्रंथ लिखे हैं। रामगीतावली तो भजनोंमें रामकथा गानेके लिये रची गयी। जानकी-मंगल, पार्वतीमगल और रामलला नहछू स्पष्टतः इसलिये लिखे गये कि व्याह आदिके समय गाये जायँ।' रामचरितमानस यदि "स्वान्त' सुखाय" "मोरे हिय प्रबोध जेहि होई" लिखा गया है, तो विनयपत्रिकाका उद्देश्य नामसे ही स्पष्ट है। दोहावली, सतसई, कवित्तरामायण, रामाज्ञा, वैराग्यसदीपिनी, कृष्ण-गीतावली, बरवैरामायण और हनुमानबाहुक, यह भिन्न भिन्न समयोपरको लिखी स्फुट कविताओंका शायद स्वयं ग्रंथकारने संग्रह किया या कराया होगा। रामशलाका एक विशेष अवसर-पर खीची हुई प्रश्नशलाका होगी। उसे ग्रन्थोंमें गिनाना भूल है। हमने विविध शलाकाए जो छपी देखी हैं वह लोगोंकी अपनी गढ़ंत हो सकती हैं। ज्योतिषी गंगारामकी प्राण रक्षिकाशलाका उनमेंसे कौन है, या उनमेंसे कोई है या नहीं, यह निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हू।

ऊपर जिन सत्रह ग्रंथोंकी चर्चा हुई है उनके अतिरिक्त नीचे लिखे ग्रंथ और भी उनके लिखे बताये जाते हैं।

(१) छन्दावलीरामायण, २) छप्पयरामायण, (३) कड़खा-रामायण, (४) रोलारामायण, (५) झूलनारामायण, (६) कुंड-लियारामायण, (७) कलिधर्मनिरूपण, (८) रामलता, (६) नामकला कोषमणि, (१०) मंगलावली, (११) मंगलरामायण, (१२) गीताभाष्य, (१३) ज्ञानकोप परिकरण, (१४) राममुक्ता-वली और (१५) ज्ञानदीपिका।

इन पंद्रह ग्रंथोंमेंसे अनेकके लिये यह संभव है कि तुलसी नामधारी अन्य कवियोंके हों, और कुछके लिये अधिक संभावना

यह है कि तुलसी नामधारी दो या अधिक कवियोंकी रचनाएं संग्रहकर्त्ताओंके प्रमादसे मिलजुल गयी हों, इनमेंसे एक गोस्वामीजी भी हों। पच्छाहीं भीख मांगनेवालियां "तुलसीदास भजो भगवानै" वाले भजन गाती हैं और राधास्वामी पंथवाले तुलसी साहबके शब्द और भजन सुरत शब्द और योगकी क्रियाओंके सम्बन्धमें जो कहते हैं उनकी शैली निराली और विषय निराला है। वह कोई और ही साधु "तुलसी"की चीजें हैं।

१४—गोस्वामीजीकी लिपि

"संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार"

गोस्वामीजीको साकेतवासी हुए तीनसौ बरस हो गये तो भी उनके हाथकी लिखी पुरानी पोथियां मिल जानी चाहियें। कहते हैं कि मलीहाबादमें जो ग्रन्थ एक सज्जनके पास है गोस्वामीजीके हाथकी ही लिपि है, परन्तु जिनके पास वह पोथी है वह उसकी पूजा इतनी श्रद्धासे करते हैं कि उसे सूर्यके प्रकाशसे भी बचाते हैं। सभाने बड़े व्यय और परिश्रमसे प्राचीन प्रतियोंकी खोज करायी, परन्तु सिवा राजापुरवालीके और कोई प्रति गोस्वामीजीके हाथकी लिखी नहीं मिल सकी। राजापुरवाली पोथीके पक्षमें भी कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि गोस्वामीजीके हाथकी लिखी निश्चय ही है। संवत् १६६९ के लिखे पंचनामेके सिवा वस्तुतः कोई लिपि उनके हाथकी लिखी और प्रामाणिक किसीको अबतक उपलब्ध नहीं हुई है। पंचनामेमें भी आरंभकी छः पंक्तियां ही उनके करकमलकी लिखी जान पड़ती हैं। हमारी समझमें यह छः पंक्तियां ही अवश्य प्रामाणिक मानी जानी चाहियें। इसे ही ठीक समझकर हम उनकी लिपिके सम्बन्धमें यहां अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

काशीके सरकारी सरस्वती-भवनमें तुलसीदासजीके हाथकी लिखी वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डकी एक प्रति



गोस्वामी तुलसीदास लिखित वाल्मीकीय उत्तरकांड ।

(तु० च० च० पृ० ५१ के सामने ।

मौजूद है। इस पोथीकी लिखावट वड़ी सुन्दर है। आदिसे अन्त-तक अक्षरमाला एक ही सांचेमें ढली हुई जान पड़ती है। अन्तमे एक भिन्न कलम और स्याहीसे लिखी हुई प्रशस्ति शार्दूलविक्री-ड़ित छन्दमें है। निस्सन्देह यह चार चरण पीछेसे लिखे गये हैं। समस्त ग्रन्थसे इनके "श्र" "भ" "ज" "व" "क्ष" भिन्न हैं। यह चार पद उसी लेखकके नही जान पडते जिसकी लिखी सारी पोथी है। इस प्रशस्तिमे संदिग्ध अंशके होते हुए भी यह स्पष्ट हो जाता है कि "दत्तात्रेय नामक किसी एदिलशाहके दाना-ध्यक्षने यह पोथी लिखी है।" तमाशेकी बात यह है कि इन चार चरणोंके ऊपर ही, जिस कलमसे, जैसे साचेके ढले अक्षरोंमें सारी पोथी लिखी है, उसी कलमसे, वैसे ही साचेके अक्षरोंमें लिखा है—

"समाप्तं चेदं महाकाव्य श्रीरामायणमिति ॥ संवत् १६४१ समये मार्ग सुदी ७ रवौ लि० तुलसीदासेन ॥"

स्पष्ट है कि "तुलसीदासने संवत् १६४१ की अगहन सुदी सप्तमी, रविवारको (पोथी) लिखी।" पोथीके तुलसीदास नामक किसी व्यक्तिकी लिखी होनेमें रत्तीभर सन्देह नहीं है। परन्तु नीचेकी प्रशस्ति दत्तात्रेय नामके दानाध्यक्षकी लिखी बताती है। यह क्या बात है? एक ही पोथी दो व्यक्तियोंकी लिखी तो हो नही सकती, क्योंकि लिखावट बिल्कुल एक सी है। दत्तात्रेय दानाध्यक्षका ही वैष्णव नाम तुलसीदास रहा हो, यह असभव कल्पना नहीं है, परन्तु प्रशस्ति-का लेखक अवश्य ही पोथीके लेखकसे भिन्न है। तो क्या प्रशस्तिका लेखक तुलसीदासोपनामक दत्तात्रेय दानाध्यक्षका कोई अनुचर था? तभी तो उसने दत्तात्रेयकी प्रशंसा लिखी है? परन्तु यदि दत्तात्रेयका उपनाम तुलसीदास होता तो स्वयं पोथी-के लिखनेवालेने "लि०दत्तात्रेयोपाह्व तुलसीदासेन" लिख दिया होता? इतनेसे काम चल सकता था! फिर जहां "दानादि भाजि प्रभुः" आदि कई विशेषण लगाये वहा उसके वैष्णव और तुलसी-

दासोपनामक होनेकी चर्चा करनेमे क्या कठिनाई थी ? अतः तुलसीदास नामक लेखकके दत्तात्रेयोपाह्व होनेमें सन्देह अधिक है। ऐसी दशामे कल्पना समीचीन नहीं जान पड़ती कि दत्तात्रेय ही लेखक है जिसका वैष्णव नाम तुलसीदास था। संभव है कि यह पोथी एदिलशाह के दानाध्यक्ष दत्तात्रेयके अधिकारमें जब आयी तब उसके किसी खुशामदीने पोथीके लेखक होनेका श्रेय दत्तात्रेयको देनेके लिये यह प्रशस्ति रचकर अन्तमें लिख दी। काशीमे इसका लिखा जाना प्रशस्ति भी मानती है। दत्तात्रेय काशीमें ही रहते होंगे। उनके पास इस काशीकी ही लिखी पोथीका आ जाना,—वह धनाढ्य थे, दानाध्यक्ष थे—कोई आश्चर्यकी बात न थी। यह भी कोई असंभव कल्पना नहीं है कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजीने यह पोथी किसी उदारचेता दत्तात्रेय नामक रामायण-भक्तको लिखनेके कुछ काल पीछे दी हो और उसको ऐसी पोथी लिखकर देनेकी पहलेसे ही प्रतिज्ञा करके लिखी हो और देते समय यह प्रशस्ति रचकर स्वयं लिख दी हो। जल्दीसे लिखने और बहुत काल पीछे भिन्न परिस्थितिमें लिखनेके कारण संभव है कि लिखावटमें अन्तर आ गया हो। परन्तु फिर "दत्तात्रेय समाह्वयः" प्रथमा क्यों ? चतुर्थी क्यों नहीं ? शायद इसलिये कि दत्तात्रेय दानाध्यक्षकी प्रेरणासे तुलसीदासजीने लिखी थी। संभव है दत्तात्रेयने लिखाई दक्षिणा भी दी हो। जो हो, जिस किसीकी प्रेरणासे पोथी लिखी गयी उसीकी कृति, समझी जानी चाहिये, इसी दृष्टिसे शायद प्रथमा विभक्तिका प्रयोग हुआ है। अथवा यह कल्पना हो सकती है कि दत्तात्रेय-वाली प्रशस्ति सर्वथा जाली है। ऐसी सुलिखित पोथीकी लेखकता हड़पनेके लिये दानाध्यक्षजीकी कार्रवाई है।

गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानसमे लिखते हैं—

"संवत सोरह सै इकतीसा
करउँ कथा हरिपद धरि सीसा

समझमें उससे भिन्न ठहरी। इसपर अपनी पूर्ण धारणाके अनुसार सन्देह हुआ कि यह वाल्मीकीय रामायण ही मानसकारके हाथकी लिखी न होगी। राजापुरवालीहीपर सन्देह क्यों करूं? राजापुरवाली पोथीके कुछ पन्नोंकी फोटोसे मिलान किया। दोनोंकी लिपियोंमें फिर अन्तर पाया।

मैंने स्वयं जाकर राजापुरवाली पोथी देखी। प्रायः सब बातें वैसे ही पायीं जैसी पहलेके देखनेवालोंने लिखी थीं। अन्तके पन्नेपर एक ही ओर लिखा है। इति नहीं लगी है। दूसरी ओर कहा जाता है कि सादा है। ऐसा ही प्रकाशमें देखनेसे भी अनुमान होता है, क्योंकि अब उस पन्नेकी रक्षाके लिये उसपर एक मोटा कागज चिपकाया हुआ है। पंडित रामगुलामने जब देखा था कहा जाता है कि तब कागज चिपकाया न था। पं०रामगुलामजीने दूसरी ओर सादा ही पाया था। अनुमान यह किया जाता है कि जब स्वयं ग्रंथकारने लिखा था, तो उसे इतिके उपरान्त अपने लेखक होनेका निर्देश करनेकी आवश्यकता क्या थी? तुलसीदासजी सिवा अपनी छाप कवितामें देनेके अन्तमें यह क्यों लिखते कि इसको लिखा भी मैंने ही है? अपनी रचनाके अन्तमें "बकलम खुद" लिखने या "सही" करनेका तो कभी न रवाज था और न है। अतः यदि अन्तमें किसी लेखकका नाम नहीं लिखा है तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पोथी शायद स्वयं ग्रंथकारकी लिखी होगी। या, किसी औरने लिखा पर समाप्त न कर पाया। समाप्त करनेपर ही तो नाम लिखता। यह युक्ति राजापुरवालीपर ठीक बैठती है। क्या आश्चर्य है कि लेखक इतिवाला अंश लिखकर अपना नाम देता। परन्तु किसी अनिवार्य कारणसे उस अंशके लिखनेकी नौबत ही न आयी। ऐसा रसातलमें रसाका संशोधन "राजु" करना यह लेखकके लेख-प्रमादपर होना भी असंभव नहीं है। ... बड़ी बात जो उस पोथीके ग्रंथकारके हाथकी लिखी

[illegible]मस्यापारं यः पठेत्पापान्यपि सदा कुर्वंस्तत्पापेन न लिप्यते॥ अयोध्या नगरी रम्या [illegible]
[illegible]राजा नेति वेश्मसु पालिष्यतो इदमाख्यमाख्यानं [illegible] कृतवान्भार्गवो धीमान्
[illegible]पवेदे कं च श्लोकं वा सर्वपापात्प्रमुच्यते सर्व[illegible] [illegible]लोकं स गच्छति यः सदा॥
[illegible]सर्वविद्यो[illegible] द्विजा कृतवान्स्वर्गतो धीसा[illegible]॥ ॥[illegible]॥
[illegible]॥ ॥[illegible]॥ ॥[illegible]॥
[illegible]महाकाव्यं श्रीरामायणाभि॥ ॥संवत् १६४१ समये माघ सुदि ७ बुध॥ [illegible]तुलसीदास[illegible]॥
श्रीमद्दिल्लेशाह[illegible]
[illegible]लिपिकृतं [illegible]॥

गोस्वामी तुलसीदास लिखित वाल्मीकीय उत्तरकांड।

(तु० च० च० पृ० ५५ के सामने।)

होनेका समर्थक है, वह परम्परा है जो कहती आयी है कि राजापुरवाली पोथी अवश्य ही गोस्वामीजीकी लिखी है। राजापुरके गोस्वामीजीके स्थान, बल्कि जन्मस्थान होनेकी परम्परा भी इससे कम मूल्यकी नहीं है।

कुछ भावुक भक्तोंका यह कहना है कि अयोध्याकाण्डकी इति स्वयं गोस्वामीजीने नहीं लगायी, क्योंकि भरत चरित अपार है उसकी इति नहीं है। यहांके बदले अरण्यकाण्डमें आठवें दोहेपर फलस्तुति दी है और वहीं अयोध्याकाण्डकी समाप्ति है। यह युक्ति इसलिये निराधार दीखती है कि अयोध्याकाण्डके अन्तमें फलस्तुति मौजूद है और उसका अन्त वहीं न होता तो विधिपूर्वक श्लोक देकर अरण्यकाण्डका आरंभ न करते और

"पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई"

न कहते।

अब हमारे सामने गोस्वामीजीके हाथकी लिखी कही जानेवाली दो पोथियां हैं, एक संस्कृतकी दूसरी हिन्दीकी। संस्कृतवालीमें अन्तमें "लिखितं तुलसीदासेन" है और संवत् १६४१ का समय दिया है। दूसरी राजापुरवालीमें इति नहीं है, लेखकका नाम नहीं है, समय भी नहीं दिया गया है, परन्तु परम्परागत कथा है कि ग्रंथकारकी ही लिखी है। तीसरी चीज गोस्वामीजीके हाथकी संवत् १६६९ की लिखी पंचनामेकी पांच पंक्तियां हैं, जिसमें गोस्वामीजीके जाब्तेके दस्तखत तो नहीं हैं परन्तु उनके लेखमें उनकी छाप मौजूद है। यह पंचनामा ही एक तीसरी चीज है जिससे हम कुछ निर्णयको पहुँच सकते हैं। इसीको पंच मान सकते हैं।

समानताकी बातोंपर पहले विचार कीजिये। दोनों नागरी अक्षरोंमें लिखी पोथियां हैं। दोनों प्रायः ऐसे कालकी लिखी हैं कि लिपिमें विशेष अन्तरकी संभावना भी नहीं है। नागराक्षरोंमें अच्छे लिखनेवाले जब लिखते हैं तब न, ग, म, स आदि कई अक्षर

ऐसे हैं कि सभी सुलेखकोंके प्रायः समान ही होते हैं, कलम और स्याहीका भेद भले ही प्रतीत हो पर बनावटके भेद इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण परीक्षणसे पता नहीं लगता। निदान दोनों पोथियोंकी लिखावटमें क, ग, ट, ठ, प, फ, म, ल, ष, ह, यह दस अक्षर प्रायः समान हैं। भाषाभेद होनेके कारण राजापुर-वालीमे ऋ, ख, ङ, ञ, ण, श, इन छः अक्षरोंका, एवं क्ष, ज्ञ, श्र, श्य, आदि संयुक्ताक्षरोंका अभाव है।

इस तरह दोनोंमें चालीस समान अक्षरोंमें दसकी लिखा-वटमें कोई विशेष भेद देखनेमे नहीं आता। शेष तीसकी लिखावटमे इतना भेद है कि विचारशील पाठक स्वयं देख सकते हैं। कुछ उदाहरण यहां हम देते हैं।

(१,२,६-११,) अ—दोनोमे कुछ भिन्न है। काशीवाली प्रतिमें खड़ी रेखाके निम्नांशमें हल् सा पाया जाता है।

(३-४)इ—राजापुरवालीमे आजकलकी सी है। राजापुरवालीमें ऊपरी एक तिहाई रेखाका अभाव है।

(५-६)उ—दोनोंके "उ" का अन्तर देखनेसे प्रतीत हो जाता है।

(७-८) ए—देखनेसे अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(१३) ख—राजापुरवालीमे "ख" की जगह "ष" का प्रयोग है। इसके सम्बन्धमे यह कहा जा सकता है कि हिन्दीकी लिपिके तत्कालीन नियमके अनुसार "ख" की जगह "ष" ग्रन्थकार लिख सकता है।

(१५) घ—राजापुरकी पोथीमें यह अक्षर एक ही रूपमें दीखता है। काशीवालीमें इसके दो रूप व्यवहारमें आये हैं।

(१६) च—राजापुरवाली पोथीमें "च" की प्रधान ऊपरी रेखा स्पष्ट है। काशीवालीमें स्पष्ट नहीं है।

(१७) छ—दोनोंमें स्पष्ट भिन्नता है। पाठक मिला लें।

८) ज—"ज" की वक्र रेखा पडी रेखासे स्पष्ट नोक बनाती हुई काशीवाली प्रतिमें मिलती है। राजापुरवालीमें

राजापुरका अयोध्याकांड।

(तुलसी-चरित-चन्द्रिका पृष्ठ ५७ के सामने)

नोक नहीं वनाती। नोककी जगह भी वक्र रेखा ही है। पचनामेमें दोनो रूप हैं।

(२८) द—इस अक्षरमें सूक्ष्म भेद है, जो देखनेसे स्पष्ट हो जाता है। राजापुरवाली पोथीका "द" अधिक सुन्दर है। पचनामेका काशीवालीके अधिक अनुरूप है।

(३३) व—राजापुर और काशी दोनोंमें वसे ही बका काम लिया गया है। काशीवालीमे ब और व दोनोंका काम "व" से लिया गया है। राजापुरवालीके वके नीचे बिन्दी है। पचनामेमें ब और वमें काशीवाली प्रतिकी तरह कोई अन्तर नही। बिन्दीका अभाव है।

(३४) भ—काशीवालीमें यही अक्षर दो तरहसे लिखा गया है। राजापुरवालीमें केवल एक ही प्रकारका है। भेद उसमें भी स्पष्ट है। काशीका भ अधिक सुन्दर है। पंचनामेका भ राजापुरवालेकी तरह हैं।

(३६) य—राजापुरवाली प्रतिमे "य" के तले बिन्दी है। काशीवालीमें बिन्दीका अभाव है। पंचनामेका य काशी की प्रतिके अनुरूप है। कहीं बिन्दी है। कही नहीं है।

(३७) र—इस अक्षरमें तो दोनों प्रतियोंमें इतना बडा अन्तर है कि यदि केवल इसका ही भेद होता और शेष अक्षरोंमें पूरी समानता होती तो भी मानना पडता कि दोनों पोथिया भिन्न व्यक्तियोंकी लिखी हुई हैं। "राम" शब्दका दोनोंमें पाठक मिलान कर लें। परन्तु पंचनामेमें दोनों रूप पाये जाते हैं।

(४०) स—राजापुरवालीमें बरावर लम्बोत्तर पाया जाता है। काशीवालीमें यह बात नहीं है। पंचनामेमें लम्बोत्तर है।

एक ही व्यक्तिकी लिखावटमें काल पाकर कुछ अन्तर पडता है। मैं यह भी मानता हूँ। इस युक्तिको लेकर कोई यह भी कह

सकता है कि संभव है कि काशी और राजापुरकी पोथियोंके लिखनेमें कालका बहुत अन्तर पड़ गया है। इसपर भी हमें विचार कर लेना उचित है। राजापुरवाली पोथीमें लिखनेकी तिथि नहीं दी गयी है। संवत् नहीं मालूम, इसलिये संवत् १६३१से लेकर संवत् १६८०तकके बीचकी लिखी अवश्य होगी, यदि वह पोथी गोस्वामीजीने लिखी है। लिखावटमें अन्तर आनेके लिये उनचास बरस बहुत होते हैं। काशीवाली प्रति रामचरित-मानस आरंभ करनेके दस ही बरस पीछे लिखी गयी। यदि हम मान लें कि राजापुरवाली संवत् १६३१ में लिखी गयी—क्योंकि इससे पहले लिखा जाना संभव न था—तो दस बरसमें गोस्वामीजीकी लिखावट अधिक सुन्दर और गठित हो सकती है। परन्तु इ द आदि कई अक्षर राजापुरवालीमें अधिक सुन्दर हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि दस बरस पीछे अक्षर भद्दे हो जायँ। सब अंगोंपर और अक्षरोंपर विचार करनेसे काशीवाली लिपि देखनेमें निस्सन्देह अधिक सुन्दर जँचती है। पर अलग अलग अक्षरोंपर विचार करनेसे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि काशीवाली लिपि राजापुरवाली लिपिका विकास हो। अब मान लीजिये कि राजापुरवाली पोथी ग्रन्थकारकी ही लिखी है, परन्तु काशीवाली प्रतिसे दस बीस बरस पीछेकी है। तो भी यही कठिनाई पड़ती है कि काशीवाली प्रतिके ज,अ आदि कई अक्षर अधिक सुन्दर हैं। इनका विकास राजापुरवालीमें नहीं दीखता। सब बातोंपर विचार करके जब लिखावटके सौन्दर्यमें काशीवाली प्रति अच्छी जँचती है तो दस बीस बरस पीछे जिस सौन्दर्य्य-विकासकी आशा एक ही सुलेखककी लिपिमें की जा सकती है, उसका तो अभाव ही दीखता है। अतः यह मान लेना मेरी समझसे प्रायः अयुक्त है कि दोनों पोथियां एक ही व्यक्तिकी लिखी हुई हैं।*

* राजापुरवाली पोथीमें मापेचके लिखनेवाली कथाका होना भी

यह युक्ति भी पेश की जा सकती है कि गोस्वामीजीने राजापुरवाली पोथी किसी धनवान्के लिये न लिखी होगी। काशीवाली प्रति शायद उन्होंने दत्तात्रेय नामक धनसम्पन्न राजाके दानाध्यक्षके लिये लिखी थी। अतः अधिक सावधानी और मनोयोगसे लिखी होगी। परन्तु इस युक्तिके लिये गोस्वामीजी जैसे निःस्पृह, निरपेक्ष त्यागीके जीवनमें स्थान नही हो सकता। यह बात प्रसिद्ध है कि वह भगवद्भक्तोंको मानते थे, भक्तोंसे प्रसन्न होकर प्रसादरूप अपनी पोथी दे डालते थे। परन्तु विशुद्ध प्रेमसे लिखी हुई चीज जितनी सुन्दर हो सकती है, उतनी यश, वा धनके लोभसे लिखी हुई नहीं हो सकती। तुलसीदासजी प्रकांड विद्वान् थे, महाकवि थे, पंडित थे, परन्तु संस्कृत व्याकरणके भारी विद्वान् नही थे। यह बात उनके मंगलाचरणोंसे स्पष्ट हो जाती है। यही बात काशीवाली प्रतिसे भी प्रकट होती है। साधारण लेखक जो पोथियोंके लिखनेका पेशा करते थे, वह भी अपना नाम और तिथि लिखा करते थे, परन्तु वह नकल करनेमें 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' वाली कहावतका जैसे पालन करते

संदेहका कारण है। यह कथा बिल्कुल बिना प्रसंग प्रक्षिप्त है। इतना अप्रासंगिक वर्णन मानसकार जैसे कविसे होना असंभव है। एक युक्ति हम मानते हैं, कि गोस्वामीजीने अपने जीवनकालमें ही रामचरितमानसके पाठमें अनेक बार फेरफार किया होगा। क्षेपकोंका उन्हींके कलमसे बढ़ाया जाना नितान्त असंभव नहीं है। परन्तु आजकल जितने क्षेपक देखे जाते हैं उनकी रचना स्वयं कहे देती है कि हम गोस्वामीजीके नहीं हैं। तापसवाले क्षेपकमें एक तो रचना मूल मानसके टक्करकी है, दूसरे इस ढंगसे मिलायी गयी है कि आठ अर्धालियोंकी संख्या दो दोहोंके बीच बनी रहे। इस युक्तिसे भी यह तो निश्चय ही ठहरा कि तापसवाला अंश क्षेपक है और अप्रासंगिक है। परन्तु उसकी आवश्यकता दरसानेको जितने प्रयोजन बताये जाते हैं, एक भी पुष्ट नहीं है। इन कारणोंसे राजापुरवाली पोथीपर हमारा संदेह और भी दृढ़ हो जाता है।

थे वैसे ही व्याकरणसे प्रायः इतने अनभिज्ञ होते थे कि अपने नाम तिथि आदि भी शुद्ध नहीं लिख सकते थे। काशीवाली प्रति स्पष्ट ही किसी पेशेवर लेखककी लिखी नहीं है।

गोस्वामीजी राम-कथाके इतने अनुरागी थे कि उनके जीवनके प्रत्येक क्षण इसीमे बीतते थे। उनकी तो धारणा थी कि—

कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना

उन्होंने अपने रामभक्त मित्र टोडरमलको छोड़ और किसीके लिये कभी कोई रचना नही की। इसलिये मुझे यह विश्वास नहीं होता कि दत्तात्रेयवाली प्रशस्ति उन्होंने लिखी होगी। परन्तु उनको उस रामायणके लेखक होनेमें कोई असंगति नहीं दीखती। उन्होंने तो वाल्मीकिक वन्दना की है—

बन्दउँ मुनिपद कंजु रामायन जिन निरमयेउ
सखर सुकोमल मंजु दोषरहित दूषनसहित

आरंभमें "यद्रामायणे निगदितं"में इसी रामायणका हवाला है, यद्यपि रामचरितमानस, नानापुराण निगमागम सम्मत है और "क्वचिदन्यतोपि" इसका मूल है। गोस्वामीजीने जितनी कविता की है सभी रामभक्तिपरक। इन बातोंपर ध्यान रखकर जब हम देखते हैं कि संवत् १६४१ में काशीजीमे बैठकर किसी विद्वान् संस्कृतज्ञ "तुलसीदास" ने वाल्मीकीय रामायणकी सुन्दर प्रतिलिपि की, हमें यह कहनेमें कोई विशेष युक्ति नहीं दीखती कि यह तुलसीदास कोई और थे जो गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे, जब कि किसी अन्य सुलेखक और विद्वान् समकालीन काशीवासी तुलसीदासकी कहीं कभी चर्चा भी सुननेमें नहीं आयी। सुतरां, यह न माननेका कोई सुदृढ़ कारण नहीं दीखता कि काशीवाली वाल्मीकीय

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखित मंगलाचरण पंचनामेंपर।

(तु० च० च० पृ० ६१ के सामने।)

उत्तर काण्डकी यह प्रति प्रातःस्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदासकी ही लिखी है। साथ ही, राजापुरवाली प्रतिके तुलसीदासजीके हाथकी लिखी होनेमें अवश्य ही सन्देहके लिये बहुत जगह रहती है।

तुलसी सुधाकरकी भूमिकामे स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदीने अपनी यह धारणा प्रकट की है कि तुलसी-सतसई किसी तुलसी नामक अन्य कविकी रचना है, जो शायद कायस्थ था और जो गणित और ज्यौतिषके विषयका अधिक अनुरागी था। यह धारणा सुधाकरजीकी ही है। सर्वसम्मत नहीं है। * सुधाकरजी भी इस दूसरे तुलसीकी कल्पना काशी-जीमें नहीं करते। उनके मतमे भी सतसईकार तुलसी कही पश्चिमीय प्रान्तके थे। इसलिये काशीके सरस्वतीभवनवाली पोथीके लेखक कोई पश्चिम प्रान्त-निवासी दूसरे तुलसीदास थे, यह भी कष्ट कल्पना होगी। हम तो तुलसी सतसईके दोहों-का रचयिता मानसकार गोस्वामीजीको ही मानते हैं।

पंचनामेकी लिखावट साधारण प्रकारकी है। पोथीकी लिखावटके सौन्दर्य्यकी उसमें कोई आशा नही कर सकता। उसमें सभी अक्षर आये भी नहीं हैं। परन्तु जितने आये हैं उनका रंग-ढग खिचाव और विशेषतः "तुलसी" में काशीवाली प्रतिसे अधिक सादृश्य है। अ, क्ष, क, य, ध, र, ज और क्र भी मिलता है। विचारपूर्वक निरीक्षणसे मेरी तो यही धारणा होती है कि काशीवाली पोथी गोस्वामीजीकी लिखी है और राजापुरवालीके गोस्वामीजीकी लिखी होनेमें मुझे सन्देह है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके हाथकी लिखी सप्रमाण पोथी मेरी रायमे सरस्वती-भवन काशीकी यही उत्तरकाण्ड वाल्मी-

---

* श्री बा० शिवनन्दन सहायने लिखा है कि गोस्वामीजीकी शिष्य-परम्परामें प० शेषदत्तजीने सतसईको गोस्वामीजीकी रचनाओंमें गिनाया है। यह भी संग्रह-ग्रंथ है। इसमें और दोहावलीमें बहुतसे दोहे एक ही हैं।

कीय रामायणकी पोथी है। इसके अन्तमें गोस्वामीजीके हस्ताक्षर हैं। उन्हींके कलमसे उनका नाम है। पाश्चात्य देशोंमें कविके हस्ताक्षरका बड़ा मूल्य होता है। कई लाख दाम लगते हैं। लोभियोंने वहां जाल बनाकर धन कमाया है। हमारे देशमें ऐसे अनमोल और दुर्लभ रत्नोंका आदर ही नहीं है।

भूमिकाके पाठकोंके सुभीतेके लिये काशीवाली पोथीके तीन पृष्ठ, राजापुरवाली पोथीके तीन पृष्ठ, पंचनामेकी फोटो-प्रति हम इस पुस्तकमें देते हैं। विचारवान् पाठक स्वयं मिला कर देखें और अपने अपने विचार लिपिके प्रश्नपर स्वयं स्थिर कर लें।

इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी बहुत सुन्दर लिखते थे। पोथियोंको स्वयं लिखकर तय्यार करनेका उन्हें शौक था। पंचनामेमें जल्दीके लिखे अक्षर हैं। पोथियोंमें सावधानीसे सुन्दर अक्षर लिखे गये हैं। इसलिये सौन्दर्य्यकी दृष्टिसे पंचनामेकी लिखावटका मिलान पोथियोंसे न होना चाहिये।

१५—मानसका शुद्ध पाठ

सतपंच चौपाईं मनोहर जानि जे नर उर धरैं

दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति हरैं।

पिछले प्रकरणमें लिपिके सम्बन्धमें हमने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे राजापुरवाली अयोध्याकाण्डकी प्रतिका महत्व अन्य प्राचीन प्रतियोंके बराबर ही ठहरता है। उसे गोस्वामी-जीके हाथकी लिखी पोथी माननेको हम तय्यार नहीं हैं। उसके पुरानेपनमें, उसके पाठकी शुद्धिमें और सब तरहसे सम्मान-योग्य होनेमें कोई सन्देह नहीं है। वह है भी एक ही काण्ड, अतः पूरे रामचरितमानसकी पाठ-शुद्धिकी जांचमें उससे आधी-कम ही सहायता मिलती है। नागरी प्रचारिणी सभाने उसे

प्रामाणिक मानकर पाठ संशोधन अवश्य किया, परन्तु और पुरानी प्रतियोंसे भी मिलाकर पाठ शुद्ध किया है। पाठकी शुद्धिके सम्बन्धमें यही रीति समीचीन हो सकती है। हमने प्रस्तुत संस्करणमें संवत् १७२१की लिखी पोथीको प्रधानता दी है।

जिस तरह गोस्वामीजीकी यह पोथी लोकप्रिय हो गयी उसी तरह इसके पाठके साथ भी मनमाना अत्याचार हुआ। जिस पंडित-समुदायका जीवनभर उनसे विरोध रहा, उसने बदला लेकर ही छोड़ा। उन्होंने ग्रामीण भाषा और प्राकृतमें लिखा, पर पंडितोंने शोध शोधकर उनकी ग्रामीणता और प्राकृत-पन दूर कर दिया। जहांतक पद्यप्रबन्धमे गुंजायश थी, छन्दोभंग और यतिभंगदोष नहीं होते थे, वहांतक तो पंडित सम्पादकोंने तद्भवोंका बहिष्कार कर डाला। जहा कहीं उनकी "भद्दी भाखा"का प्रयोग समझमें नहीं आया, वहां संशोधन भी कर डाले। जहां उनकी रायमें गोस्वामीजीने कथाएं छोड़ दी थीं, वहा क्षेपकोंके रूपमें उन्होंने कथाएं भी पद्यबद्ध करके मिला दीं। क्षेपक इतने अधिक मिलाये गये, संशोधन इतने हुए, तत्समोंकी ऐसी भरमार हुई कि रामचरितमानसका रूप बदलकर जबर्दस्ती "तुलसी"कृत रामायण प्रकाशित होने लगे। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र वाला संस्करण ऐसे संस्करणोंका सिरमौर हुआ। किसी प्रकाशकने मौका नहीं खोया। रामायणसे लाभ उठाना आसान था क्योंकि गोस्वामीजीने न तो कोई कापीराइट रखी थी और न अपनी कृतिकी दुर्दशापर लड़ने आये।

यद्यपि अवधी भाषाके व्याकरणका उन्होंने बड़ी कड़ाईसे निर्वाह किया है, बिन्दु विसर्ग भी नहीं छोड़ा है, तथापि इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि गोस्वामीजी लिखनेके सम्बन्धमें अत्यन्त कट्टर न होंगे। मनुष्योचित विपर्य्यय और समयानुसार मत-

भेद उनके लिये भी कोई असाधारण बात न होगी। यही कारण है कि मक्षिकास्थाने मक्षिका रखनेवालोंके पाठोंमें भी भेद है। गोस्वामीजीने रामचरितमानसका आरंभ संवत् १६३१में किया। इसके अनन्तर वह लगभग उनचास बरस और जिये। इतना काल एक ग्रंथकारके लिये बहुत है कि वह अपनी पूर्व कृतिको आवश्यकतानुसार सुधारे, स्वयं पाठान्तर करे, स्वयं यथास्थान क्षेपकोंका समावेश करे। समयके साथ साथ अधिकाधिक प्रौढ़ता आती है। अनुभव बढ़ जाता है, रचना अधिक प्रगल्भ हो जाती है। अतः यदि गोस्वामीजीने पाठमें पीछेसे हेरफेर भी किया होगा तो उससे रामचरितमानसका सौन्दर्य्य अधिकाधिक बढ़ा ही होगा। पीछेसे सुधारा हुआ पाठ अधिक चुस्त और सुन्दर होगा। अवश्य ही पुरानी प्रतियोंमें उसका समावेश हो चुका होगा, क्योंकि जितनी प्रतियां हमें आज उपलब्ध हैं, उनके साकेतवासके पीछेकी हैं। इसलिये हमारे लिये पुरानी प्रतियां अवश्य ही अधिक प्रामाणिक हैं।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसको समाप्त करके अन्तमें चौपाइयोंकी संख्या इस प्रकार निर्धारित की है—

सत पच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं,
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुपति हरैं।

हम शंकावलीवाले खंडमें यह दिखा आये हैं कि सतपंचका अर्थ संख्यावाचक है, "अच्छे पंच" नहीं है। "अंकानां वामतो गतिः" की रीतिसे सतका अर्थ १०० और पंचका ५ लेकर ५१०० श्रीरामचरणदासजीने भी किया है। परन्तु महन्तजीने सीधे चौपाई न कहकर इसे अनुष्टुप श्लोकोंकी संख्या बतायी है। उनकी कल्पना है कि बत्तीस बत्तीस अक्षरसमूह गिनकर गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी श्लोकसंख्या कुल पांच हजार एक सौ बतायी है। यद्यपि यह पोथियोंके अक्षरोंके गिननेकी

पुरानी विधि है, समीचीन है, तथापि इस विधिका प्रयोग अनेक कारणोंसे हिन्दीमे संभव नहीं है, जिनमेंसे सबसे प्रबल कारण यह है कि स्वयं गोस्वामीजी अनेक शब्दोंके दो दो रूप लिखते थे, "धरमु" और "धर्म" "करमु" और "कर्म" इनमें एक ही शब्दके कहीं दो अक्षर गिने जायँगे, कही तीन। किसी लेखकने एक तरहपर लिखा, दूसरेने दूसरी तरहपर। अतः इस तरह गिनती करनेमें असंख्य भूलें हो सकती हैं। साथ ही दो चार पृष्ठोंकी अक्षर-सख्या गिनकर औसत लगाकर लगभग पूरी पृष्ठ-संख्यासे गुणा करनेपर जो संख्या उपलब्ध होती है वह सहज ही दस हजारके लगभग होती है। उदाहरणके लिये इंडियन प्रेसके डिमाइ आकारवाले रामचरितमानसके तीसरे पृष्ठकी अक्षर-संख्या गिनिये। ५६० होती है। मान लीजिये कि औसत ५०० हो है, तो कुल पृष्ठ-संख्या ५६७ से गुणा करनेपर और श्लोक-संख्या निकालनेपर ८८५९ ठहरता है। मानसमयंकमे इससे मिलती जुलती हुई व्याख्या यों दी हुई है—

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु
छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हज्जारु

अर्थात् "चौपाइयोंकी संख्या ५१०० है और छन्द सोरठा दोहा सब मिलाकर दस कम दस हजार हैं।" गिननेकी कठिनाई श्लोकाक्षरोंके हिसाबसे यहां भी वही है। बाबू इन्द्रनारायण सिंहने भी ९९९० श्लोक ही अर्थ किया है। मिरजापुरके कविवर प० महावीरप्रसादजी मालवीयने अपनी हालकी छपी टीकामे छन्दोंकी सख्याका विस्तृत विवरण दिया है। उसमें सभी छन्दोंके चार चरण गिननेपर छन्दोंकी अर्धालियां उन्हें कुल ९६ मिलीं। चौपाई छन्दके अतिरिक्त उन्हें चार ही डिल्ला छन्द मिले। लंकाकाडमें डिल्लेकी नौ द्विपदियां हैं। इन्हें भी चौपाइयोंके साथ गिनें तो मालवीयजीके अनुसार कुल

४५६८ चौपाइयां हुईं। ६४ चौपाइयोंकी अर्धालियां इनके अतिरिक्त हैं। यदि अर्धालियोंको भी पूरा छन्द मान लें तो संख्या ४६६२ मिलती है। इक्यावनसौ होनेके लिये इसमे ४३८ की फिर भी कमी है। हम इक्यावन सौकी संख्या ग्रंथकारकी दी हुई और बिलकुल ठीक मानते हैं। ऐसी दशामे हमें मालवीयजीकी संख्याको ही अशुद्ध मानना पड़ता है। तो क्या मालवीयजीकी प्रतिमें ४३८ चौपाइयोंकी कमी है? यह कल्पना ठीक नहीं है, क्योंकि पाठ तो भरसक प्रामाणिक संस्करणोंसे मिलाया हुआ है। तो क्या इक्यावन सौ चौपाइयोंकी श्लोक-संख्या तो नहीं है? चार चरणोंकी एक चौपाईमे यदि समस्त गुरु हो तो बत्तीस और समस्त लघु हो तो चौसठ अक्षर होंगे। दोनोंमेसे एक तरहकी एक भी चौपाई रामचरितमानसमें नहीं है। बत्तोस अक्षरोंके हिसाबसे श्लोक-संख्या वही हुई जो चौपाइयोंको संख्या दी हुई है—अर्थात् ४६१३। चौसठ अक्षरोंके हिसाबसे ठीक दूनी अर्थात् ६२२६ होती है। इक्यावन सौके लगभग पहुंचानेके लिये ३६ अक्षरोंकी एक चौपाईका मध्यमांक रखना पड़ेगा जिसमे आठ ही लघु हों और २८ गुरु। परन्तु औसत वह संख्या होती है जो अधिकांश मिले। ३६ अक्षरोंकी चौपाई तो खोजे न मिलेगी। औसत चौपाईमें ४८ अक्षरोका होना अधिक संभाव्य है। इसलिये ५१००की संख्या श्लोक-संख्या तो कदापि नहीं हो सकती। मालवीयजीने पिंगलकी प्रथाके अनुसार ही गिनती की है। "चौपाई" का अर्थ ही है "चार चरणोंवाली" अतः उसके ठीक ठीक चार चरण ही गिने। अर्धालियोंको अलगाते गये। हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजीने द्विपदी भी लिखी है और चौपदी भी। यदि आज कलके प्रसिद्ध कवि मिलिन्दपाद, शंकर, चौपदे आदि छन्दोंकी नयी गढ़न्त करनेके अधिकारी हैं, तो कविकुल चूड़ामणि गोस्वामीजीको इतना भी अधिकार नहीं कि वह

अर्धालियोंकी सृष्टि कर सकें? अर्धाली शब्द तो गोस्वामीजीने कहीं लिखा ही नहीं है। परन्तु द्विपदी छन्द उन्होंने इतने लिखे कि पीछेसे पिंगलकारोंको लाचार हो अर्धालीकी रचना करनी पड़ी।

दो दोहोंके बीचमे जितनी चौपाइया हैं, गिननेमें यदि द्विपदियोंकी सम संख्या हुई, तो चार चार चरणोंकी एक एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। यदि विषम संख्या हुई तो दो दो चरणोंकी एक एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। उदाहरणार्थ बालकाण्डके तेरहवें और चौदहवें दोहेके बीचमें सभाकी प्रतिमें ११ अर्धालिया वा द्विपदिया हैं। विषम संख्या होनेसे इन्हें ११ चौपाइया गिनना पड़ेगा। परन्तु पादटिप्पणीमें एक अर्धाली और दी हुई है। संवत् १७२१वाली पोथीमें यह अर्धाली भी १३-१४ दोहोंके भीतर है, अर्थात् ग्यारहके बदले बारह द्विपदियां हैं। बारह सम संख्या है। उपर्युक्त नियमानुसार इस तरह १३-१४ दोहोंके बीचमे ११ नहीं, छः चौपाइयां हैं। इस तरह गिनती करनेमें जहा जहा अर्धालिया हैं वहां वहां चौपाइयोंकी संख्या बढ़ जाती है। इस तरह गिनती करनेसे सारे रामचरितमानसमें चौपाइयोंकी संख्या इक्यावन सौके लगभग हो जाती है। रामचरितमानसमें यत्रतत्र कई चौपाइया हैं जिनमें १५-१५ मात्राए हैं। इन्हें अलग गिनना चाहिये। इन्हें भिन्न प्रकारकी द्विपदिया मानकर अलगा देनेसे एजेंसीद्वारा प्रकाशित पाठमें ५१०८ की संख्या आती है। तात्पर्य यह कि केवल आठ चौपाइया अधिक हैं। कहीं एकाध अर्धालीके क्षेपक ठहर जानेसे सात आठ चौपाइयोंकी घटती बढ़ती सहजमें हो सकती है और ठीक ५१०० की संख्या सहजमें मिल सकती है। मेरी रायमें गोस्वामीजीने इसी प्रकार चौपाइयोंको गिनकर यह स्पष्ट संख्या दे दी है। यह भी असंभव कल्पना नहीं है कि ग्रंथकी समाप्तिके समय ठीक इक्यावन सौकी संख्या रही

हो परन्तु पीछेसे कहीं कहीं अत्यन्त आवश्यकता देखकर गोस्वामीजीने एकाध चौपाई बढ़ायी हो अथवा अनावश्यक देख कर एकाध चौपाई घटा दी हो। हमने जो उदाहरण अपनी गणना-विधिके सम्बन्धमें दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभावाली प्रतिमें जहां ग्यारह द्विपदियां हैं, अर्थात् ग्यारह चौपाइयां हैं, वहां एक अर्धालीके बढ़ जानेसे १२ अर्धालियां या छः चौपाइयां ठहरती हैं। चौपाइयोंकी संख्यामें पांचकी कमी आ जाती है। इस तरह बढानेसे संख्या घट सकती है और घटानेसे, चौपदीकी द्विपदी गिनना आवश्यक हो जानेसे, संख्या बढ़ भी सकती है। हम इस आठकी बढ़तीको इसी दृष्टिसे इस प्रसंगमें नगण्य समझते हैं और जो पाठ हमने दिया है उसे ही प्रामाणिक समझते हैं और सतपंचका अर्थ इक्यावन सौ ही मानते हैं।

अब रही अविद्या-पंचकी व्याख्या। यहां पंच क्या है? महंत श्रीरामचरणदासजीके अनुसार अविद्या पंचपर्वा है। पांच प्रकारकी है, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र। तमसे अविवेक, मोहसे चित्तविभ्रम, महामोहसे भोगलिप्सा, तामिस्रसे क्रोध और अन्धतामिस्रसे आत्महत्या, यह पांच विकार उत्पन्न होते हैं। यह पांचों अविद्याओंसे उत्पन्न पांच दारुण विकार हैं, जिनको श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं।

१६—लोकसंग्रह अवतारका हेतु

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वतः

त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ भ० ४।८

अनुकरण प्राणिमात्रकी प्रकृति है। स्वभावपर मौखिक उपदेशका प्रभाव कम पड़ता है, वास्तविक आचरणका, उपदेशके उदाहरणका, अधिक पड़ता है। मूर्खपर तो मौखिक उपदेश प्रायः उलटा प्रभाव डालता है। शान्तिके बदले क्रोध उत्पन्न

करना है। श्रेष्ठोंका आचरण मूर्ख और पंडित दोनोंके लिये आदर्श उदाहरणका काम देता है, दोनोंको सुधारता है। शिक्षाकी स्वाभाविक विधि चरितका उदाहरण है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥३॥२१॥

संसारके शिक्षकमात्रके लिये श्रीमद्भगवद्गीताका यह सूत्र उनके पूर्ण दायित्वकी चेतावनी देता है, त्यागियों, वैरागियोंको लोकसंग्रहकी आवश्यकता बतलाता है, और साथ ही अवतारोंका उद्देश्य भी प्रमाणित करता है। यह स्वाभाविक है कि बड़ोंके आचरणको लोग प्रमाण मानें और उसीके अनुकूल स्वयं आचरण करने लगें।

अवतारका हेतु जो भगवान्ने स्वयं गीतामें बताया है यह स्पष्ट कर देता है कि जब जब धर्म्मका ह्रास होता है, अधर्म्म बढ़ता है, साधु संकटमें पड़ते हैं, खल और दुष्ट उपद्रव मचाते हैं, तब तब भगवान् अवतार लेकर साधुओंकी रक्षा करते हैं, खलोंका संहार करते हैं, धर्म्मका पुनः संस्थापन करते हैं, और भगवान्के दिव्य जन्म कर्म्मको जो लोग तत्त्वतः जानते हैं, अर्थात् जो आदर्शको समझकर स्वयं तदनुकूल धर्म्माचरण करते हैं वह देहत्यागके पीछे परमात्माको ही प्राप्त होते हैं। [४।७-९।] अवतारके द्वारा परमात्मा न केवल दुष्टोंका नाश और साधुओंकी रक्षा करता है, प्रत्युत सदाचार और नीतिका स्वयं उदाहरण बनकर लोकको सदाचार और नीति-धर्म्मकी व्यावहारिक शिक्षा भी देता है। इसीको गीतामें "लोकसंग्रह" कहा है। बड़ोंको देखा देखी, उसीके आचरणको प्रमाण मानकर सब लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं, जब यह स्वाभाविक है, तब तो एक ओरसे जहां बड़े लोगोंपर सदाचारी होनेकी जिम्मेदारी आती है वहां यह भी स्पष्ट हो जाता है कि

लोकको ज्ञान देनेका सबसे सरल मार्ग चरित्रके आदर्शका प्रत्यक्षीकरण है। अवतारका सबसे उत्तम हेतु यही है। वाल्मीकि नारदसे भी यही पूछते हैं कि इस समय इस लोकमें सबसे अधिक चरित्रवान् और सब प्राणियोंके हितमें निरत कौन है? चरित्रके लिये ही रामायण नामक आदि महाकाव्यकी रचना हुई। मर्य्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रकी जीवनीसे राजनीति, समाजनीति, पारिवारिक धर्म्म, पुरुषोत्तमता, आपद्धर्म्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना सबकी पूरी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है। आर्य्यको किस अवस्थामें क्या धर्म्म है, क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्म्म है, क्या विकर्म्म है, सब रहस्योंकी कुंजी मिल जाती है, सब प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनुधरहीं।

कवि भी अपने युगका शिक्षक होता है। सच्चा कवि अपने युगके लोगोंको ऐसा मार्ग दिखाता है जिससे वह उन्नतिपर अग्रसर हों। गोस्वामीजी जिस युगमे उत्पन्न हुए थे उसके लिये रामायणसे अच्छी शिक्षा किसी और ग्रंथमे मिल नहीं सकती। राजनीतिप्रकरणमें पाठक देखेंगे कि आज भी रामायणसे अच्छी शिक्षा भारतवासियोंके लिये किसी दूसरे ग्रंथसे मिल नहीं सकती। यहां कथाछलसे नीति नहीं कही गयी है। यहां तो सच्चे आदर्शजीवनसे और स्वयं मर्य्यादापुरुषोत्तमके चरित और मुखारविन्दसे समस्त धर्म्म और नीतिकी शिक्षा दी गयी है। पंचतंत्र और हितोपदेशसे राजनीतिक चालोंकी शिक्षा भले ही मिल जाय मगर कौए, कुत्ते, गधे, स्यार, सिंह, वानर, मृग आदि पशुओंकी झूठी कहानियोंसे इन पशुओंके चरित्रका किसी मनुष्यपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। मनुष्य तो ऐसे आदर्शके मनुष्यको देखता है जो रूपमें सबसे सुन्दर है, बलमें सबसे बलवान् है, धर्म्म और नीति मूर्त्तिमान है, शस्त्रास्त्रधारी वीरोंमें अग्रणी है, समरमें परम पुरुषार्थी है; पराक्रममें संसारविजयी

है, चरित्रमें सूर्य्यसे अधिक ज्योतिर्मय है, यश और कीर्त्तिमें उपमारहित है, समुद्रसे अधिक गंभीर, आकाशसे अधिक असीम है, परन्तु आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श बन्धु, आदर्श सुहृद्, आदर्श राजा और आदर्श आचार्य्य भी है। प्रत्येक युगमें उद्धारके लिये कोई न कोई महान आत्मा देशको डगमगाती नावका कर्णधार हो जाता है। गोस्वामीजी अपने युगके ऐसे ही महान आत्मा थे जिन्होंने अपने युगके उद्धारके लिये इस परमपावनी कथाको लोकप्रिय भाषामें अत्यन्त मधुर शब्दोंमें गाया। वह भगवान्के परम भक्त थे, संसारसे विरक्त थे, परन्तु फिर भी भक्तोंका परम कर्त्तव्य देशका उद्धार उन्होंने इसी रामचरितमानसद्वारा किया है। रामचरितमानस-का अवतार भी रामनवमीको होना सकारण है, सहैतुक है। आगेके प्रकरणोंसे यह स्पष्ट होगा कि रामचरितमानस किस प्रकार लोकसंग्रहका प्रतिपादक है।

१७—गोसाईंजीके राजनैतिक विचार

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारतरीति,

तुलसी सठकी को सुने, कालि कुचालिपर प्रीति ॥५४५॥

हमारी संस्कृतिमे धर्म्म शब्द अत्यन्त व्यापक है। अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोकी सिद्धि धर्म्ममें हो है। कोई नीति हमारे यहा परमार्थसे अलग नही की जा सकती। देशकी राजनीति धर्म्मका अनिवार्य्य अंग है, उसकी कोई अलग स्थिति ही नहीं है।

रामायणकी कथा भारतवर्षके परम अभ्युदयकी कथा है। दक्षिणमें राक्षसोंका प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि वह सारे भारतमे साम्राज्य फैलानेके इच्छुक हो जाते हैं। उनका परम पराक्रमी राजा महात्मा रावण, जिसकी राजधानी लंकामें है, समरक्षेत्रमें देवों और नागोंको भी परास्त कर देता है। अस्तु-

रोका तो वह राजा ही था। गंधर्वोंके राजा कुवेरको लड़ाईमे नीचा दिखाकर उससे पुष्पक विमान छीन लेता है। शिवजीकी राजधानी कैलासतकको अछूता नहीं छोड़ता। हिमाद्रिसे उत्तरकुरुतक देवोंको, गन्धमादनसे काश्यप-सरोवरतक नागोंको, कैलाससे गन्धमादनतक गन्धर्वोंको और कन्या-कुमारीसे हिमाद्रितक मानवोंको, उसने अपने पशुवलसे अधीन कर लिया था। मानव, दानव, नाग, देव, गन्धर्व सभी अधिपति उसे कर देते थे। जो ऋषि-मुनि त्यागी-तपस्वी और किसीके राजमें छेड़े नहीं जाते थे, रावणके साम्राज्यमें उन्हें भी कर देना ही पड़ता था। सारे जम्बूद्वीपमें जातियों और राष्ट्रोंका परस्पर व्यवहार-विनिमय उसने बन्द कर दिया। ऐसे कड़े कर वैठाये और ऐसी कड़ाईसे उगाहने लगा कि सारी प्रजा अकुला उठी। रावण पंडित था, तपस्वी था, विद्वान् था, वलवान् था, परन्तु भारी प्रभुता हाथ लगी, सिर फिर गया, उद्दंडता आ गयी, उच्छृंखलतासे अत्याचार करने लगा, अपनी अर्जित प्रभुताकी रक्षाके लिये उसने उचित अनुचितका विचार छोड़ दिया। मनमाने आचरण करने लगा। शत्रुओंको पराजित करके उनको वलहीन कर दिया। किसीको सिर उठानेका साहस न रहा। उसकी नीति थी कि—

छुधाछीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आइ
तब मारिहौं कि छाडिहौं सबहि भाँति अपनाइ

रावणने अपनी वह धाक जमायी कि उसका खुल्लमखुल्ला मुकाविला असंभव हो गया। उसके जासूस सारे जम्बूद्वीपमें फैले हुए थे। किसी विरोधीका जीवन सुरक्षित न था। भारत-वर्षमें तो रावण भीतरी लड़ाइयोंसे पूरा लाभ उठाता था। क्षत्रियों और ब्राह्मणोंमें घोर संघर्ष था। परशुराम एक एक क्षत्रियके प्राणोंके पीछे पड़े थे। इनकी जबर्दस्तीसे अच्छे अच्छे

छत्रधारी कांपते थे। इस भीतरी युद्धके कारण भारतवर्षके राज्योंकी छीछालेदर थी। रावण जब धावा बोलता था दो एकको छोड़ सभी सीस झुका देते थे। रावण भी चालका आदमी था। जो तुरन्त नम्र नहीं होते थे, उन्हें झुकानेके लिये गौं ढूंढ़ता था, और जब अवसर पाता था तो उन्हें पीसे विना न रहता था।

रावणकी राजधानी लंकाके समीप भारतके मानवोंका ही राज था, भारतीयोंसे ही भिड़नेका मौका था। यदि भारतमें अपने बलवान वैरी बना लेता तो उसका शीघ्र ही विनाश हो जाता। इसीलिये उसने भारतके अनेक पराक्रमी राजाओंसे मैत्री कर रखी थी। रघु, अर्जुन, वालि उससे अधिक बलशाली थे। उसने परीक्षा कर ली थी, इसी लिये इनसे मैत्री कर रखी थी। देवों, गन्धर्वों और नागोंकी सीमा इसकी राजधानीसे इतनी दूर थी कि इनसे सीधे समर छिड़ना कठिन था। लंकापर इनके द्वारा चढ़ाई होना दुर्घट था। अवधके राजाओंसे और इन्द्रसे भी बराबर मेल रहता था। इसलिये यों कहना चाहिये कि कोसलका राज्य देवों और राक्षसोंके बीच मध्यस्थ राज्य था।

देवतागण बराबर रावणकी पराजयकी चिन्तामें रहा करते थे। असुरोंसे युद्धमें इन्द्रने राजा दशरथकी सहायता ली थी। राजा दशरथने असुरोंको रणमें नीचा दिखाया। उसी समय कैकेयीने राजाकी सहायता की थी। उसी समयके दोनों वरदान थे। शायद उसी समय इन्द्रने रावणकी पराजयकी चर्चा दशरथसे की होगी। राजा दशरथने इन्द्रके लिये रावणकी मैत्री तोड़ना उचित नहीं समझा; जबतक पूरी तैयारी न हो ले, भिड़ जानेमें जोखिमकी बात थी। परशुरामजी मार्गके कांटे थे। राजा दशरथके तबतक कोई सन्तान भी न थी। तो भी देवताओंने तैयारी की। अपने जासूस और सैनिक दक्षिण

भारतके सभी राज्योंमें भेज दिये। दक्षिण भारतके वानर-राज्योंको धीरे धीरे मिला लिया।

इधर भगवान् रामचन्द्रके प्रकट होते ही देवताओंको पूरा भरोसा हो गया। उन्हें निश्चय हो गया कि अब धरतीका उद्धार अवश्य होगा। राजा दशरथकी भारी शंका उस दिन मिट गयी जिस दिन परशुरामजी बातोंमे ही पराजित हो तपोवनको चले गये। ब्राह्मणो क्षत्रियोंकी भीतरी लड़ाइयां उसी क्षण मिट गयीं। अब अबाध रूपसे रावणसे भिड़नेकी गुप्त तैयारियां होने लगीं। युवराज-पदवाले झगड़ोंमें देवताओंका पूरा हाथ था। राजा दशरथ कैकेयीसे विवाह होते समय यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि कैकेयीका ही पुत्र राजा होगा। परन्तु बड़े बेटे हुए भगवान् रामचन्द्र। जब समय निकट आया। उन्होंने बड़ी चतुराईसे भरत शत्रुघ्नको भरतके ननिहाल भेज दिया, कुछ दिन पीछे कैकेयीको विना जनाये उन्होंने युवराजपद श्रीरामचन्द्रको देनेका निश्चय किया। बन्दोवस्त करते एक पाख बीते, पर किसी न किसी ढंगसे यह बात कैकेयीसे छिपायी गयी। यौवराज्याभिषेकके एक दिन पहले मंथराने यह बात खोल दी और कैकेयीको खूब समझाया। राजा दशरथको उसने वचनबद्ध करके वर मांगे। श्रीरामचन्द्रजी राजकाजमें न फँसकर राजनीतिक कामके लिये [illegible] जायँ, यही देवोंका अभीष्ट था। सरस्वतीद्वारा मंथरा मिलायी गयी थी। श्रीरामचन्द्रजी स्वयं इसी बातके इच्छुक थे। अन्तमें देवताओंकी ही बात रही। परिवारके भीतरी कलहने तो प्रचंड रूप धारण किया था, परन्तु श्री रामचन्द्रजीकी निःस्वार्थता और भरतजीकी भ्रातृभक्ति और अनुपम स्वार्थत्यागने राजाकी मृत्यु हो जानेपर भी सँभाल लिया। जिस राज्यके लिये और परिस्थितियोंमें बापको बेटेने मारा, बन्दी किया, बेटेको बापने घरसे निकाल दिया, भाई भाईमे घोर संग्राम हुआ, उसी चक्रवर्ती राज्यको इन आदर्श भाइयों और कर्त्तव्यपरायण पुरुषो-

समोंने मार्गके रोड़ेकी तरह ठुकरा दिया। बड़ी कठिनाइयोंसे बड़े भाई और पिताकी आज्ञासे भरत उसका प्रबन्ध करनेको राजी हुए। श्रीरामचन्द्रजीका चौदह बरसका वनवास बड़े कामका था। स्थिति यह थी कि गृहकलह न था, घरके भीतरी शत्रु परशुरामजीसे खटका न था, दक्षिणके वानरराज्योंसे पूरी मैत्री थी। देवताओंके जासूस और योद्धा सारे दक्षिणमें फैले हुए थे। रावणसे युद्ध छेड़नेके लिये जब पूरी तय्यारी हो चुकी थी तभी छेड़छाड़ हुई। महाप्रतापी महात्मा रावणके पक्षवालोंका उद्दंड और उच्छृंखल होना कोई अस्वाभाविक बात न थी। विधवा शूर्पणखा तो उसकी बहिन ही थी। उसने रावणके नाशका बीज बोया। पुरुषोत्तमके रूपपर रीझकर बरबस ब्याहपर उतारू हुई। श्रीरामचन्द्रजीके इशारेपर भगवान् लक्ष्मणने एक पंथ दो काज किये। नाक कान काटकर उसकी उद्दंडताका दंड भी दिया और रावणको चुनौती भी दी। बस यहींसे झगड़ेका आरंभ हुआ। चौदह सहस्र सेनाका अकेले विनाश करके भगवान् रामचन्द्रने अपने पराक्रमका अपूर्व परिचय दिया। सुनकर रावण दहल गया। परन्तु बदला लेनेकी घोर कामना, प्रतिहिंसाकी उत्कट प्रवृत्ति जाग्रत हुई। सीताहरण हुआ। यही भगवान्‌की इच्छा भी थी। खुल्लमखुल्ला लंकापर चढ़ाई करनेके लिये कारण उत्पन्न करना था, सो हो गया। फिर भी पुरुषोत्तमने जल्दी नहीं की। परभार्य्यापहारी रावणका पता तो उसी समय जटायुसे लग चुका था, दक्षिण दिशाका गमन भी वानरोंसे मालूम हो गया था, परन्तु चारों दिशाओंमें सीताजीकी खोजके बहाने अपने चरोंको भेजना और सेनाका पूरा संगठन कराना अनभिज्ञता ओढ़ लेनेसे ही संभव था। चुपकेसे मारुतिको बुलाकर अंगूठी देकर संसारके चरोंके परमाचार्य्यको लंकाकी पूरी देखभालका काम सौंपना भी भारी चाल थी। भगवान् मारुति भी कैसे जबर्दस्त चर थे। लंकामें जाकर

"मन्दिर मन्दिर प्रतिकर शोधा" एक भी घर न छोड़ा। लंकाका कोना कोना चप्पा चप्पा देख लिया। विभीषणको वहीं फोड़ लिया। बस, काम बन गया। भगवती सीताको आश्वासन देकर, जानबूझकर उत्पात किये कि रावणके दरबारतक पहुँच हो जाय। जासूस भी कैसा बना हुआ था। रावणकी सभाका पूरा भेद लेना था, उसकी बुद्धिकी थाह लेनी थी। मौकेकी किसी बातसे चूका नहीं। आगकी आग लगायी और ऊपरसे नीचेतक लंकाके दुर्गम दुर्गको छान डाला। तब लौटा। यह भगवान् शंकरका पुत्र देवताओंका सबसे बड़ा बुद्धिमान् और बलवान् चर था। नागमाता सुरसाद्वारा इसकी परीक्षा पहले ही हो चुकी थी। इस चरके कामपर देवों, नागों और मानवोंको पूरा भरोसा था। चरके लौटनेपर तो सेना एकत्र करना कर्त्तव्य हो गया था। मारुतिने तो जानबूझकर रावणपर यह बात प्रकट कर दी थी कि सीताहरणके अपराधीका पता श्रीरामचन्द्रजीको लग गया है और वह अवश्य दण्ड देंगे। रावणको सगठनका पता अवश्य था, पर उसे अपनी शक्तिका बड़ा गर्व था। उसने शायद इतना नहीं समझा था कि भगवान् रामचन्द्र केवल वनवासी तपसी नहीं वरन् देव, गंधर्व, नाग, मानव सबकी ओरसे पूरा सगठन करके मेरे सर्वनाशके लिये आ रहे हैं। उसे विश्वास न था कि समुद्ररूपी अगम और अथाह खाईपर पुल बँध जायगा और लंकाके भीतर शत्रुकी सेनातक आ जायगी। विभीषणको शत्रुकी महाशक्तिका पता लग चुका था। वह रावणसे लड़कर भगवान् रामचन्द्रजीसे आ मिला और भगवान्ने तुरन्त ही उसे लंकाका राज्य दे डाला, अर्थात् यह निश्चय हो गया कि रावणको मारकर भगवान् रामचन्द्रजी विभीषणको ही राजा बनावेंगे। विभीषणके शरणागत होनेसे आधी विजय हो गयी। भगवान् रामचन्द्र जम्बू द्वीपके सम्राट् और विभीषणका साम्राज्य उनके

अधीन हो चुका। रावणका मारा जाना ही शेष आधा काम रह गया। युद्धद्वारा यह काम सम्पन्न हुआ। तपस्वी वनवासी राजकुमार भगवान् रामचन्द्र जो पैतृक माण्डलिक राज्य छोड़कर घरसे निकले थे, सारे जम्बू द्वीपके सम्राट् होकर घर लौटे।

रामायणकी सारी कथा उत्कृष्ट राजनैतिक गतिविधिका उदाहरण है। गोस्वामीजीने अपने कालमें देखा कि राजाओंमें आपसकी फूट है, परस्पर विरोध है, और साम्राज्य मुसलमानोंके हाथमें है। भीतरी कलहने देशको बरबाद कर रखा है। वह बहुत खिन्न होकर कहते हैं—

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठकी को सुनै कलि कुचालिपर प्रीति॥
गोंड गवार नृपाल महि यमन महा महिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दण्ड कराल॥
फोरहिं सिल लोढा सदन लागे उढक पहार।
कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार॥
चढे बघूरे चग ज्यों ग्यान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख सम्पदा त्यों जानिये कुराज॥
कटक कारे करि परत गिरि साखा सहस खजूर।
मरहि कुनृप करि करि कुनय सो कुचालि भवभूर॥
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गो...
धरनि धेनु चारित चरित...
हाथ कछू नाहिं ला...
पाके पकये...
...कुल नर

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सम होय॥
माली भानु किसान सम नीतिनिपुन नर पाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलि काल॥
काल बिलोकत ईस रुख, भानु काल अनुहारि।
रबिहि राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरइ बिचारि॥

उन्होंने देखा कि देशमें लोग महाभारतकी रीति बरतने लगे हैं, भाई भाईमे, बन्धु, मित्र, सुहृद, परिवारी कुटुम्बीमे थोडी थोड़ी बातपर परस्पर कलह है। बाहरी वैरी दबाये बैठा है, लोग रामायणकी शिक्षा भूल गये हैं कि चक्रवर्ती राज्य भाई भाईको देना चाहता है, पर हर एक उसे ठुकरा देता है, लक्ष्य है, बाहरी वैरी। अपने देशमे परस्पर प्रीति है। बाहरके वैरी-को जीतना रामायणकी शिक्षा है। इसे लोग भूल गये हैं। राजनीतिपर कोई ग्रन्थ लिखकर यदि गोस्वामीजी रामायणकी शिक्षाएं प्रचारित करना चाहते तो उनको तनिक भी सफलता न होती। गोस्वामीजीका राजधर्म्म महात्मा गांधीका ही राजधर्म्म था, जिसमें अहिंसा, क्षमा, सत्य, भक्ति, वैराग्य सभी सद्गुणोंका समावेश था। जो हो, जनतामे मर्य्यादापुरुषोत्तम-की भक्तिका यत्किंचित् प्रचार हुआ सही पर, अनुकरणको ओर ध्यान न गया। पुरुषोत्तम धर्म्म किसीने न सीखा, न समझा। रामचरितमानस एक भक्तकी लिखी पोथी है, भक्ति-प्रधान है, इसका प्रभाव कोरी भक्तिकी दृष्टिसे थोड़ा बहुत जनतापर पड़ा, पर व्यक्तिके भीतर मर्य्यादापुरुषोत्तमके विकास-का अवसर कालकी गतिसे नही मिला। रामचरितमानसके पाठसे उदारता फैली। साम्प्रदायिकता घटी। भक्तिभाव बढ़ा। काव्यका लोकोत्तर आनन्द मिला, परन्तु

कलि प्रभाउ बिरोध चहुँ ओरा,

कठिन कलिकालके प्रभावसे भारतका भीतरी कलह न मिटा, पर न मिटा। आज भी भारतमें भारतका भाव भरा हुआ है, रामायणके भावका नितान्त अभाव है। प्रत्येक जाति अपने अपने योगक्षेमके पीछे मर रही है। एक हिन्दू जाति ही होकर उन्नतिके पथपर हम अग्रसर होते तो भी कुछ आसू पुछते। रामचरितमानसका जो चरम उद्देश्य था अभीतक पूरा नहीं हुआ। अभीतक रामचरितमानसके प्रचारकी आवश्यकता है। हमे इधर उधरका बकवाद, व्यर्थकी कथा कहानी नही चाहिये। हमें तो चाहिये मर्य्यादापुरुषोत्तमके भावका प्रत्येक श्रोतामें, प्रत्येक भक्तमे, प्रत्येक मनुष्यमे विकास। गाव गावँमे महाल महालमें रामचरितमानसकी कथा होनी चाहिये परन्तु कथाका उद्देश्य यही हो कि प्रत्येक श्रोता पुरुषोत्तम होनेके लिये मर्य्यादापुरुषोत्तमकी भक्ति एवं अनुकरण करे। काया मन और वचनका ऐसा संयम करे कि शरीरसे सुन्दर हो, बलवान् हो, वचन मधुर मनोहर सत्य और हित हो, मन उत्साही, साहसी, वीर, पराक्रमी, शुद्ध और विकार-रहित हो। भाव उदार हो जायँ। परस्पर कलह न हो, पाश्चात्य सभ्यता रूपी समान वैरीकी पराजयके लिये प्रत्येक श्रोता यत्नवान् हो। अपने भीतर भी पुरुषोत्तमका विकास हो तो भारतीय पुरुषोत्तमका विकास हो। यही पुरुषोत्तम अपने तपोबलसे पाश्चात्य सभ्यता रूपी रावणका विनाश करेगा। यही पुरुषोत्तम पाश्चात्य सभ्यताद्वारा हरी अपनी राजलक्ष्मी रूपी सीताका उद्धार इस रावणका सहार करके करेगा। यह हमारे भीतर विकसित होनेवाला पुरुषोत्तम तभी पुरुषोत्तम कहलानेयोग्य होगा जब इसमें संसारकी दासता न रह जायगी। वस्तुतः दासता उस मर्य्यादापुरुषोत्तमकी रह जायगी जो संसारकी दासतासे मानवमात्रको मुक्त करनेके लिये ससारमें लीलावपु धारण करता है—

मोर दास कहाइ नर आसा

करइ त कहहु काह बिस्वासा

सिवा उस मर्य्यादापुरुषोत्तमकी दासताके और किसी मनुष्यकी दासता पुरुषोत्तममार्गपर अग्रसर मनुष्यके लिये असंभव हो जानी चाहिये। जब इस प्रकार अपनी दासताकी बेडी काट ली तब अपने देशकी राज्यलक्ष्मीको वन्धनमुक्त करनेका उद्योग तो उसके लिये परम कर्त्तव्य हो जाता है।

गोसाईंजीने सारी कथाके अतिरिक्त स्थल स्थलपर राजधर्मका वर्णन किसो न किसी मिससे किया है, किसी न किसीके मुखसे कहलाया है, स्वराज क्या है, सुराज क्या है, राजाका कैसा आचरण चाहिये, प्रजाका कैसा व्यवहार हो, मंत्रीका क्या कर्त्तव्य है, दूतका क्या धर्म्म है, आपद्धर्म्म क्या है, दंडकी क्या विधि है, राजा राजामें, मित्र मित्र और शत्रु शत्रु, एवं शत्रु मित्रमे, कैसा व्यवहार चाहिये, सेवक कैसा हो, स्वामी कैसा हो, इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर मौजूद हैं। राजनीतिका कोई अंश शायद ही छूटा हो। इस महा काव्यमे इस प्रकारके इतने प्रसंग हैं कि राजनीतिक शिक्षाके खोजीको कोई पृष्ठ खाली न मिलेगा।

१८—सामाजिक विचार

भये बरनसकर कलि भिन्न सेतु सब लोग,

कराहिं पाप दुख पावहिं भय रुज सोक वियोग।

गोस्वामीजी प्राचीन निगमागमकी पद्धतिके बडे कट्टर अनुयायियोमे थे। साम्प्रदायिकताके बड़े विरोधी थे। किसी पंथ, मत, सम्प्रदायके माननेवाले न थे। सारे मानस महाकाव्यमे बराबर प्राचीन सनातन रीतियोंकी प्रशंसा की है। कलिधर्म निरूपणके बहाने कहते हैं।

'दंभिन निज मत कल्पि करि प्रकट कीन्ह बहु पंथ"
"वरन धरम नाहिं आस्रम चारी। स्रुति विरोधरत सब नर नारी"

वर्णाश्रम धर्म्मके कट्टर अनुयायी थे। स्वयं त्यागी थे परन्तु सारे संसारको वैरागी बनानेके पक्षके न थे। मर्य्यादापुरुषोत्तमके जीवनादर्शके अतिरिक्त रामराज्यमें प्रजाके आचरणकी प्रशंसा करते हुए एक पत्नी व्रतको महत्व देते हैं। रामराज्यमें सभी एक नारिव्रती थे। राजा दशरथके कई रानियां थीं, परन्तु राजा रामचन्द्र, उनके भाई, लडके, भतीजे किसीने एकसे अधिक विवाह नही किया। सन्तानके नाते भी दो दो पुत्रोंसे अधिक सन्तान भी उत्पन्न नहीं की। प्रजाके सामने प्रजावृद्धिमें भी सयम दिखाया। समाज विलासितामें न लगे, धनी महाजन भी अपने काम अपने हाथ करनेमें न लजायँ, इसलिये श्रम और सेवाका महत्व इतना दिखाया कि भगवती सीता "निज कर गृह परिचर्य्या करहीं," और आप स्वयं बाल्यावस्थामें तो गुरुके चरण चापते थे, उनके साथ पैदल मंजिलों तय किया और वनवासकालका तो क्या कहना है। ऐसा उत्तम आदर्श सामने हो तो प्रजा विलासितामे क्यो फँसे। ऐसी दशामें धनी अपने भोगविलासमें जब धनका अपव्यय नहीं करता तो उस विपुल धनका बहुत अंश उन लोगोमें अवश्य ही बँट जाता है जो अत्यन्त दरिद्र है। इस प्रकार प्रजामे यद्यपि धनी और धनहीन, छोटे और बडे, श्रमी और आलसी, सेव्य और सेवकका पारस्परिक थोडा बहुत अन्तर बना रहता है तथापि वह अन्तर उतना ही रहता है जितना कि मनुष्यकी पाचों अँगुलियोंमें है। यदि एक अँगुली गजभरकी हो जाय और कनिष्ठिका ज्योंकी त्यों बनी रहे तो हाथकी अँगुलियोंमें पारस्परिक सहकारिता असंभव हो जाय। आजकल समाजकी दशा कुछ ऐसी ही हो रही है। समाजमें धनवान और निर्धनका आजकलका अन्तर ऐसा ही

विषम है। आजकलका साम्यवाद भी उसी वैषम्यकी प्रतिक्रिया है। न तो यह वैषम्य ही स्वाभाविक है और न ऐसा साम्यवाद ही स्वाभाविक है। असमानता प्रकृतिका धर्म्म है। रामके राज्यमे यह असमानता स्वाभाविक दशामें थी इसीलिये साम्यवादकी प्रतिक्रिया नही दीखती।

भरतजीको समझाते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि वेदविहीन ब्राह्मण जो अपने धर्म्मको छोड़ भोगविलासमें लगा हो, राजा जो नीति नही जानता जिसे प्रजा प्राणोंके समान नही, वैश्य जो धनवान हो पर कृपिण हो और अतिथिसेवा न करता हो, विद्वानों ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला शूद्र जो बकवादी हो, अभिमानी हो, अपने ज्ञानका घमंडी हो, पतिवंचक नारी जो कुटिला और लड़ाकी और आवारा हो, बटु जो व्रतत्यागी हो गुरुकी अवज्ञा करता हो, गृहस्थ जो अज्ञानसे कर्म्मका त्याग-करे, संन्यासी जो प्रपंचमें फँसा, विवेक वैराग्यहीन हो, वान-प्रस्थ जो तप छोड़ विलासप्रिय हो, यह सभी शोकके योग्य हैं। स्पष्ट है कि गोस्वामीजी वर्णाश्रम धर्म्मके कितने बड़े पोषक हैं। वह ब्राह्मणोंकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। विप्र अर्थात् विद्वान ब्राह्मण तो उनके निकट सदा पूज्य है चाहे वह शाप क्यों न दे रहा हो, मार ही क्यो न रहा हो, कठोर वचन ही क्यों न कह रहा हो। भुशुंडिके प्रति — रामके मुखारविन्दसे गोस्वामीजी यह कहलाते हैं—

मम माय संभव परिवारा।
जीव चराचर विविध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सबते अधिक मनुज मोहिं भाये।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुति धारी।
तिन्ह महँ निगम धर्म्म अनुसारी।

तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी।
ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिग्यानी॥
तिन्हते पुनि मोहिं प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

सब प्राणियोमें मनुष्य, मनुष्योंमें द्विज, द्विजोंमें वेदतत्व-वित्, वेदविदोंमे भी तदनुकूल आचरण करनेवाला, वेदाचारियों कर्म्मकाडियोंमे भी विरक्त, विरक्तोंसे अधिक ज्ञानी, ज्ञानियोंसे अधिक विज्ञानी और विज्ञानियोसे भी अधिक, अनन्य भक्त भगवान्‌को अधिक प्यारा है। परन्तु इतनेपर भी भगवान् पतित-पावन हैं। मर्य्यादापुरुषोत्तम नीचसे नीच निषादको, "जासु छाहँ छुइ लेइय सींचा" गले लगाते है। क्यों, क्या वर्णाश्रमधर्म्मके विपरीत आचरण करते हैं? नहीं, जेसा कहते हैं ठीक वैसा ही करते हैं। सब प्राणी भगवान्‌के उपजाये हैं, सब उनको प्यारे हैं। परन्तु

तिन्हते अधिक मनुज मोहिं भाये

मनुष्यतो सबसे अधिक प्यारे हैं! जिन भगवान्‌ने

"प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किय आपु समान"

जानवरोंको अपने समान आदर दिया, वह मनुष्योंको जो उनको अधिक प्रिय हैं क्यों न गले लगावें? आज हम हैं कि गन्दे कुत्तोंको मुहँ लगाते हैं, और शौच न करनेवाले गंदे विदेशियोंसे हाथ मिलाना अपना परम सौभाग्य समझते हैं, परन्तु अपने यहांके सफाईसे रहनेवाले अंत्यजको डेवढ़ी नहीं छूने देते और अपने धर्म्मध्वज होनेकी डीग मारते हैं। भगवान् रामचन्द्रने स्वयं निषादको गले लगाकर उस समयकी धर्म्मध्वजताको अर्द्धचन्द्र देकर अपने राज्यसे बाहर निकाल दिया तभी तो

राम सखा रिषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे॥

मर्य्यादापुरुषोत्तमने जो मार्ग खोल दिया उसपर पीछे वसि-

षादि उस समयके सभी बड़े लोग चले। रामके राज्यमें अछूतका आदर था। शबरीके बेर प्रेमके माधुर्य्यसे तर थे। गीधकी मैत्री भगवान्‌के लिये प्राण विसर्जन करती है, फिर तो जो प्रेतक्रिया चक्रवर्त्ति दशरथके भाग्यमें न थी, गीधको नसीब होती है। और तो और अछूत धोबीके उपालंभपर जो सचमुच एक नीच प्रजा थी, सीख गांठ बांधी और भगवती सीताजीको वनमें भेज दिया, सदाके लिये परित्याग कर दिया। आज कोई राजा होता तो धोबीको ढिठाई और कटुवादके लिये फांसी दे दी होती।

सिय निन्दक अघ ओघ नसाये,

लोक बिसोक बनाइ बसाये।

वानर, राक्षस, दानव, कोल, भील, किरात, गीध, व्याध, सभी श्रीरामचन्द्रजीके निकट बराबर थे। परन्तु बराबरीका यह अर्थ कदापि न था कि एक वर्णवाला अपनेसे भिन्न वर्णके धर्म्म पालने लगे, एक आश्रमवाला अपने आश्रमका कर्त्तव्य छोड़ अन्य आश्रमियोंके कर्त्तव्य पालन करने लगे।

बरनास्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग

चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग।

* * * * *

सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधरम निरत स्रुति नीती।

* * * * *

स्वे स्वे कर्म्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः

* * * * *

श्रेयान्स्वधर्म्मो विगुणः परधर्म्मात्स्वनुष्ठितात्

स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें भारतवर्षमें समाजकी आदर्श अवस्था थी। युधिष्ठिरके राज्यमें, जब रामोपाख्यान एक पूर्व युगकी बात थी, समाज विकृत हो गया था। स्वयं राजा युधि-

फिर नहुषसे कहते हैं कि अब मेरे मतमें संसारमें वर्णसंकरता हो रह गयी है और मनुष्यता ही एक जाति है। जब आजसे पाच हजार बरस पहलेकी यह दशा है, तो अबका प्रश्न ही क्या है! तो भी गोस्वामीजीका आदर्श रामराज्य ही है। समाजके लिये भी उन्होंने रामराज्यका ही आदर्श प्रधान रखा है। यद्यपि हमे आशा नहीं कि रामराज्यकी सी अवस्थाका पुनः स्थापन हो सकेगा तो भी ऐसे अच्छे आदर्शकी प्राप्तिमें यत्नशील हो होनेसे संसारका कितना बडा लाभ होना संभव है, यह प्रत्येक विवेकी मनुष्य सहज ही अनुमान कर सकता है।

१६—पारिवारिक और वैयक्तिक आदर्श

दसरथ राउ सहित सब रानी। सकल सुमंगल मूरति जानी।
करउं प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी।
जिनहिं बिरचि बड़ भयेउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।

रामचरितमानसका पारिवारिक आदर्श अत्यन्त ऊँचा है। वाल्मीकीय रामायणमें लक्ष्मणजी राजा दशरथका सिर काटकर श्रीरामचन्द्रजीको राज्यासनपर बैठानेको तय्यार हैं। लक्ष्मणका चरित्र कितना क्रूर और बालोचित अविवेक और जल्दबाजीसे भरा हुआ है। गोस्वामीजी यद्यपि लक्ष्मणजीमें युवकोचित उतावलीका प्रदर्शन करते हैं, यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीको सोचमें देख बिना विचारे लक्ष्मणजी भरतजीको सेना समेत मारनेको कमर कसके तय्यार हो जाते हैं तथापि लक्ष्मणजीके चरित्रमें पितृवधके लिये उतारू होनेकी क्रूरता नहीं दिखायी है। वैसे लक्ष्मणजीके वाक्पाटवके साथ ही उग्र व्यंग्य, काकूक्ति और कटूक्ति परशुरामवाले संवादमें इतना अधिक है कि क्रूरताका लोप करके उनके कटुवादको गोस्वामीजी और कवियोंकी अपेक्षा अत्यधिक स्पष्ट कर देते हैं, तो भी लक्ष्मणजीके इस चरित्र

दौर्बल्यमें एक विशेष कोमलता है। वह जो कुछ कहते हैं, बड़े भाईके बलपर और बड़े भाईकी ही खातिर कहते हैं। अपना रत्तीभर स्वार्थ उनकी कटूक्तिमें नहीं है। उनमें क्षात्र धर्मका उत्कट अभिमान है, परन्तु वह सब श्रीरामचन्द्रजीके इशारोंपर अवलम्बित है। जहां श्रीरघुनाथजीने आंख तरेरा, तुरन्त शान्त हो लक्ष्मणजी दबक गये। खूंटेके बल बछवा कूदता है। कुमार लक्ष्मणजीके सारे बल तो भगवान् रामचन्द्रजी स्वय हैं। यह बात बन जाती बेर एकदम स्पष्ट हो जाती है। लक्ष्मणजी रो देते हैं कि महाराज, मैं तो और किसीको जानता ही नहीं, छोड़ जाओगे तो किसका होके जिऊंगा। इतना भारी बलशाली वीर अपना सहारा हटते देख कितना अधीर हो जाता है। उसे मां, बाप, स्त्री, घरद्वार किसीकी परवा नहीं। घबराता है कि कहीं मां न रोके। जब मांने न रोका तो इतना साहस नहीं हुआ कि पत्नीसे मिलें। नहीं, पत्नीको जानबूझकर बिसार दिया। बाधाका भारी डर जो था। शूर्पणखासे उनका गंभीर उत्तर

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा
पराधीन, नाहिं तोर सुपासा

कोई नया विचार न था। इसी विचारको लेकर तो चौदह बरसके वियोगके आरंभमें भी भगवती ऊर्मिलासे वह नहीं मिले।

छोटा देवर अपनी भावजको अपनी माता समझता है। सुमित्राका उपदेश भी यही था कि रामको पिता जानकीको माता और वनको अवध जानो। लक्ष्मणजीका तो यही भाव पहलेसे भी था। बडे कड़े समयमें आंखोंमें आंसू भरकर कहते हैं "मैं तो कान और बाँहके गहने नहीं पहचानता, परन्तु यह बिछुए उन्हींके हैं क्योंकि नित्य चरणवन्दनमें उन्हें देखता

था।" तेरह बरसके वनवासमें परदेमें न रहनेवाली भावजको जो बराबर साथ रही ऐसी निगाहोंसे कभी न देखा जो सौंदर्य्य वा अलङ्कारोंका आदर करे। कोई माताके सौंदर्य्य वा आभूषण भी देखता है? लक्ष्मणजीने वनवासमें घोर तपस्या करके श्रीरघुनाथजीकी सेवा की, अपने प्राणोंकी तो कभी परवा ही न की। अन्तमें जिन भगवती सीताके लिये वह अपने प्राणतक प्रायः गँवा चुके थे भाईकी आज्ञासे छातीपर शिला रखके वनमें पहुँचा आये।* आज्ञा सदा शिरोधार्य्य थी, अपने मानसिक कष्ट, मानसिक विचार कोई मूल्य न रखते थे। अपने लम्बे जीवनमें एक बार और केवल अंतिम बार बड़ी लाचारीसे भाईकी आज्ञा न मानी और उसके प्रायश्चित्तमें या दण्डमें जलसमाधि ले ली। इस आज्ञाकारी भाईका अन्त पहले और अन्तिम आज्ञाभंगमें ही हुआ।* यमराज भगवान्‌से प्रस्थानके विषयमें सलाह करने आये। द्वारपर लक्ष्मणजी तैनात किये गये। आज्ञा हुई "खबरदार, हम लोग बात कर रहे हैं, कोई इस बीच आया तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा।" भावीकी ही पूर्त्तिके लिये उस अवसरपर सारी सामग्री प्रस्तुत हुई थी। दुर्वासा ऋषिको उसी समय श्रीरघुनाथजीसे मिलना इतना जरूरी हो गया कि उन्होंने भगवान् लक्ष्मणजीको धमकाया कि इत्तिला न करोगे तो सारे नगरको भस्म कर दूंगा। इत्तिला करनेमें केवल लक्ष्मणजीको प्राणदण्ड होता है, न करनेमें सारे नगरको। उदारचेता लक्ष्मणजी इत्तिला करते हैं, और भगवान् रामचन्द्रजी बड़े रंजसे उन्हें प्राणदण्ड देते हैं, और लक्ष्मणजीके जलमग्न होनेपर सभी भाई शोकातुर हो शरीरत्याग करते हैं। यह वस्तुतः बहाना था। समय आ गया था। परन्तु लक्ष्मणजीकी अनुपम उदारता, अनुपम आज्ञाकारित्व

* गोस्वामीजीने यह कथाएं मानसमें नहीं दी हैं।

और उनको और श्रीरघुनाथजीकी कड़ी न्यायबुद्धि यहां इतिहासपटपर अंकित हो जाती है।

बंदउ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुखद भगत सुखदाता।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका।
सेस सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।

भरतसा विरागी निःस्वार्थ न्यायपरायण भ्रातृभक्त संसारके इतिहासमें दूसरा नहीं है। उन्हींको राज दिलानेके लिये कैकेयी सारे खेल खेलती है, विधवापन स्वीकार कर लेती है, सारी प्रजाके विरुद्ध चलती है, लोकमे बदनाम होती है, सारा परिवार विपत्तिसागरमे डूब जाता है, अयोध्या उजड़ जाती है, राम लक्ष्मण सीता चौदह बरसके लिये वनवास करते हैं, माताएं समझाती हैं, वसिष्ठजी उपदेश देते हैं, प्रजा अनुनय विनय करती है कि आप राज्य स्वीकार कर लीजिये परन्तु भरत हैं कि शोकसमुद्रमें डूबे हुए भी न्यायपथसे विचलित नहीं होते और रामका राज्य रामको सौंपनेका प्राणपणसे उद्योग करते हैं। भरतकी धर्म्मनीतिपर, उनके विचार गांभीर्य्यपर उनकी वाक्पटुतापर जनक वसिष्ठादि भी मुग्ध हो जाते हैं, और अन्तमें भगवान् रामचन्द्रकी इच्छा जानकर ही भरतजी चरणपादुका लेकर अवधिभरके लिये राज्यप्रबन्धभार लेते हैं। तिसपर भी घर बैठकर भरतजी तपस्या करते हैं।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृसगात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।

हनुमानजी दंग हो जाते हैं। चक्रवर्ती राज्य जिसके अधिकारमें पूरे चौदह बरसतक हो उसका मन एक दिन भी उसके लालचसे डावांडोल न हो, वरन् जो अवधिका अन्तिम दिन बिना प्यारे भाईकी खबर मिले बीतते देख अपार चिन्तामें

पड़ जाय और प्राण छोड़नेको तय्यार हो जाय, उस पुरुषोत्तम-की उपमा संसारमें कहाँ मिल सकती है? लोभ मोहने तो भरतजीकी छाँह भी नहीं छुई, भक्तिने भरतजीमें अपनी पराकाष्ठा दिखायी। परन्तु ठीक समय भरतकी तपस्या पूरी हुई, श्रीरघुनाथजी आ गये, राज्य सौंपकर राजपुरुषोंके पदपर तुरन्त भरतजी आरूढ़ हो गये। अपने कर्त्तव्यके पालनमें उन्हें कब आनाकानी थी? उन्हें तो आपत्ति इसमें थी कि सिंहासन स्वामीकी जगह है, सेवक भला उसपर बैठनेका साहस कर सकता है?

शत्रुघ्नजी तो भरतके ही अनुगामी हैं, पर हैं आखिर लक्ष्मणजी-के ही भाई! दोनों भाई कैकेयीसे घरके सर्वनाशका वृत्तान्त सुन रहे हैं कि बीचमेंही श्रृंगार किये मंथरा आ गयी। भला शोकनिवासमें श्रृंगारका कौन सा मौका था? तभी तो

देखि सत्रुहन नखसिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।

मगर, भरतजी दयानिधान हैं। वह छुड़ा देते हैं। शत्रुघ्नजीमें भी लक्ष्मणजीका सा बालकस्वभाव देख पड़ता है।

पिता दशरथ वात्सल्य की मूर्त्ति हैं। पुत्रलालसामें जीवन बीता जाता था। एक भूलसे जो वैश्य तपस्वीकी हत्या हुई और उसके माता पिताने शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु भी पुत्र-वियोगमें ही होगी, तो उस शापको दशरथने परम हित माना, क्योंकि शापसे यह तो निश्चय हो गया कि पुत्र होंगे। चौथेपनके बालक थे। विश्वामित्र उन्हें लेने आये। राजा राजी नहीं हुए। बोले, "अनुभवका काम है, चलिये मैं सेना लेकर स्वयं यज्ञकी रक्षा करूँ"। उधर राज-हठ था, पर इधर हठके अवतार विश्वामित्र अड़ गये कि रामको ही ले जाऊँगा। हारकर अपने प्राण वसिष्ठजीको सौंप दिये। अपने अधिकार भी साथ ही दे डाले।

बराबर खबर लेते रहे। जब जनकपुरसे श्रीरघुनाथजीकी चीठी मिली तो प्रेमानन्दसे अपने आपेमें नही रहे। जनकपुरमें प्यारे पुत्रसे मिले क्या!

मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे।

श्रीरघुनाथजीको राज्य देनेमें उन्हें विशेष रूपसे ममत्व था। उन्हें श्रीरामचन्द्रजीको ही राज देना कर्त्तव्य भी था। यही प्रचलित राजधर्म्म था। इसके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकते थे। कैकेयी सबसे छोटी रानी थी। और रानियोंके पुत्र नहीं हुए थे। व्याहके समय आशा थी कि नयी रानीके संतान होगी, वही राज्याधिकारिणी होगी। पर सबसे पहले पुत्र हुआ कौशल्याके। सवतिया डाह था नही। श्रीरामचन्द्रजीको कैकेयी सबसे अधिक चाहती थी। फिर भी होनहारकी आशंकासे राजाने क्या क्या उपाय नहीं किये। पर सब पट पड़ गये। राजनीतिके कुचक्रमे पड़कर दोमे एक बात तो अवश्य होती है। या तो सफलताके लोभसे धर्म्मात्माओंके भी पावँ फिसल जाते हैं, या धार्म्मिक कर्त्तव्यके पीछे राजनीतिक चालें ही विफल हो जाती हैं। राजा दशरथ नृपनीति करने चले थे, परन्तु कट्टर धार्म्मिक और नीतिवान् थे। इसीलिये उनकी मनचाही बात नहीं हुई। वह जो कुछ मनसे चाहते थे, वह था होनहारके विरुद्ध। यही कारण है कि धर्म्मसे भी उसका विरोध हो गया। पर राजा दशरथ केवल राजा न थे। वह दशरथ भी थे। व्यक्ति भी थे। उन्हें अपने वैयक्तिक व्रत भी पालने थे। वह केवल पिता थे। वह मनुष्य भी थे। उन्हें अपने वात्सल्यको बलि करके सत्यव्रत पालन करना था। राज चला जाय, पुत्र छूट जाए, बल्कि प्राण भी चले जायँ, पर सत्य न जाय। कितना कठोर असिधारा व्रत है! पर दशरथके बलवान् आत्माने सत्यको सर्वस्व त्याग करके निबाहा। सच्चे त्यागी राजा दशरथ। ही चारो पुत्र भी सच्चे त्यागी हुए जिन्होंने कर्त्तव्यपालन

के पीछे माता, पिता, भाई, परिवार, नगर तो क्या हाथ आया हुआ चक्रवर्ती राज्यतक फेंक दिया। किसी संन्यासीने कभी ऐसा त्याग न किया था न करेगा। अप्राप्य-विषयके विरागी तो हताश हो सभी मनुष्य हो जाते हैं। पर, कर्त्तव्यके पीछे सर्व-स्वका त्याग विरले ही होता है। यही पुरुषोत्तम धर्म्म, यही पुरुषोत्तमताकी मर्य्यादा है।

मानसके राजा दशरथने कैकेयीको व्याहनेके समय कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। उनकी प्रतिज्ञा है तो वरदान। अन्यथा जो कुछ वरदानके झगडेके पहले उन्होंने किया वह तो उनका कर्त्तव्य था। बुढ़ापेका खयाल आया, फिर सबसे अधिक उप-युक्त राजकाजको सँभालनेवाला श्रीरामचन्द्रजीके सिवा कौन है? राजसभासे पूछा, वसिष्ठजीसे सलाह की। सबने एक स्वरसे श्रीरामचन्द्रको ही युवराजपद देनेकी ठहरायी। अकेले दशरथकी बात होती तो केवल ममता और वात्सल्य ही कारण ठहराये जाते। जब दशरथने कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि कुछ दिन गये भरतजी राजा होंगे तो वहां भी यह हेतु निहित था कि रामजीका वनगमन रुक जाय और भरतजीको ननिहालसे बुलाया जाय, इतनेमें पौरों, जानपदों और गुरु आदि-से सलाह करके निश्चय करनेका भी अवसर मिलेगा। बिना सबकी सलाहके राजा कुछ करता तो उद्दण्डता और उच्छृंखलता होती। ऐसे उद्दण्ड राजा हो चुके थे, परन्तु राजा दशरथ सच्चे न्यायपरायण और नीतिवान् थे। वह कभी अनीतिसे चल न सकते थे। कैकेयी यह सब बातें समझती थी, इसीलिये राजी न हुई। राजा दशरथ इन दृष्टियोंसे ऐसे शासक थे जिनकी पद्धतिके विकासका फल ही रामराज्य था।

माताओंमें कौसल्या उदारताकी मूर्त्ति हैं। ईर्षा तो छू नहीं गयी। श्रीरघुनाथजी विदा माँग रहे हैं। कहती हैं कि अगर पिताकी ही आज्ञा है, तो मत जाओ क्योंकि माताका पद बडा

है। परन्तु जब पिता और माता कैकेयी दोनों कहें तो बन तो अवधसे कई गुना अच्छा । कैकेयीको कौसल्याजी माताका पद देती हैं और अपना तो कोई अधिकार ही नहीं मानतीं। उनका धैर्य पुरुषोत्तमकी माताके ही योग्य है। सहम जाती हैं, शोकसे विह्वल हो जाती हैं पर सँभलनेमें देर नहीं लगती। पुत्र और पुत्रवधूको बड़े धैर्य्यसे छातीपर पत्थर रखकर विदा करती हैं। राजाकी मृत्यु इन्हींके सामने होती है। राजा दशरथको भी धैर्य्यकी सलाह देती हैं। उनके प्राणत्यागपर विधवपन ऐसे महान शोकसे विह्वल होकर भी कैकेयीको कुछ नहीं कहतीं। भरत कितने ही कटुवाद कह जाते हैं पर रामकी माता रामकी ही माता हैं। उनका धैर्य्य अपरिमित है। वह अन्ततक धीर गंभीर रहती हैं। सुमित्रा तो रामकी पूर्ण भक्ता हैं। कहती हैं "जिसका बेटा रामका भक्त हो वही तो पुत्रवती है, नहीं तो गर्भ धारण करना ही व्यर्थ है।" तीनों रानियोंमें कभी पारस्परिक ईर्षा न थी। परन्तु मंथराकी कुटिलताके जालमे कैकेयी फँस जाती है और ऐसा फँसती है कि मरण पर्य्यन्त उसे पछतावा ही पछतावा हाथ लगता है। यों वह दिलकी बुरी नहीं है। यह सपत्नियां भी आदर्श हैं, परन्तु बहुपत्नीत्वका परिणाम जो घरका सर्वनाश है रामके राज्यके "एक नारिव्रत सब नर भारी" की अमिट शिक्षा देता है। आगेके लिये कड़ी चेतावनी है।

भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रके सम्बन्धमे तो कहना ही है, श्रीरघुनाथजी ही आदर्श पुत्र हैं। कैकेयीको कौशल्यासे धिक मानते हैं। चित्रकूट जानेपर और अयोध्या लौटनेपर भी उससे ही पहले मिलते हैं। पिताके वचन उनके लिये ब्रह्मवाक्य हैं, अमिट हैं, अपेल हैं। उनके वचनोंपर तपस्या करनेमें भी उन्हे परम सुख है। बापकी बातपर राज्यका त्याग तो उनके वे टे कोई त्याग ही नहीं है। ग्रामवास तो क्या विभीषण

और सुग्रीवको राज देनेको भी बस्तीमें नहीं गये। लक्ष्मणजीको भेजकर राजतिलक कराया। चौदह बरसकी अवधि जिस घड़ी पूरी हुई उसी समय अयोध्यामें कदम रखा! धन्य है समय-संयम और भरतका और माताओंका खयाल! व्रतको स्वयं पालन करनेमें और पितासे व्रत पालन करानेमें और जिनके लिये रावणका संहार करनेवाला महा समर किया था उन्हीं भगवती सीताका धोबीके उपालंभपर परित्याग करनेमें कुलिश से भी कठोर हैं। पिताके प्राणत्यागका निश्चय होते हुए भी तुरन्त वनयात्रा की। साथ ही सिरिसके फूलसे भी कोमल हैं, लक्ष्मण और सीताके आसू सह नहीं सकते, बालिकी बातोंसे पछताकर उसको जिलानेको तय्यार हैं, भक्तकी चूक तो याद ही नहीं रखते। कहते हैं कि :

जेहि सायक मैं मारा बाली। तेहि सर हतौं मूढ कहँ काली

परन्तु ज्यो ही लक्ष्मण भगवान्का रुख देखकर खड़े होते हैं भगवान् तुरन्त कहते हैं कि देखो, तुम मार मत डालना, हे तात! सुग्रीव तो सखा है ना, उसे केवल डराकर मेरे पास ले आओ। शक्ति लगनेपर भाईके प्रेममे विह्वल हो जाते हैं। उन्हें अपने किसी भाईपर कभी मनमें सन्देह हुआ ही नहीं। बचपनमें भी छोटे भाइयोंपर इतना वात्सल्य था कि जब छोटे खेलमें हार जाते थे, तो इसलिये कि उनका उत्साह भग न हो फिरसे खेला-कर उन्हें जिता देते थे। भरतका समारोहके साथ आना सुनकर भगवान् तो मन ही मन सोचमें हो जाते हैं कि भरतके आनेका यह अर्थ तो नहीं है कि पिताका शरीरान्त हो गया। इधर लक्ष्मणको यह सन्देह होता है कि भरतजी रामको मारकर अकं-टक राज्य करनेके लिये तो नहीं आ रहे हैं,शायद श्रीरघुनाथजी-को यही सोच है, ऐसा समझकर सेनासहित भरतको मार डालनेके लिये कमर कसकर खडे हो जाते हैं। इनकी उतावली देख भगवान् इनका सन्देह निवारण करते हैं, कि भरतके बारेमें

तुम्हें ऐसा सन्देह ! ओह ! क्या कहीं खटाईकी बूंदसे क्षीर समुद्र फट जाता है ? भरत जैसे पुरुषोत्तम उदारताके क्षीरसागरके लिये चक्रवर्त्ती राज्य खटाईके एक सीकराणुसे भी कम है। राज्य पाकर भरतजीको मद ! कदापि नहीं !

रावणको मार चुके विभीषणको राज्य मिल गया। अवधि पूरी होनेको आयी। श्रीरघुनाथजीको चिन्ता हो गयी

बीते अवधि जाउँ जौं जियत न पावउँ बीर।

भगवान् भरतकी निःसीम भक्ति और आत्यंतिक कोमलताको कहीं भूल सकते हैं ? जहां छोटे भाइयोंके लिये यह भाव हैं, वहां अपने बड़ोंके लिये भी क्या कोमलता है ! मातापिताको समझाते हैं कि चौदह बरस चुटकियोंमें बीत जायँगे, मैं तो शीघ्र ही फिर आके चरण छुऊंगा। वसिष्ठजी श्रीरघुनाथजीको उपदेश देने जाते हैं और जानते हैं कि परात्पर पुरुषोत्तम ही हैं, परन्तु श्रीरघुनाथजीकी विनय अपूर्व है। "सेवकके घर स्वामीके चरणों का आना तो मंगलमूल है, मेरे बड़े भाग्य कि गुरुके चरणोंने घरको पुनीत किया। भगवन्, नीति तो यही है कि काम लगे तो सेवकोंको बुलाकर आज्ञा करते हैं। पर कभी कभी इसमें भी भारी प्रभुत्व है कि बड़े लोग छोटोंका आदर करते हैं।" बेचारे वसिष्ठ परात्पर पुरुषोत्तमके इन वाक्योंपर क्या कहते ? "राम कस न तुम कहहु अस हंस वंस अवतंस" कहकर रह गये।

भगवान्ने सख्य भी कैसा किया ! निषाद, विभीषण, सुग्रीव आदिकी कथाएं सख्यभावके उदाहरण हैं। निषादकी नीचता, सुग्रीव और विभीषणकी खुटाई और कदाचार कभी श्रीरघुनाथजीके ध्यानमें न आये। उन्होंने तो स्वयं सख्यधर्म्म यों बताया—

कुपथ निवारि सुपथ चलावा। गुन प्रकटइ अवगुनहिं दुरावा।

यह तो साधारण अच्छे मित्रोंका ढंग है। परन्तु श्रीरघुनाथजीकी तो बात ही न्यारी है—

रहत न प्रभुचित चूक कियेकी।
करत सुरति सयवार हियेकी।
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली।
सोइ सुकंठ पुनि कीन्हि कुचाली।
सोइ करतुति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।
सो भरतहि भेटत सनमाने।
राजसभा रघुवीर वखाने।

वाल्यावस्थामें भी जब जनकपुर और मखशाला देखनेको गये तो राजकुमारोंके अपूर्व सौंदर्य और सरलतापर मोहित होकर अनेक वालक साथ हो गये और नगर आदि दिखाने लगे। उनके साथ भी वड़ा ही शिष्ट और स्नेहमय सख्यका व्यवहार किया।

दैनिक चर्य्यामें भगवान्‌का वाल्यावस्थासे नित्य नियम था कि तड़के उठकर पहले मातापिता और गुरुके चरणपर सीस नवाते थे, फिर शौचादिसे निवटकर संध्या-वन्दन अग्निहोत्रादि करके व्यायाम शास्त्राभ्यास आदि करते थे और फिर अपने साधारण नित्यके कामोंमें लगते थे। पूरे संयम और ब्रह्मचर्य्य-का जीवन था, वड़ोंकी सेवा थी, जिससे शरीरमें सौंदर्य्य भी था। वलवान् तेजस्वी और यशस्वी थे। हमने माना कि शरीरका सौंदर्य्य पूर्व संस्कारपर भी निर्भर है, मातापिताके प्रभावसे भी होता है। राजा दशरथ और कौसल्याकी तपस्याका फल भी था, उनका भारी प्रभाव था। परन्तु संस्कारजनित सौंदर्य्य भी सुरक्षित और विवृद्ध तभी हो सकता है जब सौंदर्य्यनिधान स्वयं अपने संयम और ब्रह्मचर्य्यपालनसे उसे स्थायी रखे। चारों राजकुमार सुशिक्षासे सम्पन्न थे, संयमकी मूर्ति थे, सदाचारके अवतार थे। उनका सौंदर्य्य, तेज और वल उनके संयम और

आचारसे स्थायी और मानवमर्य्यादाके भीतर दृढ़ था। पुरुषोत्तमने यह दिखाया कि मनुष्यका धर्म्म है कि अपनेको सुन्दर, तेजस्वी, बलवान् और यशस्वी बनावे। श्रीरघुनाथजीने यह शिक्षा नहीं दी कि मनुष्य अपनेको कुरूप, क्षयरोगी, बलहीन, तेजहीन भिखमंगा बनावे। श्रीरामचरितमानसमें बारम्बार संत और असंतके लक्षण दिये गये हैं। गोस्वामीजीने साधु और खलकी वन्दनासे तो भूमिकाका आरंभ ही किया है। सत और असंतके वर्णनसे सारा मानस भरा पड़ा है। भगवान् रामचन्द्र स्वयं संत असंत-भेद वर्णन करते हैं। वहां संन्यासी होकर रहना कोई लक्षण नही है। संत असंत अपने कर्म्मके अनुकूल फल पाते हैं। संत चन्दनपर असंत कुठार चोट करता है। संत चन्दन घिस पिसकर देवताओंके सीसपर चढ़ता है। दुष्ट कुठार आगमें तपकर घनसे पिटता है। उसे वह पुरस्कार मिलता है इसे यह दंड। संत विषयमें नहीं फँसता, अच्छे गुण और चरित्रकी खान है, परदुःखसे दुःखी पराये सुखसे सुखी होता है, सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता है, उसका कोई शत्रु नही है, उसे लोभ अमर्ष हर्ष भय नही है, कोमलचित्त है, दीनदयालु है, मन वचन कर्म्मसे निष्कपट भक्ति करता है, सबका आदर करता है, आप नम्रताकी मूर्त्ति है, निष्काम भक्ति करता है। शांतिवृत्ति, शीतलता, सरलता, विनयका घर है। शम, दम, नियम और नीतिका पालन करता है। कठोर वचन मुंहसे नहीं निकालता। निंदासे दुःखी और स्तुतिसे सुखी नहीं होता। यह सब गुण जिसमे हों उसे सच्चा संत समझना चाहिये। इनके विपरीत आचरणवाले असंत या खल हैं। खलोंका गुणानुवाद ६ अभीष्ट भी नहीं है। विस्तार मानसमें पर्याप्त है। संत-असंत-भेदका निचोड़ मानसकारने यों दिया है कि परहितके समान न कोई धर्म्म है और न हिंसाके समान कोई पाप। संतोंका कैसा अच्छा आदर्श है। मर्य्यादापुरुषोत्तमने अपने चरितसे

यह स्पष्ट कर दिया है कि संसारी मनुष्य संतोंके आदर्शका किस प्रकार पालन कर सकता है। पुरुषोत्तमका अनुकरण करके, अपना विकास करके, वह स्वयं किस प्रकार पुरुषोत्तमपथपर आरूढ़ हो सकता है।

विनयपत्रिकामें गोस्वामीजीने भगवान्‌के शील-स्वभावका अत्यन्त संक्षेपमें ऐसे मनोहर अर्थ-व्यंजक शब्दोंमें वर्णन किया है कि कमसे कम सौवें पदको बिना उद्धृत किये रहा नहीं जाता।

सुनि सीतापति सील सुभाउ,
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।
सिसुपनते पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत रामबिधुबदन रिसोहैं सपनेहु लख्यो न काउ।
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।
सिला साप सन्ताप बिगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ।
भव धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध छमाइ पॉय परि इतौ न अनत समाउ।
कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातुको मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ।
कपि सेवाबस भये कनौड़े कहेउ पवनसुत आउ।
देबेको न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ।
अपनाये सुग्रीव बिभीषन तिन न तजे छल छाउ।
भरतसभा सनमानि सराहत; होत न हृदय अघाउ।
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ।

सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ ।
समुझि समुझि गुनग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम पसाउ ।

भगवान्‌के शील-स्वभावकी थोड़ी सी चर्चा करके ही लेखनी-को उनसे भी अधिक उनके दासकी चर्चा करनेकी हिम्मत हो सकती है। जैसे स्वामी भगवान् रामचन्द्र मर्य्यादापुरुषोत्तम हैं वैसे ही भगवान् मारुति सेवाकी सीमा हैं। बिना पवनपुत्र श्रीहनुमान-जीके चरित्रकी चर्चा किये न यह प्रकरण समाप्त हो सकता है और न लेखनी कृतार्थ हो सकती है। भगवान् मारुतिसे यद्यपि पहलेपहल ऋष्यमूक पर्वतके पास ही भेंट होती है, तथापि

"प्रभु पहिचानि परे गहि चरना ।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।"
"मैं अजान होइ पूछा साईं ।
तुम कस पूछहु नरकी नाईं ।"

इससे यह स्पष्ट है कि मारुति पुरुषोत्तमोंसे पहलेसे परिचित हैं। पूछनेमें भी तो चतुराई देखिये "त्रिमूर्त्तिमेंसे आप कोई हैं, कि नर नारायण हैं, कि अखिलेश हैं" मानो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इनमेंसे ही कोई अवश्य है—और ठहरे भी अखि-लेश ही ! इतनेपर वही भोलेपनकी बातें कि नाथ ! मैं तो अजान होकर पूछता था, आप भी मनुष्यकी नाईं कैसे पूछने लगे ? बात यह थी कि नाथ और दास दोनों ही संसारकी रंगभूमिमें कर रहे हैं, दोनों ही इतने निपुण अभिनेता हैं, कि कोई अपने अभिनयमें चूकनेवाला नहीं। फिर भी सेवकसे चूक हो ही जाती है, वह कितना ही करे नाटकके परम सूत्रधारके सामने उसे झुकना ही पड़ता है। बात खुल ही जाती है।

सेवाका आरंभ यहींसे होता है। सुग्रीवके मंत्री हैं, उनकी विपदाके संगी, इसलिये मारुति वह काम करते हैं जिसमें दोनों

पक्षका लाभ है। सुग्रीवका भला तो हुआ ही, उसकी मैत्रीका फल रामरावणयुद्धमें पूरी सहायता भी प्राप्त हुई। हनुमानजी अपने कर्त्तव्यको कभी नहीं भूलते। देखा कि सुग्रीव राज्य-सुखमें अपनी प्रतिज्ञा भूल गया है तो आप ही अग्रसर हुए और लक्ष्मणजीके सक्रोध आगमनके पहले ही उसे चेतावनी दी और स्वय कुछ तदबीरें कर रखीं। देखिये, मंत्रीकी चतुराई। क्रोध शान्त करनेका साधन उपस्थित किया, स्वामीका काम भी किया और राजाको चेतावनी भी दी।

चर-कार्य्यमे तो हनुमानजी सा दूसरा त्रिकाल और त्रिलोक-मे है ही नहीं। श्रीरामचन्द्रजीसे जो पहली भेट हुई उसीमें उनके कौशलका परिचय भगवान्ने पाया। तेजस्वी, बलवान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, सच्चा स्वामिभक्त, ब्रह्मचारी देखकर चलती बेर चुपकेसे बुलाकर भगवान्ने इन्हें अँगूठी दी और सँदेसा भी बताया। वह तो जानते थे कि दूतका काम इसी चरोंके परमाचार्य्यको करना पड़ेगा। समय पड़नेपर अपना रूप अपनी अवस्था आदि बदलकर काम निकालना और उचित वचन बोलना और उचित कर्म्म करना इन्हींके हिस्सेकी बात थी। मारुतिको शायद अणिमादि सिद्ध हैं, क्योंकि इनके जितने काम हुए सभी अद्भुत हैं। पहले तो उनका अपरिमित बल ही अपूर्व चमत्कार है। फिर समुद्र-लांघना, लंकामें मशक सा नन्हा रूप धारण करके घर घर घूमना, सारी लंका छान डालना, विभीषणसे मैत्री करना, सीताका पता लगाकर उन्हे सान्त्वना देना, फिर वाटिका उजाड़नेके बहाने अपनेको पकड़वा देना और रावणका दरबार देखना, फिर उसीके उपायोंका लाभ उठाकर लंकाको जला डालना, मारुतिके यह सभी काम अत्यन्त कौशलके हैं। मारुतिने इनमेंसे कोई एक ही काम किया होता तो भी उनकी कीर्त्ति अमर हो जाती, परन्तु यहां तो उनका सभी काम अपौरुषेय और असाधारण है। सुन्दरकाण्ड

इनकी यशोकीर्त्तिसे वस्तुतः अत्यन्त सुन्दर हो गया है। इतने पराक्रमपर भी हद्द दर्जेकी शालीनता है।' जब महाराज श्री-मुखसे इस सेवककी बड़ाई करते हैं तो लज्जासे गड़ जाते हैं। कहते हैं, नाथ, वानरका बड़ा पराक्रम एक डालसे दूसरीपर कूद जाना है। मैंने जो सागर फांदकर लंका जलायी, वह क्या वानरका काम था? वह तो भगवन्, आपका ही बल-प्रताप था। गरुड़को गर्व हुआ, अर्जुनको अभिमान हुआ, पर भगवान् मारुति काम क्रोध लोभ मद मात्सर्य्यके दास नहीं हुए। राजनीतिका अत्यन्त ऊंची कोटिका काम विभीषणका मिलाना था। यह मारुतिका ही कौशल था जिससे भगवान् रामचन्द्रको सुग्रीव और विभीषण मिले। दोनों ही एक ही प्रकारके दोषोंवाले थे, दोनोंने भगवान्‌की पूरी सहायता की। सच पूछिये तो रामरावणयुद्धकी सफलता इन दोनोंकी मैत्रीसे ही सम्पन्न हुई और इनकी मैत्री मारुतिकी राजविद्याका ही फल था। इस प्रकार हनुमानजी ही भगवान् रामचन्द्रके सर्वस्व थे। इन्हींकी बदौलत सीताजीकी रक्षा और उद्धार हुआ और दोनों मित्रोंको राज्य मिला, पर इसकी अपेक्षा अत्यन्त भारी काम जो भगवान् मारुतिने किया वह था लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर इनकी मुस्तैदी। रणभूमिसे पहले तो यही उन्हें उठा लाये। "जगदाधार अनन्त" को सँभालना "रुद्रावतार हनुमन्त" का ही काम था। विभीषणजी जब वैद्यका पता बताते हैं तो सोते हुए सुषेणको उठा लाते हैं। वह संजीवनी बूटी बतलाते हैं तो ऐसी जो हिमालयपर ही मिल सकती थी। संकल्प-विकल्प, सोच-...का समय न था, मारुतिके सिवा दूसरा कौन तड़केसे ...ले तीन सौ योजन जाता और ले आता? स्वयं ओषधि नहीं पहचानते थे। शिखरका शिखर उखाड़कर उड़े। गिरिधारी आंजनेयको दानव अनुमान करके भरतजी मार गिराते हैं। कविने व्याजसे भरतजीका धनुर्विद्या-कौशल भी यहां दिखाया

है। एक सेकण्डमें कमसे कम आधे मीलका वेग अवश्य रहा होगा। ऐसे वेगवान् पदार्थ पर अचूक लक्ष्य करके अपने आश्रममें गिराना कोई साधारण बात न थी। वृत्त सुनकर भ नकी मनोगतिको समझनेमें किसी कविकी कल्पना समर्थ नहीं हो सकती।

'अहह दइउ मैं कत जग जायेउँ।
प्रभुके एकउ काज न आयेउँ।''

भगवान् मनुष्योचित निराशासे विलाप प्रलाप कर ही रहे थे कि "आइ गये हनुमान जिमि करुना महँ वीर रस।" धन्य मारुति! आप अनुपम चर हो गये। भगवान्‌के राज्यासन आसीन होनेपर भी आप वही चर-कार्य्य करते रहे, क्योंकि अटल अनुराग था, अनन्य भक्ति थी, सेवा ही आदि था, सेवा ही अन्त था। भक्तोंमें मारुति सुमेरु हुए। समस्त वानर जातिको यशस्वी बनाया। तो भी विभीषणसे कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना
कपि चंचल सबही विधि हीना
प्रात लेइ जो नामु हमारा
ता दिन ताहि न मिलइ अहारा
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि मन भरे बिलोचन नीर।

भगवान् मारुतिकी सच्ची अनन्य भक्ति है। वह तो अपना सर्वस्व उन्हींको समझते हैं। रामनाम उनके लिये महामंत्र है; रामकी कथा सुनना उनका व्यसन है।

यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तनम्
तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्

वाष्पवारि परिपूर्ण लोचनम् ।
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ।

२०—गोस्वामीजीकी उपासना

सुलभ सुखद मारग यह भाई
भगति मोरि पुरान स्रुति गाई

गोस्वामीजी रामचरितमानसका आरंभ करते हुए, सरस्वती, गणेश, शिव, पार्वती, गुरु, वाल्मीकि, मारुति और श्रीजानकीजीकी वन्दना करके अन्तमें अपने प्रभुकी वन्दना करते हैं। भाषाकी भूमिकामें भी भगवान्‌की वन्दना सबके अन्तमें है। विनती सबसे है, परन्तु इसी बातकी कि हम श्रीरघुनाथजीके यशोगानमें समर्थ हों। साधारण पाठक समझता है कि गोस्वामीजी विष्णूपासनाविशिष्ट स्मार्त्त हैं, क्योंकि वह सभी देवताओंकी प्रार्थना करते हैं। वह उनको भगवान् रामचन्द्रका अनन्य भक्त नहीं समझता, परन्तु यह भारी भूल है। जैसे रामचरितमानसमें वह "करहु कृपा हरि जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोरि" कहते हैं वैसे ही वह "विनयपत्रिका" में भी सभी देवताओंसे रामकी भक्ति ही मांगते हैं। वह देवताओंका कोई ऊंचा पद नहीं समझते। वह देवताओंको "सन्‍ा ।" कहते हैं। देवताओंके राजा इन्द्रकी उपमा कहीं कौएसे । कुत्तेसे देते हैं। रामकी कथामें आदिसे अन्ततक देवताओंके चरित्रका चित्रण ऐसा नहीं है कि कोई कह सके कि गोस्वामीजी "अन्य देवता-भक्त" थे। वाणी, विनायक, शिव-शिवा, गुरु, मारुति आदि गोस्वामीजीके निकट देवता नहीं हैं, यह भगवान्‌की विभूति हैं। शिव और विष्णुसे तो वस्तुतः इतनी एकता है कि राम शिवके और शिव रामके भक्त और उपासक हैं। गणेशजी तो आदिदेव ही हैं। वाणी तो भगवद्भक्ता महा-

विभूति ही है। गुरु महाराज तो नररूप हरि स्वयं हैं। मारुति-की वदौलत जब श्रीरघुनाथजीके दर्शन होते हैं तो मारुति भी परम भागवत हैं। वह कोई देवता नहीं हैं। अन्तःपुरमें प्रवेश करनेके सभी द्वार हैं, सभी पूज्य हैं। इनमें और देवतामें उतना ही अन्तर है जितना इनमें और मनुष्यमें।

ब्रह्मा विष्णु शिव यह त्रिमूर्त्ति ब्रह्माण्डके स्रष्टा पाता सहर्त्ता हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी त्रिमूर्त्ति अलग है। यह अखिलेश्वरके ही अनेक रूप हैं। परन्तु इनसे परे भी अखिलेश्वरका सच्चिदानन्द सगुण रूप है, जो

कोटि विस्नु सम पालनकर्त्ता, कोटि रुद्र सत सम सहर्त्ता

है जिसके अंश मात्रसे नाना ब्रह्मा विष्णु शिव उत्पन्न होते हैं, जिसके रूपका भगवान् शिव स्वयं ध्यान धरते और उपासना करते हैं, जिसके नामामृतका मुमूर्षुओंको उपदेश करते रहते हैं। उन्हीं भगवान् रामचन्द्रकी उपासना गोस्वामीजीको इष्ट है। ऐसा मानते हुए भी गोस्वामीजी शिव और विष्णुके ईश्वरत्व-में किसी प्रकारकी अपूर्णता नहीं मानते। भगवान्का अंश भी पूर्ण ही होता है।

ॐ पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

गोस्वामीजीकी उपासना अखिलेश्वरकी ही है, और अनन्य है। अनन्य उपासना भी ऐसी नहीं है जिसका किसी अन्य देवता वा भगवद्विभूतिकी उपासनासे विरोध हो।

सो अनन्य असि जाहिके मति न टरै हनुमन्त,

मैं सेवक सचराचर रूपरासि भगवन्त।

सीयराममय सब जग जानी। करउ प्रनामु जोरि जुग पानी।

रामका अनन्य उपासक सारे विश्वको प्रभुमय देखता है

और सबके आगे इसी भावसे सीस झुकाता है। वह किसीसे रामभक्तिके सिवा कुछ नहीं मांगता। वह स्वर्गको तुच्छ समझता है, मुक्तिका निरादर करता है, उसका लक्ष्य केवल एक ही है

"जेहि जोनि जनमउँ करम बस तहँ रामपद अनुरागऊं।

* * * * *

"अर्थ न धर्म्म न काम रुचि गति न चहउँ निरवान,
जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन !"

यद्यपि भक्तिभावन भगवान् कहते हैं कि "करोड़ों ब्रह्म-हत्या लगी हो और शरण आवे तो भी मैं नहीं त्यागता, जीव ज्योंही मेरे सन्मुख होता है, करोड़ों जन्मोंके पाप मैं नष्ट कर देता हूं" तौ भी भक्त कहता है।

"कीजे मोकों जमजातनामई,
राम तुमसे सुचि सुहृद साहेबहि मैं सठ पीठि दई।"

भक्त तो अपने पूर्वपापोंके फल भुगतते हुए भी भगवान्‌के ही चरणोंमें अनुराग चाहता है। उसका आदि, मध्य और और अन्तिम उद्देश्य केवल एक ही है—वह है रामचन्द्र-जीके चरणारविन्दमें प्रीति। यद्यपि अपनी ओरसे भक्तकी कामना इतनी ही है तथापि उसे भगवान्‌की प्रतिज्ञाओंका भारी भरोसा है।

सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति चयाचते,
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः
क्षिप्रं भवति धर्म्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति
कौन्तेयप्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति

यही चतुराई है कि वह भगवच्चरणानुराग ही चाहता है। एक बार भगवच्चरण जाकर फिर वह सदाके लिये अभय हो जाता है। उसके पूर्व अपकर्मोंका नाश हो जाता है। वह पहलेसे धीरे धीरे ऊंचे उठते उठते इस अभयपदपर एकदम पहुंचता है और भगवान्‌को प्राप्त कर ही लेता है।

परन्तु भगवान्‌के सन्मुख वही होता है जिसपर भगवान्‌की भारी कृपा होती है। जीव यदि तनिक सा भी भगवान्‌का स्मरण करता है तो भक्तभावन उसे अत्यधिक स्मरण करते हैं। वह एक कदम उनकी ओर जाता है तो भगवान् सौ कदम आगे आकर उसे शरणमें ले लेते हैं। जगत्पिताकी गोद भक्तको सदा बुलाती रहती है। परन्तु इन सबका रहस्य है भगवत्कृपा। "उर प्रेरक रघुवंस विभूषन"। हम अपनी दैनिक सन्ध्यामें भी तो उसीका ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है*। उसे ही मनाते हैं कि हमें सत्य मार्गपर ले चले और सत्यका हमें दर्शन करावे†।

गोस्वामीजीने उपासनाकी विधियोंका अनेक स्थलोंमें स्पष्ट निर्देश किया है। भगवान्‌के मुखारविन्दसे श्रीरामगीता और नवधा भक्तिमें तो इसका वर्णन है ही पर सबसे अच्छा वर्णन वाल्मीकिजीके मुखसे चौदहो स्थान बताते हुए कराया है। इसी प्रसंगमें श्रीमद्भागवतमें उल्लिखित

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्

---

* गायत्री मन्त्रका यही भाव है।

† ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

* * * *

ॐ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

तत्त्वंपूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।

नवधा भक्तिका भी सन्निवेश है। वाल्मीकिजीने श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवा, अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनके साथ साथ दर्शनाभिलाषाको श्रवणके पीछे ही स्थान दिया है। भगवद्दर्शन एक भारी रहस्य है, जो भक्तकी उत्कट अभिलाषाका परिणाम होता है। गोस्वामीजीने मनुसतरूपाके प्रकरणमे इसका बहुत ही मधुर और अनुभूत वर्णन किया है। गोस्वामीजीने कही स्वयं अपने अनुभवकी चर्चा नहीं की है क्योंकि, ऐसी चर्चा वर्जित है, परन्तु गोस्वामीजीकी जीवनीकी घटनाओंका मनुवाला प्रकरण अन्तःसाक्षी है। फिर अवतारकी दशामें दशरथ और कौशल्या, रानिया, वसिष्ठ, पुरवासी सभीके दर्शनोंका अपूर्व वर्णन है। विश्वामित्र, अहल्या, जनक, पुरवासी, जनकनन्दिनी, सभाके राजन्य, परशुराम, निषाद, केवट, जंगली मनुष्य, मार्गके ग्रामीण नरनारी, भारद्वाज, वाल्मीकि आदि ऋषिमुनि, अत्रि, सुतीक्ष्ण, अगस्ति, शरभंग, शूर्पणखा, राक्षस, गीध, शबरी, नारद, हनुमान, अन्य सभी वानर ऋक्ष, कहातक कहें जिन जिनने प्रथम बार दर्शन किये उनके पूर्वपुण्य और सद्यःप्राप्त दशाका गोस्वामीजीने प्रसंगानुकूल वर्णन किया ही है। शिव और भुशुण्डि तो दर्शनोंके बड़े प्यासे दिखाये गये हैं जो मायाकी असंख्य ठोकरें खा खाकर भी नहीं उकताते और उस परात्पर मोहिनी छबिपर सदा वारे जाते हैं। दर्शनोपरान्त माया भी कितनी गाढी है कि इतनी बड़ी भगवदनुकम्पाकी सुधबुधतक नहीं रहती। भगवान्की माया "सब विधि [illegible]" है।

इन दसोंके सिवा मानसकारने स्थितप्रज्ञावस्था, शरणागति, निष्केवल प्रेम, निष्काम सदाचार, यह चार उपासनाएं भी सम्मिलित की हैं। गोस्वामीजीकी अपनी उपासना इन चौदहों रत्नोंकी अपूर्व स्वादु और तोषदायक खिचड़ी थी। उनकी जीवनीमें दूसरी और चीज ही क्या थी। रामचरितमानस

इसी विचारसे भक्ति और उपासनाका ही विशिष्ट ग्रंथ समझा जाना चाहिये।

गोस्वामीजी कीर्त्तनको इतना महत्व देते थे कि उनकी जितनी रचनाएं हैं सभी गानेके लिये अत्यन्त उपयुक्त हैं। रामचरितमानसको चतुर गानेवाले जिस राग-रागिनीमें चाहें गाते हैं, परन्तु इतनी अनुपम गानयोग्य रचना होते हुए भी, गांधर्व-विद्या-निष्णात गोस्वामीजीने गीतावलीकी भी रचना की। विनयके ऐसे पद रचे कि भगवान्‌को रीझकर उनकी दरखास्त मंजूर ही करनी पड़ी और अपने करकमलसे सही करनी पड़ी। गानेमें एक सूक्ष्म शक्ति है जिसका अनुभव स्थूल बुद्धिवालोंको नहीं हो सकता। गाना देवताओंको और भक्तभावन भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। सो भी केवल गाना नहीं, बल्कि हृदयके सच्चे भाव, प्रेमके गभीर उद्गार, यदि उस गानेके शब्द और अर्थ हों तो वह तो स्वर्गीय गान है जिसके जवाबमें सहृदयकी एक एक तंत्री बज उठती है, जिसका अनुनाद त्रिलोककी सीमाओंको पार कर अखिल विश्वमें गूंज उठता है। यह गाना गोस्वामीजीकी उपासनाका बड़ा भारी अंग है जिसका विकास और पोषण गोस्वामीजीने बड़े कौशलसे किया है। दर्शनकी उत्कट इच्छाके अनन्तर वाल्मीकिजी कीर्त्तनको ही प्रधानता देते हैं और यह उचित ही है।

स्थिरबुद्धि वही हो सकता है जिसके स्थूल और सूक्ष्म शरीर उपासनासे ऐसे निर्मल हो गये हैं कि विमल ज्ञानका प्रकाश अपने आप होने लगता है, फिर उसकी बुद्धि निश्चल हो जाती है। इसी अवस्थाका विशेष वर्णन भगवान्‌ने गीताके दूसरे अध्यायके अन्तमें किया है।

शरणागतिमें आत्मनिवेदनका कुछ अन्तर्भावसा प्रतीत होता है, परन्तु जहां आत्मनिवेदन ज्ञानी भक्त स्वेच्छासे समझबूझकर करता है, वहां आर्त्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी अपने अपने

मनोरथोंकी सफलतामे और सभी दिशाओंसे निराश होकर अन्तमें भगवान्‌की शरणमें आते हैं। वह आत्मनिवेदन नही करते प्रत्युत वह तीनो तापोंसे पीड़ित होकर या तो अपनी रक्षाके लिये भाग आते हैं अथवा काम क्रोध लोभ मोहकी यातनाओंसे बचनेके उद्देश्यसे शरणागत होते हैं।

यद्यपि प्रेमका अन्तर्भाव सभी प्रकारोंमें है, तथापि केवल प्रेमाभक्ति भी एक पृथक् भाव है जो इन्द्रियों और शरीरोंसे परे आत्माकी अन्तरतम दशा है, जो वर्णनातीत है तो भी साधन-द्वारा ज्ञेय और बोधगम्य है।

निष्काम सदाचार तो गीताकी एक मुख्य शिक्षा है। जितने कर्म करे भगवान्‌के लिये करे और उनके फल भी भगवान्‌को ही अर्पण करे। जितने काम करे उनमें कर्त्तव्यबुद्धि रहे, स्वार्थ-बुद्धि न रहे। भक्तके किये हुए काम फिर भी सत् हों, अच्छे ही हों, भूलसे भी जगत् वा व्यक्तिके लिये अनिष्टकारक न हों।

गोस्वामीजी कलियुगमें एक असाम्प्रदायिक सार्वभौम भक्तिके प्रकाशक महाभागवत हो गये हैं। वह प्रचारक न थे। सच्चे भक्त, पहुँचे हुए लोग, प्रचारक नहीं होते। ज्ञानका और सत्यका प्रचार सृष्टिका उद्देश्य नही है। सृष्टिका उद्देश्य तो है मायाका बना रहना, प्रचारका बिलकुल उलटा। जो प्रचार करते हैं उनकी क्रिया स्वभावविरुद्ध है। इसीसे इस लोकमें तो उन्हें सफलता नही होती और परलोकमे अपने कर्मोंके अनुसार दु:ख-सुख भोगकर फिर अप्रचारक स्थूल शरीर धारण करते हैं।

इसीलिये गीता आदि रहस्य-ग्रन्थोकी तरह श्रीरामचरित-मानसमें भी गोस्वामीजीने मना किया है कि यह कथा शठ, हठी, भगवद्भक्तिविरोधी, मन न लगानेवालेसे न कहो। यह कथा उसीसे कहो जिसमें श्रद्धा-विश्वास हो, जो भगवान्‌के सन्मुख हो, जिसपर उनकी कृपा हो। आज ऐसे सम्प्रदाय और

मत भी चल रहे हैं जो मानसकी निन्दा करते नहीं अघाते, यद्यपि इस निन्दासे कोई लाभ नहीं उठाते प्रत्युत् औरोंको भ्रममें डालकर आप उनकी अधोगतिके लिये उत्तरदायी बनते और दोहरे दंडके भागी होते हैं।

आपु गये अरु घालहिं आनहिं।

भिन्न भिन्न उद्देश्यो और दृष्टियोंसे यो तो साधारणतः रामचरितमानस घर घर पढ़ा जाता है, परन्तु सभी पढ़नेवाले एक सा लाभ नहीं उठाते।

कर्म्म कमंडलु कर गहे तुलसी जहँ जहँ जाय

सरिता सागर कूप जल बूँद न अधिक समाय

यहा पाठ करनेवालेकी पात्रताके अनुसार ही रामचरितमानस फल देता है। इस विचित्र ग्रन्थके सहारे वर्णमाला सीखनेके लाभसे लेकर भुक्ति और मुक्तितक लोग कमा लेते हैं। सचमुच रामचरितमानस कहीं तो प्रकाशकोंको या रोजगारियोंको अर्थ दे रहा है, तो धर्म्मप्राणोंको धर्म्म सिखा रहा है, काव्यमर्म्मज्ञोंको लोकोत्तर आनन्द दे रहा है और मुमुक्षुओंको भक्तिमार्गसे ज्ञान और तदुपरान्त मोक्षतक भी पहुँचा रहा है। ऐसे विरले ही ग्रन्थ हैं जो इस प्रकार चारों पदार्थोंके देने वाले हैं। गोपालदासजीने सच ही लिखा है

रामायन सुरतरुकी छाया।

दुख भये दूरि निकट जो आया।

२१—मानसके दार्शनिक विचार

'कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानै

तुलसिदास जो तजै तीनि भ्रम सो आपुन पहिचानै।'

उपासनाके प्रकरणमें हम यह दिखा आये हैं कि ईश्वरके सम्बन्धमें स्वयं मानसकारके क्या विचार हैं। मानसकार दार्श-

निक नही हैं, वह अनुभवी हैं। उनका ज्ञान प्रत्यक्ष है, तर्क और वादपर अवलम्बित नहीं है। तर्क और वाद साम्प्रदायिकताकी नेवँ हैं, परन्तु उनसे सत्यके पूर्ण रूपका कभी दर्शन नहीं होता और साम्प्रदायिकता स्वयं सत्यको अपनी मायाके आवरणमे छिपा लेती है। यह सभव है कि देखनेमे गोस्वामीजीकी उक्ति और युक्ति तर्कके कांटेपर बावन तोला पाव रत्ती न उतरे क्योंकि तर्कका सुभीता एक-देशीयतामें ही है और वाद अपने पक्षके पोषणपर ही दृष्टि रखता है। गोस्वामीजी किसी विशेष सम्प्रदायके अनुयायी न थे। उन्होंने स्वयं कोई पंथ चलाया भी नहीं। वह साम्प्रदायिकताके बड़े विरोधी थे। इसलिये उनके दार्शनिक विचार जिन शब्दोंमें प्रकट हुए हैं वह जहां अत्यन्त सरल और सुबोध हैं, वहां ऐसे लचीले भी हैं कि प्रत्येक सम्प्रदायका अनुयायी सहजमें मनमाना अर्थ निकाल लेता है। गीता उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रंथोंकी शब्दावली भी ऐसी ही लचीली है।

ईश्वर माया और जीवमें अन्तर कई स्थानोंमें बताया गया है। पहले तो शिवजीकी भूमिकामें इसका कुछ विवेचन दिया गया है। फिर आरण्य कांडमें लक्ष्मणजीके प्रश्नोंके उत्तरमें भगवान्ने समझाया है। भुशुंडिकी शिक्षामें तो इस विषयकी अच्छी व्याख्या है। रामचरितमानसके पाठकके लिये किसी और ग्रंथमें इस विषयके विशेष अनुशीलनकी आवश्यकता न पड़नी चाहिये।

संसारको कोई तो सत्य मानता है, कोई झूठ। कुछ लोगोंका कहना है कि धूपछाँहकी तरह संसार झूठ और सत्य दोनोंके मिश्रणसे बना है। परन्तु दृष्टि-भेदसे सभी बाते ठीक हैं अथवा एक भी ठीक नहीं, सभी भ्रम है। जिस तरह न जाननेसे रस्सीमें सांपका भ्रम होता है, और जाननेपर रस्सीकी असलीयत प्रकट हो जाती है उसी तरह जगत्के नाम और रूपसे जिसको हम जानते हैं वह वस्तुतः जगत् नहीं है, ब्रह्म ही है, हमें

जगत्का धोखा होता है। इसी धोखेका नाम है "माया"। अब यदि नाम और रूप अथवा दृश्यकी असत्यतापर दृष्टि कीजिये तो जगत् मिथ्या है। यह एक सम्प्रदाय कहता है। परन्तु रस्सीकी सत्ता तो वास्तविक है। रस्सीके होनेमें सन्देह तो है ही नहीं। सांपका होना ही भ्रम था। उसी तरह यदि जगत् वस्तुतः वासुदेव है, यह दीखना ही जगत् है, तो जगत्की वास्तविक सत्ता मिथ्या नहीं है सत्य ही है। इस प्रकार दृश्यके विचारसे झूठ और वस्तुसत्ताके विचारसे सत्य होनेके कारण जगत् झूठ भी है, सत्य भी। परन्तु जिस घडी सांप है उस घड़ी रस्सी नहीं है और जब रस्सी है, सांप नहीं है। दोनोंका भाव एक ही देश काल और वस्तुमें संभव नहीं है। हम सत्य और झूठ दोनोंका होना इसी तरह समझ सकते हैं कि आभासमात्र असत्य है परन्तु आभासका मूल कारण जो सत्ता है उसकी सत्यतामें भी सन्देह नहीं है। परमात्माको न जाननेसे झूठ होते हुए भी संसार सत्य ही भासता है। ज्योंही परमात्माका ज्ञान हो गया जगत् इस तरह खो जाता है जैसे जाननेपर सांपका भ्रम या जागनेपर सपनेका भ्रम। परन्तु असत्य होते हुए भी यह भ्रम बडा दुःखदायी है। सांप या सपना लाख झूठ हो पर जबतक जानते या जागते नहीं तबतक सांपके भय या सपनेकी यातनासे छुटकारा नहीं मिलता। इस दुःखदायी भ्रमसे, इस मायासे, छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय भगवान्की कृपा है।

मायाका मूल रूप यही है। परन्तु माया अत्यन्त विषम है, बडी चलवनी है, उसके जालमें ही संसार है। उसके परदेके उघड जानेमें संसारका विनाश है। प्रवृत्तिका कारण, अथवा स्वयं प्रवृत्ति माया है। निवृत्तिका कारण, अथवा स्वयं निवृत्ति तत्त्वज्ञान है। अविश्वास और अज्ञान मायाके ही रूपान्तर हैं। लोग मुँहसे कहते हैं कि सर्वज्ञ ईश्वरको हम मानते हैं और डरते हैं परन्तु यह भी माया है, क्योंकि वह कहते भर हैं, वस्तुतः नहीं

मानते। वह झूठ कहते हैं, क्योंकि यदि वह सर्वज्ञ ईश्वरको मानते और डरते तो पाप तो उनकी कायासे हो नहीं सकता था। तर्कशास्त्री उसे तर्कसे सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु तर्कणाके यंत्र बुद्धि और विवेक मायासे ऐसे आवृत हैं कि बुद्धिको पता नहीं लगने पाता कि सत्य और तत्त्व क्या है। जब किसी प्रतिज्ञाको एक सिद्ध करता है तो दूसरा उसका खंडन कर डालता है। इसीलिये संसारमें सर्वबादिसम्मत ईश्वरकी सत्तातक नहीं है।* जिस किसीको तत्व बताया गया उसकी ज़ुबान बन्द कर दी गयी, वह इतने ऊंचे चला गया जहां बुद्धिकी पहुंच नहीं है, वह इतनी दूर पहुंच गया जहां जिज्ञासाकी पुकार नहीं पहुंच सकती। वह तो जानते ही स्वयं परमात्मा हो जाता है। फिर वह मायाके परदेको सबके लिये क्यों उघाडे, क्योंकि परमात्माका यह तो उद्देश्य ही नहीं है। जो मायाके परदेको उघाडनेके लिये ज्ञानका प्रचार करता है प्रकृतिके विरुद्ध चलता है मुंहकी खाता है, संसार उसका अपमान करता है, उसकी सुनता ही नहीं, उसे बावला कहता है। भारी भारी महात्माओंकी ऐसी ही गति हुई है। उनके अनुयायी आज उनके नामसे उनकी शिक्षाकी दुर्गति कर रहे हैं, उलटा अर्थ लगाते हैं, और उलटी राहमे लोगोंको चलाते हैं। जिन लोगोंने प्रकृतिके अनुकूल काम किया बडे अगाध विद्वान् समझे गये, उनकी बात सबको सहज ही समझमे आ गयी, उनके अनुयायी असंख्य हो गये। मायाको यथार्थ समझना ब्रह्मको समझना है। जिस तरह ब्रह्मज्ञान सर्वसाधारणके समझनेकी चीज नहीं उसी तरह माया भी सबके समझनेकी चीज नहीं है। जहांतक इंद्रियां हैं मन है, और इनके विषय हैं वहांतक माया है। मन बुद्धि अहंकार

* भारतवर्ष सदासे पारलौकिक रहस्योंकी खानि रहा है। अन्य युगोंमे आप्त परम्परागत ज्ञान भी लोग माया और कालके प्रभावसे भूलते जाते हैं। युगोंसे जानी और अनुभूत बातोंपरसे भी विश्वास उठता जा रहा है।

भी उसी मायासे निर्मित हैं। इनको मायासे परेका ज्ञान कैसे हो सकता है? जड़-चेतन, देह और जीव सभी मायाके अन्तर्गत, मायाके अधीन हैं। ईश्वर मायाधीश है, वह मायाके अधीन नहीं है। तो भी अपनी प्रकृतिमें अधिष्ठित अपनी मायासे वह अवतरित होता है। संसार उसकी मायाका खेल है। विश्व उसकी लीला है, विश्वेश्वर खेलवाड़ी है। वही सत्य है, और संसारके दुखसुख झूठे हैं। परन्तु "जदपि असत्य देत दुख अहई।" इस दुखसे छुटकारा तभी है जब जीव भगवत्सन्मुख होता है, और यह भगवत्कृपापर ही अवलम्बित है।

जीव तो भगवान्की पराप्रकृति है, उनका अंश है, अविनाशी है। अपराप्रकृति मायाके बस होकर बँधा हुआ है। न अपनी असलियत जानता है, न मायाका रहस्य जानता है, न ईश्वरका उसे ज्ञान है। वह यदि यह समझ जाय कि मैं क्या हूं तो मायाका परदा तुरन्त फट जाय। बहुरूपियेका पता लगा नहीं कि उसका धोखा उड़ा। मायाके ही उलझनमें पड़कर उसे अपना रहस्य भूला रहता है। वह भगवान्की लीलाका चट्टा-बट्टा इसी फेरमें बना रहता है। यहां खेलनेवाला, खेलका सामान और क्रिया सब एक ही है, परन्तु खेलके उद्देश्यसे इनमेंसे हर एकका अलग अलग होना अनिवार्य्य है।

ईश्वर मायाधीश है। वह अपनी इच्छासे मायाकी चादर भले ही ओढ़ ले, परन्तु माया उसके अधीन है। उसीके इशारेपर नाचती है। भगवान्की सृष्टिकी ओर प्रवृत्ति ही माया है, यह जीवको भगवान्से दूर कर देती है। जिस तरह माया धीरे धीरे अपना पसारा फैलाती है, उसी तरह भगवद्भक्ति धीरे धीरे इसी पसारेको भक्तके लिये समेटती है और निवृत्तिमार्गपर उसे चलाती है, उसे भगवान्के समीप लाकर मिला देती है। माया भगवान्की फैलायी है, और उनकी इच्छा पूर्ण करती है, परन्तु भक्ति तो उनकी इच्छाके प्रतिकूल नहीं चलती। वह तो संसार-

की रक्षा करती हुई कृपा-भाजन भक्तको भगवत्‌के समीप लाती है। इसीसे भक्ति भक्तभावन भगवान्‌को भाती है, उन्हें अत्यन्त प्यारी है। माया केवल कौतुक रचनेमें सक्षम है पर जीवको सदा दूर ही करती है। भक्ति कौतुककी रक्षा करती हुई भक्त-को ला मिलाती है।

राम सच्चिदानन्दघन हैं, अज हैं, विज्ञानरूप हैं, बलधाम हैं व्यापक और व्याप्य दोनों हैं, अखंड हैं, अनन्त हैं, अखिल हैं, अखिलेश्वर हैं, अमोघशक्ति हैं, निर्गुण हैं. मन-वचनादि इन्द्रियों-से परे, समदर्शी, अनवद्य, अजीत, निर्म्मल, निराकार, निर्म्मोह, नित्य, निरंजन, प्रकृतिसे परे, परमानन्द, सबके हृदयमें बसने-वाले, निरीह, विरज अविनाशी ब्रह्म हैं। सूर्य्यके लिये जैसे रात्रिका अभाव है वैसे ही रामके लिये मोहका अभाव है। ज्ञान-विज्ञानरूपी प्रभात वहां क्यों होने लगा? यह बातें तो जीवके लिये हैं। राम ज्ञान-विज्ञानसे उसी तरह परे हैं जैसे अज्ञान वा मोहसे। उनके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूप हैं। सगुण और निर्गुण दोनों ही भावोंसे परे भगवान्‌की सत्ता है, परन्तु वह दोनों ही रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। जो जिस भावसे भजता है उसी भावसे वह उसे प्राप्त होते हैं।

कूटस्थ, अक्षर, ईश्वरका अंश, चैतन्य रूप, "अमल सहज सुखरासी" जीव, मायावश जड़-चेतनमें गांठ पड़ जानेसे, बन्धन-में उलझ जाता है। झूठा होते हुए भी इस बन्धनके छूटनेमें बड़ी कठिनाई है। बस इसी गांठसे जीव संसारी हो गया। जितने उपाय करता है सबसे जगत्‌के बन्धनमें अधिकाधिक उलझता जाता है। गांठके खुलनेका उपाय भी ईशके अधीन है। उसकी कृपा हो तो अज्ञानान्धकारको दूर करनेको ज्ञानका दीपक जलाना संभव हो सकता है जिसकी विधि विस्तारसे मानसकारने दी है। परन्तु अत्यन्त कठिनाईसे जलाये हुए ज्ञान-दीपकके बुझते देर नहीं लगती। ज्ञानका मार्ग कृपाणकी धारा

है, इसपरसे फिसलकर गिरते देर नही लगती। इस कठिनाईके साथ ही ईशकी कृपा इसका मूल है। भक्तिके लिये भी मूल कारण ईशकी कृपा है। भक्तिके मार्गसे पतनका तनिक भी भय नही है। "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"। भक्तिसे ज्ञान अपने आप आता है। "श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्"। एक ओर जहा ज्ञानके लिये भक्ति अचूक साधन है, वहाँ दूसरी ओर जीवको निवृत्तिमार्गपर ले जाकर भगवान्से मिलानेके लिये अमोघ उपाय है। जब हरिकृपा ज्ञान और भक्ति दोनोंका मूल है, तब भक्ति जैसे सुगम साधनको छोड ज्ञानके जोखिमवाले मार्गका कौन अवलम्बन करना चाहेगा? ज्ञान निर्गुण उपासनाकी ओर झुकता है और भक्तिका तो लक्ष्य सगुण उपासना है। गीतामें भी कहा है

"क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्"

निर्गुण उपासना कठिन है। ज्ञान केवल जाननेका नाम नहीं है। ज्ञानका लक्षण गीतामें जिस विस्तारसे दिया हुआ है उसका गोस्वामीजीने अत्यन्त संक्षेपमें दिग्दर्शन किया है।

"ज्ञान, मान जहँ एको नाहीं
देखै ब्रह्म समान सब माहीं

गीतामें "अमानित्वमदम्भित्वं अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्" से लेकर "अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्"तक ज्ञानके लक्षण दिखाये हैं। गोस्वामीजीने "अमानित्वम्" से आरम्भ करके कैसे कौशलसे "देखै ब्रह्म समान सब माहीं" में अन्तके भाव दे दिये हैं। ज्ञानके अन्तर्गत अमान, अदम्भ, अहिंसा, क्षमा, ऋजुता, स्थिरता, आचार्योपासना, शौच, आत्मनिग्रह, वैषयविराग, अनहंकार, पीड़ाओंका सहन और उनकी उपेक्षा, असंग, समदर्शिता आदि सभी सद्गुण हैं। परन्तु सबसे बड़ी चीज है "मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी" भगवान् ज्ञानीमें

भक्तिको अनिवार्य्य समझते हैं। भक्तोंमें "ग्यानी प्रभुहि विसेष पियारा" परन्तु "तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त:,एक,भक्तिर्विशिष्यते" वह भी भक्तिकी विशेषतासे। साराश यह कि भगवत्कृपा प्रधान ठहरी। उससे यदि भक्ति आयी, तो झख मारेगा ज्ञान पीछे पीछे आवेगा, क्योंकि "तेहि आधीन ज्ञानविज्ञाना।" यदि ज्ञान आया तो उसके साथ ही अनन्यभक्ति होनी चाहिये। भक्तिके पीछे ज्ञानका आना अनिवार्य्य है, क्योंकि "श्रद्धावाँल्लभते, ज्ञानम्" नियम है। ज्ञानके पीछे भक्तिका आना अनिवार्य्य नही है, क्योंकि "ज्ञानवाँल्लभते भक्तिम्":का कोई नियम नहीं है। ज्ञानी तो भगवान्के सयाने लड़के हैं, अनन्य भक्तिका साधन उनका कर्त्तव्य है। उन्होंने अपना कर्त्तव्य न पाला तो उसके लिये दोषी हैं। भक्त तो अबोध बालक है। यदि उसे शीघ्र ज्ञान न हुआ तो उसका दोष नही। उसकी श्रद्धा उसे ज्ञान देकर ही रहेगी। उसको बोध करानेकी जिम्मेदारी तो जगत्पितापर है। यही भक्त और ज्ञानीमे अन्तर है। वैसे तो ज्ञान और भक्ति दोनोका ऐसा सम्बन्ध है कि एकके विना दूसरा अपूर्ण ही रहता है। भक्त ज्ञानी हुए बिना नही रह सकता। ज्ञानी भक्ति विना कृतकृत्य नही हो सकता।

भारतवर्ष आत्माके क्रमविकासकी भूमि है। भारतेतर देशोंमें पारलौकिक क्रमविकासमे शीघ्रताका सुभीता नही है। इसी देशपर भूः, भुवः, स्वः महः आदि सप्तलोक हैं। यहींके श्रद्धावान् हिन्दू देवयान और पितृयान मार्गोंसे लाभ उठाते हैं। दूसरे नही। इस विषयकी सत्यताका प्रत्यक्षानुभव सबको मरणोपरान्त होता है। इस पवित्र भूभागके लोगोंका उद्धार करनेके लिये और श्रद्धालुओंको सत्यज्ञान बतलानेके लिये राम-चरितमानसका अवतार हुआ। इस अनुपम ग्रन्थ रत्नने अनेक पापियोंकी यमयातनासे रक्षा की है और करता रहेगा।